बी.एड. प्रथम वर्ष

समकालीन भारत और शिक्षा

(CONTEMPORARY INDIA AND EDUCATION)

GEDE-02

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)
2. Dr. Nitin Jain
   Assistant Professor
   Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Lata Malviya
   Professor
   IES University, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
2. Dr. L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, B.Ed.
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
4. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group Of Institutions, Bhopal (M.P.)
5. Dr. Nitin Jain
   Assistant Professor
   Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal (M.P.)
6. Dr. Lata Malviya
   Professor
   IES University, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Nirja Sharma, Assistant Professor, University of Delhi
Units (1.2-1.2.1)
Chetna Jathol, Assistant Professor, Rawal College of Education, Faridabad
Dr Pargat Singh Jathol, Assistant Professor (M. Ed.), Shiv College of Education, Faridabad
Unit (4.2.6)
Dr Sitesh Saraswat, Reader, Department of Education, Bhagwati College of Education, Meerut
Units (4.3.3)
Gourav Kumar Singh, Assistant Professor in Prestige Institute of Management (PIMG), Gwalior
Units (1.0-1.1, 1.4.3, 1.4.4, 1.5-1.5.1, 1.6-1.10, 1.2.2, 1.4-1.4.2, 1.4.5, 1.5.3, 2.2.1, 2.2.3, 2.3-2.4.3, 2.5, 2.5.2-2.5.5, 3.2.3, 3.3.5, 3.4-3.5.4, 4.2-4.2.5, 4.3-4.3.1, 4.3.2, 4.4-4.5.3)
Dr. Rakhi Mittal, Associate Professor, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar, Ghaziabad (UP)
Units (2.0-2.1, 2.2.2, 2.5.1, 2.6-2.10, 3.0-3.1, 3.6-3.10, 4.0-4.1, 4.2.7, 4.5.4, 4.6-4.10)
Prof. Meenu Agrawal, Principal, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar, Ghaziabad (U.P.)
Units (1.3.2, 2.2)
Dr Kalpana Singhal, Lecturer, Department of Political Science, GDM (PG) Girls College, Modinagar, Ghaziabad
Units (1.3-1.3.1)
Dr Nutan Singh, Associate Professor, GDM Girls PG College Modinagar
Units (1.5.2, 3.2-3.2.1, 3.3, 3.3.2-3.3.4)
Dr. Arun Kumar Gupta, Associate Professor, Department of Political Science, K.G.K College Moradabad
Units (3.2.2, 3.3.1)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

समकालीन भारत और शिक्षा

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 : भारत : ऐतिहासिक विकास; एक समाज के रूप में भारत; भारत : विशिष्ट विशेषताएं; विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत	**इकाई 1** : भारतीय समाज की समझ **(पृष्ठ 3–94)**
इकाई–2 : विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : मुख्य विशेषताएं और विरोधाभास; भारतीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा; आधुनिक भारतीय समाज; शिक्षा में बदलाव : महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान	**इकाई 2** : भारत और विकास **(पृष्ठ 95–169)**
इकाई–3 : भारत के संविधान का निर्माण; भारत का संविधान : बुनियादी दर्शन और विशेषताएं; भारत में शिक्षा : अधिकार का विशेषाधिकार; बाल अधिकार : शिक्षा	**इकाई 3** : आधुनिक भारत और शिक्षा का आदर्श दृष्टिकोण : भारत का संविधान **(पृष्ठ 171–282)**
इकाई–4 : भारत में शैक्षिक नीति की रूपरेखा : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक लेखा; स्वतंत्र भारत में शिक्षा नीति की रूपरेखा; भारतीय शिक्षा : सरोकार और मुद्दे; पाठ्यचर्या की रूपरेखा : स्कूली शिक्षा नीतियां	**इकाई 4** : भारत में सार्वजनिक शिक्षा के लिए नीतिगत ढांचे : प्रतिस्पर्धी मांगें और नीतियां **(पृष्ठ 283–408)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 भारतीय समाज की समझ **3–94**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भारत : ऐतिहासिक विकास
  1.2.1 प्राचीन सभ्यता के रूप में भारत : विशेषताएं
  1.2.2 भारत उच्च शिक्षा की स्थिति के रूप में : आवश्यक विशेषताएं और प्रकृति
1.3 एक समाज के रूप में भारत
  1.3.1 राजनीतिक इकाई के रूप में भारत : ऐतिहासिक विकास
  1.3.2 समाज : अर्थ और विशेषताएं
1.4 भारत : विशिष्ट विशेषताएं
  1.4.1 भौगोलिक विविधता
  1.4.2 भाषाई विविधता
  1.4.3 सांस्कृतिक विविधता
  1.4.4 धार्मिक बहुलता
  1.4.5 सामाजिक स्तरीकरण
1.5 विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत
  1.5.1 एक विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत : परिकल्पना, प्रकृति और मुख्य विशेषताएं
  1.5.2 लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष राजनीति
  1.5.3 संघीय संरचना : शैक्षिक व्यवस्थाओं और जिम्मेदारियों के लिए निहितार्थ
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

इकाई 2 भारत और विकास **95–169**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : मुख्य विशेषताएं और विरोधाभास
  2.2.1 विकास और विस्थापन
  2.2.2 विकास और पर्यावरण ह्रास
  2.2.3 बढ़ती आय और बढ़ती असमानता
2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा
  2.3.1 कृषि क्षेत्र और शैक्षिक संबंध
  2.3.2 औद्योगिक क्षेत्र और शैक्षिक संबंध
  2.3.3 सेवा क्षेत्र और शैक्षिक संबंध
  2.3.4 वैश्वीकरण और ज्ञान अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : शिक्षा की भूमिका
2.4 आधुनिक भारतीय समाज
  2.4.1 मानव समाज : मानक संबंध
  2.4.2 भारतीय समाज : बहुनियामक ढांचा– एक आलोचनात्मक समझ
  2.4.3 आधुनिक भारतीय समाजः संवैधानिक नियामक ढांचा

2.5 शिक्षा में बदलाव : महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान
2.5.1 महात्मा गांधी
2.5.2 ज्योतिबा फुले
2.5.3 दादाभाई नौरोजी
2.5.4 गोपाल कृष्ण गोखले
2.5.5 एसएसए और आरएमएसए के अंतर और स्कूल के अवसरों पर उनका प्रभाव
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 आधुनिक भारत और शिक्षा का आदर्श दृष्टिकोण : भारत का संविधान 171–282

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 भारत के संविधान का निर्माण
3.2.1 संविधान : अर्थ और कार्य
3.2.2 संविधान सभा का गठन : प्रकृति और कार्य
3.2.3 भाषा और शिक्षा पर संविधान सभा की बहस
3.3 भारत का संविधान : बुनियादी दर्शन और विशेषताएं
3.3.1 प्रस्तावना
3.3.2 मौलिक अधिकार और कर्तव्य
3.3.3 राज्य के नीति निदेशक तत्व
3.3.4 भाषा नीति संबंधित अनुसूची
3.3.5 भारत का संविधान और शैक्षिक प्रावधान
3.4 भारत में शिक्षा : अधिकार का विशेषाधिकार
3.4.1 विशेषाधिकार के रूप में शिक्षा
3.4.2 शैक्षिक अवसर : भारतीय शैक्षिक अतीत पर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी
3.4.3 शिक्षा के अधिकार के रूप में मांग और प्रयास : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक जांच
3.4.4 शिक्षा के अधिकार की संवैधानिक यात्रा : राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों के माध्यम से संविधान सभा में आरटीई (RTE) एक्ट 2009 पर वाद विवाद
3.4.5 आरटीई (RTE) ACT 2009 : मुख्य विशेषताएं
3.4.6 शिक्षा का अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009–एक बहस
3.5 बाल अधिकार : शिक्षा
3.5.1 अंतर्राष्ट्रीय बाल अधिकार सम्मेलन–1989
3.5.2 बाल अधिकारों पर संवैधानिक प्रावधान
3.5.3 वंचित बच्चों का अधिकार– बालिकाएं और अलग–अलग विकलांग बच्चे
3.5.4 वंचित बचपन और बाल श्रम और स्कूली शिक्षा : वैकल्पिक स्कूल– प्रकृति
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 भारत में सार्वजनिक शिक्षा के लिए नीतिगत ढांचे : प्रतिस्पर्धी मांगें और नीतियां

283–408

4.0 परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 भारत में शैक्षिक नीति की रूपरेखा : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक लेखा

- 4.2.1 शैक्षिक नीति के निर्धारक : शिक्षा का उद्देश्य
- 4.2.2 वैध ज्ञान
- 4.2.3 आकलन
- 4.2.4 शिक्षा का माध्यम
- 4.2.5 प्रवेश नीतियां और प्रशासनिक नीतियां
- 4.2.6 शिक्षा की औपनिवेशिक नीति तैयार करने का ब्रिटिश प्रयास : 1835, 1854 और 1882
- 4.2.7 अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत : उसकी आलोचना

4.3 स्वतंत्र भारत में शिक्षा नीति की रूपरेखा

- 4.3.1 स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों के दौरान शैक्षिक नीति में प्राथमिकताएं : सामाजिक और क्षेत्रीय
- 4.3.2 राष्ट्रीय विकास और आधुनिकीकरण : भारतीय शिक्षा आयोग 1964–66
- 4.3.3 शिक्षा की राष्ट्रीय नीति : 1968 और 1986

4.4 भारतीय शिक्षा : सरोकार और मुद्दे

- 4.4.1 स्कूली शिक्षा का लोकतंत्रीकरण
- 4.4.2 स्कूली शिक्षा का सार्वभौमीकरण : पहुंच, प्रतिधारणा और सफलता
- 4.4.3 शैक्षणिक अवसरों की समानता : स्कूली शिक्षा में बढ़ रही असमानता
- 4.4.4 स्कूली शिक्षा में समाजशास्त्रीय विश्लेषण और गुणवत्ता एवं समता

4.5 पाठ्यचर्या की रूपरेखा : स्कूली शिक्षा नीतियां

- 4.5.1 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा 1975 का विश्लेषण : शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य, शैक्षणिक नीतियां, पाठ्यक्रम संगठन, आकलन के तौर–तरीके और भाषा नीतियां
- 4.5.2 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 1988 का विश्लेषण
- 4.5.3 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 2000 का विश्लेषण
- 4.5.4 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 2005 का विश्लेषण

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 मुख्य शब्दावली

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'समकालीन भारत और शिक्षा' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

संविधान के 45वें अनुच्छेद में स्पष्ट निर्देश है कि राज्य 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा। संविधान की भावना के अनुरूप पूर्व बाल्यकाल, प्राथमिक, माध्यमिक और फिर उच्च शिक्षा के स्तर तक केंद्रीय और राज्य सरकारों ने शिक्षा के विकास के लिए अनेक योजनाएं बनाईं और कई कार्यक्रम लागू किए। हालांकि सरकारी प्रयासों का उतना लाभ नहीं हो सका जितना होना चाहिए था। भारत में शिक्षा व्यवस्था की संरचना का क्रमिक विकास हुआ है– वैदिक काल से लेकर ब्रिटिश काल तक और फिर स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर मौजूदा दौर तक।

इस पुस्तक में समकालीन भारतीय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं का स्तरीय वर्णन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक में चार इकाइयों को समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई भारतीय समाज पर आधारित है। इसमें भारत के ऐतिहासिक विकास के अंतर्गत प्राचीन सभ्यता की विशेषताएं, भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति, भारतीय समाज की विशेषता, भारत की विविधताएं, विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की संघीय संस्था आदि तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई में भारत की विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषता, विकास और विस्थापन, पर्यावरणीय ह्रास, भारतीय अर्थव्यवस्था में शिक्षा की भूमिका, वैश्वीकरण, आधुनिक भारतीय समाज, शिक्षा में बदलाव के अंतर्गत महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, दादाभाई नौरोजी तथा गोपाल कृष्ण गोखले आदि विद्वानों के योगदान को वर्णित किया गया है।

तीसरी इकाई आधुनिक भारत और शिक्षा के आदर्श दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें भारत के संविधान का निर्माण, भाषा और शिक्षा पर संविधान सभा की बहस, मौलिक अधिकार, शैक्षिक प्रावधान, भारत में शिक्षा का विशेषाधिकार, आरटीई एक्ट, बाल शिक्षा, वंचित बचपन और स्कूली शिक्षा आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

टिप्पणी

चौथी इकाई में भारत में सार्वजनिक शिक्षा की नीतिगत रूपरेखा को आधार बनाया गया है। इसमें शैक्षिक नीति के निर्धारक तत्वों–शिक्षा का उद्देश्य, आकलन, शिक्षा का माध्यम, शिक्षा की औपनिवेशिक नीतियां, अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत की आलोचना, स्वतंत्र भारत में शिक्षा नीति, राष्ट्रीय विकास, भारतीय शिक्षा आयोग, स्कूली शिक्षा का सार्वभौमिकरण, पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अंतर्गत स्कूली शिक्षा नीतियों को विस्तार से समझाया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में समकालीन भारतीय शिक्षा की संरचना से जुड़े तमाम मुद्दों का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। इन इकाइयों के अध्ययन से छात्र शिक्षा व्यवस्था से जुड़े विविध पक्षों से अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्द्धन करेगी।

इकाई 1 भारतीय समाज की समझ

संरचना

टिप्पणी

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भारत : ऐतिहासिक विकास
  1.2.1 प्राचीन सभ्यता के रूप में भारत : विशेषताएं
  1.2.2 भारत उच्च शिक्षा की स्थिति के रूप में : आवश्यक विशेषताएं और प्रकृति
1.3 एक समाज के रूप में भारत
  1.3.1 राजनीतिक इकाई के रूप में भारत : ऐतिहासिक विकास
  1.3.2 समाज : अर्थ और विशेषताएं
1.4 भारत : विशिष्ट विशेषताएं
  1.4.1 भौगोलिक विविधता
  1.4.2 भाषाई विविधता
  1.4.3 सांस्कृतिक विविधता
  1.4.4 धार्मिक बहुलता
  1.4.5 सामाजिक स्तरीकरण
1.5 विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत
  1.5.1 एक विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत : परिकल्पना, प्रकृति और मुख्य विशेषताएं
  1.5.2 लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष राजनीति
  1.5.3 संघीय संरचना : शैक्षिक व्यवस्थाओं और जिम्मेदारियों के लिए निहितार्थ
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

1.0 परिचय

आदि मानव ने धरती पर अवतरण के साथ ही जो कुछ सीखा वह किसी वन्य पशु के कार्यकलापों से भिन्न न था परंतु धीरे-धीरे मनुष्य ने उन्नति करना आरंभ किया। असभ्यता से अर्द्धसभ्यता, अर्द्धसभ्यता से सभ्यता के प्रथम सोपान तक पहुंचने में उसे वर्षों तक असंख्य शृंखलाएं तथा समय की एक लंबी दूरी पार करनी पड़ी। विश्व की सर्वप्रथम सभ्यता कौन सी है? यह प्रश्न विवादास्पद है, परंतु यह निश्चित है कि प्राचीन सभी सभ्यताएं नदियों की घाटियों में ही उदित हुईं तथा वहीं पल्लवित हुईं। चाहे वह दजला-फरात की घाटी में सुमेरियन, बेबीलोनियन तथा असीरियन आदि सभ्यता हो या नील नदी की घाटी में पल्लवित मिस्र की सभ्यता या सिंधु घाटी में पुष्पित व पल्लवित सिंधु घाटी की सभ्यता। नदियों की घाटियों की उपजाऊ भूमि, कोमल मिट्टी और अधिक पैदावार, वर्षा की अधिकता और चरागाहों की सुविधा, समशीतोष्ण जलवायु, आवागमन और यातायात की सुविधा तथा नदियों की घाटियों में प्राप्त विभिन्न धातुओं की प्रचुरता से नदियों की घाटियों में मानव सभ्यता खूब फली फूली।

टिप्पणी

भाषा अवैयक्तिक एवं परम्परागत है। कोई व्यक्ति उसका निर्माण एवं विनाश नहीं कर सकता है, किन्तु उसमें व्यक्तिगत विभिन्नता नहीं रहती। तथ्य तो यह है कि हर व्यक्ति की भाषा दूसरे की भाषा से किसी–न–किसी रूप में अलग रहती है। इस कारण भाषा में विविधता रहती है। जिस प्रकार परम्परागत होते हुए भी संस्कृति का रूप हर व्यक्ति में समान नहीं होता, वैसे ही भाषा का रूप भी समस्त व्यक्तियों में समान नहीं होता। इसी विविधता का परिणाम है कि भाषा निरन्तर विकसित होती रहती है। उसमें नयी–नयी ध्वनियां, नये–नये शब्द और वाक्य निर्माण की नवीन पद्धतियां स्थान पाती रहती हैं। यही नहीं, एक भाषा के ही विभिन्न रूप, उप भाषाएं, बोलियां एवं उप बोलियां आदि भी अपना नवीन स्वरूप ग्रहण करती रहती हैं।

प्रस्तुत इकाई में भारत के ऐतिहासिक विकास के अंतर्गत प्राचीन सभ्यता के रूप में भारतीय समाज की विशेषताएं, भारत में शिक्षा की स्थिति, भारतीय समाज की विविधताएं तथा विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की भूमिका और संघीय संरचना आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारतीय समाज के ऐतिहासिक विकास को समझ पाएंगे;
- भारत की प्राचीन सभ्यताओं की विशेषताओं को जान पाएंगे;
- भारत की विशिष्ट विविधताओं के बारे में जान पाएंगे;
- एक समाज के रूप में भारत की भूमिका को समझ पाएंगे;
- विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत की पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे।

1.2 भारत : ऐतिहासिक विकास

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व के समक्ष अतुलनीय है। यह न केवल प्राचीनता की दृष्टि से वरन अपनी गौरवशाली एवं प्रगतिशीलता की दृष्टि से प्रसिद्ध रही है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वर तक, पश्चिम में सिंधु से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र तक के क्षेत्र को आर्यावर्त या भारत कहा गया। भारत नाम 'भरत' नामक राजा के नाम पर पड़ा। इसके अतिरिक्त भारत को हिंदुस्तान, इंडिया, आर्यावर्त्त, जंबू द्वीप नामों से भी जाना जाता है।

एशिया में भारत का एक विस्तीर्ण प्रायद्वीप है। एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थित भारत स्वयं एक उपमहाद्वीप है। **डॉ. बनर्जी** ने भारत के विषय में कहा है-"इसकी विशालता, जलवायु की विभिन्नता, भौगोलिक विशेषताओं (स्थितियों) में अंतर तथा विभिन्न प्रजातियां जो इसमें रहती हैं, के कारण इसको एक महाद्वीप कहा जा सकता है।" भौगोलिक दृष्टि से प्राचीन साहित्य में हमारे देश को पांच भागों में बांटा गया है परंतु आधुनिक इतिहासकार प्राकृतिक संरचना की दृष्टि से इसे चार भागों में बांटते हैं :

टिप्पणी

1. **उत्तर का पर्वतीय भाग**–तराई के दलदलमय वन खंड से लेकर हिमालय के शृंगों तक यह क्षेत्र विस्तृत है। पुराणों में इसे 'पर्वताश्रयिन' कहा गया। इसमें कश्मीर, कांगड़ा, टिहरी, गढ़वाल, कुमाऊं, नेपाल, सिक्किम, भूटान एवं विशाल एवं सर्वोच्च पर्वत हिमालय भी है जो देश के उत्तर में 1500 मील लंबी एक दीवार की भांति खड़ा है। यद्यपि यह पर्वत बीच-बीच में दर्रों के कारण खंडित है, परंतु कोई भी विदेशी आक्रांता इन दर्रों से आने का साहस नहीं जुटा पाता। इसके अतिरिक्त पटकोई व नागा पहाड़ियां आक्रमणकारियों के लिए दुर्गम एवं अभेद्य रही हैं। यद्यपि उत्तर-पश्चिम में स्थित दर्रों से जिनमें ऊंचाइयों का अभाव है वहां से आक्रांता देश में प्रवेश करते रहे हैं। अतः जब भी इस क्षेत्र में सुरक्षा को अनदेखा किया गया, तभी हूण, तुर्क, मंगोल, सियाचिन आदि हमारे देश में आ सके। यह पर्वतीय क्षेत्र प्रवेश द्वार ही नहीं है अपितु इसकी बाह्य ऊंची श्रेणियों के कारण साइबेरिया की शुष्क एवं ठंडी हवाओं से भी भारत की रक्षा हो सकी।

   शांति संबंध स्थापित करने में भी यह सहायक सिद्ध हुआ है, जिससे भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार-प्रसार हो सका। हिमालय अपनी निर्जनता के कारण ऋषि मुनियों का प्रिय स्थान रहा है। निर्जनता के कारण ऋषि मुनियों ने आश्रम बनाए एवं तपस्या की और अनेक ग्रंथों की रचना की। इस कारण यह क्षेत्र तीर्थस्थली बन गया। हिमालय की तराई का प्रदेश घास व जंगलों से परिपूर्ण है।

2. **गंगा तथा सिंधु का उत्तरी मैदान**–उत्तर के विशाल मैदान में सिंधु, गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र के उपजाऊ मैदान तथा राजपूताना की मरुभूमि आती है। इन सब नदियों से सिंचित भूमि उर्वर होने के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह भारतीय महाद्वीप का हृदयस्थल होने के कारण घना बसा हुआ क्षेत्र है। मरुभूमि अत्यंत उर्वरक होने के कारण यह वाणिज्य व व्यापार का केंद्र व वैभवशाली नगरों की विस्तारक बनी हुई है।

   प्राचीन काल में आर्यावर्त नाम से विख्यात केंद्र न केवल भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का केंद्र रहा है वरन प्राचीन एवं अर्वाचीन साम्राज्यों की राजधानियों व धार्मिक आंदोलनों का केंद्र बिंदु भी रहा है। सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से समृद्ध होने के कारण आक्रांता इस प्रदेश के धन, वैभव, संपन्नता से आकर्षित हुए। इस प्रदेश की जलवायु जन-जीवन के अनुकूल है जिससे कृषि, व्यवसाय, उद्योग-धंधे और जन-जीवन फला-फूला। आर्थिक रूप से समृद्धता के कारण यहां पर कला एवं साहित्य का समुचित विकास हो सका। यह क्षेत्र अनेकानेक महान योद्धाओं की जन्मभूमि रही है जिससे यहां महान वंश पल्लवित हुए। **डॉ. आर. डी. बनर्जी** ने लिखा है–"सिंधु नदी, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र के विशाल उपजाऊ मैदानों ने मानवजाति के इतिहास के आरंभ से ही भारत के बाहर रहने वाले घुमक्कड़ कबीलों को आक्रमण के लिए अपनी ओर आकर्षित किया है।"

टिप्पणी

3. **दक्षिण का पठार**–यह त्रिभुजाकार भू-खंड है। गंगा के मैदान में दक्षिण की ओर विस्तृत, विंध्याचल तथा सतपुड़ा द्वारा पृथक किया हुआ क्षेत्र है। नर्मदा और महानदी भी यहीं दो भागों में बंटती है। विंध्याचल के नीचे के भाग को दक्षिण भारत और प्राचीन ग्रंथों में दक्षिण क्षेत्र कहा गया है। विंध्याचल के दुर्गम पठार तथा जंगलों को पार करना अत्यंत दुर्लभ कार्य है। इसी कारण दक्षिण का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भिन्न है परंतु यह प्राचीन भारतीय संस्कृति का रक्षक है क्योंकि आक्रमणकारी दक्षिण भारत तक कम ही पहुंचे जिससे वहां हमारी संस्कृति सुरक्षित रह सकी। यहां की भूमि पठारी है। अत: जीवन अत्यंत संघर्षशील ही रहा है। छापामार रणनीति इसी क्षेत्र की देन है। दक्षिण क्षेत्र सदैव से इतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार रहा है क्योंकि प्राकृतिक अवस्था के कारण यह देश के अन्य भागों से पृथक रहा है परिणामस्वरूप यहां के निवासियों ने अपने ढंग से संस्कृति का विकास किया।

4. **पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्र**–दक्षिण के लंबे एवं संकीर्ण समुद्रीय मैदान जो पूर्वी घाट से पश्चिमी घाट तक फैले हुए हैं, इसके अंतर्गत अनेक उन्नतशील बंदरगाह; जैसे कोंकण व मालाबार तथा गोदावरी, कृष्णा, कावेरी की उर्वरा भूमि अथवा डेल्टा हैं। दक्षिण के पठार के पिछले पश्चिमी भाग में शृंखलाबद्ध ऊंची पर्वत श्रेणियों की दीवार है जो अरब सागरीय तटरेखा के समानांतर 700 मील की लंबाई तक चली गई है। यह पश्चिमी घाट के नाम से प्रसिद्ध है। समुद्रतट से 3,000 से 6,000 फीट ऊंचे पश्चिमी घाट हैं जो अभेद्य एवं अजेय दुर्ग हैं। यातायात एवं संचार के साधनों के अभाव में प्राचीन व मध्य युग में पश्चिमी घाट के अनेक स्थलों को पार करना असंभव था। स्थल क्षेत्र संकीर्ण है जो 20 फीट से अधिक चौड़ा नहीं है जो समुद्रतट एवं पश्चिमी घाट के मध्य में विस्तृत है तथा अत्यंत उर्वरक है। तटीय क्षेत्र के निवासी पठार क्षेत्र के निवासियों से लगभग पृथक रहे हैं। इसके विपरीत, पश्चिम तट के सुदूर उत्तर में पश्चिमी घाट पर नर्मदा एवं ताप्ती में उसके ढाल की दुर्गमता को विदीर्ण कर विस्तृत घाटियों का निर्माण कर दिया। पश्चिमी घाट के बंदरगाह पाश्चात्य देशों के साथ होने वाले भारतीय वाणिज्य व्यवसाय के प्रमुख निर्गम स्थान रहे और मध्य पूर्व की सभ्यता के घनिष्ठ संपर्क में बने रहे हैं। अनेक नदियों के कारण पूर्व तटीय प्रदेश वैभवशाली साम्राज्यों के निर्माण में सहायक हुए। पूर्वी बंदरगाहों ने प्रारंभ से ही पूर्वी एशिया में सभ्यता एवं संस्कृति के प्रसार के लिए राजमार्ग निर्मित किए। इसी कारण वृहत्तर भारत का अभ्युदय हुआ। यह समुद्र व्यापार एवं उपनिवेश का साधन रहा है।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत एक संपूर्ण भौगोलिक इकाई है। भौगोलिक दृष्टि से विशिष्ट प्राकृतिक सीमाओं के कारण भारत सुरक्षित रहा है। भारत की भौगोलिक सीमाओं ने इस देश को संसार के अन्य देशों से भिन्न एवं एकांतमय बनाया है। प्राकृतिक अवस्थाओं ने यहां की सभ्यता एवं संस्कृति को प्रभावित किया है।

टिप्पणी

हिमालय की गगनचुंबी श्रेणी के नीचे अहंकारहीन संस्कृति का विकास हुआ। सिंधु के मैदान ने मनुष्यों को उदार बनाया, उर्वरा भूमि ने इसे लक्ष्मी और सरस्वती का केंद्र बनाया तो दक्षिण की ऊबड़-खाबड़ धरती ने संघर्षशील मराठा और छापामार प्रणाली को परिपुष्ट किया। इस देश की विशालता ने राजनीतिक एकता में व्यवधान उत्पन्न किया तो धार्मिक एकता को प्रोत्साहन मिला, यहां की भौगोलिक स्थिति से ही यहां के इतिहास का निर्माण हुआ।

• भारतीय जन (निवासी)

भारत के निवासी विभिन्न प्रजातियों के हैं। उसका सर्वप्रमुख कारण यह है कि प्राचीन काल से ही भारत पर अनेक देशों के आक्रांताओं ने आक्रमण किए। आक्रमणकारियों के आगमन से अनेक जाति के लोगों का भारतीय संस्कृति से संपर्क हुआ। परिणामस्वरूप पारस्परिक संबंधों, व्यापारिक कारणों से यहां पर अनेक जातियों के लोग रच बस गए।

भू-गर्भ शास्त्रियों के अनुसार सृष्टि के प्रारंभ में अफ्रीका, भारत, प्रशांत महासागर के द्वीप तथा ऑस्ट्रेलिया मिले हुए थे। अनुमान है कि पांच लाख वर्ष पूर्व भारत में मानव रहता था। तब से लेकर आज तक अनेक प्रजातियों के लोग भारत आए। जितनी प्रजातियां भारत में हैं शायद ही कहीं और हों। कश्मीर से राजस्थान तक आर्य, हिमालय के उत्तरी और उत्तरी पूर्वी प्रदेशों में मंगोल, दक्षिण में द्रविड़, विंध्याचल के पहाड़ी भागों में मुंडों या निषादों की प्रमुखता रही है। भौतिक नृवैज्ञानिकों ने भारतीय लोगों का जो वर्गीकरण किया है उसमें विविधता मिलती है। ऐतिहासिक साहित्य में **बी.एस. गुहा** कृत वर्गीकरण अन्य प्रयासों की तुलना में अधिक प्रचलित है। प्रमुख मूल कुल चार या पांच हैं–नीग्रो, आस्ट्रेलाइड, मंगोल, भूमध्य सागरीय, आद्यनार्डिक (प्रोटो-नार्डिक)। यह वर्गीकरण भौतिक लक्षणों; जैसे शिरस्य सूचकांक आदि के आधार पर दिया गया था। नृवंशशास्त्रियों के अनुसार प्रमुख प्रजातियां निम्नलिखित हैं–

नीग्रो–कद छोटा, चौड़ा व छोटा मुंह, मोटे होंठ, छोटी व पतली टांगों के व्यक्ति नीग्रो प्रजाति कहलाती है। यह जाति भारत में ईरान व बलूचिस्तान होते हुए जलमार्ग से प्रविष्ट हुई। भारत में यह जाति अंडमान द्वीप समूह में पायी जाती है।

प्रोटो आस्ट्रेलाइड, आदिम आग्नेय–यह भारत में मध्य भारत विंध्यप्रदेश में पाए जाते हैं। छोटे कद के दीर्घ कपाल, धंसी हुई मोटी नाक, मोटे होंठ, जबड़े की हड्डियां आगे बढ़ी होती हैं। इनका मूल निवास स्थान फिलीस्तीन था।

द्रविड़ या भूमध्य सागरीय–लंबा सिर, नोंकदार ठोढ़ी, उठी हुई नाक, पतले होंठ, छोटा कद, हल्के भूरे बाल व आंख। विद्वानों का विचार है कि सिंधु सभ्यता के निर्माणक यही हैं। वर्तमान में ये दक्षिण भारत में मिलते हैं तथा तमिल, तेलगू, कन्नड़ इनकी भाषाएं हैं।

मंगोल–चौड़ा व चपटा चेहरा, छोटा कद, लंबा धड़, मोटे होंठ, गोल ठोढ़ी, आंखें भूरी व काली होती हैं। वर्तमान में यह प्रजाति आसाम और उत्तर पूर्वी सीमा वाले क्षेत्र में पाई जाती है।

टिप्पणी

आर्य–गोरी त्वचा, लंबा सिर, ऊंची नाक, पतले होंठ, सुनहरे बाल, लंबा कद। प्रारंभ में इनके प्रमाण गंगा और यमुना के दोआब में मिलते हैं। आर्य वैदिक सभ्यता के जनक थे। कालांतर में यह संपूर्ण भारत में फैल गए।

अन्य जातियां–उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त कुषाण, बैक्ट्रियन, वरद, पार्थियन, तुर्क, अफगान तथा मुगल जातियां भी भारत में आई। इन जातियों को भारत की संस्कृति ने विलीन कर लिया।

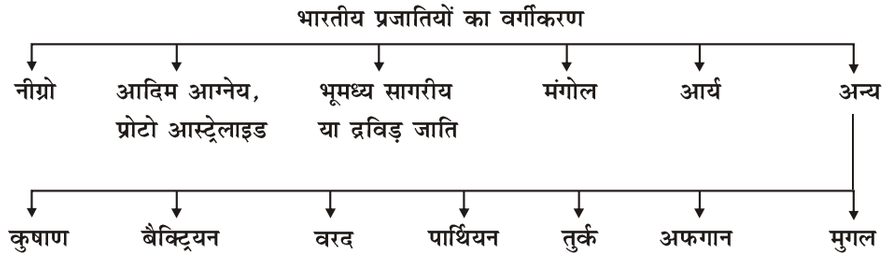

• संचार मार्ग

देश की भौगोलिक स्थिति के आधार पर ही संचार व्यवस्था का निर्धारण होता है। भारतीय भौगोलिक स्थिति अनेकता में एकता लिए हुए है परंतु भारत में संचार मार्ग उसकी भौगोलिक एकता के कारण ही विकसित हो सका है। वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए सुगम संचार होना अत्यंत आवश्यक है। भारत के प्रमुख आंतरिक एवं बाह्य मार्गों का वर्णन निम्नांकित हैं–

आंतरिक मार्ग–गंगा की घाटी के बीच से नीचे से जो मार्ग उत्तर पश्चिम की ओर जाता था, उसे प्रमुख मार्ग माना जाता है। यह मार्ग न केवल स्थानों के मध्य संबंध स्थापित करता है वरन गंगा के कछारी संकीर्ण पथों के सहारे जो अनेक स्थान पड़ते हैं, वह संपर्क सूत्र का कार्य करते हैं। इस मार्ग का प्रथम मुख्य उपमार्ग पश्चिमी पंजाब से सिंधु नदी की ओर जाता है। दूसरा उपमार्ग दिल्ली मथुरा आगरा क्षेत्र से पश्चिमी भारत की ओर जाता है, तीसरा उपमार्ग इलाहाबाद से प्रारंभ होकर मध्य भारत से होता हुआ गंगा घाटी तथा दक्षिण के मध्य संबंध बनाता है, गंगा घाटी के दक्षिणी मुहाने से एक मार्ग उड़ीसा से दक्षिण की ओर जाता है।

बाह्य मार्ग–उत्तरी पश्चिम के मार्ग खैबर, गोमल तथा बेलन हैं। ये मार्ग अफगानिस्तान की ओर जाते हैं। मध्यकाल में उत्तर पश्चिम सीमांत पर 52 पहाड़ी दर्रे उपयोगी हैं। दक्षिण बलूचिस्तान से मकराना होते हुए ईरान जा सकते हैं। सिंध, अफगानिस्तान, पूर्वी ईरान, सोवियत और मध्य एशिया का दक्षिणी भाग। ये सभी घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं–उत्तर-पश्चिम मार्ग से देश के बाहर के अनेक मार्ग जुड़े हुए हैं। मध्य एशिया के पूर्वी हिस्से कश्मीर होकर जाते हैं। असम के मार्ग से बर्मा व चीन का रास्ता बनता है। भारत के पश्चिमी तट और पूर्वी अफ्रीका तथा लाल सागर के समुद्री तटों के सहारे समुद्र पार करना संभव है।

अत: स्पष्ट है कि भारतीय महाद्वीप अपने पड़ोसी प्रदेशों से अनेक स्थल एवं समुद्री मार्गों द्वारा भली-भांति जुड़ा हुआ है।

टिप्पणी

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में एक अत्यंत गंभीर समस्या वास्तविक ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है। प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत अपर्याप्त, अनिश्चित तथा अस्पष्ट हैं। **डॉ. ए.एल. बाशम** के शब्दों में, "भारत का प्राचीन इतिहास एक पेचीदा समस्या के समान है जिसके कुछ अंश मिलते ही नहीं, चित्त के कुछ भाग तो काफी स्पष्ट हैं, अन्य कुछ भागों का ध्यानपूर्वक कल्पना द्वारा पुनः निर्माण किया जा सकता है परंतु कई ऐसे खाली स्थान रह गए हैं जिन्हें शायद कभी भी न भरा जा सके।" यह भी सत्य है कि हमारे यहां हेरोडोट्स, ट्यूसी डाइडीज अथवा लिवि जैसे इतिहास लेखक नहीं उत्पन्न हुए जैसा कि यूनान, रोम आदि देशों में हुए। इस कमी का कारण संभवतः यह है कि प्राचीन भारतीयों ने इतिहास को उस दृष्टि से नहीं देखा जैसा कि आज के विद्वान देखते हैं। अनेक इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास संबंधी अपने अलग-अलग मत दिए हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार, भारतीयों में ऐतिहासिक मेधा का अभाव था, कुछ के अनुसार प्राचीन काल में भारतीयों को इतिहास लिखने में कोई रुचि नहीं थी। वास्तव में, उन लोगों का इतिहास संबंधी विशेष दृष्टिकोण था। **डॉ. मुखर्जी** के शब्दों में, ''भारतीय परंपरा के अनुसार इतिहास नायकों की अथवा किसी काल के प्रतिनिधियों की जीवन कथा नहीं अपितु युग-युगांतरों की प्रक्रिया है जिसके अनुसार मानवजाति की विशेष जीवनियों की नहीं बल्कि मनुष्य जीवन की उत्पत्ति, वृद्धि तथा नाश क्रमानुसार होते हैं।"

मानव की विगत विशिष्ट घटनाओं का दूसरा नाम ही इतिहास है। अतीत के सभी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास एवं परिवर्तन, भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान एवं पुनरुत्थान वर्तमान का इतिहास बनकर प्राचीन मानव तथा उसके कृत्यों की स्मृति दिला रहे हैं अर्थात जो बीत गया वही इतिहास है, मूलतः महत्वपूर्ण तथ्यों को चुनकर अतीत के पुनर्निर्माण करने को ही इतिहास कहते हैं। यथा– "History is the story of deeds and achievements of man living in the society."

अतीत के महत्वपूर्ण तथ्यों को ही ऐतिहासिक स्रोत कहते हैं जिनके द्वारा हमें इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः इतिहासकार एक वैज्ञानिक की भांति है जो उपलब्ध सामग्री की समीक्षा करके अतीत का सही चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। यह भारत का दुर्भाग्य ही है कि इतिहासकारों के समक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के पर्याप्त स्रोत नहीं प्रतीत होते हैं। इसी कारण कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय इतिहासकारों को इतिहास लेखन के प्रति रुचि ही नहीं थी अथवा वह इतिहास रचना के प्रति उदासीन थे। **फ्लीट** ने आलोचना करते हुए कहा कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास रचना की शक्ति थी भी अथवा नहीं। **अलबरूनी** ने प्राचीन भारतीयों की इतिहास रचना संबंधी उदासीनता का उल्लेख किया है। अलबरूनी ने यहां तक स्पष्ट कह दिया है कि प्राचीन भारतीयों से यदि किसी समय या काल का इतिहास या उस समय की घटना विशेष के विषय में पूछा जाता है तो वे कथाएं कहना प्रारंभ कर देते हैं। एक इतिहासकार ने तो यहां तक कहा है कि भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं है।

एल्फिन्सटन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सिकंदर के आक्रमण के पूर्व की किसी भी महत्वपूर्ण घटना की तिथि निर्धारित करना कठिन है। यह सत्य है कि प्राचीन भारत में यूनानी-इतिहासकार हेरोडोटस, रोमन इतिहासकार लिबी, तुर्की इतिहासकार अलबरूनी

टिप्पणी

जैसे इतिहास लेखक नहीं हुए। **प्रो. ए. बी. कीथ** ने प्राचीन इतिहास की रचना में त्रुटि के तीन कारण बताए हैं–**प्रथम** कोई भी विदेशी आक्रमण इतना गंभीर नहीं था जिससे भारत में राष्ट्रीय भावना जाग्रत होती अथवा इतिहास लेखन की प्रेरणा प्राप्त होती। **द्वितीय** कारण भारतीयों का भाग्यवादिता का दृष्टिकोण जिसने उन्हें सभी भौतिक घटनाओं के प्रभाव से मुक्त रखा। **तृतीय** भारतीयों के लिए ऐतिहासिक घटनाओं और किंवदंतियों में कोई अंतर नहीं था। इसी प्रकार के विचार **डॉ. आर. एस. त्रिपाठी** ने भी व्यक्त किए हैं, "प्राचीन भारतीय वाङ्मय विशद एवं समृद्ध होते हुए भी इतिहास की सामग्री में अत्यंत न्यून है। इसका कारण यह नहीं है कि भारत का अतीत स्मरणीय घटनाओं में सर्वथा शून्य रहा है। संभव है कि इस महत्वपूर्ण साहित्यिक क्षेत्र की उपेक्षा का कारण ऐतिहासिक मेधा की कमी रही हो।" प्राचीन काल में भारतीयों में इतिहास बुद्धि का अभाव था। इसका समर्थन स्मिथ फ्लीट, त्रिपाठी, मजूमदार, एलफिन्सटन आदि ने किया है।

आज के 'इतिहास' की परिभाषा परिवर्तित हो गई है। इतिहासकारों का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है और इतना ही नहीं संभावना तो यह है कि आज का यह परिपक्व ऐतिहासिक दृष्टिकोण भी परिवर्तित होता जा रहा है, जो संभवत: निकट भविष्य में ही पूर्णतया विभिन्न हो जाएगा। कल तक जिन भीषण रक्तपातों, नरसंहारों तथा विजयों पर सहस्रों पृष्ठ रंग दिए जाते थे और उसी समय कला, सभ्यता तथा संस्कृति की सूक्ष्म मूल प्रवृष्टियों का बहुधा उल्लेख मात्र कर दिया जाता था आज या तो दोनों परिस्थितियों के साथ याद किया जाता है और समान रूप से प्रकाश डाला जाता है या सभ्यता एवं संस्कृति को अधिक से अधिक प्रकाश में लाने का प्रयास किया जाता है। हमारा यह अभिप्राय नहीं कि आज का इतिहासकार शुष्क ऐतिहासिक घटनाओं की ओर दृष्टिपात ही नहीं करता, पर वास्तव में सोचता वह कुछ ऐसे ही है। पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ही प्राचीन आर्यों का इतिहासशास्त्र था। **डॉ. बेनीप्रसाद** ने उचित लिखा है– "..... तिथियों के न होने से विकास (सभ्यता के विकास) का क्रम अच्छी तरह स्थित नहीं होता पर इसके बाद जो कठिनाई पड़ती है वह सामग्री की कमी से नहीं किंतु बहुतायत से पैदा होती है। वास्तविकता यह है कि यदि तिथिक्रम के प्रश्न को थोड़ी देर के लिए पृथक कर दिया जाए तो भारतीय इतिहास की सामग्री का इतना बाहुल्य है–यद्यपि उस अथाह सामग्री सागर में प्रक्षिप्तांशों, प्रतिवादों तथा अत्युक्तियों का अभाव नहीं कि उन्हें इतिहास का मूलाधार तथा इतिहास जानने के साधनों का माध्यम बना कर जीवनपर्यंत कोई अन्वेषण कर सकता है।"

साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक सामग्री के अंतर्गत हम उस समस्त सामग्री को सम्मिलित करते हैं जो हमें ग्रंथों और लेखों के रूप में उपलब्ध है। यह सामग्री निम्नलिखित है-

1. धार्मिक साहित्य

जीवन के सर्वांगीण विकास में सहायक समस्त साधनों का सामूहिक नाम धर्म था। यह एक जीवन प्रणाली थी जिसके द्वारा मानव जीवन नियंत्रित एवं संचालित होता था। धर्म के इस सर्वव्यापी महत्व के कारण प्रचुर मात्रा में धार्मिक ग्रंथ लिखे गए। इन धार्मिक ग्रंथों

में धार्मिक इतिहास के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं की भी झलक मिली है। प्राचीनकाल में भारत में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन इन तीनों धर्मों की प्रधानता थी, अतः इनके धर्मग्रंथ भी अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ तीन वर्गों में विभक्त हैं। धार्मिक साहित्य में हिंदू, बौद्ध और जैन धर्मग्रंथ सम्मिलित हैं।

टिप्पणी

• हिंदू (ब्राह्मण) धर्म ग्रंथ

1. **वेद**–वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रंथ हैं जिनका संकलनकर्ता महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास को माना जाता है। प्राचीनतम और अनुपमेय महानता के कारण ही ये मानव रचित न होकर ईश्वर प्रदत्त माने गए हैं। वेद चार हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन वेद है। ऋग्वेद में 10 मंडल तथा 1028 सूत्र हैं। सामवेद उस वेद का नाम है जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति के समय मधुर स्वर में गाये जाते थे। इसे भारतीय संगीत का मूल कहा जा सकता है। यजुर्वेद यज्ञ प्रधान वेद है। इससे आर्यों की यज्ञ विधियों की जानकारी मिलती है। चारों वेदों में अथर्ववेद सबसे बाद का है। इससे ब्रह्मज्ञान, धर्म समाज, निष्ठा, औषधि प्रयोग, रोग निवारण तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका, मारण-मोहन, उच्चाटन आदि अनेक विषयों की जानकारी मिलती है। इन चारों वेदों को 'संहिता' कहा जाता है।

   वैदिक संहिताओं में वे मंत्र एवं सूत्र संगृहीत हैं जिनका निर्माण (दर्शन) प्राचीन आर्य ऋषियों ने किया था। इनका प्रयोजन किसी देवता विशेष की स्थिति है पर प्रसंगवश कहीं-कहीं इनमें अपने समय की राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख हो गया है जिससे हमें तत्कालीन स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है।

2. **ब्राह्मण**–समय के साथ-साथ आर्यों के यज्ञों एवं कर्मकांडों में वृद्धि होती गई और इनका विधान भी जटिल होता गया। अतः इन्हें बोधगम्य बनाने तथा इनमें निहित दार्शनिकता का रहस्योद्घाटन करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई है। अर्थात यज्ञ के विषयों का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ 'ब्राह्मण' कहलाए। ये वेदों पर आधारित हैं। प्रत्येक वेद के पृथक-पृथक ब्राह्मण ग्रंथ हैं। ऋग्वेद का ऐतरेय और कौषीतकी ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का पंचाविश ब्राह्मण और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण। ब्राह्मण ग्रंथों में अनेक उपाख्यानों का उल्लेख है जो तत्कालीन सामाजिक दशा पर प्रकाश डालते हैं।

3. **आरण्यक**–'अरण्य' का अभिप्राय वन होता है अर्थात जिन ग्रंथों का निर्माण वन में हुआ है उन्हें आरण्यक कहा जाता है। ये ग्रंथ वनों की एकांतता में पढ़े जाते थे। इनमें चिंतनशील ज्ञान पक्ष पर जोर दिया गया है। वस्तुतः ज्ञानमार्गी विचारधारा का बीजारोपण इन्हीं ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है। इन ग्रंथों की संख्या सात है।

4. **उपनिषद**–उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान की विशद चर्चा है। यज्ञों के स्थान पर ज्ञान मार्ग का और बहुदेववाद के स्थान पर एक परमसत्ता का प्रतिपादन किया गया है। उपनिषद ग्रंथ किसी एक लेखक अथवा एक काल की रचनाएं नहीं हैं अपितु भिन्न-भिन्न समय के अनेक विद्वानों एवं विचारों के

टिप्पणी

बौद्धिक योगदान का परिणाम हैं। प्रमुख उपनिषद हैं–इशावास्य केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडुक्य, ऐतरेय, तैतरीय श्वेताश्वर, छांदोग्य, वृहदारण्यक और कौषीतकी। प्राचीन आर्यों के आध्यात्मिक विकास का पूर्ण ज्ञान उपनिषदों से प्राप्त होता है। प्राचीन काल की धार्मिक अवस्था, चिंतन तथा नैतिक विकास के ये जीते जागते उदाहरण हैं। वेदों तथा ब्राह्मणों की महानता को ये और अधिक शक्तिशाली बना देते हैं।

5. **वेदांग**–कालांतर में वैदिक अध्ययन के निमित्त विशिष्ट विद्याओं की शाखाओं का जन्म हुआ जो वेदांग के नाम से विख्यात हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष छः वेदांग हैं। ये सब वेदों के अंग माने जाते हैं और वेदों को ठीक से समझने के लिए शुद्ध उच्चारण करने एवं यज्ञों के विधान को समझने में सहायक हैं।

   डॉ. रतिभानु सिंह नाहर ने इनके महत्व के विषय में लिखा है, "वास्तव में वैदिक साहित्य के पश्चात भारतीय साहित्य के दो स्तंभ रामायण और महाभारत संपूर्ण धार्मिक साहित्य में ऊंचा स्थान रखते हैं। भारतीय इतिहास को अधिक से अधिक प्रकाश में लाने का श्रेय बहुत कुछ इन महाकाव्यों को दिया जा सकता है।"

6. **सूत्र ग्रंथ**–सूत्र ग्रंथ का कर्मकांड से संबंध होने के कारण ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों से सीधा संबंध है। इनकी संख्या तीन है–श्रौतसूत्र, गुह्यसूत्र और धर्मसूत्र।

7. **स्मृतियां**–ब्राह्मण ग्रंथों में ऐतिहासिक उपयोगिता के दृष्टिकोण से स्मृतियों का विशेष महत्व है, स्मृतियों में मनुष्य के संपूर्ण जीवन के विविध कार्यों के नियमों एवं निषेधों का उल्लेख मिलता है। स्मृतियों में तत्कालीन सामाजिक संगठन, सिद्धांतों, नियमों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों आदि की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति और पाराशर स्मृति प्रमुख स्मृतियां हैं, जिनमें मनुस्मृति सबसे प्राचीन व प्रामाणिक मानी जाती है।

8. **महाकाव्य**–ब्राह्मण धर्मग्रंथों में भारत के दो प्राचीन महाकाव्यों रामायण और महाभारत का भी विशेष स्थान है। मूलतः इन ग्रंथों की रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई थी। ये महाकाव्य देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, समृद्धि और रहन-सहन आदि का विशद विवरण प्रस्तुत करते हैं।

9. **पुराण**–पुराणों की संख्या 18 है। इन ग्रंथों में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री है। इनमें अति प्राचीन काल से परंपरागत धर्म, इतिहास, सृष्टि और प्रलय, आख्यान, विज्ञान आदि का वर्णन है। पुराणों के अंतर्गत पांच विषयों का वर्णन साधारणतया हुआ है–(1) सर्ग (आदि दृष्टि) (2) प्रति सर्ग (प्रलय के पश्चात पुनर्सृष्टि) (3) वंश (देवताओं तथा ऋषियों की वंश तालिका (4) मनन्वंतर (कल्पों के महायुग, जिनमें मानव का स्रष्टा मनु माना गया है। (5) वंशानुचरित (प्राचीन

कुलों का इतिवृत्त)। विष्णु, शिव, भागवत, मार्कण्डेय, अग्नि एवं भविष्य पुराणों का विशेष ऐतिहासिक महत्व है।

2. ब्राह्मणेतर साहित्य

टिप्पणी

(क) बौद्ध ग्रंथ

ब्राह्मण साहित्य की भांति बौद्ध साहित्य भी बहुत विशाल है और प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में उसका योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस साहित्य में कुछ ऐसे तथ्यों पर भी प्रकाश डाला गया है जिन पर समकालीन ब्राह्मण साहित्य मौन है। बौद्ध ग्रंथों में प्रमुख निम्नवत हैं-

1. **पिटक ग्रंथ**–बौद्धों के धार्मिक सिद्धांत मुख्यत: पिटक ग्रंथों में संगृहीत हैं। ये तीन हैं–विनयपिटक, सूत्रपिटक, अभिधम्मपिटक। तीन की संख्या के कारण इन्हें 'त्रिपिटक' भी कहा जाता है। त्रिपिटकों पर जो भाष्य व टीकाएं लिखी गई हैं उनमें प्राचीन आख्यानों व इतिवृत्त का भी समावेश है।
2. **जातक ग्रंथ**–ऐतिहासिक दृष्टि से जातक कथाओं का बहुत महत्व है। इनकी संख्या 549 है। **विंटरनित्स** ने लिखा है, "जातक केवल इसीलिए ही अमूल्य नहीं कि उनके साहित्य और उनकी कला का प्रकाशन वैसा है, अपितु तीसरी शताब्दी ई.पू. की सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से भी उनको वैसा ऊंचा माना है।" जातकों में भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएं संग्रहीत हैं। यद्यपि इनका दृष्टिकोण पूर्णतया धार्मिक है किंतु इनके अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्र पर तो ये पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। कुछ जातकों से बुद्ध पूर्व तथा बुद्ध कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का भी आभास मिलता है।
3. **अन्य पालि ग्रंथ**–इतिहास निर्माण में सहायक अन्य पालि बौद्ध ग्रंथों में तीन ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है जिनमें मिलिंदपंहों, दीपवंश और महावंश आदि प्रमुख हैं।

(ख) जैन ग्रंथ

जैन साहित्य को आगम (सिद्धांत) कहा जाता है। बौद्ध साहित्य के समान जैन साहित्य भी प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुशीलन के लिए अत्यधिक उपयोगी सामग्री उपस्थित करता है। ईसा की पहली सदी से छठी सदी तक के काल में अनेक ग्रंथों की रचना हुई जिसमें परिशिष्ट पर्व, भद्रबाहु चरित्र कथाकोष, पुण्याश्रव कथाकोष, लोकविभाग त्रिलोक प्रज्ञप्ति, आवश्यक सूत्र, भगवती सूत्र, कालिकापुराण आदि अनेक जैन ग्रंथ भारतीय इतिहास की सामग्री उपस्थित करते हैं। जैन साहित्य में कुछ ऐसे भी ग्रंथ हैं जिनका प्रकाशन या जिनका अन्य भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सका है, जिससे बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्रियां प्राप्त नहीं की जा सकी हैं किंतु कल्पसूत्रों से जो कुछ सामग्री प्राप्त हो सकी है, उसकी उपयोगिता निर्विवाद है। जैन धर्म का प्रारंभिक इतिहास 'कल्पसूत्र' से ज्ञात होता है जिसकी रचना भद्रबाहु ने की थी।

(ग) धर्मनिरपेक्ष साहित्य

टिप्पणी

प्राचीन भारत में धर्मप्रधान साहित्य की रचना अधिक हुई थी परंतु अन्य विषयों पर भी ग्रंथ रचनाएं हुई थीं और उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन संबंधी सामग्री भरी पड़ी है। इस साहित्य को पांच भागों में विभक्त किया गया है–(1) ऐतिहासिक (2) अर्द्ध-ऐतिहासिक (3) विदेशी विवरण (4) जीवनियां (5) कल्पना प्रधान एवं गद्य साहित्य, गल्प साहित्य (विशुद्ध साहित्य)।

• ऐतिहासिक

इतिहास का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। इसके अंतर्गत राजाओं और उनके उत्तराधिकारियों का वर्णन, शासन प्रबंध तथा अन्य राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियां भी आती हैं। यहां ऐतिहासिक शब्द का जो वास्तविक अर्थ लिया गया है, उसका तात्पर्य राजाओं तथा उनके शासन प्रबंध से है। इसके अंतर्गत निम्न ग्रंथ आते हैं–

(क) **राजतरंगिणी**–कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिणी ही प्राचीन भारतीय साहित्य का ऐसा ग्रंथ है जिसे सही अर्थों में ऐतिहासिक कहा जाता है। इस ग्रंथ में प्राचीन काल से शुरू करके बारहवीं सदी तक का कश्मीर का इतिहास विशद रूप से लिखा गया है।

(ख) **कौटिल्य का अर्थशास्त्र**–इस ग्रंथ में मौर्यकालीन भारत की शासन पद्धति, आर्थिक दशा, कानून व सामाजिक जीवन का विस्तृत वर्णन है। राजनीति शास्त्र का यह अनुपम ग्रंथ है।

(ग) **शुक्रनीतिसार**–ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस ग्रंथ की भी अपनी उपयोगिता है। इसके अध्ययन से तत्कालीन भारतीय समाज, उसके चिंतन तथा उसकी प्रवृत्ति का पूर्ण बोध होता है। राजनीतिक संबंधी कुछ तथ्यों का ज्ञान हमें इस प्रकार के नीतिग्रंथों से होता है।

(घ) **कामंदकीय नीतिसार**–8वीं-9वीं शताब्दी में कामंदक ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनेकानेक सिद्धांत अपनी पुस्तक नीतिसार में संग्रहीत किए तथा कुछ मौलिक पदों की रचना भी की।

(ङ) **बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र**–विषय की उपयोगिता की दृष्टि से इस ग्रंथ का अत्यधिक महत्व है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के पश्चात केवल एक और अर्थशास्त्र प्राप्त होता है जो बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र नाम से विख्यात है।

• अर्द्ध-ऐतिहासिक

अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रंथों के अंतर्गत वह ग्रंथ आते हैं जिसमें लेखकों का उद्देश्य यद्यपि ऐतिहासिक न था, पर जिस मार्ग का अनुसरण करके ग्रंथ रचना हुई है वह इतिहास के समानांतर था। इस श्रेणी के अंतर्गत निम्नलिखित ग्रंथ आते हैं–

टिप्पणी

(क) **पाणिनी की अष्टाध्यायी**–व्याकरण के इस महान ग्रंथ की रचना छठी शताब्दी ई.पू. में हुई थी। इससे मौर्य पूर्व तथा मौर्यकालीन राजनीतिक अवस्था पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

(ख) **गार्गी संहिता**–यह पुराण का एक भाग है। इसमें यवन आक्रमणों का उल्लेख किया गया है।

(ग) **पतंजलि का महाभाष्य**–अष्टाध्यायी पर लिखा गया यह महाभाष्य समकालीन शुंग सम्राट पुष्यमित्र शुंग के संबंध में कतिपय महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

(घ) **मालविकाग्निमित्रम्**–महाकवि कालिदास की इस रचना से पुष्यमित्र शुंग, उसके पुत्र अग्निमित्र शुंग, यवन संघर्ष तथा शुंग विदर्भ संबंधों के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जानकारी मिलती है।

(ङ) **मुद्राराक्षस**–विशाखदत्त कृत यह नाटक चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा नंदों के विनाश का वर्णन करता है। इसमें चाणक्य और नंद मंत्री रक्षक की कूटनीतिक चालों का भी अच्छा वर्णन मिलता है।

(च) **हर्षचरित**–महाकवि बाण का 'हर्षचरित' सम्राट हर्षवर्धन का जीवन-चरित्र है जो न केवल इस सम्राट का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत करता है अपितु सातवीं सदी के भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन पर भी प्रकाश डालता है। बाणभट्ट की दूसरी कृति कादम्बरी से भी तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक झांकी मिलती है।

(छ) **मत्तविलास प्रहसन**–इस प्रहसन के रचनाकार पल्लव वंश के राजा महेंद्रवर्मन प्रथम थे। इसमें तत्कालीन बौद्धों एवं कापालिकों के नैतिक पतन का विवरण दिया गया है।

(ज) **गौडवाहो**–वाक्पतिराज द्वारा रचित इस ग्रंथ में कन्नौज सम्राट यशोवर्मन की दिग्विजयों का वर्णन है।

(3) विदेशी यात्रियों एवं लेखकों का वर्णन

कुछ अभारतीय सामग्री भी प्राप्त होती है जिससे इतिहास संबंधी अनेकानेक महत्वपूर्ण तथ्यों का बोध होता है। यद्यपि यह पूर्णतः प्रामाणिक नहीं है तथापि इसका भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। अनेक भ्रमणकारी लेखक, पर्यटक, छात्र आदि भारत आए जिसका वर्णन निम्नवत है :

1. **यूनानी वृत्तांत**–यूनानियों के ग्रंथों से हमें भारत का वर्णन मिलता है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस द्वारा रचित हिस्टोरिका से भारत और फारस के संबंधों के तथ्य प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अरिस्टोबोलस निआर्कस, ओनेसिक्रिटस की पुस्तकों में भारत वर्णन प्राप्त होता है। यूनानी राजदूत मैगस्थनीज सेल्यूकस का राजदूत था एवं मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त के समय भारत आया था। इसने अपनी पुस्तक इंडिका में भारत के प्रत्येक क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया है। दुर्भाग्यवश इंडिका अब उपलब्ध नहीं है। पेरिप्लस ऑफ दि एरिथियन सी नामक पुस्तक

टिप्पणी

जिसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है, में भारत का वर्णन मिलता है। डायमेकस, प्लिनी, प्लूटॉर्क, जस्टिन आदि लेखकों की रचनाएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

2. **चीनी वृत्तांत**–चीन के प्रथम इतिहासकार शुमाचीन ने लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व अपनी पुस्तक में भारत का वर्णन किया था। इसके अतिरिक्त फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग ने भारत की राजनीतिक दशा, धार्मिक दशा, भारतीय रीति-रिवाज एवं शिक्षा-पद्धति पर भी प्रकाश डाला है। इन चीनी वृत्तांतों से प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में सहायता मिलती है।
3. **तिब्बती वृत्तांत**–तिब्बती लेखकों में धर्मस्वामी तथा लामा तारानाथ के ग्रंथों कग्युर तंग्युर से हमें प्राचीन भारतीय इतिहास की विशिष्ट सामग्री प्राप्त होती है।
4. **मुस्लिम यात्रियों के वृत्तांत**–यद्यपि मुस्लिमों का भारत आगमन 8वीं शताब्दी में हुआ था परंतु इसके द्वारा लिखित ग्रंथ भारतीय इतिहास को प्रचुर सामग्री प्रदान करते हैं। इनमें प्रमुख हैं अलबरूनी जिसने तहकीक-ए-हिंद पुस्तक में भारत का बहुत तर्कसंगत एवं पूर्ण विवरण लिखा है। **डॉ. रतिभानु सिंह नाहर** ने अलबरूनी की प्रशंसा करते हुए लिखा है- भारतीय संस्कृति एवं कला कौशल के अध्ययन में जितनी रुचि अलबरूनी ने ली उतनी किसी स्वदेशी ने नहीं ली। इसके अतिरिक्त सुलेमान, अलमसूदी, अलबिलादुरी आदि के ग्रंथों से प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है।

भारतीय इतिहास जानने के स्रोत

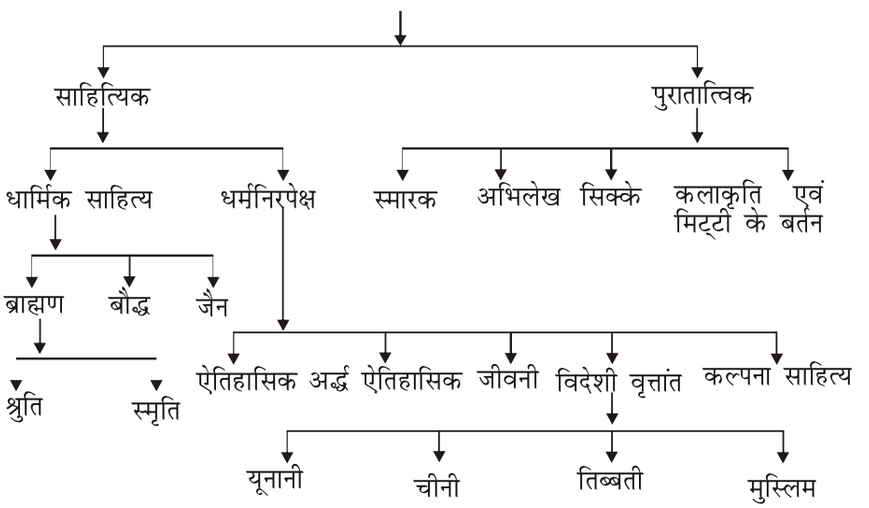

पुरातात्विक स्रोत

इतिहास की प्रामाणिकता के लिए पुरातात्विक स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि यह कल्पनाशीलता से परे होते हैं। इस स्रोतों के अंतर्गत अभिलेख, स्मारक, सिक्के आदि आते हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है-

अभिलेख–अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास जानने में विशिष्ट उपयोगी हैं। **प्रो. रेप्सन** ने लिखा है–अभिलेख जिस समय और जिस देश में होते हैं, वह उस देश की

टिप्पणी

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता देते हैं। अभिलेख के अंतर्गत शिलालेख, ताम्रपत्र लेख, गुफा लेख, स्तंभ लेख आदि आते हैं। अभिलेख समकालीन होने के कारण अत्यंत प्रामाणिक माने जाते हैं। प्रमुख अभिलेखों में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, अशोक के अभिलेख, कलिंगराज खारबेल का हाथीगुंफा अभिलेख, चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल, स्कंदगुप्त का भीतरी स्तंभ आदि अभिलेख भारतीय इतिहास पर विशेष प्रकाश डालते हैं, कुछ विदेशी अभिलेख भी भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

स्मारक–खुदाई से प्राप्त भग्नावशेषों का भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्व है। स्मारकों से तत्कालीन संस्कृति के विषय में अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। तत्कालीन कलाएं, आध्यात्मिक भावना आदि के विषय में हम मंदिरों व स्तूपों के भग्नावशेषों से जानकारी प्राप्त करते हैं। इन अवशेषों से ही हम प्राचीन संस्कृति व सभ्यता–सिंधु सभ्यता के विषय में जान सके। अतः यह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

सिक्के–ऐतिहासिक स्रोतों में सिक्के अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं क्योंकि इनसे हम तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थिति को जान सकते हैं। सिक्कों के द्वारा राजा का नाम, वंश, रुचियां, आर्थिक स्थिति का तो पता लगा ही सकते हैं, इसके अतिरिक्त राज्य की सीमाओं तथा तिथिक्रम का निर्धारण भी कर सकते हैं। कभी-कभी मुद्राओं के अध्ययन से हमें सम्राटों के धर्म तथा व्यक्तिगत गुणों का पता लग जाता है। कनिष्क के सिक्कों से पता चलता है कि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था जबकि समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर उनका संगीत प्रेम झलकता है।

मिट्टी के बर्तन–मिट्टी के बर्तनों, मूर्तियों आदि से भी हमें प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी मिलती है। इनसे तत्कालीन कलाओं, धर्म आदि पर प्रकाश पड़ता है।

अतः उपर्युक्त विवरण से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि भारतीयों के पास प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के प्रामाणिक साधन थे। भारत के पास न तो ऐतिहासिक मेधा की कमी थी और न ही साधनों का अभाव।

• भौगोलिक परिस्थितियां

इतिहास मानव की सभ्यता व संस्कृति के विकास का रोचक विवरण है। किसी देश का इतिहास वहां के निवासियों के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के विकास और परिवर्तन का लेखा-जोखा है। प्रत्येक देश के इतिहास और उनके निवासियों के जीवन पर उस देश की भौगोलिक परिस्थितियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। किसी देश के वातावरण का वहां के निवासियों की शारीरिक आकृति पर उनके मानसिक और शारीरिक विकास तथा उनके कार्यों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी देश के रहने वालों का रहन-सहन, रीति-रिवाज वेशभूषा, भोजन, उद्योग-धंधे, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं वहां की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर रहती हैं। मानव भूगोल की छाप मानव के विकास, उसकी सभ्यता और संस्कृति पर प्राचीन काल से ही पर्याप्त रही है।

टिप्पणी

यह सत्य है कि मानव का बहुमुखी विकास प्रकृति से प्रभावित और नियंत्रित होता है परंतु यह मान लेना कि मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का विकास केवल प्राकृतिक परिस्थितियों, भौगोलिक दशाओं और वातावरण के आधार पर हुआ है, भ्रमात्मक होगा। मनुष्य का जीवन प्रकृति से अवश्य प्रभावित हुआ है। उसके विकास और जीवन में भौगोलिक दशाओं की गहरी छाप है परंतु यह भी निश्चित है कि भौगोलिक वातावरण किसी देश के निवासियों को पूर्ण रूप से उन्नत और श्रेष्ठ नहीं कर सकता अपितु उनकी उन्नति और विकास के महत्वपूर्ण कारणों में से कुछ विशेष कारण हैं, समूचे कारण नहीं। मानव विकास में भौगोलिक परिस्थितियों के साथ-साथ उसकी बुद्धि-विवेक, परिश्रम, संघर्ष तथा असंतोष की वृत्ति ने भी बड़ा योगदान दिया है। मनुष्य ने अपने बुद्धि-विवेक परिश्रम और वैज्ञानिक वृत्तियों से प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन किया है और विकास की कई सीढ़ियों को पार किया है। आदि मानव की सभ्यता से लेकर आज के वैज्ञानिक युग की सभ्यता व संस्कृति तक जो प्रगति हुई है उसमें मानव का संघर्ष, उसकी खोज करने की वृत्ति, अथक परिश्रम, बुद्धि विवेक, अनुभव आदि कारण हैं।

- **भारत भूमि का सर्वेक्षण**

भारत एशिया महाद्वीप का एक खंड है। उत्तरी गोलार्द्ध में 8°4 और 37°6 अक्षांशों तथा 68°7 और 92°25 पूर्वी देशांतरों के मध्य स्थित है। प्राकृतिक दृष्टि से भारत की सीमाएं सुरक्षा कवच का काम करती हैं। इसके उत्तर में हिमालय की ऊंची श्रृंखलाएं हैं जो पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हुई हैं। इस पर्वतमाला ने भारत को एशिया खंड के अन्य भागों से पूर्णत: पृथक कर दिया है। पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में भारत महासमुद्र से घिरा हुआ है। दक्षिण में गहरा हिंद महासागर है। पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी फैली हुई है। अत: इन दोनों ओर से भी भारत का संसार के अन्य देशों के साथ प्राकृतिक संबंध नहीं है। इस प्रकार प्रकृति ने भारत को एक विशाल दुर्ग के समान बनाया है जो पर्वत श्रृंखलाओं और समुद्र से घिरा हुआ है। इस प्रकार भारत के इस विशाल भू-खंड में ऊंचे से ऊंचे पहाड़, उर्वर मैदान, पठार, बड़ी-बड़ी नदियां, मरुस्थल और समुद्रतट सभी कुछ हैं। यहां ऐसे प्रदेश हैं जहां अत्यधिक सर्दी पड़ती है और ऐसे भी प्रदेश हैं जहां पर्याप्त गर्मी रहती है। अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्र, विस्तृत जंगल और मरुस्थल भी यहां पाए जाते हैं। भारत का आकार विशाल है और यहां की भौगोलिक परिस्थितियों तथा जलवायु में अत्यधिक विविधता है।

1.2.1 प्राचीन सभ्यता के रूप में भारत : विशेषताएं

लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व तथा वैदिक सभ्यता को ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता माना जाता था। वस्तुत: भारतवर्ष का इतिहास तो मानव सभ्यता के प्राचीन पाषाण युग के इतिहास के साथ ही प्रारंभ हो जाता है, परंतु देश की सुविकसित सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास हड़प्पा सभ्यता (सिंधु घाटी की सभ्यता) से ही प्रारंभ होता है जो वैदिक सभ्यता से प्राचीन है।

सर्वप्रथम 1826 ई. में मेसन नामक अंग्रेज पर्यटक ने हड़प्पा के खंडहरों को देखा था तत्पश्चात कर्नल बर्सन ने 1831 ई. में हड़प्पा के खंडहरों को देखा। सन् 1853 और

टिप्पणी

1857 ई. में कनिंघम ने हड़प्पा के खंडहरों का निरीक्षण किया। 1856 में जब भारत सरकार लाहौर से कराची तक रेलवे लाइन का निर्माण करा रही थी उस समय निर्माण कार्य हेतु ईंटों की आवश्यकता पड़ी। फलतः आसपास के खंडहरों से ईंटें निकाली गईं। इन्हीं खंडहरों में पंजाब के माण्टगोमरी जिले में स्थित हड़प्पा का खंडहर भी था। हड़प्पा, लाहौर से लगभग 100 मील दूर दक्षिण पश्चिम में रावी नदी के तट पर है। परंतु उस समय तक लोगों का ध्यान इस ओर न जा सका कि हड़प्पा का खंडहर किसी प्राचीन सभ्यता का अवशेष अपने अंचल में छिपाये हुए किसी पुरातत्ववेत्ता की प्रतीक्षा में है।

सर्वप्रथम 1920-21 ई. में पंजाब के माण्टगोमरी जिले (वर्तमान पाकिस्तान) में दयाराम साहनी ने इसी प्रकार के अवशेष प्राप्त किए। कुछ समय पश्चात 1922-23 में भारतीय पुरातत्व विभाग ने श्री राखालदास बनर्जी के नेतृत्व में सिंध के लरकाना जिले में खुदाई कराई जहां मोहनजोदड़ो के नाम से पुकारे जाने वाले भव्य नगर के अवशेष प्राप्त हुए। सिंधु घाटी में इस सभ्यता के विस्तार एवं इसकी निजी विशेषताओं को देखते हुए इस भूखंड विशेष के नाम पर इसका नाम सिंधु घाटी की सभ्यता घोषित किया गया। बाद में जब इस सभ्यता के अवशेष बालूचिस्तान, गंगा यमुना के मैदान, गुजरात काठियावाड़ और राजस्थान में भी मिलने लगे तो हड़प्पा की केंद्रीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए इसका नाम हड़प्पा की सभ्यता रखा गया।

सिधु घाटी (हड़प्पा) सभ्यता का उद्‌गम

हड़प्पा सभ्यता के उद्‌गम के प्रश्न पर अत्यधिक विवाद है। डॉ. आर. के. मुखर्जी ने इस सभ्यता के काल को 3250-2750 ई.पू. निश्चित किया। डॉ. फ्रैंकफर्ट ने इस सभ्यता का काल 2800 ई. पू. बताया और डॉ. फब्रेरी ने इसका समय 2800-2500 ई. पू. बताया। नवीनतम खोजों के आधार पर डॉ. मैके इसके समय को 2800-2200 ई. पू. निर्धारित करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यह सभ्यता प्रायः 600 वर्ष तक अपनी श्रेष्ठ स्थिति में रही थी। परंतु अमरी (सिंध) नामक स्थान पर प्राप्त हुए अवशेष प्रायः 3000 ई. पू. के माने गये हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह सभ्यता 3000 ई. पू. अथवा इससे भी अधिक प्राचीन रही होगी परंतु उसके विकास में समय लगा होगा और 2800 ई. पू. तक अपनी श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर चुकी होगी। डॉ. डी. पी. अग्रवाल ने रेडियो कार्बन विधि के आधार पर हड़प्पा सभ्यता का समय 2500 ई. पू. से 1750 ई. पू. निर्धारित किया है। यह काल हड़प्पा का सबसे परिपक्व काल माना जाता है। इस प्रकार, इस सभ्यता का स्थान विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में स्वीकार किया गया है यद्यपि हड़प्पा सभ्यता का काल एक विवादास्पद प्रश्न है परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि 3000 ई. पू. में भारत भूमि पर स्वतंत्र एवं समृद्ध सभ्यता विकसित हो चुकी थी और यह सभ्यता मिस्र एवं सुमेर सभ्यताओं से किसी प्रकार भी कम उन्नत न थी। **डॉ. फ्रैंकफर्ट** ने सत्य ही लिखा है कि -"यह बिना किसी संदेह के निर्धारित हो चुका है कि भारत ने एक ऐसी संस्कृति के निर्माण में अपनी भूमिका अदा की जिसने यूनानियों से पहले इस विश्व को सभ्य बनाया।"

सभ्यता के निर्माता

टिप्पणी

हड़प्पा सभ्यता के निर्माता कौन थे इसके निश्चित प्रमाण नहीं मिलते अत: यह प्रश्न भी विवाद का विषय बना हुआ। सिंधु घाटी की सभ्यता एक नगर सभ्यता थी। इस कारण विभिन्न विद्वानों का कहना है कि इसके विकास में उन विभिन्न नस्लों के व्यक्तियों ने भाग लिया जो नगरों में एकत्रित हो गए थे। उन नस्लों में मुख्य नस्लें आदिम आग्नेय, मंगोलियन, अल्पाइन और भूमध्य सागरीय (द्रविड़) थी। सिंधु सभ्यता के निर्माता के संबंध में विद्वानों की तीन मान्यताएं प्रचलित हैं। एक मान्यता के अनुसार इस सभ्यता के निवासी मिश्रित जाति के थे। दूसरी मान्यता के अनुसार वे लोग द्रविड़ थे तथा तीसरी के अनुसार ये लोग आर्य थे।

आधुनिक समय में कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो आर्य सभ्यता को सिंधु सभ्यता के समकालीन मानने लगे हैं और उनका विश्वास है कि सिंधु घाटी की सभ्यता के समय आरंभ हुआ भारतीय सभ्यता का क्रम टूटा नहीं बल्कि आर्य सभ्यता ने इस क्रम को स्थापित रखा। उनके अनुसार आर्य सिंधु घाटी की सभ्यता के समय में ही भारत में प्रवेश कर गये थे और उन्होंने भी इस सभ्यता के निर्माण में सहयोग दिया। **डॉ. ए.डी. पुसालकर** ने लिखा है– "यह आर्य और अनार्य सभ्यताओं के मिश्रिण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि संभवतया उस समय में ऋग्वैदिक आर्य वहां की जनता का एक महत्वपूर्ण भाग थे और उन्होंने भी सिंधु घाटी की सभ्यता के विकास में अपना योग दिया।" यह विचार बहुसंख्यक विद्वानों का स्वीकृत नहीं है और यदि इसे आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया जाए तो मानना होगा कि आर्यों का आगमन यहां उस समय में हुआ जबकि यह सभ्यता पतनोन्मुख थी। ऐसी स्थिति में उसके निर्माण में आर्यों का भाग अधिक नहीं रहा। वस्तुत: जब तक सिंधु सभ्यता के स्थलों की खुदाई में प्राप्त मोहरों पर अंकित लिपि को भली प्रकार पढ़ नहीं लिया जाता तब तक यह कहना कठिन होगा कि इस सभ्यता को जन्म देने और विकसित करने वाले लोग किस जाति के थे।

डॉ. त्रिपाठी के अनुसार –"जब तक कि अन्य अकाट्य प्रमाण इस प्रश्न को हल न कर दें तब तक हम इस विषय में निश्चित निर्णय नहीं दे सकते।"

पं. जवाहर लाल नेहरू ने हिंदुस्तान की कहानी में लिखा है–"यह एक दिलचस्प बात है कि हिंदुस्तान की कहानी के इस उषाकाल में हम उसे एक नन्हे बच्चे के रूप में नहीं देखते हैं बल्कि इस वक्त वह भी अनेक प्रकार से सयाना हो चुका था... उसने जिंदगी की कला में रहन-सहन के साधनों में काफी तरक्की कर ली और न सिर्फ महज सुंदर चीजों की रचना की है बल्कि आज की सभ्यता के उपयोगों और खास चिह्नों अच्छे हम्मामों और नालियों को भी तैयार किया है।"

जी. चाइल्ड के अनुसार, सिंधु सभ्यता का विस्तार प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र एवं फारस की सभ्यताओं के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत था।

इस सभ्यता के विस्तार के अवशेष उत्तर में अंबाला जिले के रोपड़ से लेकर दक्षिण में काठियावाड़ में रंगपुर जिले और महाराष्ट्र में अहमदनगर जिले तक तथा पूर्व में

गाजीपुर, वाराणसी, बक्सर और पटना तक प्राप्त हुए। इससे स्पष्ट होता है कि हड़प्पा सभ्यता संपूर्ण पंजाब एवं सिंध, उत्तर पश्चिम सीमाप्रांत की घाटियों अधिकांश काठियावाड़, राजस्थान, गंगा यमुना के दोआब तथा दक्षिण पथ के प्रारंभ स्थान तक के कुछ भागों तक फैली हुई थी। सिंधु सभ्यता के विस्तार एवं प्रमुख बस्तियों का वर्णन निम्नवत् है–

टिप्पणी

1. **बलूचिस्तान**–यहां के स्थल व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। यहां से प्राप्त बस्तियों में 3 स्थल अत्यंत महत्वपूर्ण हैं–सुकागेंडोर (दाश्क नदी के मुहाने पर), सोतकाकोह (शादी कौर के मुहाने पर), बालाकोट (सोन मियानी खाड़ी के पूर्व में विंदार नदी के मुहाने पर) प्रमुख बस्तियां हैं।
2. **उत्तर पश्चिमी सीमांत**–उपलब्ध समस्त सामग्री गोमल घाटी में केंद्रित प्रतीत होती है।
3. **सिंधु**–सिंधु के बाढ़ वाले मैदान पर अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं परंतु नदी के किनारे पर अनेक स्थल नष्ट हो गए हैं। मोहनजोदड़ो, चाहुन्दड़ो, जुडेरजोदड़ो, अमरी आदि स्थलों पर बहुत अवशेष प्राप्त हुए हैं।
4. **पश्चिम पंजाब**–इस क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हड़प्पा स्थल है जो रावी के सूखे मार्ग पर स्थित है।
5. **पूर्वी पंजाब**–महत्वपूर्ण स्थल रोपड़ है। हाल ही में प्राप्त उत्खनन में संघोल में अवशेष मिले हैं।
6. **हरियाणा**–यहां के महत्वपूर्ण सिंधु सभ्यता के अवशेष हिसार एवं बनवाली में प्राप्त हुए हैं।
7. **गंगा यमुना दोआब**–यहां सिंधु सभ्यता के अवशेष मेरठ से आलमगीर तक फैले हुए हैं। हाल ही में सहरानपुर में हुलास से भी अवशेष मिले हैं।
8. **गुजरात**–कच्छ व काठियावाड़ प्रायद्वीप में तथा गुजरात की मुख्य भूमि पर सिंधु सभ्यता के अनेक स्थल हैं। कच्छ में प्रमुख स्थान सुतकोतदा व काठियावाड़ में लोथल हैं। ये सिंधु सभ्यता के विशालतम नगरों में से एक हैं।

अन्य स्थान–बहावलपुर, जम्मू, उत्तरी अफगानिस्तान आदि स्थलों पर भी सिंधु सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

• सिंधु घाटी की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था

पुरातत्व खोजों में प्राप्त नगरों के भग्नावशेष, जेवरों, बर्तनों, मुहरों, खिलौनों, मूर्तियों तथा अन्य विभिन्न वस्तुओं से हमें इस सभ्यता का ज्ञान हुआ है। मुहरों पर लिपि के जो चिह्न प्राप्त हुए हैं, उन्हें पढ़ने का प्रयत्न किया गया है और इस दिशा में निरंतर प्रयत्न किये जा रहे हैं। परंतु अब भी हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए हैं। प्राप्त साधनों के आधार पर इस सभ्यता के विषय में हमें निम्नलिखित बातों का ज्ञान हो चुका है–

सामाजिक जीवन

टिप्पणी

सिंधु घाटी की सभ्यता के लोगों का सामाजिक जीवन भी श्रेष्ठ और प्रगतिशील था, परंतु वह सादा, सरल और पवित्र था। उसके विभिन्न विशिष्ट अंगों का विवेचन अधोलिखित है :

समाज का स्वरूप–सिंधु सभ्यता के समाज में वर्ग या वर्ण प्रथा प्रतीत नहीं होती होगी। वर्ण और जाति आर्य सभ्यता की देन रही है। परंतु यह निर्विवाद है कि सैंधव सभ्यता में समाज की इकाई परिवार था। इस सभ्यता के नगर विभिन्न संस्कृतियों के मिलन केंद्र बने हुए थे। समाज साधारणतः चार वर्गों में बंटा हुआ था–

प्रथम वर्ग – विद्वानों का रहा होगा जिसमें पुजारी, ज्योतिषी, चिकित्सक आदि शामिल थे।

दूसरा वर्ग – योद्धाओं का रहा होगा जिसमें सैनिक व राजकीय अधिकारी थे।

तीसरा वर्ग – व्यापारियों, दुकानदारों, शिल्पियों एवं कारीगरों का रहा होगा।

चौथा वर्ग – यह वर्ग श्रम करके जीवन निर्वाह करने वाले लोगों का होगा जिसमें गृह सेवक, किसान, श्रमिक आदि होंगे।

सिंधु काल में सामाजिक जीवन सुख शांतिपूर्ण था। यहां के निवासी युद्ध प्रेमी नहीं थे। शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए सार्वजनिक रूप से अधिकाधिक सुख-समृद्धि की उपलब्धि उनके सामूहिक, संगठित सामाजिक जीवन का लक्ष्य था। विभिन्न वसनों, आभूषणों शृंगार के प्रसाधनों, धातुओं के बहुसंख्यक उपयोगी उपकरणों आदि से सिंधु सभ्यता की सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति का आभास मिलता है। सिंधु सभ्यता के सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का विवेचन निम्नांकित है–

परिवार–खुदाई से प्राप्त छोटे-बड़े आवास गृहों के बहुसंख्यक अवशेष इस बात के द्योतक हैं कि परिवार ही समाज की मूल इकाई था। इतिहासकारों के अनुसार संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित रही होगी। खुदाई से प्राप्त नारी मूर्तियों की बहुलता और मातृदेवी की लोकप्रियता के आधार पर विद्वानों का मानना है कि हड़प्पा सभ्यता मातृप्रधान थी। परिवार में माता का स्थान सर्वोपरि होता था।

भोजन–सिंधु निवासियों का प्रमुख भोजन शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही था। यहां के निवासियों का मुख्य भोजन गेहूं, जौ, दूध, फल, मछली और मांस था। गेहूं और जौ पीसने के लिए चक्कियां नहीं थी बल्कि उन्हें ओखलियों में कूटकर उनका आटा बनाया जाता था। वे मुर्गे, गाय, भैंस, सूअर, घड़ियाल, कछुओं आदि का मांस भी प्रयोग करते थे, ये सब्जियों का प्रयोग करते थे तथा खजूर भी खाते थे। दूध का प्रयोग भी सिंधु निवासी करते थे।

वस्त्र एवं आभूषण–सूत कातने के चरखों व सूती कपड़ों की प्राप्ति से यह पता चलता है कि यहां के निवासी वस्त्रों का प्रयोग करते थे। स्त्रियों एवं पुरुषों के वस्त्रों में विशेष अंतर नहीं था। कमर से नीचे धोती और कमर से ऊपर बायें कंधे से दायें कंधे

टिप्पणी

के नीचे दबने वाला शाल उनके मुख्य वस्त्र थे। स्त्रियां सिर पर पंखे के समान एक अन्य वस्त्र का प्रयोग करती थीं। वस्त्र ऊनी व सूती दोनों प्रकार के होते थे। स्त्रियों में सुव्यवस्थित आकर्षक केश विन्यास की प्रथा थी। स्त्रियां विभिन्न तरीकों से अपने बालों को संवारती थी। पुरुष दाढ़ी रखते थे परंतु मूंछों को साफ रखने का चलन था।

ये लोग शृंगार एवं सौंदर्यप्रेमी थे। आभूषणों का प्रयोग सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुष रुचिपूर्वक समान रूप से करते थे। कुछ आभूषण ऐसे थे जिन्हें स्त्री-पुरुष समान रूप से पहनते थे। आभूषण सोने चांदी व हाथी दांत के बनाये जाते थे। पुरुष कंठहार, भुजबंद और अंगूठी का प्रयोग अधिक करते थे जबकि स्त्रियां माथे का टीका, कंठहार, भुजबंद, बुंदे, कड़े, चूड़ियां, कमरबंद, पाजेब आदि आभूषणों का प्रयोग करती थीं। ये दर्पण, कंघी, काजल, सुरमा, सिंदूर आदि का प्रयोग करती थीं। वे अपने शृंगार प्रसाधनों को छोटे-छोटे पात्रों में रखती थीं। पुरुष भी बालों को संवारने, दाढ़ी मूंछ रखने या मूंछ मुड़वाने में चतुराई व कुशलता और सौंदर्य का परिचय देते थे।

मनोरंजन का साधन–मछली तथा जंगली पशुओं का आखेट, शतरंज व चौपड़ के समान पासे का खेल जुआ, नृत्य, संगीत आदि इनके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। मुहरों पर ढोल, वीणा, तुरहों के अंकित चित्र एवं नर्तकी की मूर्ति इसके प्रमाण हैं। मुर्गों की लड़ाई के भी प्रमाण मिले हैं। बच्चों के खिलौने, साधारण घरेलू, वस्तुओं के अतिरिक्त पहिएदार छोटी-छोटी गाड़ियां कुर्सियां, विविध प्रकार के पशु-पक्षी के आकार और स्वरूप के झुनझुने, सीटियां आदि थे। ये प्राय: मिट्टी के बनाये जाते थे। **नाहर जी** ने लिखा है, "यहां के निवासी अपने बालकों के शारीरिक विकास एवं मनोविनोद का विशेष ध्यान रखते थे।"

राजनीतिक व्यवस्था–1946 में हुई नवीनतम खोजों के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि वहां पर व्यापारिक कुलीनतंत्र न होकर शक्तिशाली केंद्रीय सरकार थी। योजनाबद्ध नगर निर्माण, नापने और तोलने के समान साधन, योजनाबद्ध सड़कों का निर्माण आदि इस कथन के प्रमाण हैं। विद्वान **पिगट** के अनुसार, "शासन की अपरिवर्तनशीलता एक धर्म निरपेक्ष शासन के स्थान पर एक धर्म शासन का संकेत करती है।" **डॉ. ए. एल. बाशम** ने लिखा है, "वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताओं की भांति हड़प्पा की सभ्यता एक धर्मराज्य पर आधारित थी।" परंतु कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि संभवतया वहां व्यापारी वर्ग का शासन था। इस कारण यहां की शासन व्यवस्था के बारे में कोई निश्चित धारणा नहीं है परंतु अधिकांशत: यह माना गया है कि यहां राजतंत्रीय व्यवस्था नहीं थी।

हड़प्पा काल (सिंधु घाटी की सभ्यता) की विशेषताएं–हड़प्पा सभ्यता भारत की प्रथम सभ्यता थी। यह अत्यंत विकसित सभ्यता थी। यद्यपि यह लोग लेखन कला से परिचित थे परंतु दुर्भाग्यवश इनकी लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है। अत: हमें मात्र पुरातात्विक स्रोतों पर ही आधारित होना पड़ता है। अत: हम मात्र अनुमान ही लगा सकते हैं। यह नगरीय सभ्यता था। इनके द्वारा निर्मित नगर योजना वर्तमान में भी अत्यंत सराहनीय है। कलाओं के क्षेत्र में भी उन्होंने अत्यधिक उन्नति कर ली। सिंधु सभ्यता की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, कला आदि की विशेषताएं अग्रांकित उल्लिखित हैं।

हड़प्पा सभ्यता की नगर योजना

टिप्पणी

सिंधु घाटी की सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी। बड़े नगरों का अस्तित्व और नगर योजना तथा स्थापत्य की सुस्पष्ट पद्धति हड़प्पा सभ्यता द्वारा प्राप्त विकास के उच्च स्तर के परिचायक हैं। इस सभ्यता के प्रमुख नगर मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा, लोथल, चाहुन्दड़ो आदि नदी के तट पर ही बसे हैं। उस काल में वर्षपर्यंत पर्याप्त जलपूरित नदियां थीं, ये नदियां जहां एक ओर व्यापार का मुख्य माध्यम थीं, वहीं वे जीवन यापन के आवश्यक उपकरण प्रस्तुत करने में भी सहायक थी। परंतु इस लाभ के साथ हानि की संभावना भी निरंतर बनी रहती थी क्योंकि उन नदियों में समय-समय पर आने वाली बाढ़ तटवर्ती नगरों को क्षतिग्रस्त या उनका विनाश भी करती रहती थी। नदियों की बाढ़ से नगरों की रक्षा करने के लिए बांध बांधे गए थे। नगरों का निर्माण और विस्तार वास्तु विशारदों की निश्चित योजना और श्रेष्ठ व्यवस्था के आधार पर होता था। नगर में बड़ी-बड़ी सड़कें पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण की ओर जाती थीं। इन सड़कों से छोटी-छोटी शाखाएं और गलियां निकलती थीं। गलियां लगभग एक से दो-ढाई मीटर तक चौड़ी होती थीं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो का नगर निर्माण एक समान योजना पर किया गया था। दोनों नगरों की पश्चिम दिशा में 9 से 15 मीटर तक ऊंचा और 36 180 वर्ग मीटर क्षेत्रफल का एक सुरक्षा स्थान अथवा गढ़ था जो एक दीवार से रक्षित था और जिसमें सार्वजनिक भवन बनाये गए थे। उससे नीचे पूर्व की ओर नगर बनाये गए थे। जिनमें से प्रत्येक का क्षेत्रफल कम से कम एक वर्ग मील था। दोनों नगर नगर-निर्माण कला की दृष्टि से अद्वितीय थे। नगरों में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। **डॉ. ए. डी. पुसालकर** ने लिखा है, "मोहनजोदड़ो के अवशेषों को देखने वाले दर्शक उन प्राचीन नगरों की स्वच्छता एवं नगर-निर्माण की अद्वितीय कला को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं।" दोनों नगरों की मुख्य सड़कें जो 2.70 से 10.20 मीटर तक चौड़ी थीं और कहीं-कहीं आधे मील तक सीधी गई हुई थीं एक-दूसरे को समकोण बनाती हुई काटती थीं जिससे नगर विभिन्न भागों में बंट गए थे। इन भागों में छोटी-छोटी गलियां थीं जिनके दोनों ओर मकान बने हुए थे। प्रत्येक गली में एक सार्वजनिक कुआं था। संपूर्ण नगर में नालियों का जाल बिछा हुआ था। प्रत्येक सड़क और गली के दोनों ओर पक्की ढंकी हुई नालियां थीं और ये बड़ी नालियों में मिलती थीं। इन नालियों की योजना से घरों, गलियों और सड़कों का गंदा पानी नगर से बाहर निकाला जाता था। नालियों को स्वच्छ करने की भी व्यवस्था थी। गंदे पानी एवं मलमूत्र के लिए शोषक कूप बने हुए थे। कुछ स्थानों पर कूड़ा डालने के स्थान बने हुए थे। सड़कों पर रोशनी का प्रबंध किया जाता था, यह विभिन्न दीप स्तंभों के पाये जाने से ज्ञात होता था।

भवन निर्माण कला–इस युग में भवन सड़कों के दोनों और निर्मित होते थे। गृहों में प्रकाश व वायु की उचित व्यवस्था रहती थी। भवन छोटे व बड़े, कच्चे व पक्के सभी प्रकार के होते थे। भवनों की नींव गहरी व चौड़ी, दीवारें मोटी व चौड़ी होती थीं। खिड़कियों का समुचित प्रयोग होता था। इन नगरों के मकानों की एक विशेषता यह थी कि उनके दरवाजे या खिड़कियां मुख्य मार्ग की ओर नहीं अपितु गलियों और सहायक सड़कों की ओर खुलती थीं।

टिप्पणी

मोहनजोदड़ो की सर्वप्रथम विशेषता यहां से प्राप्त हुआ विशाल स्नानगृह है। यह 39 फीट लंबा, 23 फीट चौड़ा और 8 फीट गहरा है। इस स्नानकुंड की दीवारें बड़ी सुदृढ़ बनी हैं। तालाब के किनारे सीढ़ियां बनी हुई हैं पानी को निकालने और तालाब को पुनः भरने का प्रबंध किया गया था। यहां पर अन्य विभिन्न स्नानगृह भी बने हुए हैं जहां गर्म पानी से नहाने की व्यवस्था थी। स्नानगृह के छः प्रवेश द्वार हैं। इस कुंड में जाने के लिए दक्षिण और उत्तर की ओर ईंटों की सीढ़ियां बनी हुई हैं। उत्तर की सीढ़ियों के समीप एक चबूतरा है। कुंड के फर्श का ढलाव दक्षिण-पश्चिम की ओर है और उसी दिशा में पानी निकालने की नाली भी बनी है। समय-समय पर सफाई के लिए कुंड का गंदा पानी इसी नाली के रास्ते से बाहर निकाला जाता था, जो बाहर बनी नाली में गिरता था। कुंड के चारों ओर बरामदे बने हुए थे और उनके पीछे अनेक छोटे-बड़े कमरे निर्मित थे। इस स्नानागार की पूरी व्यवस्था उस युग के निवासियों के उच्चस्तरीय जीवन की झलक देती है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह स्नानागार धार्मिक अवसरों पर पुजारियों अथवा शासक वर्ग के विशेष समारोहपूर्ण स्नान के उपयोग में आता रहा होगा। इस स्नानागार के आधार पर हम यह कल्पना कर सकते हैं कि आधुनिक हिंदू धर्म की भांति हड़प्पा सभ्यता के धार्मिक जीवन में भी पवित्र स्नान का विशेष महत्व रहा होगा।

हड़प्पा में निवास गृहों के अतिरिक्त विशाल अन्न भंडार के अवशेष मिले हैं। हड़प्पा के छोटे से दुर्ग में विस्तीर्ण राजमार्ग के दोनों ओर छः-छः की दो पंक्तियों में विशाल अन्न भंडार निर्मित किए गये थे। प्रत्येक अन्न भंडार लगभग 18 मीटर लंबा और 7 मीटर चौड़ा था। इसकी दीवारें भी बहुत मजबूत थीं, कोष्ठागार के भीतर वायु प्रवेश की उत्तम व्यवस्था की गई थी। इसके दक्षिण की ओर ईंटों का बना चबूतरा था, जिसकी सहायता से माल रखा और निकाला जाता था।

इस काल के वास्तुकारों की भवन निर्माण शैली की लगभग सभी विद्वानों ने काफी प्रशंसा की है। नगर और गढ़ दोनों की सुरक्षा के लिए दीवारें बनाई गई थीं और उनमें प्रवेशद्वार थे। परंतु वहां पर सुरक्षा के लिए बनी दीवारों में ईंटों के अलावा पत्थरों का भी प्रयोग किया गया था। यहां के नगर-निर्माण की एक अन्य विशेषता भी थी। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा कालीबंगा में दुर्ग और नगर एक-दूसरे से पृथक थे परंतु यहां पर इनको मिला दिया गया था। यद्यपि दुर्ग और नगर के प्रवेश द्वार अलग-अलग थे। दुर्ग की सुरक्षा के लिए बनाई गई दीवार अभी भी साढ़े चार मीटर ऊंची उठी हुई प्राप्त हुई है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की तथा अन्य नगरों की भी नगर व्यवस्था यह अवश्य सिद्ध करती है कि वहां श्रेष्ठ नगरपालिका शासन की व्यवस्था होगी।

व्यापार एवं धर्म

सिंधु सभ्यता के निवासियों का आर्थिक जीवन बहुत उन्नत था। सिंधु सभ्यता निवासी सुखी एवं संपन्न थे। **पणिक्कर** का विचार है-"यहां प्रत्येक वर्ग सुखी था क्योंकि जिन व्यक्तियों ने इस सभ्यता का निर्माण किया वे निःसंदेह व्यापारी थे।" इनके व्यापार संबंधी तथा आर्थिक जीवन के विशेष पहलू निम्नांकित हैं-

1. **कृषि**—सिंधु सभ्यता के निवासियों का प्रमुख कार्य कृषि था। अनाजों में ये गेहूं, जौ, कपास, मटर, तिल, चावल की खेती करते थे। फलों में खजूर, नारियल,

टिप्पणी

तरबूज, केला, अनार तथा नींबू उत्पन्न करते थे। कृषि हल, फावड़े, कुछाली की सहायता से की जाती थी। बड़े-बड़े घड़ों और अन्नभंडारों में अनाज संग्रह किया जाता था। अनाज को पीसने के लिए चक्कियां और कूटने के लिए ओखलियां उपयोग में लाई जाती थीं। भूमि उपजाऊ थी इसी कारण कृषि उन्नतावस्था में थी। अनाज व फलों को ढोने के लिए कभी दो पहिए और कभी चार पहिए वाली बैलगाड़ियों का उपयोग होता था।

2. **पशुपालन**–कृषि के साथ-साथ ये लोग पशुपालन भी करते थे। यह सहायक उद्योग जीविकोपार्जन का एक साधन था। पशुओं का उपयोग गृहकार्य में भी किया जाता था। वृषभ, गाय, भैंस, बकरी, शूकर, कुत्ता हाथी तथा ऊंट इनके पालतू पशु थे। अश्व से संभवतया ये अपरिचित थे।

3. **उद्योग-धंधे**–यहां के निवासी विभिन्न धातुओं, मिट्टी-लकड़ी और पाषाण का प्रयोग करते थे और इनसे इनके विविध उद्योग और व्यवसाय चलते थे। उनका औद्योगिक जीवन खूब व्यस्त और उन्नत था। औद्योगिक एवं शिल्पी वर्ग में कुंभकार, सुनार, राज, लुहार, स्वर्णकार, जौहरी हाथीदांत के शिल्पी संगतराश, बुनकर, और रंगरेज मुख्य थे। विभिन्न उद्योग और व्यवसाय इस बात के परिचायक हैं कि उस युग में औद्योगिक एवं शिल्पीय विज्ञान का विकास उच्चकोटि का हो चुका था। **गार्डन चाइल्ड** का कथन है -"सिंधु नगरों की निर्मित सामग्रियां दजला-फरात के बाजारों में बिकती हैं। सोना, तांबा, पत्थर तथा मणियों का आयात विदेशों से करते थे।"

4. **व्यापार**–देश में आंतरिक व्यापार खूब समृद्ध था। नाप के लिए ये सीपों की पटरियों का उपयोग करते थे। तौल के लिए वे विभिन्न प्रकार के पाषाण के बाटों का उपयोग करते थे। बाट प्रायः षटकोण आकृति के होते थे और बड़े बाट गोल पेंदों के व ऊपर से नुकीले होते थे। छोटी आकृतियों की जो मुहरें प्राप्त हुई हैं संभवतया वे वाणिज्य व्यवसाय में प्रयुक्त होती थीं।

यहां के अन्य निवासी एशिया के अन्य देशों के साथ भी व्यापार करते थे। समुद्री व्यापार के लिए सिंधु सभ्यता के लोगों ने समुद्र तट पर अनेक व्यापारिक केंद्र स्थापित किये थे। यहां वे समुद्री व्यापार के लिए व्यापारिक माल आदान-प्रदान करते थे और आवश्यक सामग्री प्राप्त करते थे। विदेशी व्यापार प्रधान रूप से अफगानिस्तान, ईरान, मिस्र, क्रीट आदि के साथ होता था और बैलगाड़ियां उस समय व्यापारिक माल की ढुलाई का प्रधान साधन थीं।

आंतरिक व्यापार के विषय में चाइल्ड का कथन है -"सिंधु के नगरों में शिल्पी बिक्री के लिए वस्तुएं बनाते थे। इन सामानों के विनिमय सुविधा के लिए समाज में मुद्राओं का प्रचलन या मूल्य का माप स्वीकार था यह तो स्पष्ट नहीं है। अनेक विशाल भवनों और मकानों से लगे हुए सुरक्षित गोदामों से यह ज्ञात होता है कि इन घरों के स्वामी व्यापारी थे। इन घरों की संख्या और आकार बताते हैं कि यहां सुसंगठित एवं समृद्धशाली व्यापारियों की बस्ती थी।"

टिप्पणी

हड़प्पा सभ्यता के निवासियों की धार्मिक परंपरा अति प्राचीन, प्रौढ़ एवं पर्याप्त विकसित थी। वे बहुदेव वादी थे। वे प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे। वे लोग एक परमसत्ता (सृजनात्मक शक्ति) अथवा ईश्वर में विश्वास रखते थे और उसी परम सत्ता को सृष्टि का निर्माता मानते थे। अपने इसी विश्वास के कारण उन लोगों में परम पुरुष और परम नारी लोकप्रिय हो गई थी।

मातृदेवी की उपासना–हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न उत्खनन में भारी संख्या में खड़ी एवं अर्द्धनग्न नारी की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। विद्वानों का मत है कि ये मूर्तियां मातृदेवी या प्रकृति देवी की मूर्तियां हैं। **सर जॉन मार्शल** के मतानुसार हड़प्पा सभ्यता के देवगणों में मातृदेवी का स्थान सर्वश्रेष्ठ था। मातृदेवी के अनेक चित्र, मृतिका पात्रों, मुहरों तथा ताबीजों पर प्राप्त हुए हैं। मिट्टी की बहुसंख्यक मातृदेवी की मूर्तियां भी मिली हैं। इस मातृदेवी की कमर में मेखला, गले में गुलूबंद अथवा हार है और शीश पर कुल्हाड़ी की आकृति का सिरस्त्राण है। मातृदेवी की कुछ मूर्तियां आभूषणों से लदी हुई हैं और उनके पैर चिपटे हुए हैं। मातृदेवी की कुछ मूर्तियां शिशु को स्तनपान कराती पाई गई हैं। मातृदेवी के ये विभिन्न चित्र अंकन और मूर्तियां यह प्रकट करती हैं कि सिंध प्रदेश निवासियों की यह धारणा थी कि संपूर्ण सृष्टि का प्रारंभ नारी शक्ति से हुआ था। वे मातृदेवी को सारे लोक की पोषिका, पालिका, जननी, वानस्पतिक जगत की सृष्टिकारिणी और पशुपक्षियों की अधीश्वरी के रूप में मानते थे। कालांतर में इसी मातृदेवी की उपासना ने शक्ति पूजा का रूप ले लिया।

परम पुरुष की उपासना–हड़प्पाकालीन स्थलों की खुदाई में एक मुद्रा मिली है। इस पर एक नग्न व्यक्ति योग-मुद्रा में चित्रित किया गया है। इस व्यक्ति के तीन मुख हैं। उसके मस्तक पर शिरस्त्राण के दोनों ओर दो सींग हैं जो दूर से देखने पर त्रिशूल की आकृति की तरह दिखाई देता है। इस व्यक्ति के बायीं ओर एक गैंडा और एक भैंसा है और दायीं ओर एक हाथी और एक व्याघ्र है। आसन के नीचे एक हिरण बैठा है। मुद्रा के ऊपरी हिस्से पर 6 शब्द अंकित हैं। विद्वानों का मत है कि मुद्रा पर अंकित चित्र भगवान शिव का था। उनके अनुसार शिव को योगीश्वर, त्रिशूलधारी, पशुपति, त्र्यंबक, त्रिनेत्र आदि कहा जाता रहा है। हड़प्पा सभ्यता के निवासी एक परम पुरुष की पूजा करते थे और उनके परम पुरुष का प्रतीक आधुनिक हिंदू धर्म के भगवान शिव से काफी मिलता है।

प्रजनन शक्ति की पूजा–परम पुरुष और परम नारी की पूजा के साथ-साथ हड़प्पा सभ्यता के लोग प्रजनन शक्ति की लिंग एवं योनि के प्रतीकों के रूप में भी पूजा करते थे। सिंध प्रदेश में पाषाण मिट्टी और सीप के बहुसंख्यक लिंग और छल्ले मिले हैं। आधुनिक हिंदू धर्म में लिंग पूजा शायद हड़प्पा सभ्यता की देन प्रतीत होती है।

वृक्ष पूजा–खुदाई में प्राप्त बहुसंख्यक मुद्राओं, मूर्तियों और बर्तनों पर पीपल और बबूल की आकृतियां अंकित हैं जबकि कुछ पर नीम, खजूर एवं शीशम के चित्र भी मिलते हैं। विद्वानों का मत है कि हड़प्पा सभ्यता में वृक्ष पूजा प्रचलित रही होगी।

टिप्पणी

संभवतया इन्हें पवित्र माना जाता था और शायद उन लोगों का विश्वास था कि इनमें दैवीय आत्माएं निवास करती हैं। पीपल को सर्वाधिक पवित्र माना जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा सभ्यता के निवासियों में वृक्ष पूजा के दो रूप प्रचलित थे, एक–वृक्ष को उसके प्राकृतिक रूप में पूजना जैसे कि तुलसी का पूजन और दूसरा वृक्ष को किसी देवता के प्रतीक के रूप में पूजना जैसे पीपल की पूजा। ऐसा प्रतीत होता है कि उन लोगों में तुलसी, पीपल, खजूर, बबूल, नीम आदि वृक्षों की पूजा अधिक प्रचलित रही होगी कुछ वृक्षों को ज्ञान एवं जीवनदाता माना जाता था। यह प्रकृति पूजा की ओर संकेत करती है।

पशु पूजा–अनेक मुद्राओं पर भैंस, भैंसा, कूबड़दार बैल आदि पशुओं की छवि अंकित है। ये पशुओं की आकृतियां कुछ विशेष आकार प्रकार से चित्रित करते थे। उदाहरणार्थ कुछ पशुओं की आकृतियां आधे पुरुष और आधे पशु, व कुछ पशुओं की आकृतियां मिश्रित हैं जैसे आधा हाथी और आधा बैल, आधा भैंसा और आधा बकरी आदि। यह निर्विवाद है कि सिंधु घाटी के निवासी पशुओं में दैवीय अंश मानते थे। वे समझते थे कि पशु मंगलकारी या अमंगलकारी आत्माओं का निवास स्थान हैं।

धार्मिक प्रथाएं–मुद्राओं पर अंकित देवी-देवताओं के चित्रों तथा प्रतीकों के अंकन से इतना तो निश्चित हो जाता है कि हड़प्पा सभ्यता के निवासी साकार उपासना करते थे और उनमें मूर्तिपूजा प्रचलित रही होगी परंतु ये लोग मूर्तियों को कहां प्रतिष्ठित करते थे यह प्रश्न विवादास्पद है क्योंकि अभी तक ऐसा कोई भवन नहीं मिला है जिसे हम मंदिर अथवा उपासना स्थल कह सकें। मुद्राओं में अंकित नारियों की विभिन्न आकृतियों से आभास होता है कि ये नारी मूर्तियां मंदिर की उपासिका रही होंगी। नृत्य करती हुई एक नर्तकी की मूर्ति से यह आभास होता है कि देवदासी प्रथा रही होगी। संगीत व नृत्य द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने की परिपाटी रही होगी। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुबलि और नरबलि भी दी जाती थी। मूर्तियों की योगासन मुद्राओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता में योग साधना का भी महत्व था।

मृतक संस्कार–कतिपय धार्मिक विश्वासों के आधार पर ही सिंध प्रदेश निवासी अपने मृतकों के संस्कार करते थे। इनका विश्वास था कि मृतक संस्कार विधिवत संपन्न होने से मृतक की यात्रा सुखमय होगी। वे अधोलिखित तीन प्रकार से अपने शवों की अंतिम क्रिया विधि करते थे–

1. **पूर्ण समाधिकरण**–ये मृत शरीर को पृथ्वी में गाड़ कर उसकी पूरी समाधि बना देते थे। शव के साथ जीवन की सुख-सुविधा व आराम की अनेक वस्तुओं को भी समाधि में गाड़ देते थे। ये वस्तुएं मृतक के उपयोग के लिए रखी जाती थीं।
2. **आंशिक समाधिकरण**–मृत शरीर को खुले स्थान में पशु पक्षियों के आहार के लिए छोड़ देते थे और बाद में अवशेष अस्थिपंजर अथवा अस्थियों को कलश या पात्र में रखकर भूमि में गाड़ देते थे।
3. **दाहकर्म**–शव को चिता में जलाकर और उसके बाद भस्म तथा अस्थियों को पात्र में रखकर भूमि में गाड़ देते थे। भस्म, अस्थि तथा कोयलों से भरे

बहुसंख्यक कलशों की प्राप्ति से अनुमान है कि दाह क्रिया का प्रचलन अधिक था। ये लोग आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म में विश्वास करते थे।

टिप्पणी

उत्खनन में बहुसंख्यक मूर्तियां, मुहरें, पात्र, बर्तन, खिलौने, गुड़िया, आभूषण आदि प्राप्त हुए हैं, जिससे तत्कालीन विभिन्न ललित कलाओं का ज्ञान होता है। उन्होंने कला का उपयोग दैनिक जीवन में भी किया। उनकी प्रमुख ललित कलाएं अधोलिखित हैं–

1. **लेखन कला**–सिंधु निवासी लिखना-पढ़ना अवश्य जानते थे। इनकी लिपि चित्रात्मक थी और प्रत्येक चिह्न किसी शब्द या वस्तु विशेष के लिए बना था। ये संभवत: दाएं से बाएं लिखते थे। दुर्भाग्यवश यह लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है।

2. **भवन निर्माण कला**–अवस्थित और योजनापूर्ण बने विशाल भवनों, नगरों, दुर्गों के भग्नावशेषों तथा स्नानागार के अवशेषों से उनकी स्थापत्य कला की प्रगति प्रकट होती है। वास्तुकला में वे प्रवीण थे।

3. **धातुकला**–उन्हें विविध धातुओं का ज्ञान था। विभिन्न धातुओं को गलाकर उन्हें सांचों में ढालकर वे विविध प्रकार की वस्तुएं भी बनाते थे। धातुओं से वे कलापूर्ण आभूषण बनाते थे। वे मिट्टी और धातु की सर्वसाधारण के उपयोग की वस्तुएं निर्मित करते थे।

4. **मूर्तिकला**–सिंधु निवासी मूर्तिकला में कुशल थे। उनकी मूर्तिकला की चार शैलियां और विधियां थीं – (1) पाषाण को तक्षण करके (2) धातुओं को ढालकर (3) ठप्पा लगाकर (4) हाथ से मिट्टी की मूर्तियां बनाकर उन्हें अग्नि में पकाकर। इन सभी शैलियों में अद्‌भुत कौशल था। उनकी मूर्तियां दो प्रकार की होती थीं–प्रथम, धार्मिक महत्व वाली मूर्तियां; जैसे–देवी देवताओं, उपासिकाओं, नर्तकियों, बलि, पशुओं आदि की मूर्तियां और द्वितीय, साधारण महत्व वाली मूर्तियां जैसे; स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, खिलौने आदि। नर्तक की कांसे की मूर्तियां उनकी श्रेष्ठ व उन्नत धातुकला व मूर्तिकला का ज्वलंत उदाहरण हैं।

   हड़प्पा पाषाण की मूर्तियां इतनी सजीव और सौंदर्यमयी हैं कि वे यूनानी मूर्तियों की फिनिश और चारूता का सहज स्मरण कराती हैं। पाषाण को काटने, तराशने, छीलने, उसकी पच्चीकारी करने और उसे लौकिक बनाने में सैंधव कलाकारों ने खूब दक्षता प्राप्त कर ली थी। सिंधु सभ्यता की शिल्प आकृतियों और मूर्तियों में विशालता या सार्वजनिक प्रयोग किए जाने का अभाव था। ये कलाकृति लघु हैं और इनका उपयोग व्यक्तिगत देव स्थानों में ही हुआ होगा, सार्वजनिक मंदिरों में नहीं।

5. **चित्रकला**–चित्रों के अंकन का जो विकसित रूप सैंधव सभ्यता में प्राप्त होता है उससे स्पष्ट व्यक्त है कि उसके पीछे दीर्घकालीन परंपरागत चित्रण का अनवरत अभ्यास और साधना अवश्यमेव रही होगी। सिंधु युगीन चित्र दो प्रकार के होते हैं– प्रथम, ज्यामिति चित्रात्मक तथा द्वितीय, प्राकृतिक दृश्यात्मक।

टिप्पणी

चित्रित जीवधारियों की संचरणशील अवस्था प्रायः दिखाई गई है। रंगों का भी उपयोग किया जाता था।

6. **मुहरें निर्माण करने की कला**–मोहरों को ढालने और उन पर विभिन्न आकृतियां अंकित करने में ये लोग अत्यंत दक्ष थे। लगभग 550 मुहरें जो मिट्टी तथा विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे पत्थरों की बनी हुई हैं, सिंध प्रदेश में खुदाई से प्राप्त हुई हैं। अधिकांश मुहरें गोलाकार हैं। इन मुहरों पर किसी न किसी पशु का चित्र अंकित है। इन मुहरों से उनकी श्रेष्ठ कलात्मक प्रतिभा एवं कलाचातुर्य स्पष्ट रूप से झलकता है।
7. **संगीत एवं नृत्य कला**–सैंधव सभ्यता के लोग संगीत व नृत्य में भी रुचि रखते थे। विभिन्न वाद्ययंत्रों एवं नाचने और गाने की कला से वे पूर्णतः अवगत थे। उनकी मुहरों पर वीणा और ढोल के चित्र तथा नर्तकी की मूर्ति उनकी नृत्य और संगीत कला का परिचय देती हैं।
8. **कातने व बुनने की कला**–सिंधु सभ्यता के निवासी सूत कातने और कपड़ा बुनने की कला से भी पूर्णतः परिचित थे।

• सिंधु घाटी (हड़प्पा) सभ्यता की ललित कलाओं की विशेषताएं

1. सिंधु सभ्यता के लोगों की कला उपयोगितात्मक, यथार्थवादी और स्फूर्तिदायक थी। शक्तिपुंज सांड का चित्रण अत्यंत ही आकर्षक व सुंदर है। प्रकृति के चेतन रूप का इतना यथार्थ अनुकरण मानव हाथों ने शायद किसी अन्य युग में नहीं किया।
2. मिट्टी के बर्तनों पर अधिक चमकदार पॉलिश और रेखाचित्रों के अंकन की कला में इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त कर ली थी। बर्तनों पर रंग चढ़ाना और उन्हें चमकाना सिंधवासियों की विशेषता थी।
3. मूर्तियों के निर्माण और मुहरों के अंकन में उनकी कला, प्रतिभा एवं चातुर्य प्रकट होते हैं। उन्होंने कला में प्राण फूंक दिए थे। वे ललित कला प्रिय थे और उनकी सौंदर्यानुभूति उच्चकोटि की थी। मिश्र, सुमेर, बेबीलोन और असीरिया की तुलना में वे कला में बहुत आगे बढ़े हुए थे।
4. सिंध प्रदेश के कलाकारों का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। वे अपनी कलाकृतियों के विषय जनसाधारण में से तथा पशुपक्षियों के जीवन से लेते थे।

सिंधु घाटी की सभ्यता का नाश कैसे और कब हुआ, इस पर केवल ऐतिहासिक कल्पना और अनुमान ही लगाया जा सकता है। इस सभ्यता के विनाश के निम्न कारण हो सकते हैं-

1. सिंधु नदी की बाढ़ में यह नगर प्लावित हो गया हो और फिर वायु के परिवर्तनों के कारण उसके भग्नावशेषों पर बालू और मिट्टी के स्तर जम गए हों। इस विशाल नगर का कुछ भाग तो बालू व मिट्टी से ढक कर समाप्त हो गया और शेष समय के प्रवाह में स्वयं ही समाप्त हो गया।

टिप्पणी

2. सिंधु नदी क्रमशः मोहनजोदड़ो नगर से दूर हटती गई जिससे वहां की भूमि अनुपजाऊ हो गई और नगर उजाड़ हो गए हों।
3. सिंध प्रदेश की वर्षा जो आजकल की अपेक्षा प्राचीनकाल में बहुत अधिक रही होगी संभवतः ई. पू. दूसरी सहस्राब्दि तक बहुत कम हो गई हो। इससे धीरे-धीरे सिंध का मैदान मरुभूमि में परिणत हो गया।
4. कुछ विद्वानों के उपलब्ध प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सिंधु घाटी सभ्यता के लोग शांतिप्रिय थे। युद्ध और आक्रमणों के प्रति वे उदासीन थे। ऐसी दशा में उनके वैभवशाली समृद्ध जीवन और अतुल संपत्ति ने बर्बर पहाड़ी जातियों और विदेशी आक्रमणकारियों को उन पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। फलतः मोहनजोदड़ो पर हमले किए गए, उसे लूटा गया और वहां के निवासियों को नृशंसता से मौत के घाट उतार दिया गया। अस्थिपंजरों के जो समूह वहां प्राप्त हुए हैं उनमें स्त्रियों तथा बालक-बालिकाओं के भी कंकाल हैं।
5. यह भी संभव है कि इस सभ्यता का विनाश किसी आक्रमणकारी जाति के निरंतर आक्रमणों द्वारा हुआ हो। शायद विजयी आर्यों या किसी अन्य जाति ने भारत के बाहर से इन पर निरंतर आक्रमण किए हों और इनकी सभ्यता को नष्ट कर दिया हो। यह बात अधिक संभव प्रतीत होती है कि सिंधु घाटी की सभ्यता अवनत हो गई हो और आर्यों के निरंतर आक्रमणों से वह विध्वंस हो गई हो। इतिहास में बार-बार होने वाली घटनाओं का यह एक दृष्टांत है कि अवनत और क्षय सभ्यता चाहे वह कितनी ही समृद्ध और प्रगतिशील रही हो, बर्बर आक्रमणों के थपेड़ों के आगे ठहर नहीं सकती। स्पष्ट है कि पशुपालन, कृषि प्रेमी, युद्ध प्रेमी, आर्यों ने धीरे-धीरे यहां के मूल शांतिप्रिय अनार्य निवासियों को परास्त कर दिया और उनकी सभ्यता को अपनी सभ्यता में एकीकृत कर दिया।

विभिन्न स्थानों पर की गई खुदाई में सात सतहें प्राप्त हुई हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि यहां की सभ्यता का विनाश कई बार हुआ और यहां के निवासियों ने कई बार उसका निर्माण किया। बार-बार ध्वस्त होने के पश्चात भी पुनः उन्हीं स्थानों पर नगरों का निर्माण करना प्रथम तो यह सिद्ध करता है कि यहां के निवासी रूढ़िवादी थे और दूसरे, विनाश में सिंधु नदी की बाढ़ें और उसके प्रवाह मार्ग में बारंबार परिवर्तन होना मूल कारण थे। विभिन्न मतों को दृष्टि में रखते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि "प्रकृति तथा मनुष्य ने मिलकर ही इस सभ्यता का पूर्ण विनाश किया होगा।"

1.2.2 भारत उच्च शिक्षा की स्थिति के रूप में : आवश्यक विशेषताएं और प्रकृति

उच्च का शाब्दिक अर्थ है– ऊंची, श्रेष्ठ। उच्च शिक्षा का सामान्य अर्थ हुआ– उच्च शिक्षा, श्रेष्ठ शिक्षा, ऐसी शिक्षा जो सामान्य शिक्षा से ऊंचे स्तर की हो। अंग्रेजी में इसे

टिप्पणी

हायर एजुकेशन कहते हैं, जिसका अर्थ है उससे उच्च शिक्षा अर्थात सामान्य शिक्षा से उच्च शिक्षा। हमारे देश में उच्च शिक्षा की शुरुआत वैदिक काल में हो चुकी थी। तब उच्च शिक्षा से तात्पर्य प्राथमिक शिक्षा के बाद की गुरुकुलीय शिक्षा से था। इसकी अवधि सामान्यतः 12 वर्ष की थी। बौद्ध काल में भी उच्च शिक्षा से तात्पर्य प्राथमिक शिक्षा के बाद की शिक्षा से था और इसकी अवधि भी सामान्यतः 12 वर्ष की थी परन्तु इसका पाठ्यक्रम वैदिककालीन उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम की अपेक्षा अधिक विस्तृत था। मुस्लिम काल में मुस्लिम शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ, जिसमें भी प्राथमिक शिक्षा के बाद की शिक्षा को उच्च शिक्षा कहा जाता था, परन्तु इसकी अवधि सामान्यतः 8 वर्ष की थी और इसका पाठ्यक्रम भी भिन्न था।

भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का श्रीगणेश यूरोपीय ईसाई मिशनरियों द्वारा हुआ। इस देश में सर्वप्रथम 1510 पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों का प्रवेश हुआ। उन्होंने यहां प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ गोआ, कोचीन, चाल और बान्द्रा में कुछ उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना भी की। इन कॉलिजों में लैटिन पुर्तगाली व्याकरण, संगीत और तर्कशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। सही अर्थों में भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का श्रीगणेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किया। इसने सर्वप्रथम 1781 में कलकत्ता में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की। इस मदरसे में मुस्लिम उच्च शिक्षा और इंग्लैण्ड की उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम एक साथ चलाये गये। 1791 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बनारस में बनारस संस्कृत कॉलिज की स्थापना की। इसमें हिन्दू उच्च शिक्षा और इंग्लैण्ड की उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम एक साथ चलाये गये। इसके बाद 1800 में उन्होंने कलकत्ता में केवल इंग्लैण्ड की उच्च शिक्षा प्रणाली पर आधारित फोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना की। इस कॉलिज में अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य और यूरोपीय ज्ञान विज्ञान के साथ साथ भारतीय भाषाओं, भारतीय इतिहास और हिन्दू मुस्लिम कानून की शिक्षा भी दी जाती थी। वुड डिस्पेच 1854 में भारत में लंदन विश्वविद्यालय के आदर्श पर विश्वविद्यालयों की स्थापना की घोषणा की गई और 1857 में यहां कलकत्ता और बम्बई में उस प्रकार के विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। अपने सही अर्थों में आधुनिक उच्च शिक्षा की शुरुआत यहीं से हुई। भारतीय शिक्षा आयोग (1882) ने उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम को और विस्तृत एवं विविध बनाने का सुझाव दिया। जनवरी 1902 में लार्ड कर्जन ने भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया। इसके सुझावों के आधार पर लार्ड कर्जन ने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 का निर्माण किया। इस अधिनियम के लागू हो जाने से विश्वविद्यालय के स्वरूप में परिवर्तन हुआ और उनमें शिक्षण कार्य शुरू हुआ। साथ ही उनसे संबंद्ध महाविद्यालयों में सुधार की प्रक्रिया शुरू हुई और निम्न स्तर के महाविद्यालय बंद हो गये। इसके बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग 1917 ने विश्वविद्यालयों में कृषि, कानून आयुर्विज्ञान, इंजीनियरिंग और शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था करने का सुझाव दिया। परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा के स्वरूप में भारी परिवर्तन हुआ।

भारत में उच्च शिक्षा के उद्देश्य

टिप्पणी

भारत में विभिन्न स्तरों की शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करने का कार्य सर्वप्रथम वुड के घोषणा पत्र 1854 में किया गया। इसके बाद भारत में जो भी शिक्षा आयोग गठित हुए सभी ने विभिन्न स्तरों की शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट करने का कार्य जारी रखा। 1948 में भारत सरकार ने राधाकृष्णन आयोग का गठन किया। इसने उच्च शिक्षा के जो उद्देश्य निश्चित किये। उन्हें निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है –

(i) ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं मानसिक दृष्टि से प्रबुद्ध हों।

(ii) व्यक्तियों के आनुवांशिक गुणों को ज्ञात कर उनका विकास करना।

(iii) ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो राजनीति, प्रशासन, व्यवसाय , उद्योग और वाणिज्य क्षेत्र में नेतृत्व कर सकें।

(iv) ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो दूरदर्शी, बुद्धिमान और बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ हों, जो समाज सुधार के कार्यों में सहयोग दे सकें।

(v) ऐसे विवेकशील नागरिक तैयार करना जो प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिये शिक्षा का प्रसार करें, ज्ञान की सदैव खोज करें, व्यवसाय का प्रबंध करे और देश में भौतिक अभावों की पूर्ति करें।

(vi) ऐसे नवयुवकों का निर्माण करना, जो अपनी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करें उसमें योगदान दें।

(vii) विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण करना।

(viii) विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक मूल्यों, समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृतव और न्याय का संरक्षण व संवर्द्धन करना।

(ix) विद्यार्थियों में राष्ट्रीय अनुशासन की भावना का विकास करना।

(x) विद्यार्थियों में विश्वबन्धुत्व और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास करना।

(xi) विद्यार्थियों का आध्यात्मिक विकास करना।

इसके बाद कोठारी आयोग 1964–66 ने उसके द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों को अपेक्षाकृत कुछ संक्षिप्त रूप में व्यक्त किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्च शिक्षा के उद्देश्यों के विषय में कहा गया है कि शिक्षा उच्च ज्ञान की प्राप्ति और नवीन ज्ञान की खोज, राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों के लिये विशेषज्ञों की तैयारी युवकों में विस्तृत दृष्टिकोण के विकास और राष्ट्र के बहुमुखी विकास का साधन है। आज भारत में उच्च शिक्षा के ये ही उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों को हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं –

1. युवकों को उच्च ज्ञान की प्राप्ति कराना और उन्हें नये ज्ञान की खोज करने और सत्य की पहचान करने योग्य बनाना।
2. राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों के लिये विशेषज्ञों– प्रशासक, संगठनकर्ता, डॉक्टर, वकील, वैज्ञानिक, इंजीनियर और तकनीशियन आदि का निर्माण करना।

टिप्पणी

3. युवकों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने की कुशलता और नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता का विकास करना।
4. युवकों में विस्तृत दृष्टिकोण सामाजिक समानता, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सहिष्णुता और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का विकास करना।
5. युवकों को राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिये तैयार करना।

भारत में उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम

भारत में उच्च शिक्षा का श्री गणेश वैदिक काल में हो चुका था, परन्तु अंग्रेजों के पदार्पण से पहले इसका पाठ्यक्रम भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र, आयुर्विज्ञान और विभिन्न कला कौशलों के शिक्षण प्रशिक्षण तक सीमित था। इसमें यूरोपीय ज्ञान विज्ञान को सम्मिलित करने की घोषणा सर्वप्रथम वुड के घोषणापत्र 1854 में की गई। इसके बाद भारतीय शिक्षा आयोग 1882 और कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग 1917 ने इसे और विस्तृत करने की सिफारिश की। परिणामस्वरूप देश में उच्च शिक्षा में कानून, यूरोपीय चिकित्सा पद्धति और इंजीनियरिंग आदि पाठ्यक्रम शुरू हुए। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, यूरोपीय चिकित्सा पद्धति और इंजीनियरिंग आदि पाठ्यक्रम के संबंध में विस्तार से सुझाव दिये जिनमें मुख्य सुझाव थे –

(i) स्नातक पाठ्यक्रम तीन वर्ष का किया जाये।

(ii) स्नातक स्तर पर सभी विषयों का पाठ्यक्रम विस्तृत किया जाये।

(iii) स्नातक स्तर पर राष्ट्रभाषा हिन्दी, अंग्रेजी, सामान्य शिक्षा और धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य किया जाये।

(iv) स्नातकोत्तर स्तर पर केवल किसी एक विषय का गहन अध्ययन कराया जाये।

(v) वैज्ञानिक, व्यावसायिक एवं तकनीकी विषयों के पाठ्यक्रमों को विस्तृत किया जाये और उन्हें अद्यतन बनाया जाये।

कोठारी आयोग 1964–66 ने इन सुझावों का समर्थन किया और साथ ही पाठ्यक्रम में अंतर अनुशासन उपागम को अपनाने का सुझाव दिया। आयोग ने स्पष्ट किया कि समस्त ज्ञान का संबंध हमारे जीवन से होता है और इस दृष्टि से वह पूर्ण इकाई होता है। उसने आगे स्पष्ट किया कि अति विशिष्टीकरण के बाद भी अनेक तथ्य ऐसे हैं जो सभी विषयों में समाहित हैं। अतः पाठ्यक्रम कुछ इस प्रकार बनाये जाने चाहिये कि किसी एक विषय (अनुशासन) के ज्ञान के साथ अन्य विषयों (अनुशासनों) के तत्संबंधी तथ्य स्पष्ट हों। शिक्षा जगत में इसी को अंतर अनुशासन उपागम कहते हैं। इसके सुझाव पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों की पुनर्रचना करने हेतु देश में 27 पाठ्यक्रम विकास केन्द्र स्थापित किये। इन केन्द्रों पर अंतर अनुशासन उपागम के आधार पर मानविकी, सामाजिक विज्ञान और विज्ञान विषयों के पाठ्यक्रम तैयार किये गये।

टिप्पणी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में घोषणा की गई कि उच्च शिक्षा के मौजूदा पाठ्यक्रमों में सुधार किया जायेगा इसे विस्तृत एवं अद्यतन बनाया जायेगा। इस शिक्षा नीति की कार्य योजना में पाठ्यक्रम विकास केन्द्रों द्वारा तैयार मॉडल पाठ्यक्रमों को लागू करने की बात कही गई और साथ ही यह कहा गया है कि हर पांच वर्ष बाद उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों का निरीक्षण किया जायेगा। इस बीच देश के कुछ विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रमों को विस्तृत एवं अद्यतन किया है और उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनाया है और साथ ही उन्हें अनुप्रयोग परक बनाया है। अब संसार के ज्ञान विज्ञान का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसकी शिक्षा की व्यवस्था भारत में न हो। परन्तु अधिकतर विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्थापित पाठ्यक्रम विकास केन्द्रों द्वारा तैयार किये गये मॉडल पाठ्यक्रमों का अनुसरण नहीं किया गया है। संसार में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में निरंतर भारी विस्फोट हो रहा है, विश्वविद्यालयों को अपने पाठ्यक्रमों में तद्नुकूल परिवर्तन करते रहना चाहिये।

उच्च शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता

उच्च शिक्षा का वास्तविक अर्थ है उच्च प्रतिभा के व्यक्तियों की उच्च शिक्षा, विशिष्ट शिक्षा, एक ऐसी शिक्षा जिसके द्वारा समाज अथवा राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों के लिये विशेषज्ञ तैयार किये जाते हैं, तब इसके महत्व एवं आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। उच्च शिक्षा के इस महत्व एवं विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में देख समझ सकते हैं –

(i) उच्च ज्ञान की प्राप्ति, नए ज्ञान की खोज और सत्य की पहचान

उच्च शिक्षा में युवकों के मानविकी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान और अन्य क्षेत्रों का उच्च ज्ञान कराया जाता है और उन्हें नए ज्ञान की खोज और वास्तविक तथ्यों का पता लगाने के अवसर दिये जाते हैं। इसके द्वारा युवकों को ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में नये नये आविष्कार करने योग्य बनाया जाता है इस दृष्टि से उच्च शिक्षा का बडा महत्व है। उसकी बड़ी आवश्यकता है।

(ii) विशेषज्ञों का निर्माण

उच्च शिक्षा द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों – धर्म, दर्शन ज्ञान, विज्ञान इंजीनियरिंग, मेडिकल, विधि अध्यापन, संगठन और प्रशासन आदि के लिये विशेषज्ञ तैयार किये जाते हैं। उच्चतम श्रेणी के मानव संसाधन तैयार किये जाते हैं, उच्च शिक्षा के अभाव में यह सब संभव नहीं है। इस दृष्टि से भी उच्च शिक्षा का बड़ा महत्व है।

(iii) कार्य कुशलता और नेतृत्व शक्ति का विकास

उच्च शिक्षा द्वारा युवकों को अपनी रुचि, रुझान, योग्यता और क्षमता के अनुसार किसी कार्य विशेष को कुशलतापूर्वक करने योग्य बनाया जाता है। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति

टिप्पणी

ही प्रायः जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से भी उच्च शिक्षा का बड़ा महत्व है।

(iv) युवकों में विस्तृत दृष्टिकोण का विकास

सामान्य शिक्षा मनुष्य को सामान्य ज्ञान कराती हैं। उच्च शिक्षा युवकों को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों का ज्ञान कराती है, और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान कराती है। जितना विस्तृत ज्ञान, उतना विस्तृत दृष्टिकोण। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति संकुचित क्षेत्र से निकलकर विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश करता है, संकीर्णता से निकलकर सहिष्णुता के क्षेत्र में प्रवेश करता है। उनमें सामाजिक समानता, सांस्कृतिक और धार्मिक सहिष्णुता और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का विकास होता है। आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में तो उच्च शिक्षा का और भी अधिक महत्व है, उसकी ओर भी अधिक आवश्यकता है।

(v) राष्ट्र का बहुमुखी विकास

किसी भी राष्ट्र के किसी भी क्षेत्र में विकास करने के लिए मूलभूत साधनों की आवश्यकता होती है – प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन। उच्च शिक्षा उच्च स्तर के मानव संसाधनों का निर्माण करती है। यह देखा गया है कि जिस राष्ट्र में उच्च स्तरीय मानव संसाधन में जितनी अधिक उपलब्धता होती है वह उतनी ही अधिक तेजी से विकास करता है। किसी राष्ट्र के किसी भी क्षेत्र में विकास के लिये उच्च स्तर के मानव संसाधन की आवश्यकता होती है। राष्ट्र का आर्थिक विकास तो औद्योगिकीकरण पर ही निर्भर करता है और औद्योगिकीकरण निर्भर रहता है – वैज्ञानिक एवं तकनीशियन पर, इंजीनियर और प्रशासकों पर, और इनका निर्माण किया जाता है उच्च शिक्षा द्वारा। इस प्रकार उच्च शिक्षा किसी भी राष्ट्र के बहुमुखी विकास का साधन होती है। यही कारण है कि राष्ट्रीय जीवन में इसका बड़ा महत्व होता है, इसकी बड़ी आवश्यकता होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. हड़प्पा सभ्यता के काल को 3250–2750 ई.पू. किसने निश्चित किया था?
   (क) डॉ. फ्रैंकफर्ट (ख) डॉ. आर.के. मुखर्जी
   (ग) डॉ. फब्रेरी (घ) डॉ. मैके
2. भारत सरकार ने राधाकृष्णन आयोग का गठन कब किया था?
   (क) 1854 (ख) 1874
   (ग) 1948 (घ) 1952

1.3 एक समाज के रूप में भारत

टिप्पणी

प्रत्येक विज्ञान चाहे वह समाजशास्त्र हो, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र या फिर कोई भी शास्त्र सबकी अपनी एक शब्दावली एवं प्राथमिक अवधारणाएं होती हैं। इन धारणाओं और शब्दावलियों का प्रयोग विषय का विवेचन करने के लिए किया जाता है। राजनीति शास्त्र के विद्वान राज्य, सरकार, प्रजातन्त्र, समाजवाद शक्ति एवं कानून आदि का अर्थशास्त्री मुद्रा, ह्रास, उपयोगिता, बैंक, साख उपभोग, विनियम, वितरण, उत्पादन आदि शब्दों का विशिष्ट अर्थ में प्रयोग करते हैं। समाजशास्त्र में शब्दावली का चयन सामान्य बोल–चाल की भाषा किया गया है, जैसे– समाज, संस्था, समुदाय, समिति, संरचना, संगठन, प्रस्थिति, भूमिका, जनरीति, प्रथा, रूढ़ि आदि।

भारतीय समाज का एक लम्बा इतिहास रहा है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज को चार कालों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्राचीनकाल (लगभग 3000 ईसा पूर्व से 7000 ई. तक)
2. मध्यकाल (701 से 1750 ई. तक)
3. आधुनिक काल (1751 से 1947 ई. तक)
4. समकालीन काल (1947 से आज तक)

यह काल विभाजन अध्ययन को सरल बनाने के लिए किया जाता है क्योंकि प्रत्येक युग में पिछले युग की कुछ विशेषताएं शामिल होती हैं और यह भावी युग की सम्भावनाओं को अपने में समाहित करके रखती हैं। इसकी संस्थागत आधारशिलाएं वैदिक युग में विकसित हुई तथा कालक्रम के साथ–साथ इनमें अनेक नवीन आयाम जुड़ते चले गए। वैदिक संस्कृति के इसी युग में हिन्दू सामाजिक संगठन की संस्थागत आधारशिलाएं एवं वैचारिक मान्यताएं भी विकसित हुई। वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पितृसता, लिंग विभेदीकरण तथा ग्राम प्रधानता हिन्दू सामाजिक संगठन की प्रमुख संस्थागत आधारशिलाएं हैं। धर्म, कर्म, पुनर्जन्म, पुरुषार्थ तथा संसारेतर विश्व (Other Wouldiness) इसकी प्रमुख वैचारिक मान्यताएं हैं। मध्यकाल एवं आधुनिक काल में इन संस्थागत आधारशिलाओं में काफी परिवर्तन आये हैं परन्तु फिर भी आज भी इनका महत्व समकालीन भारतीय समाज में विद्यमान है। ये भारतीय समाज की परम्परागत विशेषताएं कहलाती हैं।

भारतीय समाज को समझने के लिए दो दृष्टिकोण अपनाये जाते हैं–

1. **शास्त्रीय अथवा पुस्तकीय दृष्टिकोण**– इसमें उन ग्रंथों एवं महाकाव्यों की सहायता की जाती है जिसमें भारतीय समाज का वर्णन है। इसको आदर्शात्मक दृष्टिकोण (Normative View) भी कहा जाता है। शास्त्रीय एवं पुस्तकीय दृष्टिकोण को दो उपभागों में विभाजित किया जा सकता है– भारतीय विधाशास्त्रीय दृष्टिकोण एवं दार्शनिक दृष्टिकोण। इसमें उन सिद्धांतों

टिप्पणी

को लिया जाता है जिनका लक्ष्य किसी व्यक्ति के जीवन को परिमार्जित कर तथ्यों एवं कर्तव्यों से परिचित कराना है। संस्थागत या संगठनात्मक आधारों के अन्तर्गत वे सामाजिक योजनाएं आती हैं जिनके माध्यम से व्यक्ति और समूह में सामंजस्य रखने का प्रयास किया गया है; जिससे उनकी कार्यक्षमताओं का लाभ उठाया जा सके। धर्म की प्रधानता, कर्म व पुनर्जन्म, ऋण व संस्कार भारतीय समाज के प्रमुख दार्शनिक एवं शास्त्रीय आधार है। इसके साथ–साथ वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था तथा उच्च आदर्श इसके संस्थागत आधार हैं। इन दोनों आधारों से ही प्राचीनता तथा स्थायित्व, सहिष्णुता, अनुकूलनशीलता, सर्वांगीणता, ग्रहणशीलता, लोक तत्व, बहुवाद तथा अनेकता में एकता जैसे–लक्षण विकसित हुए हैं।

2. **क्षेत्राधारित दृष्टिकोण**– यह दृष्टिकोण आनुभविक अध्ययनों पर आधारित है। यह आनुभविक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं, सम्बन्धों तथा तथ्यों से सम्बन्ध रखता है जिसमें इनकी व्याख्या, कार्य–कारण, सम्बन्धों की खोज, नवीन तथ्यों की खोज तथा पुराने तथ्यों की प्रमाणिकता की जांच वैज्ञानिक ढंग से की जाती है। आनुभविक अनुसंधान समस्या से सम्बन्धित क्षेत्र में जाकर किये जाते हैं इसलिए यह प्रयोगसिद्ध अनुसंधान के नाम से भी जाना जाता है। यह अनुसंधान प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित होते हैं।

1.3.1 राजनीतिक इकाई के रूप में भारत : ऐतिहासिक विकास

मानव जीवन के विभिन्न आयामों की व्याख्या विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के द्वारा की जाती है। इन सामाजिक विज्ञानों में राजनीति विज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसे प्राचीन यूनानी राजनीतिक विज्ञानी अरस्तू ने 'मास्टर साइंस' कहा है। राजनीति विज्ञान में राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जो मानवीय चेतना से संबंधित है। हर युग में राजनीतिक दार्शनिकों और विचारकों ने मानवीय गतिविधियों एवं आवश्यकताओं के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण को रखा। मानवीय जीवन के राजनीतिक पक्ष से संबंधित विभिन्न दार्शनिकों एवं विचारकों के दृष्टिकोण को राजनीतिक सिद्धांत माना जाता है।

राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक क्षेत्र या राजनीतिक विषयों के बारे में व्यवस्थित ज्ञान है। राजनीतिक सिद्धांत विशिष्ट लक्षणों से युक्त राजनीतिक विचारों का समूह है। मुख्य प्रश्न यह है कि राजनीतिक सिद्धांत के अंतर्गत राजनीतिक विषयों या क्षेत्र के बारे में हम किस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करते हैं या किस प्रकार का चिंतन करते हैं? राजनीतिक विषयों के बारे में निम्न तीन प्रकार का ज्ञान या विचार आता है–

1. **आनुभविक ज्ञान**– इस प्रकार का ज्ञान केवल अवलोकन पर आधारित होता है। इसमें इंद्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से तथ्यों का अवलोकन किया जाता है, उनका संग्रह किया जाता है, फिर उसके आधार पर विचारों का निर्माण किया जाता है।

टिप्पणी

2. **तार्किक ज्ञान**– इसके अंतर्गत तार्किक आधार पर मानवीय गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है और तर्क के आधार पर विचारों की पुष्टि करके सिद्धांत निर्माण का प्रयास किया जाता है।

3. **मूल्यों एवं मान्यताओं की प्राथमिकता संबंधी विचार**– इसके अंतर्गत मूल्यों की प्राथमिकता के आधार पर विचार को प्रस्तुत करके सिद्धांत का निर्माण किया जाता है। इसमें तथ्यों को मान्यताओं के अनुसार ढालने पर जोर दिया जाता है।

राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक घटनाओं, तथ्यों एवं अवलोकनों पर आधारित निष्कर्षों के समूह को कहते हैं। ये निष्कर्ष परस्पर संबद्ध होते हैं तथा इनके आधार पर तथ्यों या घटनाओं की व्याख्या या पूर्व कथन किया जा सकता है। नवीन घटनाओं एवं तथ्यों के संदर्भ में उक्त निष्कर्षों एवं उपलब्धियों में सुधार और संशोधन किया जाता है। इस तरह राजनीतिक सिद्धांत राजनीति से संबंधित व्याख्यात्मक निष्कर्षों का समूह होता है।

राजनीतिक इकाई का ऐतिहासिक विकास

राजनीतिक इकाई के ऐतिहासिक विकास में तीन प्रमुख सिद्धांतों की महत्वपूर्ण भूमिका है–

1. परंपरागत (प्राचीन) राजनीतिक सिद्धांत
2. आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत
3. समकालीन राजनीतिक सिद्धांत

1. परंपरागत (प्राचीन) राजनीतिक सिद्धांत

परंपरागत राजनीतिक सिद्धांतों में व्यवहारवादी क्रांति से पूर्व प्रचलित विचार सामग्री, राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन, विचारधारा तथा राजनीतिक विचारों के विश्लेषण को शामिल किया जाता है। परंपरागत राजनीतिक इकाई के विकास में निम्नलिखित विचारधाराओं तथा विकास के सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है–

प्रथम अवस्था– प्रारंभिक राजनीतिक सिद्धांत का प्रारंभ यूनानी चिंतन से होता है। यूनान विश्व की उत्तम सभ्यताओं में से एक सभ्यता के रूप में विकसित हुआ। स्पार्टा तथा एथेंस की राजनीतिक व्यवस्थाएं विशेष तौर पर महत्वपूर्ण थीं। एथेंस में प्रजातंत्र तथा स्पार्टा में कुलीनतंत्रीय राज्य विकसित हुए। यूनान में ऐसे राजनीतिक चिंतक हुए जिन्होंने मानवीय ज्ञान की सभी शाखाओं का अध्ययन किया। राजनीति उनका प्रमुख विषय था। यूनानियों के अनुसार व्यक्ति को प्रकृति के अनुसार तथा उचित तर्क के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए। मनुष्य स्वभाव से राजनीतिक प्राणी है। समाज के बिना वह नहीं रह सकता। अतः यूनान के लोगों के अनुसार, व्यक्ति के संपूर्ण विकास के लिए राज्य का होना अति आवश्यक है। यूनान के राज्य का सिद्धांत प्रत्येक नागरिक की भागीदारी की मांग करता था। अतः यूनान के राजनीतिक चिंतन का झुकाव प्रजातंत्र की ओर ही रहा क्योंकि यह माना गया कि प्रत्येक व्यक्ति को उत्तम

टिप्पणी

जीवन के अनुभव के लिए अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए। प्लेटो ने एक आदर्शवादी दार्शनिक होने के नाते एक आदर्श राज्य की स्थापना पर सबसे अधिक ध्यान किया। अरस्तू ने एक यथार्थवादी तथा वास्तविक व्यावहारिक होने के नाते अपने समय के राज्यों की परिस्थितियों के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर ध्यान दिया। प्लेटो तथा अरस्तू दोनों ने अध्ययन के दो भिन्न ढंग अपनाए। प्लेटो ने निगमनात्मक विधि अपनाई तथा अरस्तू ने आगमनात्मक विधि अपनाई। परिणामस्वरूप दो विभिन्न चिंतनों का जन्म हुआ। राजनीतिक सिद्धांत को यूनान का मुख्य योगदान स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र के आदर्श हैं। यूनानी लोग क्रूरतापूर्ण शासन तथा अल्पतंत्रीय राज्य को सरकार की सबसे बुरी प्रकार मानते थे। ये मानवीय शक्तियों के उच्चतम विकास के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता को आवश्यक मानते थे।

द्वितीय अवस्था– रोमवासी, यूनानियों की तरह केवल विचारवान नहीं थे। वे बहुत व्यावहारिक तथा कानूनी व्यक्ति थे। कानून, न्याय तथा संप्रभुता की धारणाओं में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। राजनीति तथा नैतिकता को अलग–अलग करना रोमन विचार के सकारात्मक कानून में शामिल है। उन्होंने कानून–निर्माता के रूप में राज्य के कानूनी व्यक्तित्व तथा राजनीतिक संप्रभुता के विचार का विकास किया। उन्होंने यूनानियों की तरह छोटे–छोटे राज्य न बनाकर विश्वस्तरीय शासन स्थापित किया। यद्यपि वे प्लेटो और अरस्तू के स्तर का कोई राजनीतिक दार्शनिक पैदा नहीं कर पाए फिर भी उनके राजनीतिक विचारों ने सिद्धांत, कानून तथा कानून शास्त्र के क्षेत्र को काफी प्रभावित किया। प्राकृतिक कानून के सिद्धांतों का विचार रोमन कानून शास्त्र से मध्यकाल के साहित्य में आ चुका था जिसे आम तौर पर परमात्मा के द्वारा लोगों के दिलों में स्थापित सर्वव्यापक दैवी सिद्धांत की ईसाई धारणा के तौर पर जाना जाने लगा। रोमन कैथोलिक चर्च तथा कानून की व्यवस्था रोमन कानूनी विचारों पर आधारित थी।

तृतीय अवस्था– राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में पश्चिमी इतिहास में ईसाई धर्म का उदय सबसे अधिक क्रांतिकारी घटना थी। इससे राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एक और महत्वपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई। यह काल मुख्य तौर पर धर्मनिरपेक्ष राज्य तथा चर्च अधिकारियों के संबंधों से संबद्ध रहा। रोमन कैथोलिक चर्च का प्रमुख पोप था। रोमन शासक ने पोप के अधिकार को चुनौती दी। उसने पोप के अधिकार तथा प्रभुत्व को एक खतरा माना। जैसे–जैसे समय बीता, दोनों शक्तियों–राजा तथा चर्च में द्वेष बढ़ता गया जिसका परिणाम दो तलवारों के सिद्धांत के रूप में निकला। शासक तथा पोप या राज्य तथा चर्च के मध्य कुछ शताब्दियों तक यह संघर्ष चलता रहा। पूरा मध्यकाल इसी बात पर केंद्रित रहा कि राज्य तथा चर्च में कौन श्रेष्ठ है? अंततः राज्य या शासक की श्रेष्ठता को मान्यता मिली और धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत अस्तित्व में आया। राज्य तथा चर्च के मध्य चलने वाले संघर्ष ने प्रत्यक्ष रूप में राजनीतिक चिंतन के विकास में कोई योगदान नहीं दिया लेकिन इसने आधुनिक सिद्धांत के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया तेज कर दी।

चतुर्थ अवस्था– राज्य के धर्मनिरपेक्ष चरित्र की पहचान के पश्चात राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में और भी विकास हुए। पोप का पद तथा जागीरदारी व्यवस्था का

पतन, तथा राष्ट्रीय राजतंत्र का उदय, वाणिज्य व्यवस्था आदि का विकास हुआ। राजनीतिक चिंतकों के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि राज्य की शक्ति कौन संभाले। जब कभी भी राजा अपनी शक्ति तथा अधिकारों का दुरुपयोग करता था तो लोग खुलेआम इसका विरोध करते थे। वे उसके अधिकारों को समाप्त करना चाहते थे और उनमें से कुछ ने राजा तथा उसके राज्य को समाप्त करने की वकालत की।

टिप्पणी

मैकियावली ने अपनी पुस्तक *'प्रिंस'* में तथा हॉब्स ने *'लेवियाथन'* में राजा के अधिकारों के सिद्धांत को सशक्त किया तथा उसके राज्य को आधुनिक बनाने पर बल दिया। दूसरी ओर, लॉक, बेंथम तथा जे.एस. मिल जैसे राजनीतिक चिंतकों ने राजा की सत्ता तथा अधिकारों पर संवैधानिक रोक लगाने की वकालत की। मार्क्स तथा एंजेल्स ने राजा तथा राज्य को पूर्णतया समाप्त करने की बात की। इन राजनीतिक विचारों के विवाद में निरंकुशता, संवैधानिकता, लोगों की स्वतंत्रता और समानता, उनके अधिकारों और कर्तव्यों, कानून का शासन, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, शक्तियों का पृथक्करण, राजनीतिक संप्रभुता, प्रजातंत्र आदि जैसी कई एक धारणाओं तथा संस्थाओं ने जन्म लिया।

19वीं शताब्दी में राजनीतिक चिंतकों ने अपने अध्ययन को सरकारी संगठनों के विश्लेषण तक ही सीमित रखा तथा मुख्य तौर पर ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक तथा कानूनी संस्थानात्मक दृष्टिकोणों पर निर्भर किया। परंतु साथ ही साथ उन्होंने परिवर्तन की आवश्यकता को भी अनुभव किया। संस्थानों की वास्तविक कार्यशीलता को उचित तौर पर समझने के लिए वे राजनीतिक स्थिति की वास्तविकता की गहराई तक जाना चाहते थे। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर अनेक राजनीतिक चिंतकों ने महत्वपूर्ण रचनाएं रचीं तथा राजनीतिक सिद्धांत का और विकास किया। वाल्टर बेजहॉट, वुडरो विल्सन, जेम्स, ब्राईस, ए. लारेंस लॉवेल तथा और भी कई राजनीतिक वैज्ञानिकों ने राजनीतिक संस्थाओं की वास्तविक कार्यशीलता के अध्ययन का अनुभव किया। बेजहॉट ने अपनी रचना 'द इंग्लिश कांस्टीट्यूशन' में यह दिखाने की कोशिश की कि राजनीतिक संस्थान इंग्लैंड के समय सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित थे। उसने इंग्लैंड के लोगों के विभिन्न वर्गों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी किया।

राजनीतिक वैज्ञानिकों ने तथ्यों तथा अन्य उचित सामाजिक तथ्यों की खोज करना आरंभ किया। उन्होंने भौतिक शास्त्र, सांख्यिकी तथा गणित जैसे प्राकृतिक विज्ञानों में अनुसंधान साधनों के ज्ञान का भंडार पाया। **ड्वाइट वाल्डो** के अनुसार, ''नए राजनीतिक शास्त्र के बहुत से निर्माताओं तथा नेताओं ने यह पाया कि राजनीतिक–शास्त्र का भविष्य प्राकृतिक विज्ञानों के नेतृत्व का अनुसरण करने में है।'' सामान्यतः यह मत निगमनात्मक तर्क तथा वाद–विवाद करने के विरोध में था। यह आगमनात्मक, तुलनात्मकता प्रयोग तथा कानूनों की खोज के लिए था। अतः 19वीं शताब्दी के अंत तक राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एक नई पद्धति का आरंभ हुआ।

परंपरागत (प्राचीन) राजनीतिक सिद्धांत की विशेषताएं

1. **विश्लेषण की इकाई संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था है**– यह इकाई संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था रही है। चाहे इसे 'नगर राज्य' कहा गया हो या 'जनतंत्र व्यवस्था' इसी प्रक्रिया में यह जानने का प्रयास किया जाता था कि प्रमुख घटक किस प्रकार अपने व्यवहार द्वारा राज्य के जीवन स्तर को प्रभावित करते थे।

टिप्पणी

पारंपरिक राजनीतिक सिद्धांत सरकार को विभिन्न परस्पर जुड़े हुए अंगों पर आश्रित व्यवस्था मानता था।

2. **पारंपरिक राजनीतिक सिद्धांत में राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन पर बल**– इसमें राजनीति का गहन अध्ययन किया गया और सरकार के विभिन्न रूपों की खोज हुई। इसी संदर्भ में इन विद्वानों ने राजनीतिक प्रणालियों को राजतंत्र, अभिजनतंत्र और लोकतंत्र और उनके विभिन्न रूपों में विभाजित किया और कानून, नागरिकता, न्याय और सहभागिता आदि की संकल्पनाएं विकसित कीं, जिनके आधार पर राजनीतिक प्रणालियों में विभिन्नताओं और समानताओं के कारणों को समझने में मदद मिली।

3. **प्राचीन राजनीतिक सिद्धांत में नैतिकता पर बल**– प्लेटो ने आदर्श राज्य पर बल दिया तो अरस्तू ऐसे राज्य की बात करते थे जो इस पृथ्वी पर संभव हो सके। सेंट आगस्टाइन ने ईश्वर के नगर की कल्पना की। प्राचीन सिद्धांतकारों ने विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं का मूल्यांकन किया ताकि यह जान सकें कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में कैसी व्यवस्था अधिक उपयुक्त होगी। साथ ही साथ वे यह जानने का भी प्रयास कर रहे थे कि सभी परिस्थितियों में सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था कौन–सी हो सकती है?

4. **विषय सामग्री की संकीर्णता**– परंपरागत राजनीतिक सिद्धांत में विषय–सामग्री की रूढ़िवादिता पाई जाती है। इस सिद्धांत में प्रायः सभी विचारकों ने अपने पृथक–पृथक अध्ययन का विषय–क्षेत्र बना लिया है। इसके अंतर्गत राज्य सरकार, राजनीतिक संस्थाएं, राज्य के लक्ष्य, न्यायप्रियता, लोककल्याण राज्य की उत्पत्ति तथा समाज की बुराइयों को दूर करने की बातें ही बताई जाती हैं। इसमें न तो कोई अंतर पाया जाता है और न ही नवीनता।

5. **विषय के विशेषीकरण का अभाव**– वैसे तो विभिन्न ग्रंथों में जो विषय–सामग्री उपलब्ध है उसका विभाजन करना अत्यधिक कठिन है। परंतु उन्होंने तथ्यों में वास्तविकता का पुट लाने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए– प्लेटो द्वारा लिखित 'रिपब्लिक' को ले सकते हैं। उसके विषय में यह निष्कर्ष निकालना अत्यधिक कठिन है कि उसको किस विषय के अंतर्गत रखा जाए। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रस्तुत पुस्तक में जीवन के समस्त विषयों, कार्यों तथा घटनाओं का वर्णन किया गया है।

   यही कारण है कि 'रिपब्लिक' को राजनीतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र आदि विषयों की उत्कृष्ट रचना माना जाता है। इसी हेतु कहा जाता है कि राजनीतिक सिद्धांत में स्वायत्तता तथा विशिष्टता का अभाव है।

6. **वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग का अभाव**– परंपरागत राजनीतिक सिद्धांतों के विभिन्न अंगों में गणितीय परिमापन की वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग नहीं हुआ है। यह संपूर्ण पद्धति अनुभव पर आधारित है। वैसे अरस्तू की अध्ययन पद्धति को वैज्ञानिक कहा जाता है। परंतु उसे तुलनात्मक पद्धति के साथ–साथ अतीत

के संचित अनुभव पर आधारित माना गया है। यही कारण है कि उसमें आधुनिक युग के समान वैज्ञानिक प्रणाली का अभाव है।

टिप्पणी

7. **समकालीन समस्याओं के समाधान का उद्देश्य**– अरस्तू, प्लेटो आदि ने समकालीन समस्याओं के समाधान को ही उद्देश्य बनाया है।
8. **तार्किक तथा निगमनात्मक प्रणाली का प्रयोग**– परंपरागत सिद्धांतों के विद्वानों ने निगमनात्मक तथा तार्किक प्रणाली का प्रयोग किया है। यद्यपि प्लेटो ने आगमनात्मक तथा निगमनात्मक दोनों प्रणालियों का समय–समय पर पालन किया था, परंतु उसने तर्क द्वारा सत्यापित निगमनात्मक प्रणाली का ही प्रयोग किया था। अरस्तू ने एक स्थान पर वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग अवश्य किया था परंतु उसने जिस विधि का प्रयोग किया है वह वास्तव में आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के समान नहीं है।

2. आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत

आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत में अनेक धाराएं सम्मिलित हैं; जैसे संरचनावाद, वैज्ञानिक सकारात्मकवाद, अनुभववाद, व्यवहारवाद, उत्तर–व्यवहारवाद, यहां तक कि मार्क्सवाद भी। आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत से तात्पर्य उन सभी धाराओं से है जो इस शताब्दी के अधिकांश समय में प्रचलित रहीं। वैचारिक दृष्टि से आधुनिक सिद्धांतों को दो परस्पर विरोधी भागों में बांटा जाता है–

पहला, उदारवादी विचारधारा– जिसमें व्यक्तिवादी, अभिजनवादी और बहुलवादी विचारधाराएं शामिल हैं, और दूसरा मार्क्सवादी विचारधारा।

(क) उदारवादी विचारधारा

उदारवादी विचारधारा पंद्रहवीं–सोलहवीं सदी में पारंपरिक सिद्धांतों के विरोध में प्रारंभ हुई थी जिसमें बाद में वैज्ञानिक सकारात्मकवाद, अनुभववाद, व्यवहारवाद और उत्तर–व्यवहारवाद की कड़ियां जुड़ती चली गईं। दूसरी ओर मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धांत समस्त पाश्चात्य चिंतन के एकदम विपरीत विचारधारा है।

परंपरागत राजनीतिक सिद्धांत अठारहवीं–उन्नीसवीं सदी की समस्याओं को सुलझा पाने में असमर्थ रहा। इस कारण आधुनिक सिद्धांत शास्त्रियों ने उसे अपर्याप्त घोषित कर दिया। मेरियम से लेकर डहल, लासवेल और ईस्टन आदि आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत के प्रवर्तकों ने इतिहासवादी आदर्शवाद की प्राचीन परंपरा का कड़ा विरोध किया और कहा कि राजनीति की समस्याओं को वैज्ञानिक अनुभव–जन्य व्यवहार के अध्ययन के द्वारा ही समझा जा सकता है। उन्होंने वर्तमान, जीवंत, तात्कालिक, वस्तुपरक, विश्लेषणात्मक प्रक्रियावादी, वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल दिया। परंपरागत राजनीतिक सिद्धांत इतिहास, दर्शन और तर्कशास्त्र से प्रभावित था। इसके बाद सकारात्मक अनुभववाद ने राजनीतिक सिद्धांत को प्रभावित किया। सकारात्मक अनुभववाद की मान्यता थी कि सारा ज्ञान अवलोकन में निहित है। संकल्पनाएं और सामान्यीकरण तो केवल उन विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। सकारात्मक अनुभववाद सकारात्मक और अनुभववादी संकल्पनाओं और सिद्धांतों के अनुभव से

टिप्पणी

मिली जानकारी से प्रत्यक्ष संबंध रखता है। सकारात्मक अनुभववाद मूल्यों और निर्णयों को ज्ञान का अंग नहीं मानता। राजनीतिक सिद्धांतों में आदर्शवादी बातें केवल बात मात्र हैं। सकारात्मक अनुभववाद का प्रभाव वैज्ञानिकता के रूप में अमेरिका में व्यवहारवाद, उत्तर–व्यवहारवाद पर पड़ा। व्यवहारवाद ने राजनैतिक विश्लेषण में परिमाणन, तकनीक और वैज्ञानिकता पर बल दिया। व्यवहारवाद ने राजनीतिक सिद्धांत के इतिहास को उसकी व्याख्या के एक प्राथमिक स्रोत के रूप में स्वीकार नहीं किया। उत्तर–व्यवहारवाद व्यवहारवाद का ही विस्तार था। उसने क्रिया, कर्म, गतिविधि प्रासंगिकता और मूल्यों को व्यवहारवाद से जोड़ा। इस तरह व्यवहारवाद को उत्तर–व्यवहारवाद ने चुनौती दी।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत की पश्चिमी विचारधारा ने उसे निम्न विशेषताएं प्रदान कीं–

1. तथ्य और आंकड़े अध्ययन का आधार हैं। तथ्यों को संग्रहीत कर इनकी व्याख्या की जाती है और उन्हीं को अवधारणाओं की कसौटी पर कसा जाता है।
2. मानवीय व्यवहार का अध्ययन संभव है और मानव व्यवहार की नियमितताओं का पता लगाकर उनका सामन्यीकरण किया जा सकता है।
3. व्यक्तिपरकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता पर बल देता है। दार्शनिक विचारों की जगह विश्लेषणात्मक व्याख्या पर बल देता है। व्यवहारवाद और उत्तर–व्यवहारवाद उद्देश्य की जगह प्रक्रिया, विवरण की जगह अवलोकन तथा आदर्शवाद के स्थान पर वैज्ञानिकता पर बल देता है।
4. तथ्यों को मूल्यों से अलग कर दिया जाता है। व्यवहारवादी आंदोलन अन्वेषण से मूल्यों को अलग रखता है किंतु उत्तर–व्यवहारवाद तथ्यों के साथ–साथ मूल्यों के महत्व को स्वीकार करता है।
5. शोध और अध्ययन की विधियां सुस्पष्ट और परिमाणात्मक होती हैं।
6. राजनीतिक गतिविधि सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय आदि गतिविधियों से प्रभावित होती है। अतः व्यवहारवाद और उत्तर–व्यवहारवाद विभिन्न विषयों के समन्वय या अंतर अनुशासनात्मकता पर बल देता है।
7. 'क्या था' या 'क्या होगा' के स्थान पर 'क्या है' को समझने पर ज्यादा बल देता है।
8. वास्तविकता को स्वीकार करने पर ज्यादा बल देता है। किसी आदर्शवाद को व्यवहारवाद, उत्तर–व्यवहारवाद स्वीकार नहीं करते। राज्य आज तक क्या करता रहा है? 'वह क्या कर सकता है' की बजाय राज्य 'क्या, क्यों और कैसे है?' यह ज्यादा महत्वपूर्ण है।

(ख) मार्क्सवादी विचारधारा

आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत का दूसरा दौर मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धांत का है। इस सिद्धांत को द्वंद्वात्मक भौतिकवाद या वैज्ञानिक समाजवाद कहा जाता है। मार्क्सवादी सिद्धांत का मानना है कि सभी प्रक्रियाओं के विकास क्रम के सामान्य

टिप्पणी

सिद्धांत होते हैं। समाज में परस्पर विरोध विचारधाराओं और शक्तियों में भी होता है जिसके कारण निम्न से उच्चतर स्तर के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है और एक बेहतर उत्पादन व्यवस्था का निर्माण होता है। मार्क्सवाद की मान्यता है कि आदिकाल से दास प्रथा, फिर सामंतशाही, पूंजीवाद, समाजवाद और अंततः साम्यवाद इसी विकास क्रम की स्वाभाविक व्यवस्था है। यह सिद्धांत सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के अध्ययन को एक व्यवस्थित आधार प्रदान करता है। मार्क्सवादी राजनीतिक सिद्धांत की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. प्रत्येक घटना चक्र निरंतर परिवर्तनशील है।
2. यह परिवर्तन निम्न से उच्च स्तर की ओर होता है।
3. हर घटना क्रम अपने उत्कृष्टतम विकास की ओर बढ़ता है।
4. यह परिवर्तन द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत के अनुसार होता है, जिसमें वाद, प्रतिवाद, संवाद के तीन चरण होते हैं। **मार्क्स** के अनुसार, ''उत्पादन संबंध उत्पादन शक्ति और नई उत्पादन विधि के संघर्ष से परिवर्तन होता है।''
5. मन और पदार्थ में पदार्थ प्रधान है। पदार्थ वास्तविक निर्माण करता है और मन उसके बारे में केवल ज्ञान कराता है।
6. पदार्थ अपने आत्मविकास के नियमों के अनुसार विकसित होता रहता है।
7. समाज का ऊपरी ढांचा भौतिक आधार पर टिका है। दूसरे शब्दों में, किसी सामाजिक संरचना के सभी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचे उस समाज के भौतिक आधार पर टिके होते हैं।

3. समकालीन राजनीतिक सिद्धांत

व्यवहारवाद और उत्तर–व्यवहारवाद जिन्होंने वैज्ञानिकता पर बहुत अधिक बल दिया वे राजनीति विज्ञान को वास्तविकता के निकट नहीं ला सके। विश्व के काफी भागों में मार्क्सवादी व्यवस्था की विफलता ने पुनर्चिंतन को बढ़ावा दिया। इसलिए यह अनुभव किया जा रहा है कि राजनीति शास्त्र न केवल दर्शन से कुछ विस्तृत है बल्कि यह विज्ञान से भी कुछ अधिक विस्तृत है। दर्शन पर अति निर्भरता इसे हमारे उद्देश्यों से दूर ले जाती है क्योंकि राजनीतिक सिद्धांत का उद्देश्य अतीत के अनुभवों के आधार पर वर्तमान की संरचना करना है।

राजनीतिक सिद्धांत का कार्य राजनीतिक घटनाचक्र की समझ प्रदान करना है। इसे राजनीति की संकल्पनाओं, संस्थाओं की व्याख्या, अन्वेषण एवं ज्ञान का विश्लेषण करना है, सामयिक राजनीतिक सिद्धांत इसी पर बल देता है।

'ब्रायन बेरी, पॉलिटिकल आरग्यूमेंट, 1965' ने राजनीतिक सिद्धांत के महत्व को पुनः स्थापित करने के प्रयास में संस्थाओं और सिद्धांतों के बीच अंतर्संबंधों का अध्ययन किया। 'जॉन रॉल्स, ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, 1971' ने कहा है कि समकालीन राजनीतिक सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण कार्य है– सत्य की निरंतर खोज और इस कार्य में वैज्ञानिक अनुभव पर आधारित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। 'आर. नॉजिक, एनारकी, स्टेट एंड यूटोपिया, 1970' में राजनीतिक सिद्धांत के उद्‌भव का स्वागत करते

टिप्पणी

हुए 'न्यूनतम' राज्य के व्यक्तिवादी उद्देश्यों और अनुभववादी विधियों का प्रयोग कर अनेक राजनीतिक समस्याओं को सुलझा सकता है। समकालीन राजनीतिक सिद्धांत के अंतर्गत इस पक्ष में सहमति बनी कि आंकड़ों का विश्लेषण और तर्क तथा नैतिकता पर आधारित विचार राजनीतिक सिद्धांतों में एक साथ सहमति से रह सकते हैं। समकालीन राजनीतिक सिद्धांत की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर डेविड हैल्ड ने मुख्य तौर पर ध्यान दिलाया है–

1. इसने राजनीतिक विचारों के इतिहास पर ध्यान देते हुए भविष्य की संभावनाओं पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर बल दिया है।
2. राजनीतिक सिद्धांत में संप्रभुता, लोकतंत्र, न्याय आदि अवधारणाओं के अर्थ और वर्गीकरण शामिल हैं।
3. इसमें राजनीतिक और नैतिक गतिविधियों के मूलभूत ढांचे का व्यवस्थित विस्तार करते हुए राजनीतिक मूल्यों का उद्‌घाटन और उन पर व्यापक पुनर्विचार तथा पुनर्रचना भी शामिल है।
4. इसमें सैद्धांतिक प्रश्नों और विशिष्ट राजनीतिक विषयों पर चर्चा को फिर से उठाया गया है।
5. इसमें विचारधारा के लिए कोई स्थान नहीं है क्योंकि इसमें पूर्वाग्रह आ जाते हैं। विचारधाराओं से मुक्त खुलकर विभिन्न विषयों की चर्चा करनी चाहिए।
6. यह राजनीतिक विज्ञान के सिद्धांतों को क्रमबद्ध करने का प्रयास है। इसमें अवलोकन के आधार पर अवधारणाओं के निरूपण और अनुभवजन्य सामान्यीकरण विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

1.3.2 समाज : अर्थ और विशेषताएं

समाज का अर्थ व्यक्तियों के समूह से होता है जैसे–वैश्य समाज, ब्राह्मण समाज, आर्य समाज जैन समाज, हिन्दू समाज, महिला समाज, पुरुष समाज आदि। कोई इसका प्रयोग व्यक्तियों के समूह के रूप में कोई समिति के रूप में तो कोई संस्था के रूप में, करता है। उदाहरणार्थ– राजनीतिशास्त्र समाज को व्यक्तियों का समूह, मानवशास्त्री आदि समुदाय को समाज तथा अर्थशास्त्री आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों के समूह को समाज मानते हैं। केवल व्यक्तियों का समूह ही समाज नहीं होता है बल्कि पशु–पक्षियों तथा कीड़े–मकोड़ों का समूह भी समाज कहलाता है क्योंकि वहां भी जीवन पाया जाता है। व्यक्ति और समाज दोनों के बीच पारस्परिक निर्भरता पाई जाती है। जहां व्यक्ति एक दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित कर समाज के विकास में सहयोग देता है वहीं समाज भी व्यक्ति का समाजीकरण कर उसके व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग देता है। यह व्यक्तियों को संस्कृति से परिचित करता है। अगर व्यक्ति को अपना विकास करने के लिए समाज की आवश्यकता होती है तो समाज को व्यक्ति–व्यक्ति के बीच पलने वाले सामाजिक सम्बन्धों की। अर्थात एक के अभाव में दूसरे की कल्पना करना ऐसे है जैसे बिना पंखों के चिड़ियों का उड़ना।

पारसन्स के अनुसार, ''समाज को उन मानवीय सम्बन्धों की सम्पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन एवं साध्य–सम्बन्धों (Meant End Relationship) के रूप में क्रिया करने में उत्पन्न हो, चाहे ये यथार्थ हो या प्रकृतिकात्मक।''

टिप्पणी

गिडिंग्स के अनुसार, ''समाज स्वयं ही संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है। जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक दूसरे के साथ जुड़े हुए सम्बद्ध हैं।''

समाज की अवधारणा

मैकाइवर एवं पेज के शब्दों में– ''समाज प्रणालियों की, अधिकार एवं पारस्परिक सहायता की, अनेक समूहों तथा विभागों की, मानव व्यवहार के नियंत्रणों तथा स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सदैव परिवर्तनशील, जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और यह हमेशा परिवर्तित होता रहता है।''

पेज एवं मैकाइवर ने समाज की निम्न अवधारणाएं बताई हैं–

1. **रीतियां**– रीति समाज के निर्माण का आधार है। समाज में व्यवस्था रीतियों के कारण बनती है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित अनेकों रीतियां पाई जाती हैं जैसे–वेश–भूषा, रहन–सहन, खान–पान विवाह, धर्म, जाति, शिक्षा आदि। ये रीतियां व्यक्ति को व्यवहार में रहना सिखाती हैं। रीतियों का पालन न करने पर कभी–कभी दण्ड भी भुगतना पड़ता है। ये पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती हैं।
2. **कार्य–प्रणालियां**– कार्य प्रणाली के द्वारा एक विशेष समाज के लोग अपनी आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। एक समाज के अन्तर्गत व्यक्तियों की सभी क्रियाएं सामान्यतः इन कार्य–प्रणालियों के अनुरूप ही होती है और इन्हीं के द्वारा नियंत्रित की जाती है। हर समाज की कार्य–प्रणाली हर अलग–अलग होती है जैसे–मुसलमानों की विवाह पद्धति हिन्दुओं या ईसाइयों से भिन्न होती है।
3. **अधिकार**– हर समाज के अन्दर अनेक संगठन, समूह, समितियां पाई जाती हैं जिनके कार्य–संचालन तथा 'नियंत्रण करने के लिए कुछ व्यक्तियों के पास अधिकार सत्ता या फिर शक्ति होती है। इसके बिना शान्ति एवं व्यवस्था नहीं रह सकती है। एक परिवार में यह अधिकार मुखिया के पास, जाति में पंच के पास, गांव में मुखिया के पास, राज्य में राजा के पास रहती है। इसी प्रकार कॉलिज, संस्था धार्मिक संगठन व आर्थिक संगठन की सत्ता किसी न किसी के हाथ में रहती है। आधुनिक युग में व्यवस्था बनाये रखने का कार्य नगर–पालिकाएं एवं कार्यपालिका करती है।
4. **मानव व्यवहार का नियंत्रण**– समाज को चलाने के लिए मानव व्यवहार पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है। मानव आवश्यकताएं अनन्त हैं उन्हें पूरा करने की स्वतंत्रता व्यक्ति को जानवर बना देगी क्योंकि इनको पूरा करने के लिए

टिप्पणी

साधन सीमित होते हैं। व्यक्ति का स्वतंत्र व्यवहार समाज की व्यवस्था को भंग कर देगा और समाज टूटना प्रारंभ हो जायेगा। अतः मानव व्यवहार का नियंत्रण करने के लिए सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक एवं अनौपचारिक साधनों को प्रयोग में लाना जरूरी है। सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक साधन हैं– कानून, न्याय–व्यवस्था, पुलिस, प्रसासन तथा अनौपचारिक साधन हैं– जनरीतियां, प्रथाएं, रूढ़ियां, संस्थाएं, धर्म, नैतिकता आदि।

5. **पारस्परिक सहायता**– हर व्यक्ति को अपने तथा दूसरे के उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग देने की आवश्यकता होती है। उसके बिना एक स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। जो समाज जितना अधिक पारस्परिक सम्बन्ध रखेगा उतनी ही उस समाज की प्रगति होगी। आधुनिक सभ्य में सहयोग बढ़ने के कारण ही समाज के आकार में वृद्धि हुई है।
6. **स्वतंत्रता**– स्वतंत्रता का तात्पर्य मनमानी करना नहीं है बल्कि अपने विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करना है। यदि व्यक्ति का कुछ क्षेत्रों में औपचारिक या अनौपचारिक नियंत्रण किया जाता है तो कुछ क्षेत्रों में उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। क्योंकि स्वतंत्र एवं स्वस्थ वातावरण ही प्रगति का द्योतक होता है।
7. **समूह एवं विभाग**– एक समाज अनेकों समूहों एवं विभागों या उप–समूहों से निर्मित होता है या प्रत्येक समाज में अनेक समूह, समितियां एवं संगठन होते हैं जिनसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। परिवार, कीड़ा–समूह, पड़ोस, जाति, गांव, कस्बा, नगर, समुदाय, आर्थिक राजनीतिक एवं धार्मिक संगठन, स्कूल, कॉलिज ये सभी समूह या विभाग हैं। इसके विपरीत आयु, लिंग, जाति, प्रजाति, वर्ग आदि से समाज विभाजित होते हैं लेकिन ये एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। ये समूह आपस में जितने संगठित होंगे, समाज भी उतना ही अधिक सम्पन्न एवं मजबूत होगा।

अतः में कहा जा सकता है कि सामाजिक सम्बन्धों के जाल से निर्मित यह एक जटिल व्यवस्था निरंतर बदलती रहती है। इसमें हर सभ्य कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं।

समाज की प्रमुख विशेषताएं

समाज की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

1. **समाज मनुष्यों तक ही सीमित नहीं**– समाज मनुष्य व पशुओं दोनों में पाया जाता है। मैकाइवर एवं पेज ने कहा है कि ''जहां कहीं जीवन है, वहीं समाज है।'' अर्थात सभी जीवधारी चाहे वह चींटी हो या फिर मक्खी इनके भी अपने समाज होते हैं। बस इतना अन्तर होता है कि उनमें सामाजिक जागरुकता नहीं होती है तथा सामाजिक सम्पर्क भी अल्पकालीन होते हैं।

हाथी, गाय, घोड़े तथा बन्दरों के भी अपने समाज होते हैं। इनमें पारस्परिक सहयोग की भावना होती है। पशु–पक्षी भी अपनी पीढ़ियों को बनाए रखने के लिए समाज की उत्पत्ति एवं विकास में सहयोग देते हैं।

टिप्पणी

2. **समाज अपूर्व है**– समाज केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं बल्कि सामाजिक सम्बन्धों का जाल भी है। सामाजिक सम्बन्ध अपूर्व होते हैं उन्हें देखना या छूना सम्भव नहीं है केवल अनुभव ही किया जा सकता है। राइट के शब्दों–''समाज व्यक्तियों का समूह नहीं, यह तो समूह के व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों की व्यवस्था है।'' रयूटर के अनुसार–''जिस प्रकार जीवन एक वस्तु नहीं है बल्कि जीवित रहने की एक प्रक्रिया है, उसी प्रकार समाज एक वस्तु नहीं है बल्कि सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया है।''
3. **समाज एक–दूसरे पर आधारित है**– एक दूसरे पर निर्भरता समाज की उत्पत्ति एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मानव जीवन, सभ्यता एवं संस्कृति तथा उन्नति का आधार स्तम्भ है। समाज में सामाजिक सम्बन्ध बहुत जटिल हैं और सभी सामाजिक सम्बन्ध एक दूसरे पर निर्भर हैं। हर व्यक्ति को शारीरिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक सम्बन्धों को स्थापित कर उन पर निर्भर भी रहना पड़ता है। जीवन के हर क्षेत्र में पारस्परिक निर्भरता पाई जाती है क्योंकि एक अकेला व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ है।
4. **समाज में समानता एवं असमानता**– हर किसी समाज में समानता के साथ–साथ असमानता भी पाई जाती है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। कोई भी ऐसा समाज नहीं जिसमें पूर्णतः समानता या पूर्णतः असमानता पाई जाती है। गिडिंग्स ने समानता की चेतना को समाज का आधार माना है। वर्तमान में समानता का आधार राष्ट्रीय समानता तक हो गया है। समाज में कई प्रकार की असमानता पाई जाती है जैसे–लिंग भेद, शारीरिक बनावट, स्वभाव, रुचि योग्यता आदि।
5. **पारस्परिक जागरुकता**– पारस्परिक जागरुकता ही समाज और सम्बन्धों को स्थापित करती है। हम जब किसी से प्रत्यक्ष रूप में मिलते हैं तभी जागरुकता जन्म लेती है और अन्तः क्रिया भी हो सकती है। इसके अभाव में न तो हम एक दूसरे से प्रभावित हो पाएंगे और न ही किसी को प्रभावित कर पायेंगे।
6. **समाज परिवर्तनशील एवं जटिल प्रक्रिया**– समाज हमेशा परिवर्तित होता रहता है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। अनेकों कारण सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य की परिस्थितियां भी परिवर्तित होती रहती हैं। इसी कारण समाज में भी बदलाव

टिप्पणी

आता है और इसकी सामाजिक संरचना में भी बदलाव आता है। अगर हम भारत के वैदिककाल समाज की तुलना आज के समाज से करें तो दोनों में काफी अंतर है।

7. **समाज में सहयोग एवं संघर्ष**– समाज में कुछ ऐसी शक्तियां होती हैं जो एकता के सूत्र में बांधती है। इसके विपरीत कुछ ऐसी भी शक्तियां पाई जाती हैं जो एक दूसरे को अलग करती हैं। हर समाज में सहयोग एवं संघर्ष सार्वभौमक प्रक्रिया के रूप में पाये जाते हैं अर्थात चाहे कोई भी काल हो उसमें संघर्ष एवं सहयोग सहजता से देखने को मिल जाता है। मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सहयोग एवं संघर्ष दोनों ही जरूरत होती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य ने जितना सभ्य संघर्ष में व्यतीत किया है उससे ज्यादा सहयोग एवं शान्ति में गुजारा है। जिस समाज में जितना अधिक सहयोग होगा वह समाज उतना ही अधिक संगठित होगा।

समाज के प्रकार

समाज के मूलतः निम्न प्रकार हैं–

1. परम्परागत एवं मुक्त समाज
2. आदिम समाज एवं सभ्य समाज
3. सरल एवं जटिल समाज

1. **परम्परागत एवं मुक्त समाज**–

परम्परागत समाज– परमपरागत समाज में परम्पराएं एवं प्रथाएं प्रमुख होती हैं। परम्परागत समाज में धर्म का भी महत्व भी बहुत होता है। इस समाज में विज्ञान का कोई स्थान नहीं होता है। व्यक्तियों की स्थिति और भूमिका का निर्धारण परम्परा तथा जन्म के आधार पर किया जाता है। किसी भी व्यक्ति के व्यवहार को यही परम्पराएं निर्धारित करती हैं। ऐसे समाज में प्रौद्योगिकीय विकास नहीं होता है। इसमें भाग्यवादिता एवं रूढ़िवादिता का बोलबाला होता है तथा महिलाओं की स्थिति दयनीय होती है। दूसरे शब्दों में–''परम्परागत समाज वह समाज है जिसकी सामाजिक व्यवस्था में धर्म, नैतिकता, प्रथा, परम्परा, जनमत, जन्म, भाग्यवादिता एवं रूढ़िवादिता का विशेष महत्व देखने को मिलता है तथा परिणामस्वरूप जिसमें सामाजिक गतिशीलता एवं सामाजिक परिवर्तन की गति सापेक्ष रूप से काफी धीमी होती है।

मुक्त समाज– मुक्त समाज के अन्तर्गत भी धर्म, नैतिकता, प्रथा, परम्परा आदि पाये जाते हैं लेकिन महत्व अपेक्षाकृत कम होता है। इस समाज में रूढ़िवादिता के स्थान पर प्रगतिशीलता एवं परिवर्तन अधिक पाये जाते हैं। मुक्त समाज में सामाजिक स्तरीकरण का आधार जन्म, प्रथा, परम्परा न होकर व्यैक्तिक योग्यता एवं गुण देखे जाते हैं। इसमें वर्ग व्यवस्था, जाति व्यवस्था से ऊपर होती है।

टिप्पणी

विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। दूसरे शब्दों में– मुक्त समाज वह समाज है जिसकी सामाजिक व्यवस्था में धन, शिक्षा, वैयक्तिक गुण या योग्यता आदि को विशेष महत्व दिया जाता है और जिनके आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण होता है। ऐसा समाज रूढ़िवादी नहीं होकर प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील होता है जिसमें सामाजिक गतिशीलता अधिक पाई जाती है और सामाजिक परिवर्तन की गति तुलनात्मक दृष्टि से तीव्र होती है।

2. **आदिम एवं सभ्य समाज**

आदिम समाज– आदिम समाज की व्याख्या इबान्स प्रिचर्ड (Evans Pritchard) ने इस प्रकार की है–''मानवशास्त्री 'आदिम समाज' शब्द का प्रयोग उन समाजों के लिए करते हैं जो जनसंख्या क्षेत्र और सामाजिक सम्पर्कों की परिधि की दृष्टि से छोटे होते हैं और जिनकी अधिक प्रगतिशील समाजों की तुलना में सरल प्रौद्योगिकी तथा सरल प्रकार की अर्थव्यवस्था होती है और जिनमें सामाजिक कार्यों का कम विशेषीकरण पाया जाता है।'' आदिम समाज में वह जनजातीय समाज आता है जिसमें पहाड़ी, पठारी एवं घने जंगलों में लोग रहते हैं तथा वह काफी पिछड़े माने जाते हैं।

सभ्य समाज– सभ्य समाज को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है–''सभ्य समाज वे जंगल हैं जो जनसंख्या, क्षेत्र और सामाजिक सम्पर्कों की परिधि की दृष्टि से काफी बड़े होते हैं और जिनकी प्रौद्योगिकी तथा अर्थव्यवस्था काफी विकसित प्रकार की होती है और जिसमें सामाजिक कार्यों का काफी विशेषीकरण पाया जाता है। इसमें साहित्य, कला एवं विज्ञान का विशेष महत्व होता है।'' सभ्य समाज में शिक्षा का खूब प्रचार एवं प्रसार होता है। रूढ़िवादिता, परम्पराएं, धर्म, संयुक्त परिवार, रिश्तेदारी का महत्व कम रहता है। पाश्चात्य समाज और आधुनिक समाज सभ्य समाज के ही उदाहरण हैं।

3. **सरल समाज एवं जटिल समाज**

सरल समाज– सरल समाज वो समाज होता है जिसकी संरचना (Structure) तथा प्रकार्य (Function) सरल हों। अर्थात जिस समाज की संरचना एवं प्रकार्य जितने कम विभेदीकृत होंगे, विभिन्नताएं जितनी कम होंगी, वह समाज उतना ही सरल होगा। आदि जनजातीय समाज सरल समाज का उदाहरण है।

जटिल समाज– जटिल समाज वह समाज कहलाता है जिसकी संरचना एवं प्रकार्य जटिल होते हैं। जो समाज जितना अधिक विभेदीकृत या अधिक विभिन्नताओं वाला होगा वह समाज उतना ही जटिल होगा। आधुनिक सभ्य समाज जटिल समाज का उदाहरण है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज को कितने कालों में विभाजित किया गया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

4. "समाज स्वयं ही संगठन है, औपचारिक संबंधों का योग है जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए सम्बद्ध हैं।" यह किसकी परिभाषा है?

   (क) गिडिंग्स (ख) पारसन्स

   (ग) मैकाइवर (घ) पेज

1.4 भारत : विशिष्ट विशेषताएं

भारत की विशिष्ट विशेषताओं को क्रमशः विस्तारपूर्वक इस प्रकार समझा जा सकता है–

1.4.1 भौगोलिक विविधता

भौगोलिक दृष्टि से भारत में विविधता दर्शित होती है। भारत की इस भौगोलिक विविधता के सम्बन्ध में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने भाषण में स्पष्ट कहा है कि – 'यदि कोई विदेशी, जिसे भारतीय परिस्थितियों का ज्ञान नहीं है, सारे देश की यात्रा करे तो, वह वहां की भिन्नताओं को देखकर यही समझेगा कि, यह एक देश नहीं, बल्कि छोटे–छोटे देशों का समूह है और ये देश एक–दूसरे से अत्यधिक भिन्न है। जितनी अधिक प्राकृतिक भिन्नताएं यहां हैं, उतनी अन्यत्र कहीं पर नहीं हैं। देश के एक छोर पर उसे हिम मंडित हिमालय दिखाई देगा और दक्षिण की ओर बढ़ने पर गंगा, यमुना एवं ब्रह्मपुत्र की घाटियां, फिर विन्ध्य, अरावली, सतपुड़ा तथा नीलगिरी पर्वतश्रेणियों का पठार। इस प्रकार अगर वह पश्चिम से पूर्व की ओर जायेगा तो उसे वैसी ही विविधता और विभिन्नता मिलेगी। उसे विभिन्न प्रकार की जलवायु मिलेगी। हिमालय की अत्यधिक ठण्ड, मैदानों की ग्रीष्मकाल की अत्यधिक गर्मी मिलेगी। एक तरफ़ असम का समवर्षा वाला प्रदेश है, तो दूसरी ओर जैसलमेर का सूखा क्षेत्र, जहां बहुत कम वर्षा होती है। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से भारत में सर्वत्र विविधता दिखाई पड़ती है।'

भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू – भाग, जिसकी सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में सिन्धु नदियों तक विस्तृत है। इसके साथ ही गंगा, यमुना, सतलुज की उपजाऊ कृषि भूमि, विन्ध्य और दक्षिण का वनों से आच्छादित पठारी भू – भाग, पश्चिम में थार का रेगिस्तान, दक्षिण का तटीय प्रदेश तथा पूर्व में असम और मेघालय का अतिवृष्टि का सुरम्य क्षेत्र सम्मिलित है। इस भौगोलिक विभिन्नता के अतिरिक्त इस देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वस्तुतः इन भिन्नताओं के कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई हैं।

टिप्पणी

'यदि कोई विदेशी, जिसे भारतीय परिस्थितियों का ज्ञान नहीं है, सारे देश की यात्रा करे तो, वह वहाँ की भिन्नताओं को देखकर यही समझेगा कि, यह एक देश नहीं, बल्कि छोटे–छोटे देशों का समूह है और ये देश एक–दूसरे से अत्यधिक भिन्न है। जितनी अधिक प्राकृतिक भिन्नताएं यहां हैं, उतनी अन्यत्र कहीं पर नहीं हैं। देश के एक छोर पर उसे हिम मंडित हिमालय दिखाई देगा और दक्षिण की ओर बढ़ने पर गंगा, यमुना एवं ब्रह्मपुत्र की घाटियां, फिर विन्ध्य, अरावली, सतपुड़ा तथा नीलगिरी पर्वतश्रेणियों का पठार। इस प्रकार अगर वह पश्चिम से पूर्व की ओर जायेगा तो उसे वैसी ही विविधता और विभिन्नता मिलेगी। उसे विभिन्न प्रकार की जलवायु मिलेगी। हिमालय की अत्यधिक ठण्ड, मैदानों की ग्रीष्मकाल की अत्यधिक गर्मी मिलेगी। एक तरफ़ असम का समवर्षा वाला प्रदेश है, तो दूसरी ओर जैसलमेर का सूखा क्षेत्र, जहाँ बहुत कम वर्षा होती है। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से भारत में सर्वत्र विविधता दिखाई पड़ती है।'

ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि मौर्य, गुप्त तथा अंग्रेज़ों के शासनकाल को यदि छोड़ दिया जाए तो भारत कभी संगठित नहीं रहा, बल्कि भारत के विभिन्न भागों पर एक ही समय में कई नरेशों ने शासन किया, उदाहरणार्थ – अगर उत्तर भारत पर हर्षवर्धन का शासन था, तो उसी समय बंगाल में पाल वंशीय शासकों का तथा दक्षिण में चालुक्यों का शासन था। अतः कहा जा सकता है कि यहाँ राजनीतिक एकता का अभाव रहा है।

1.4.2 भाषाई विविधता

भाषाई विविधता के सहज माहौल में बहुभाषिकता पनपती है। इसका एक उदाहरण मजदूरी करने वाली एक ऐसी स्त्री से आसानी से मिल सकता है जिसे निरक्षर होते हुए भी हिंदुस्तानी, नेपाली, बांग्ला, असमिया, भोजपुरी आदि भाषाएं अच्छी तरह और भूटानी काफी हद तक बोलनी आती है। गांव के बालकों के लिए स्थानीय भाषा के माध्यम से पढ़ने में आसानी होती है जबकि आदिवासी अंचल के बालकों के घर की भाषा और स्कूल की भाषा में अंतर होता है। जैसे गांव में स्थानीय भाषा बोली जाती है, जबकि स्कूल में हिंदी माध्यम में पढ़ाई होती है। अंग्रेजी माध्यम के निजी स्कूल में पढ़ने वाले बालकों के लिए भाषायी चुनौती सबसे प्रमुख होती है, जबकि शहरी क्षेत्र में रहने वाले बालकों के लिए हिंदी या अंग्रेजी माध्यम में पढ़ना आसान होता है क्योंकि भाषा संबंधी मुश्किल उनके सामने ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाले बालकों की तुलना में कम होती है।

भारत जैसे विशाल देश में भाषाई भिन्नता तथा विविधता का होना स्वाभाविक है। अनेक बोलियां, उपबोलियां, प्रादेशिक भाषा, मातृभाषाओं, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं का समाज में स्थान न केवल भाषायी समृद्धता को दर्शाता है बल्कि भिन्नता को भी। बोली एवं उपबोली भौगोलिक दृष्टि से कम क्षेत्रफल तक ही सीमित होती है, जबकि मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा जिसे क्षेत्रीय भाषा भी कहा जाता है, का क्षेत्र प्रदेश या राज्य तक सीमित होता है, जिसमें उस प्रदेश के रहने वाले अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। राष्ट्र भाषा के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र के अधिकांश निवासी आपस में सम्पर्क बनाते और विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इसी प्रकार विश्व

टिप्पणी

राष्ट्रों के मध्य सम्पर्क तथा विचारों का आदान–प्रदान करने के माध्यम को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा या विश्व भाषा कहते हैं।

विश्व में 6 अरब से भी अधिक लोग 9000 से भी अधिक भाषाएं और बोलियां बोलते हैं। एक अरब से अधिक लोग चीनी भाषा बोलते हैं। चीन की मैंडरिन बोली विश्व में सबसे अधिक प्रयोग की जाती है। मैंडरिन के बाद अंग्रेजी भाषा, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का नाम दिया गया है, विश्व की दूसरे नम्बर की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व की जनसंख्या के लगभग एक तिहाई लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं।

वर्ष 2000 में 20 भाषाओं को मातृभाषा के तौर पर बोलने वाले लोगों की जनसंख्या (मिलियन में) के आधार पर सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में सम्मिलित किया गया है। इनमें वे लोग शामिल नहीं, जो इन्हें दूसरी भाषा के तौर पर प्रयोग करते हैं।

क्रमानुसार पहले स्थान पर मैंडरिन चीनी (885 मिलियन), द्वितीय स्थान पर अंग्रेजी (400 मिलियन), अरबी (200 मिलियन), पुर्तगाली (175 मिलियन), रशियन (170 मिलियन), बांग्ला (168 मिलियन), जापानी (125 मिलियन), जर्मनी (100 मिलियन), वुचीनी (91 मिलियन), जावानीस (75 मिलियन), कोरियन (75 मिलियन), पंजाबी (73 मिलियन), फ्रैंच (72 मिलियन), मराठी (65 मिलियन), तमिल (65 मिलियन), इटैलियन (57 मिलियन) तथा यू चीनी कानूटोनीज (55 मिलियन) के नाम सम्मिलित हैं।

उल्लेखनीय है कि इनमें 6 भारतीय भाषाएं हैं– हिन्दी, बांग्ला, पंजाबी, तेलगु, मराठी एवं तमिल अर्थात लगभग 624 मिलियन व्यक्तियों द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाएं मातृभाषा के रूप में व्यवहृत हैं जिसमें तमिल सबसे पुरानी भारतीय भाषा मानी जाती है। शब्दावली की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा सबसे समृद्ध है जिसमें 4 लाख से अधिक शब्द हैं। इसके अतिरिक्त ग्राह्यता की दृष्टि से भी अंग्रेजी लचीली भाषा है।

भाषा अनेक प्रकार की होती हैं। इतिहास, भूगोल (क्षेत्र), प्रयोग, निर्माण, मानकता और मिश्रण के आधार पर भाषा के बहुत से रूप होते हैं। उदाहरण के लिए– इतिहास के आधार पर अनेक भाषाओं की जन्मदात्री 'मूलभाषा' संस्कृत, ग्रीक को 'प्राचीन भाषा' पालि, प्राकृत, अपभ्रंश को मध्यकालीन भाषा तथा हिन्दी, मराठी, गुजराती, बांग्ला को 'आधुनिक भाषा' नाम से इंगित किया जाता है। भूगोल या क्षेत्र के आधार पर भाषा का सबसे छोटा रूप व्यक्तिबोली का होता है, जो व्यक्ति–विशेष द्वारा बोली जाती है। एक क्षेत्र के बहुत से लोगों की भाषा स्थानीय बोली होती है। यह क्षेत्र की दृष्टि से व्यक्तिबोली से बड़ी होती है। अनेक व्यक्तिबोलियां मिलकर एक स्थानीय बोली का निर्माण करती हैं। एकाधिक स्थानीय बोलियां मिलकर एक उपबोली निर्मित करती हैं। अनेक उपबोलियां मिलकर एक 'बोली' बनती हैं। एकाधिक बोलियां मिलकर एक उपभाषा या बोली वर्ग तथा एकाधिक 'उपभाषाएं' मिलकर एक भाषा का निर्माण करती हैं। प्रयोग के आधार पर बोलचाल की भाषा, साहित्यिक भाषा, जातीय भाषा, व्यावसायिक भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, गुप्तभाषा, जीवित भाषा, मृतभाषा आदि विभिन्न रूप होते हैं। निर्मिती के आधार पर सहज भाषा तथा कृत्रिम भाषा आदि भेद होते हैं। मानक या शुद्धता के आधार पर परिनिष्ठित, अपभाषा आदि भेद होते हैं। मिश्रण के आधार पर अधोसंकर तथा संकर दो भेद होते हैं।

टिप्पणी

भाषाई भिन्नता के स्वरूप को जानने से पूर्व आवश्यक है कि भाषाई भिन्नता के प्रत्यय को स्पष्ट रूप से समझा जाए। भाषाई भिन्नता वस्तुतः किसी समाज में भाषायी सन्दर्भ में वह स्थिति है, जब समाज में आचार व्यवहार तथा सम्प्रेषण के लिए मातृभाषा के साथ–साथ अन्य भाषाओं का भी व्यवहार समान रूप में चलता रहता है। दूसरे तथ्यों में किसी राजभाषा (मातृभाषा से इतर) राष्ट्रभाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में किन्हीं दूसरी भाषाओं का व्यवहार किया जाता हो।

भारत के सन्दर्भ में भाषाई भिन्नता का रूप हमें स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि भारत जैसे बहुधर्मी बहुसांस्कृतिक तथा बहुभाषी देश में भाषाई भिन्नता अनिवार्य भी है और स्वाभाविक भी। भारत में भाषाएं क्षेत्रीय तथा प्रादेशिक हैं जैसे– बांग्ला–बंगाल प्रदेश, पंजाबी–पंजाब प्रदेश, राजस्थानी–राजस्थान प्रदेश आदि।

यूरोप जैसे उपमहाद्वीप में भी भाषाओं के आधार पर राष्ट्र बने हैं। यूरोप उपमहाद्वीप के प्रत्येक देश की अपनी भाषा है अर्थात इस महाद्वीप का विभाजन भाषाओं के आधार पर हुआ है। यूरोप में भाषाएं राष्ट्रीय स्तर पर हैं जैसे फ्रेंच–फ्रांस देश, जर्मन–जर्मनी देश, पोलिश–पोलैंड देश।

भाषाई भिन्नता के सन्दर्भ में भाषा का विभाजन विद्वानों ने चार वर्गों में किया है–

1. प्राचीन भाषा
2. मातृ भाषा
3. राष्ट्र–भाषा
4. अन्तर्राष्ट्रीय भाषा

1. प्राचीन भाषा– प्राचीन भाषा के अन्तर्गत उन भाषाओं को सम्मिलित किया है जो प्राचीन समय में प्रयुक्त की जाती थीं परन्तु आधुनिक समय में इनका उपयोग नहीं होता है। यथा भारत की प्रमुख प्राचीन भाषाएं– संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश आदि हैं। बौद्ध ग्रंथों की रचना पाली में की गई है। यद्यपि यह साहित्य प्राचीन हो गया है परन्तु साहित्य में इसके योगदान का महत्व कम नहीं है। समय परिवर्तन, ऐतिहासिक घटनाओं, क्रांतियों के परिणामस्वरूप इन भाषाओं का उपयोग प्रायः समाप्त हो गया है। संस्कृत भारत की सांस्कृतिक भाषा है, भाषा ही नहीं अपितु भाषाओं की जननी है। शिक्षा की दृष्टि से संस्कृत भाषा का महत्व विशेष माना गया है। ''चार हजार वर्षों से संस्कृत ही वह वाणी है जिसके माध्यम से भारत की सभ्यता एवं संस्कृति ने वैदिक काल के आरम्भ से अभिव्यक्ति की है।'' भारतीय उच्च विचार, उच्च आदर्श एवं दर्शन, उच्च मूल्य, आध्यात्मिक आकांक्षाएं तथा नैतिक मान्यताएं संस्कृत भाषा में ही निहित हैं। संस्कृत भाषा अतीतकाल से ही भारतवासियों का मार्गदर्शन करती रही है। भारत को एकता के सूत्र बांधने की अपूर्व शक्ति संस्कृत भाषा एवं साहित्य में है। यूरोप में ग्रीक तथा लेटिन का जो स्थान है, वह संस्कृत भाषा का भारत में है।

2. मातृ भाषा– माता–पिता से सीखी हुई भाषा का परिष्कृत रूप मातृभाषा का होता है। परिवार के सदस्य परिष्कृत भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। यह मानक भाषा से भिन्न होती है। मातृभाषा और बोलियों में अन्तर होता है। बालक माता–पिता से स्थानीय या

टिप्पणी

क्षेत्रीय बोली ही सीखता है जिसका लिखने में प्रयोग होता है। लिखने की भाषा परिष्कृत होती है। इसी परिष्कृत भाषा के माध्यम से सभी कार्य होते हैं। विद्यालयों में शिक्षण किया जाता है तथा साहित्य का सृजन भी होता है। इसे मातृ–भाषा कहा जाता है। किसी विशिष्ट प्रदेश या क्षेत्र में प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा को प्रादेशिक भाषा कहा जाता है। उत्तर–प्रदेश तथा मध्य–प्रदेश की मातृभाषा तथा प्रादेशिक भाषा हिन्दी है। हिन्दी भाषा के अन्तर्गत अनेक बोलियां सम्मिलित हैं।

3. राष्ट्र भाषा– मातृ भाषा के बाद राष्ट्र–भाषा का प्रमुख स्थान है। प्रत्येक राष्ट्र की एक भाषा होती है जिसका संविधान में उल्लेख किया जाता है। जिस भाषा को देश की अधिकांश जनता बोलती है और समझ लेती है, उसे राष्ट्र भाषा कहा जाता है। राष्ट्रभाषा को राज भाषा भी कहते हैं। राष्ट्र–निर्माण और भावात्मक एकता में राष्ट्र–भाषा की अहम भूमिका होती है। देशवासियों में परस्पर सम्पर्क तथा विचारों का आदान–प्रदान राष्ट्र–भाषा के माध्यम से ही होता है।

4. अंतर्राष्ट्रीय भाषा– आज वैज्ञानिक विकास तथा तकनीकी विकास ने विश्व के राष्ट्रों को एक–दूसरे के अधिक समीप ला दिया है और कोई भी राष्ट्र अकेला रह कर जीवित नहीं रह सकता है। एक राष्ट्र की गतिविधियां अन्य राष्ट्रों को प्रभावित करती हैं, इसलिए विश्व के राष्ट्रों में सम्पर्क तथा विचारों का आदान–प्रदान करना आवश्यक हो गया है। इसके लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जिससे विश्व के राष्ट्र आपस में विचारों व नीतियों का आदान–प्रदान कर सकें।

'संयुक्त राष्ट्र संघ' जो अन्तर्राष्ट्रीय संघ है उसमें विश्व के अधिकांश राष्ट्र मानवीय समस्याओं पर विचार–विमर्श करते हैं और समाधान ढूंढते हैं, जिससे विश्व में शान्ति रह सके। इसके लिए विश्व–भाषा का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी ने विश्व–भाषा का गौरव पाया है। अंग्रेजी को विश्व की खिड़की कहा जाता है जिसके माध्यम से विश्व राष्ट्रों के साथ विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय–भाषा से वैज्ञानिक विकास एवं अविष्कारों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। विकसित राष्ट्रों के ज्ञान–विज्ञान का लाभ विकासशील राष्ट्र उठाते हैं। अंग्रेजी को यह महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भाषाई भिन्नता के कारण

भाषाई भिन्नता किसी भी गतिशील समाज की अपरिहार्य स्थिति है क्योंकि गतिशील समाज में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक वैभिन्न्य को स्वीकार्यता मिलती है जिसके कारण वह समाज सहिष्णु, बहुधर्मी, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषी समाज के रूप में विकसित एवं परिवर्तित होता है। इन तथ्यों के आधार पर भाषाई भिन्नता के निम्नलिखित कारण निरूपित किए जा सकते हैं–

- व्यावसायिक, आर्थिक या सामाजिक कारणों से एक व्यक्ति या समूह की दूसरे स्थान पर गतिशीलता भाषायी गतिशीलता को भी जन्म देते हैं। इस

टिप्पणी

प्रकार अनेक भाषा समूहों के व्यक्ति एक स्थान पर व्यावसायिक हितों से एकत्रित होते हैं तो भाषाई भिन्नता अथवा बहुभाषिकता का जन्म होना स्वाभाविक है।

- आंशिक या पूर्ण रूप से किसी भी भाषा (मातृभाषा से पृथक) को सामाजिक व्यवहार के लिए मान्यता देना भाषाई भिन्नता का कारण होता है।
- एक ही प्रकार के शब्दों के लिए अलग–अलग ध्वनि रूपों का जन्म अनेक शब्दों के जन्म का कारण बनता है। धीरे–धीरे व्यापक रूप से शब्द समूहों तथा वाक्य संरचना को भी प्रभावित करता है।
- भौगोलिक विषमताएं भी भाषाई भिन्नता का कारण बनती हैं। उदाहरण के लिए पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों में समान अर्थों वाले अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जब इन दोनों समूहों के लोग साथ रहते हैं तो एक मिश्रित भाषा के जन्म के साथ–साथ एक–दूसरे की भाषा को भी स्वीकार करते हैं और इस प्रकार अनेक बोलियों व भाषाओं का साथ–साथ व्यवहार चलता है।

1.4.3 सांस्कृतिक विविधता

भारत के अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विविधता दिखाई पड़ती है। यहां विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों में सांस्कृतिक भिन्नता मिलती है। लोगों का शारीरिक गठन, खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, यहां तक कि मानसिकता भी अलग–अलग प्रकार की है। उदाहरणार्थ – उत्तर भारत में अनेक जगह यथा – दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता आदि में सभ्य, शिक्षित एवं शिष्ट लोग मिलते हैं, तो असम तथा नागालैण्ड में अपेक्षाकृत कुछ कम सुसंस्कृत एवं शिष्ट लोग मिलते हैं।

विश्व में बहुत कम देश हैं जिनकी भारत की तरह प्राचीन एवं बहुआयामी संस्कृति है। 5000 सालों के लंबे एवं अटूट इतिहास को देखा जाए तो, इस दौरान कितने लोग भारत में आए और भारतीय संस्कृति ने उन सबको अपनाकर अपनी संस्कृति को समृद्ध बनाया। इसकी यही विभिन्नता भारत की विशिष्टता बन गई है। यहां भौगोलिक, आध्यात्मिक, जातीय, भाषा संबंधी हर तरह की विभिन्नताएं विद्यमान हैं। प्राचीन काल से अभी तक भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना इसी अनेकता में पूर्णत्व को प्राप्त करती आई है। वर्तमान भारत अनेकता में एकता का वह रूप प्रस्तुत कर रहा है, जिसके समरूप इतिहास में कोई और नहीं है। भारतीय धर्म, त्योहार, परंपराएं, शिल्पकृति, स्मारक, वेश–भूषा, नृत्य और संगीत, भाषा और साहित्य ऐसी कुछ सूचियां हैं जो भारत के अभिन्न अंग हैं।

भारतीय कला की कहानी धरती पर सबसे पुरानी और विभिन्नताओं से भरी हुई है। इसमें स्वदेशी और बाह्य कारकों का सम्मिश्रण है, साथ ही इसकी अपनी विशेषता एवं पहचान भी है। यह सामाजिक विकास के इर्द–गिर्द घूमती है एवं कला के क्षेत्र में हुए बदलावों का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है।

टिप्पणी

भारतीय कला की शैली गोल छल्ले और वक्रीय रेखाओं, तनों और प्रतानों, गोलाकार देवियों, रंगीन रत्नों, वक्र और गुफाओं, पूज्य आत्माओं, चंद्रिकाओं एवं सूरज के तल से विशेष रूप से प्रभावित है। भारतीय मूर्तियां और चित्रकारी इस देश की विभिन्नता, रंग और विकास से अभिभूत होकर भारतीय संस्कृति और प्रकृति को समृद्ध करती है।

भारतीय सभ्यता की मूल उत्पत्ति अलिखित इतिहास में छिपी हुई है। भारतीय उपमहाद्वीप में मनुष्यों के क्रियाकलापों (400000–200000 ईसा पूर्व) को प्रारंभिक, मध्यकालीन एवं उत्तर कालीन पाषाण काल में देखा जा सकता है। वर्तमान भारतीय प्रायद्वीप के अनुसार राजस्थान, गुजरात, बिहार, वर्तमान पाकिस्तान एवं दक्षिणी भाग में तब इन तीनों कालों की अपेक्षा ज्यादा गतिविधियां हुई थीं। ये आदिवासी हजारों सालों से खानाबदोशी, शिकारी और संग्रहकर्ता रहे थे। ईसा पूर्व नवीं शताब्दी के मध्यकाल में जब इन लोगों ने कृषि जीवन को अपनाया तब पांच नस्लें उभर कर सामने आईं। इनमें नेग्रिटो, प्रोटो ऑस्ट्रेलाइड, मध्यकालीन, मंगोल और अल्पाइन थे। पश्चिमी क्षेत्र में जीवन का पहला संकेत सिंधु नदी के आसपास मिलता है जो कि मिस्र, मैसोपोटामिया और पर्सिया के समान ही दिखता है। आगे चलकर ये बस्तियां धीरे–धीरे बड़ी होने लगी एवं क्रमशः ये तांबा, कांसा, पालतू जानवर, मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल करने लगे तथा इन लोगों ने व्यापार भी शुरू किया।

भारत में वर्ष के प्रत्येक दिन कोई ना कोई त्योहार रहता है। यहां असंख्य राजकीय, क्षेत्रीय, स्थानीय, धार्मिक, मौसमी, और सामाजिक त्योहार मनाए जाते हैं। ये त्योहार भारत की अप्रतिम पहचान बनाते हैं। भारत में असंख्य देवता, देवी, संत, गुरु और पैगम्बर होते हैं जो कि पूजनीय हैं। भारतीय त्योहार रंग, उल्लास, जोश, भोज और बहुत सारी परंपराओं और प्रार्थनाओं पर आधारित होते हैं। विदेशी यात्री भी यहां के त्योहारों के स्वरूप एवं विविधता से अचंभित हुए बिना नहीं रह सकते हैं।

भारतीय भोजन भी यहां कि संस्कृति, जाति, भौगोलिक और वातावरण की तरह विभिन्न विभिन्नताओं से भरा हुआ है। भारतीय पाकशास्त्र उचित सुगंधित मसालों के चटपटेदार जायके से जाना जाता है। मसालों का उचित सम्मिश्रण कर भोजन के प्राकृतिक रूप को और बेहतर बनाने में भारतीय सिद्धहस्त हैं। वे मसालों का प्रयोग भोजन के कुदरती स्वाद को खराब करने में नहीं करते। ये मसाले क्षुधावर्धक और पाचक तत्व के रूप में भी इस्तेमाल होते हैं।

मसालों के अलावा भारतीय पाकशास्त्र और भारतीय भोजन में मुख्य अव्यय दूध से बने पदार्थों जैसे कि घी और दही का मिश्रण है। इन्हें मध्यम आंच पर पकाया जाता है। पूरे देश में दाल का प्रचलन है, इसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्धता और जरूरत पर निर्धारित है। प्राकृतिक रूप से मौसम और परिवेश के अनुसार सब्जियों में काफी विभिन्नताएं मिल जाती हैं। सब्जी को पकाने का तरीका मुख्य भोजन या अनाज जिसके साथ इसे परोसा जाना है, उसके ऊपर निर्भर करता है। पंजाब में सरसों का साग मक्के की रोटी के साथ खाया जाता है। तमिलनाडु में सांभर (दाल) और चावल डीप फ्राई सब्जियों के साथ खाया जाता है।

टिप्पणी

यद्यपि भारत में बहुत सारे धर्म हैं लेकिन भारतीय भोजन पर दो धर्मों हिंदू और मुस्लिम का काफी प्रभाव है। भारतीय भोजन ने दोनों की पाक कला की रीतियों को अपनाकर सम्मिश्रित रूप से नया आयाम प्राप्त किया है। भारतीय भोजन में पुर्तगाली, फारसी और अंग्रेजों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीयों की पसंदीदा चाय का प्रचलन अंग्रेजों द्वारा ही किया गया था।

यद्यपि बहुत सारे हिंदू मांसाहारी भोजन कर लेते हैं, पर संपूर्ण भारत का पारंपरिक भोजन शाकाहार ही है। मुस्लिम परंपरा में मांसाहारी भोजन को बढ़ावा दिया जाता है। मुगलई भोजन, कबाब, कोरमा और नर्गिसी कोफ्ता तथा मिट्टी की भट्टी से बनी (तंदूर) तंदूरी रोटी एवं चिकन के स्वाद को भारत में मुसलमानों ने ही प्रचलित किया है।

भारत यशस्वी धरोहरों एवं समृद्ध परंपराओं वाला अत्यंत सुंदर देश है। भारत अनेकता में एकता को दर्शाते हुए, विभिन्न रीति रिवाजों, परंपराओं और भाषाओं को अपने में समेटे हुए हैं। यहां नाना प्रकार के लोग रहते हैं लेकिन उन सबके अंदर एक ही बात गुंजायमान है कि "वे भारतीय हैं।" वे मानवीयता के एकसूत्र से बंधे हुए हैं।

भारत में प्रचलित परंपराओं के द्वारा विभिन्नता को आराम से देखा जा सकता है। यहां गुजराती, ब्राह्मण, मारवाड़ी, बंगाली, दक्षिण भारतीय, मुस्लिम यहां तक कि ईसाई भी रहते हैं। सभी धर्मों की अपनी अलग–अलग भाषा, भावनाएं, मान्यताएं, त्योहार, नृत्य, संगीत, कला यहां तक की वेशभूषा भी अलग–अलग हैं।

भारतीय त्योहार बहुत रंगीन और उत्साहवर्धक होते हैं। यद्यपि सारे धर्म अपने अपने त्योहार मनाते हैं लेकिन मातृभूमि के प्रति प्रेम की यह झलक उनके धर्म की विभिन्नता के बीच भी दिखाई देती है। यहां हिंदुओं की संख्या ज्यादा है एवं उनके पर्व जैसे कि दीपावली, होली, रक्षाबंधन, गणेश चतुर्थी और रामनवमी आदि भी बहुत हैं। इन त्योहारों की कोई नियत तारीख नहीं होती है क्योंकि ये चंद्र कैलेंडर से चलते हैं। मुस्लिम भी ईद उल फितर और ईद–उल–अजहा बहुत जोश से मनाते हैं। ईसाई क्रिसमस, जैनी महावीर जयंती और सिख गुरु गोविंद सिंह जयंती को बहुत उत्साह से मनाते हैं। इन सबके अलावा भारतीय कैलेंडर में और त्योहार भी होते हैं।

त्योहारों की तरह नृत्य और संगीत के भी अपनी–अपनी संस्कृति और धर्म के अनुसार अलग–अलग स्वरूप हैं। भरतनाट्यम, कथक, कथकली और कुचिपुड़ी अलग–अलग राज्यों के नृत्य हैं और इनकी उत्पत्ति भी अलग–अलग हुई है। उत्तर भारत से कथक, दक्षिण भारत से भरतनाट्यम, तथा दक्षिण भारत के केरल से कथकली की उत्पत्ति हुई है। कुचिपुड़ी भारतीय शास्त्रीय नृत्य का एक रूप है, इसी तरह उड़ीसी, गरबा, डांडिया, भांगड़ा और मोहिनिअट्टम भी नृत्य के अनेक प्रकार हैं।

भारतीय कला में भी विभिन्नता के दर्शन होते हैं। भारतीय कला काल, धर्म, राजनैतिक बदलाव और सांस्कृतिक बदलाव के आधार पर अत्यंत सुंदर और श्रेष्ठ है। यहां की कलाकृति कुछ ऐसी है मानो कि जिंदगी के तत्वज्ञान को कैनवास पर उतार दिया गया हो। देवताओं का मानवीकरण, दिव्य प्राणियों की परिकल्पना, मानवीय लक्षण,

टिप्पणी

जीवन का आदर्श, राजनैतिक आंकड़े, प्राचीन इतिहास का सत्य, स्वतंत्रता की लड़ाई, विकास के चरण और असंख्य रूप अलंकार कला के रूप में बेजोड़ दर्शाए गए हैं। बहुत सारे भारतीय कलाकार अपनी नवीनता, रचना, और सोच के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध हुए हैं।

जब हम पारंपरिक परिधानों की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि इसमें अधिक विभिन्नता नहीं है। प्रायः सभी धर्मों ने साड़ी को अपने पारंपरिक परिधान के अंतर्गत स्वीकार कर लिया है। लेकिन साड़ी के पहनने के ढंग में उनके धर्म के अनुसार अलग–अलग विभिन्नताएं मिल जाती हैं। उदाहरण के तौर पर, गुजरात की पारंपरिक साड़ी पटोला और राजस्थान की बांधनी है। इनके अलावा कांचीपुरम, मैसूर सिल्क, लखनवी और गज्जी सिल्क की अलग–अलग किस्में हैं। साड़ी के अलावा सलवार कमीज भी पहने जाते हैं।

भारत अपनी एकता और विभिन्नता के कारण विशिष्ट है। भारत अपने विभिन्न त्योहारों के लिए भी संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। भारतीय त्योहार रंग, जोश, भोज, परंपराओं इत्यादि लक्षणों के कारण खास होते हैं। त्योहारों की विभिन्नता की तरह ही यहां के भोजन भी विभिन्न प्रकार के होते हैं।

1.4.4 धार्मिक बहुलता

भारत के विभिन्न भागों में अलग–अलग धर्म यथा – हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, पारसी तथा जैन धर्म के अनुयायी रहते हैं। प्रत्येक धर्म भी कई मतों में बंटा हुआ है, उदाहरणार्थ – हिन्दू धर्म जिसे भारत का सर्वाधिक प्राचीन धर्म माना जाता है, वैष्णव, शैव, सनातन, आर्य समाज, राम भक्त, कृष्ण भक्त, कबीर पन्थी, नाथ पन्थी आदि मतों में विभाजित है। अतः विभिन्न धर्म तथा मतों के अनुयायियों में धार्मिक विविधता दिखाई देती है।

धर्म को सामान्य रूप से ब्रह्मविद्या से संबंधित स्थापित प्रथाओं के निर्वहन के रूप में जाना जाता है। इनमे ब्रह्मांड के किसी सृजनकर्ता, पालनकर्ता और विनाशकर्ता, अर्थात, शुद्ध जीवन–शैली, सबका कल्याण, दिव्य जीवन की तैयारी और जीवन एवं मरण के चक्र से मुक्ति में आस्था शामिल है। यद्यपि, प्रसिद्ध वैदिक ग्रन्थ मनुस्मृति के अनुसार; धर्म दस प्रकार के गुणों को धारण करना होता है जो मनुष्यों को अन्य पशुओं एवं अधार्मिक साधारण लोगों से अलग करता है। इनमें धैर्य, क्षमा, आत्म–संयम, चोरी नहीं करना, निर्मलता, इंद्रिय संयम, बुद्धिमानीपूर्ण विचारना और कार्य करना, कौशल, सत्यता और क्रोध–प्रबंधन का अभ्यास/ प्रयोग करना। ये सभी गुण धर्म कहलाते हैं और जो इन गुणों का पालन करता है उसे धार्मिक कहते हैं। दुनिया के अधिकतर धर्मों के भीतर दो भाग हैं या प्रकार हैं, जिनमें से एक धार्मिकता या ब्रह्मविद्या से संबंधित चिंतन और आस्था है, दूसरा रिवाज़ों और प्रार्थनाओं, नमाज़, कीर्तन, यज्ञ, स्मरण, बलि और इसी प्रकार के क्रियाकलापों के रूप में स्थापित मानदण्डों का पालन व्यक्त किया जाता है। अतः, हम दो प्रकार के धार्मिक अनुयायियों को पाते हैं; एक वे जो दार्शनिक माने जाते हैं और दूसरे वे जो मतांध कर्मकाण्डी माने जाते हैं।

टिप्पणी

वस्तुतः, एशिया–प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में सबसे अधिक धार्मिक रूप से भिन्न देशों में से आधे देश स्थित हैं। सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि सभी पांच प्रमुख धर्म, जिनमें ईसाइयत, मुसलमान–धर्म, हिंदू–धर्म, बौद्ध–धर्म और यहूदी धर्म शामिल हैं, इन क्षेत्रों में बहुत प्रचलित हैं। नामानुसार दक्षिण–पूर्वी एशियाई देश बांग्लादेश, चीन, जापान, पाकिस्तान, और श्रीलंका धर्म के अनुयायियों के एक सुंदर गुलदस्ते को प्रस्तुत करते हैं। जहां तक भारत का संबंध है, यह धार्मिक विविधता एवं सांप्रदायिक सामंजस्यता का सबसे उपयुक्त उदाहरण है। हिंदू धर्म के भारत में सबसे अधिक अनुयायी हैं किंतु यहां एक बहुत बड़ी मात्रा में ईसाइयत के अनुयायी है और यहां मुसलमान धर्म की दूसरी सबसे बड़ी आबादी रहती है। भारत में अनेक प्राचीन किंतु अल्प अनुयायियों वाले विश्व के धर्म भी विद्यमान हैं जिनमें पारसी और यहूदी–धर्म शामिल हैं। भारत अज्ञात समय से कई धर्मों का आवास स्थान रहा है। सबसे अधिक प्राचीन एवं बड़ी मात्रा में अनुयायियों वाले धर्म इस देश में प्रसारित होते थे। इनमें हिंदू–धर्म, जैन–धर्म, बौद्ध–धर्म, सिक्ख धर्म एवं उनके हजारों पंथ शामिल हैं। दुनिया के दो सबसे अधिक प्रचलित धर्म, अर्थात ईसाइयत व मुसलमान–धर्म, के भी भारत में बड़ी मात्रा में अनुयायी रहते हैं। इस प्रकार भारत में प्रचुर धार्मिक विविधता के साथ धर्म–निरपेक्षता का संवैधानिक प्रावधान है जो एक देश में विभिन्न धर्मों के सामंजस्यतापूर्ण सह–अस्तित्व को कायम रखता है।

विश्व परिदृश्य पर, धार्मिक विविधता को देश या जाति के पक्षपात से रहित आधुनिक समाज की एक विशेषता माना जाता है। दुनियाभर में अधिकतर सभ्य देशों ने अपने सरकार के स्वरूपों के भीतर धार्मिक विविधता को समायोजित एवं नियंत्रित करने के लिए एक अनुकूल प्रक्रिया विकसित की है। उदारीकरण, आधुनिकरण और वैश्वीकरण के सिद्धांतों ने भी जनता के आर्थिक के साथ–साथ मानवीय कल्याण हेतु एक साथ रहने और कार्य करने के लिए धार्मिक रूप से भिन्न लोगों के लिए स्थान का निर्माण किया है। ऐसी व्यवस्था में धर्म पूंजी एवं श्रम के अबाध प्रवाह, राजनीतिक एकीकरण, आधुनिक संस्कृति एवं देश व जाति के आधार पर पक्षपात से रहित जीवन–शैली के समक्ष गौण हो गया है। अतः, धार्मिक कट्टरता के युग का अंत हो रहा है और अत्यधिक शीघ्रता के साथ आधुनिकता का वातावरण ऊपर आ रहा है। इसलिए दुनिया के 16.3 प्रतिशत नागरिक स्वयं को असंबद्ध मानते हैं जिसका तात्पर्य कि वे स्वयं को धार्मिक अनुयायियों के किसी भी वर्ग में नहीं रखना चाहते हैं। एक अन्य तथ्य, जो धर्म के मूल सिद्धांत का संकेत करता है, वह यह है कि दुनिया के सभी प्रमुख धर्मों में धार्मिक पंथों के उप–धर्मों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। यह ईसाइयत, हिन्दू–धर्म एवं मुसलमान–धर्म सहित विश्व के सभी बड़े धर्मों के लिए भी समान रूप से सत्य है। यह सिद्धांत स्थानीय से विश्व परिदृश्य पर धार्मिक विविधता के सिद्धांत को अतिरिक्त शक्ति प्रदान करता है।

1.4.5 सामाजिक स्तरीकरण

सामाजिक स्तरीकरण, समाज की वह व्यवस्था होती है जिसमें समाज को विभिन्न समूहों को उच्च से निम्न पदों की स्थिति का स्थान प्राप्त होते हैं। इन्हीं पद एवं प्रस्थितियों के कारण, मनुष्यों को अधिकार प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

हमारा समाज अनेक प्रकार के स्तरों में विभाजित है। यह विभाजन समाज की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने एवं इसके उचित रखरखाव के लिए आवश्यक है। हम यह तो स्पष्ट तौर पर नहीं कह सकते हैं कि समाज में स्तरीकरण पूर्णतः एवं नितांत रूप से उपयुक्त है, अथवा नहीं वरन् यह कह सकते हैं कि हमारे समाज को अनेक आधारों पर एक निश्चित सोपानीकृत व्यवस्था के अन्तर्गत विभाजित अवश्य ही किया गया है, काम्टे, दुर्खीम एवं परैटो जैसे समाजशास्त्रियों का मानना है कि समाजशास्त्र का उद्देश्य भविष्यवाणी करना नहीं है वरन् यह पता लगाना है कि :

क्या था? और

क्या है?

सामाजिक स्तरीकरण, समाज को उच्च और निम्न वर्गों या समूहों में विभाजित करने वाली एक सामाजिक व्यवस्था होती है जिसमें समूह के स्तर के अनुसार, व्यक्तियों को समाज में स्थान प्राप्त होता है।

रेमण्ड मरे (Raymond Murray) के अनुसार–

"सामाजिक स्तरीकरण, उच्च एवं निम्न सामाजिक इकाइयों में समाज का एक क्षैतिज विभाजन होता है।"

गिल्बर्ट के अनुसार–

"सामाजिक स्तरीकरण, समाज का स्थायी समूहों में विभाजन है जो आपस में शृंखला एवं अधीनता के सम्बन्धों पर आधारित होते हैं।"

अर्थात उच्चतर समूहों के व्यक्तियों को जो सुविधाएं उपलब्ध होती हैं वे निम्नतर वर्ग के व्यक्तियों को नहीं होती हैं। इसी प्रकार जो प्रतिष्ठा एवं सम्मान उच्च वर्ग के लोगों को प्राप्त होता है वह निम्न वर्ग के लोगों को नहीं होता। स्तरीकरण के कारण ही समाज में निम्न श्रेणी या वर्ग के लोगों को श्रद्धेय दृष्टि से देखा जाता है एवं उन्हें मानव के समान सम्मान नहीं दिया जाता है। उन्हें अधिकतर स्थानों पर सामाजिक तिरस्कार एवं धिक्कार ही मिलती है। पूंजीवादी व्यवस्था का प्रमुख चरित्र यही है कि यह समाज को सामूहिकता से व्यक्तिवाद की ओर ले जाता है एवं विवश कर देता है कि व्यक्ति, व्यक्तियों के बारे में ना सोचे वरन् अपने स्वयं के निहितार्थों को पोषण करे। इस पोषण करने के लिए उसे आवश्यक रूप से अन्य का शोषण किसी न किसी रूप में अवश्य ही करना पड़ता है। इस स्थिति में मनुष्य के मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है एवं समूहों में पारस्परिक बिखराव आ जाता है। बिखराव के बाद ये व्यक्ति अपने–अपने स्वार्थ के लिए अपना, समूहों या वर्गों या सामाजिक स्तरों का निर्माण करते हैं।

एन्थोनी, गिडेन्स ने शक्ति संरचना को मैक्स वेबर की ही भांति सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार माना है–

टिप्पणी

गिडेन्स के अनुसार–

"समाज के अन्दर भौतिक या प्रतीकात्मक प्रतिफल के आधार पर सामाजिक समूहों के मध्य संरचनात्मक असमानता पाई जाती है। मानव समाज के हर प्रारूप में यह असमानता किसी न किसी रूप में विद्यमान भी रही है।"

गिडेन्स स्तरीकरण का कारण बताते हुए स्पष्ट करते हैं कि धन एवं शक्ति के अन्तर के कारण समाज में स्तरीकरण होता है जिसका स्पष्ट रूप 'वर्ग' होते हैं।

भारत के संदर्भ में देखें तो यहां जाति आधारित वर्गीय व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। भारतीय समाज में मनुष्यों के समूहों को इस आधार पर रखा जाता है कि उसने किस जाति में जन्म लिया है। भारतीय पौराणिक आधार पर भारतीय समाज भी चार प्रमुख वर्गों में विभाजित था। सदियों पुरानी यह जातीय व्यवस्था अभी भी समाज के विभाजन का आधार है। हालांकि इसमें छोड़ा परिवर्तन अवश्य ही आया है परन्तु फिर भी इसकी प्रासंगिकता ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज समाज का स्तरीकरण इस आधार पर किया जाता है कि किस व्यक्ति के पास किसी सम्पदा एवं शक्ति है। यह अवधारणा पाश्चात्य देशों से भारत में आई है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप विकसित राष्ट्रों में सामंती व्यवस्था समाप्त हो गई एवं आर्थिक आधार वाली ''पूंजीवादी व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। अधिकतर समाजशास्त्रीयों ने पूंजीवादी व्यवस्था में वर्गों के विभाजन का प्रमुख आधार 'पूंजी' अर्थात सम्पदा को माना है।

बॉटोमोर की परिभाषा के अनुसार–

"सामाजिक स्तरीकरण, वर्ग के आधार पर सामाजिक विभाजन होता है। इस विभाजन को पद प्रतिष्ठा के आधार पर किया जाता है।"

बॉटोमोर ने स्तरीकरण को एशियाई देशों के सन्दर्भ में व्याख्या प्रस्तुत की है।

पारसन्स के अनुसार–

"सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों के उच्च और निम्न क्रम विन्यास में विभाजन होना ही सामाजिक स्तरीकरण कहलाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि समाज को मनुष्यों की स्थिति के अनुसार समूहों एवं श्रेणियों में रखकर विभाजन किया जाता है। व्यक्ति की पहचान उसके वर्ग या सामाजिक समूह के आधार पर होती है।

सामाजिक स्तरीकरण की महत्ता

सामाजिक स्तरीकरण समाज के विभिन्न स्थिति–समूह को ऊंच–नीच के स्तरों में बांधे रखने की एक सामाजिक योजना है। समाज केवल विभिन्न स्तरों में बंट जाता है और उनमें आपस में ऊंच–नीचे की भावना पनपने में मदद मिलती हैं। सामाजिक स्तरीकरण का परिचय व प्रकृति की परिधि हालांकि इतनी संकुचित नहीं है। समाज के लिए सामाजिक स्तरीकरण कुछ सकारात्मक प्रकार्यों को भी करता है। सामाजिक स्तरीकरण की महत्ता को हम निम्न बिन्दुओं के तहत समझ सकते हैं–

टिप्पणी

(1) **सामाजिक व्यवस्था और संगठन बनाये रखने में सहायक** : सामाजिक स्तरीकरण समाज में संगठन व व्यवस्था बनाये रखने के अत्यधिक सहायता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही भिन्नता होती है। बड़े होकर समाज में रहने पर अन्य आधारों पर यह भिन्नता और भी बढ़ती चली जाती है। व्यक्तियों के विचार, मनोभाव, विश्वास सभी भिन्न हो जाते हैं और वे एक ऊंच–नीच के क्रम से सज जाते हैं। इससे संगठनात्मक प्रवृत्तियां सामाजिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है। इसलिए, क्योंकि एक समूह विशेष में एक ही प्रकार के विश्वास, विचार आदि वाले व्यक्ति एक साथ संगठित हो जाता है।

(2) **सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति** : व्यक्तियों की अनेक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सांस्कृतिक आवश्यकतायें होती हैं। कोई व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं नहीं कर सकता। सामाजिक स्तरीकरण के द्वारा व्यक्तियों व समूहों में भिन्न–भिन्न कार्यों का विभाजन किया जाता है जिससे उनकी पूर्ति सरलता से सम्भव होती है।

(3) **सामाजिक पदों का उचित निर्धारण** : सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख सामाजिक लाभ यह है कि इसके द्वारा व्यक्तियों को उचित सामाजिक पद प्राप्त हो जाता। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को योग्यता, क्षमता, बुद्धि, कार्य–कुशलता व्यवहार एक–दूसरे से भिन्न होता है और एक व्यवस्थित समान के लिए यह आवश्यक भी है कि व्यक्तियों का उनकी व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार ही पद प्राप्त हों। प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्य व्यवहार अथवा योग्यता का उचित पुरस्कार या दण्ड भी मिलना चाहिए।

(4) **संघर्षों से रक्षा** : सामाजिक स्तरीकरण समाज की संघर्षों से भी रक्षा करता है सामाजिक स्तरीकरण के द्वारा व्यक्तियों तथा समूहों को ऊंच–नीच के स्तरों में एक क्रम से सजाया जाता है। एक व्यक्ति की आवश्यकतायें केवल उसी के द्वारा पूरी नहीं हो सकती। इसके लिए उसको दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह पारस्परिक निर्भरता संघर्ष की संभवना को कम करती है।

सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न प्रकार

सामाजिक स्तरीकरण के तीन प्रमुख प्रकार हैं : आर्थिक, राजनैतिक तथा व्यावसायिक

सामान्य रूप से ये तीनों प्रकार के स्तरीकरण एक–एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। ऐसा देखा गया है कि एक क्षेत्र में जिस व्यक्ति की स्थिति ऊंची होती है, दूसरे क्षेत्र में भी वह ऊंची स्थिति को ही प्राप्त होता है जबकि एक निम्न क्षेत्र की स्थिति वाले व्यक्ति अन्य क्षेत्र में भी निम्न स्थिति का ही अधिकारी होता है। व्यावहारिक रूप में हम यह देखते हैं कि वे व्यक्ति जो कि उच्चतर आर्थिक स्तर में निवास करते हैं, राजनैतिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र में भी अच्छी स्थिति को पा लेते हैं। इसके विपरीत, निर्धन व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्र में उपेक्षित और व्यावसायिक क्षेत्र में हरित ही बना रहता है। यही सामान्य नियम है, पर इनमें अपवाद भी हो सकता है। सदैव ऐसा नहीं है कि

उच्चतर स्तर के धनी को प्रभावी राजनैतिक सत्ता भी उपलब्ध हो। फिर भी समाज के सामाजिक स्तरीकरण का यथार्थ चित्र अत्यधिक जटिल होता है और उनमें से किसी भी स्तर को बिना किसी अपवाद के दूसरों के साथ जोड़ना सरल नहीं होता।

टिप्पणी

(1) **आर्थिक स्तरीकरण** : आर्थिक क्षेत्र में पाये जाने वाले स्तरीकरण का आधार परिवर्तनशील है। अतः आर्थिक स्तरीकरण में उतार–चढ़ाव भी संभव है। सोरोकिन के अनुसार यह चढ़ाव–उतार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–प्रथम तो समग्र रूप में एक समूह की आर्थिक स्थिति का चढ़ाव अथवा उतार और द्वितीय एक परिस्थितिगत आर्थिक स्तरीकरण की उच्चता व निम्नता संबंधी का चढ़ाव–उतार। पहले प्रकार में समग्र रूप से एक सामाजिक समूह की आर्थिक समृद्धि या तो बढ़ती है या घटती है और दूसरे प्रकार में नये आर्थिक स्थिति समूह के बनने में आर्थिक स्तरीकरण की उच्चतम आकार में विस्तार होता है अथवा संकुचन।

(2) **राजनैतिक स्तरीकरण** : आदिम समाजों की राजनैतिक संरचना का संगठन अत्यंत सादा और सरल होता था। इसलिए राजनैतिक स्तरीकरण भी बहुत कम व सरल रूप में ही देखने को मिलते थे जैसे वंशानुगत एकतंत्र या राजा प्रधान और मुखिया आदि। सभ्यता के विकास व समाज के आकार व प्रकार में विस्तार के साथ–साथ जैसे–जैसे राजनैतिक संरचना व संगठन में जटिलता बढ़ती गई वैसे–वैसे राजनैतिक स्तरीकरण भी उत्तरोत्तर जटिल होता गया। आज स्थिति यह कि जिस समाज में जिस प्रकार की सरकार है, जैसे प्रजातंत्र तानाशाही आदि उसी के अनुसार राजनैतिक क्षेत्र में स्थितियों का बंटवारा या स्तरीकरण है। राजनैतिक स्तरीकरण भी चिरस्थायी नहीं होता बल्कि राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ–साथ इस स्तरीकरण के प्रकार तथा स्वरूप में भी अन्तर हो सकता है। सिरोकिन के कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

(1) जब एक राजनैतिक संगठन का आकार बढ़ता है अर्थात् जब उसकी सदस्यता बढ़ती है तो राजनैतिक स्तरीकरण भी बढ़ जाता है इसके विपरीत संगठन का आकार घटने से स्तरीकरण भी कम हो जाता है।

(2) जब जब राजनैतिक संगठन के सदस्यों में भिन्नता या विषमता बढ़ती या घटती है तो राजनैतिक स्तरीकरण भी विस्तृत या संकुचित हो जाता है।

(3) उपरोक्त दोनों कारक बढ़ते या घटते हैं राजनैतिक स्तरीकरण के घटने या बढ़ने के ही क्रम में।

(4) जब उपरोक्त कारकों में कोई एक या दोनों कारक एकाएक बढ़ जाते हैं; जैसे कि सैनिक विजय अथवा विद्रोह या क्रान्ति द्वारा सरकार को पलट दे : तब राजनैतिक स्तरीकरण में भी गम्भीर परिवर्तन व विस्तार हो सकता है।

(5) जब उपरोक्त कारकों में एक बढ़ता है दूसरा घटता है तो वे एक दूसरे के प्रभाव रोक लेते हैं।

टिप्पणी

(3) व्यावसायिक स्तरीकरण– व्यावसायिक स्तरीकरण का दो दृष्टिकोणों से विवेचन किया जा सकता है। (1) अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण और (2) अन्तःव्यावसायिक स्तरीकरण।

(अ) अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण– वह जबकि विभिन्न व्यवसायों की अच्छाई या बुराई के आधार पर व्यावसायिक स्तरीकरण किया जाता है अर्थात् विभिन्न व्यवसायों व उनको अपनाने वाले लोगों को ऊंच–नीच के क्रम में रखा जाता है। अपने समाज में एक प्रोफेसर के पेशे का स्तर एक क्लर्क के पेशे के स्तर से ऊंचा माना जाता है और एक क्लर्क के व्यवसाय को जूता साफ करने के व्यवसाय से श्रेष्ठ माना जाता है। इसी प्रकार जाति–प्रथा के अन्तर्गत ब्राह्मणों के व्यवसाय अर्थात पूजा–पाठ पढ़ना–पढ़ाना आदि सर्वश्रेष्ठ है। उसके बाद क्रमशः क्षत्रियों वैश्यों तथा शूद्रों के व्यवसायों का स्थान है–

रॉस के अनुसार अन्तर्व्यावसायिक के दो प्रमुख आधार हैं–(1) समग्र रूप में एक समूह के जीवन अस्तित्व के लिए एक व्यवसाय या पेशे का महत्व और (2) एक पेशे को सफलतापूर्वक करने के लिए आवश्यक बुद्धि की मात्रा।''

(ब) अन्तःव्यावसायिक स्तरीकरण : एक ही प्रकार के व्यवसाय में विभिन्न स्तरों का अर्थात विभिन्न स्थिति वाले व्यक्तियों का होना अन्तःव्यावसायिक स्तरीकरण है। यह मानी हुई बात है कि एक ही प्रकार का पेशा करने वाले सभी लोगों की स्थिति एक जैसी नहीं होती है। उनमें भी आपसी ऊंच–नीच का एक संस्तरण हो सकता है। सोरोकिन के अनुसार किसी भी व्यावसायिक समूह के सदस्य मुख्यतः तीन स्तरों में बंटे होते हैं। प्रथम व्यवस्थापक या मालिक जो कि आर्थिक तौर पर स्वतन्त्र होते हैं और अपने व्यवसाय व कर्मचारियों के संगठन व नियंत्रण के मामले में स्वयं ही सर्वोच्च अधिकारी होते हैं। द्वितीय–उच्चतर श्रेणी के कर्मचारी जैसे निर्देशक, मैनेजर, बोर्ड ऑफ डायरेक्टस के सदस्य आदि। तृतीय–कर्मचारी जैसे क्लर्क, सुपरवाइजर, वर्कर आदि।

अपनी प्रगति जांचिए

5. जिस भाषा का उल्लेख संविधान में किया जाता है वह भाषा कहलाती है?

(क) प्राचीन भाषा (ख) राष्ट्र भाषा

(ग) मातृ भाषा (घ) अंतर्राष्ट्रीय भाषा

6. किस धर्म को भारत का सर्वाधिक प्राचीन धर्म माना जाता है?

(क) बौद्ध (ख) जैन

(ग) हिंदू (घ) मुस्लिम

1.5 विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत

टिप्पणी

अगर हम आधुनिक अवधारणा की बात करें तो उसमें राष्ट्रवाद एक नितांत आधुनिक अवधारणा के रूप में हमारे बीच मौजूद है। यह राष्ट्र राज्य की निर्मिति से जुड़ा हुआ है। लोकतंत्र की विकास की व्यवस्था में राज्य स्वयं ही राष्ट्र बन जाते हैं ऐसे राष्ट्रवाद का अर्थ है राज्य के प्रति व्यक्ति की औपचारिक आसक्ति। एक निश्चित भूखंड एवं एक आम राजनीतिक एवं आर्थिक रुपावली जनता के समुदाय के बीच एकत्व में मनोवैज्ञानिक एहसास के साथ ही राष्ट्रीय पहचान अस्तित्व में आई है। एक तत्व यानी कि यह प्रक्रिया जनता के आम रस्मो–रिवाज तथा परंपराओं से और भी तीव्र हो गई है। राष्ट्रवाद को आधुनिकतावाद और उसके परिणाम के रूप में समझा जाता है। इस अर्थ में यह पुरानी व्यवस्था को भंग करने वाली शक्ति है। इसका कारण या तो आधुनिक युग के विकास का सूत्र पाठ करने वाले विचारों का प्रसार हो सकता है या उन परिस्थितियों का प्रचार जिन्हें आधुनिकतावाद से संबद्ध किया जाता है। संविधान के अनुसार भारत संप्रभुता, समाजवादी, लोकतांत्रिक, पंथनिरपेक्ष, गणराज्य है। पंथनिरपेक्षता पर ऐसे राज्य जहां किसी भी धर्म को मान्यता नहीं दी गई है जिसमें राज्य का अपना धर्म नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने धर्म को मानने के लिए स्वतंत्र है। इस प्रकार समाज व्यवस्था सर्वधर्म समभाव पर आधारित है। कोई भी देश केवल किसी आदर्श के सामने रखने मात्र से आदर्श को ग्रहण किया हुआ नहीं माना जा सकता। आदर्श ग्रहण के लिए आदर्श के अनुरूप नागरिकों के व्यवहार में रूपांतरण करना होगा। व्यवहार रूपांतरण के लिए शिक्षा सशक्त साधन है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक ऐसे राष्ट्रीय स्तर पर शुरू की गई जिसमें अन्य लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान किया गया है। जहां एक ओर शिक्षा नीति लोगों के लिए अधिक अवसर उपलब्ध करा रही है और उन पर ज्यादा जोर दे रही है वहीं उच्च एवं तकनीकी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आवाहन भी करती है।

1.5.1 एक विकासशील राष्ट्र राज्य के रूप में भारत : परिकल्पना, प्रकृति और मुख्य विशेषताएं

एक विकासशील राष्ट्र के रूप में भारत में दो शब्द 'राष्ट्र' और 'विकास' शामिल हैं। राष्ट्र शब्द के सन्दर्भ में एक सामान्य मानदंड जैसे– भाषा, क्षेत्र, दर्शन, इतिहास, जातीयता आदि के आधार पर गठित लोगों का एक स्थिर समुदाय हो सकता है। शब्दकोष के अनुसार 'विकास' शब्द 'एक रूप या स्तर से बेहतर या उच्चतर में परिवर्तन की धीमी प्रक्रिया है, या जो एक बेहतर या नया क्रम बनाता है।' विकास की यह परिभाषा एक विकासशील राष्ट्र के रूप में भारत के लिए बहुत उपयुक्त है। 'राष्ट्र' और विकासवाद की परिभाषाओं का संश्लेषण एक विकासशील राष्ट्र की विशेषताओं के रूप में निम्नलिखित को इंगित करता है।

- वृद्धि
- विकास
- शोधन

टिप्पणी

- उन्नति
- प्रगति
- नवाचार
- आधुनिकीकरण
- विकास की सम्भावना

ये विशेषताएं भारत को एक विकासशील राष्ट्र के रूप में चित्रित करने के लिए उपयुक्त हैं। विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भारत के विकास की एक संक्षिप्त समीक्षा भारत को एक विकासशील राष्ट्र के रूप में पहचानने में मदद करेगी।

- भारत में प्रशासन की एक संगठित प्रणाली है।
- भारत के लोगों के सामाजिक कल्याण में प्रगति हो रही है।
- देश की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति में व्यापक विकास हुआ है।
- भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण देश के कृषि क्षेत्र में कई प्रगतिशील उपलब्धियां हैं।
- प्रौद्योगिकी के विकास के साथ, मनुष्य अपने मोबाइल पर ही नवीनतम जानकारी और सहायता प्राप्त करने में सक्षम हो गया है।
- वाहन प्रतिरोधी प्रणालियों के धीमे और स्थिर विकास ने पिछले कुछ दशकों में हजारों लोगों की जान बचाई है।
- भारत अभी अपनी पूर्णता तक नहीं पहुंचा है और इसमें सुधार की काफी गुंजाइश है

इन कुछ उदाहरणों के अलावा, भारत ने अपने पारंपरिक मूल्यों– शांति, सद्भाव, सहयोग और अपनी संस्कृति को उत्तरोत्तर परिवर्तित किया और बनाए भी रखा है।

परिकल्पना

प्रत्येक देश को लक्ष्यों की आवश्यकता होती है, जो कल्पना को जगाए और समाज के सभी वर्गों को अधिक से अधिक प्रयास करने के लिए प्रेरित करे। यह एक व्यापक राष्ट्रीय विकास रणनीति पर एक राजनीतिक सहमति बनाने हेतु एक आवश्यक कदम है, जिसमें अर्थव्यवस्था में विभिन्न कारकों की भूमिकाएं और जिम्मेदारियां शामिल हैं, जैसे कि केंद्र, राज्य और स्थानीय सरकार, निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र, छोटे और मध्यम क्षेत्र, लोगों के संगठन, आदि। इसे एक केंद्रित तरीके से प्रयासों को संगठित करने के लिए संभावित जोखिमों और बाधाओं और उनके संभावित समाधानों की पहचान करनी चाहिए। इसलिए, यह स्पष्ट है कि इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, विजन स्टेटमेंट को व्यापकता और विशिष्टता के कई स्तरों पर काम करना पड़ता है। प्रारंभ में, भारत के विजन 2020 को भारत के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की प्रौद्योगिकी सूचना, पूर्वानुमान और मूल्यांकन परिषद (TIFAC) द्वारा एक दस्तावेज के रूप में तैयार किया गया था। यह डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की अध्यक्षता में 500 विशेषज्ञों की एक टीम का परिणाम था। भारत 2020 : 'ए विज़न फॉर द न्यू मिलेनियम' नामक पुस्तक में इस योजना का और विस्तार किया गया है, जिसमें डॉ. कलाम ने वाई.एस. राजन के साथ

टिप्पणी

सह–लेखक बनाया था। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपनी पुस्तक 'विंग्स ऑफ फायर' में व्यक्त किया है, "राष्ट्र को एक विकसित देश में बदलना, भारत की मुख्य क्षमता, प्राकृतिक संसाधनों और एकीकृत कार्रवाई के लिए प्रतिभाशाली जनशक्ति के आधार पर संयुक्त रूप से पांच क्षेत्रों की पहचान की गई है ताकि विकास दर को दोगुना किया जा सके। जो जीडीपी और विकसित भारत के विजन (परिकल्पना) को साकार करें।" इसे निम्नलिखित छह बिंदुओं के संदर्भ में व्यक्त किया गया है :

- **कृषि और खाद्य प्रसंस्करण** : कृषि और खाद्य प्रसंस्करण के वर्तमान उत्पादन को दोगुना करना।
- **विश्वसनीय विद्युत शक्ति के साथ बुनियादी ढांचा** : ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएं प्रदान करना, और सौर ऊर्जा संचालन में वृद्धि करना।
- **शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल** : साक्षरता, सामाजिक सुरक्षा और जनसंख्या के लिए समग्र स्वास्थ्य की दिशा में निर्देशित करना।
- **सूचना और संचार प्रौद्योगिकी** : दूरस्थ क्षेत्रों, दूरसंचार और टेलीमेडिसिन में शिक्षा को बढ़ावा और ई–गवर्नेंस में वृद्धि।
- **महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियां और रणनीतिक उद्योग** : परमाणु प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी और रक्षा प्रौद्योगिकी का विकास।
- **गरीबी और निरक्षरता की दर को कम करना** : मीडिया, समुदायों, सोशल नेटवर्किंग साइटों के माध्यम से लोगों को शिक्षित बनाना तथा भारत निर्मित वस्तुओं को खरीदकर भारतीय बाजार की विकास दर में वृद्धि करना।

इन मुद्दों के समाधान के लिए, योजना आयोग ने जून 2000 में योजना आयोग के सदस्य डॉ. एस.पी. गुप्ता की अध्यक्षता में भारत के लिए विजन 2020 पर एक समिति का गठन किया। इस पहल में विभिन्न क्षेत्रों के 30 से अधिक विशेषज्ञों को एक साथ लाया गया। उनके विचार–विमर्श, दो साल से अधिक की अवधि में, भविष्य की कार्रवाई के लिए सरकारी और निजी निकायों के लिए दिलचस्प संभावनाओं, महत्वपूर्ण मुद्दों और महत्वपूर्ण निर्णय बिंदुओं की एक श्रृंखला बताने में मदद की।

समिति ने देश के दृष्टिकोण को रेखांकित किया, "2020 तक भारत को लेकर हमारा लक्ष्य ऊर्जा, उद्यमिता और नवाचार से भरे राष्ट्र का है। देश के लोगों को देश के लंबे इतिहास में किसी भी पीढ़ी की तुलना में बेहतर भोजन, वस्त्र और निवास, तथा स्वस्थ और लंबा जीवन काल, बेहतर शिक्षा उपलब्ध करवाना भारत का लक्ष्य होगा। भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ बहुत अधिक एकीकृत होगा और व्यापार, प्रौद्योगिकी और निवेश के मामले में एक प्रमुख खिलाड़ी होगा।

शिक्षा, रोजगार और आय के बढ़ते स्तर से भारत की आंतरिक सुरक्षा और सामाजिक वातावरण को स्थिर करने में मदद मिलेगी। एक संयुक्त और समृद्ध भारत बाहरी सुरक्षा खतरों के प्रति बहुत कम संवेदनशील होगा। 2020 में एक अधिक समृद्ध भारत, एक बेहतर शिक्षित मतदाता और अधिक पारदर्शी, जवाबदेह, कुशल और विकेन्द्रीकृत सरकार होगी।

इस विजन को तैयार करने में लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता जैसी मुख्य विशेषताओं को भारी समर्थन है, जिसे देश ने अपनाया है।

टिप्पणी

भारत के लक्ष्यों के बारे में सबसे लोकप्रिय वर्तमान प्रधान मंत्री द्वारा कहा गया है– 'नया भारत' "नया भारत आंदोलन 2017–2022 सुशासन को अपनाकर और प्रौद्योगिकी का उपयोग करके भारत को गरीबी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, सांप्रदायिकता, जातिवाद और अस्वच्छता से मुक्त करने और पूरे देश को एकजुट करने की परिकल्पना करता है।" इस विजन को साकार करने के लिए पूरे देश में कई योजनाएं लागू की गई हैं।

भारत के लोकतंत्र और संघीय ढांचे की प्रकृति और विशेषताएं

'राजनीति' शब्द 'पोलिस' से आया है जिसका ग्रीक में अर्थ है एक शहर या एक राज्य। यह एक राज्य के प्रकार, प्रकृति, संवैधानिक और अतिरिक्त संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन करता है। भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्ष राजनीति के दायरे में भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता जैसी प्रमुख विशेषताएं शामिल हैं। इनका अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

(क) भारतीय लोकतंत्र की मुख्य विशेषताएं

भारतीय लोकतंत्र की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- **संप्रभुता** : लोकतंत्र संप्रभुता पर आधारित है। लोग अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं और अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकते हैं। आम जनता की जिम्मेदारी सरकार की होती है।
- **राजनीतिक समानता** : इसमें सभी नागरिक शामिल हैं, चाहे वे किसी भी जाति, पंथ, धर्म, नस्ल या लिंग के हों, जिन्हें कानून के समक्ष समान माना जाता है और वे समान राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेते हैं। राजनीतिक समानता प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार देती है।
- **बहुमत नियम** : बहुमत के समर्थन को सभी द्वारा उचित मान्यता दी जाती है।
- **संघीय** : जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में वर्णित है, भारत राज्यों का एक संघ है, और राज्य स्वायत्त हैं। वे कुछ मामलों में स्वतंत्र हैं, और कुछ अन्य मामलों में वे केंद्र पर निर्भर हैं।
- **सामूहिक उत्तरदायित्व** : राज्यों और केंद्र दोनों में मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से अपने संबंधित विधायिकाओं के लिए जिम्मेदार होती है। कोई भी मंत्री सरकार के किसी भी कार्य के लिए स्वतंत्र रूप से जिम्मेदार नहीं होता है। सभी गतिविधियों के लिए पूरी मंत्रिपरिषद जिम्मेदार होती है।
- **राय का गठन** : यह विभिन्न मामलों पर जनता की राय बनाने की अनुमति देता है। विधायिका जनता की राय का अनुमान लगाने और व्यक्त करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण मंच प्रदान करती है।
- **अल्पसंख्यक की राय का सम्मान** : बहुमत की राय स्वीकार की जाती है, लेकिन अल्पसंख्यक राय का भी सम्मान किया जाता है।
- **अधिकारों के लिए प्रावधान** : व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है।

उदाहरण के लिए, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, संघ (Union) बनाने का अधिकार और शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार।

- **कानून का शासन** : कानून सर्वोच्च है और इससे समझौता नहीं किया जा सकता है।
- **सहमति से नियम** : निर्णय सहमति के आधार पर लिए जाते हैं न कि बल द्वारा।
- **समझौता द्वारा सरकार** : लोकतंत्र समायोजन और समझौतों द्वारा सरकार का गठन है। सत्तारूढ़ दल के भीतर और पार्टी के बाहर अलग–अलग राय पर विचार किया जाता है। विचारों की बहुलता होती है, जिसे सरकारों को ध्यान में रखना होगा।
- **यह एक कल्याणकारी सरकार है** : एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते, व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को उचित मान्यता दी जाती है।
- **स्वतंत्र न्यायपालिका** : न्यायपालिका कार्यपालिका या विधायिका पर निर्भर नहीं है। कोई भी सरकारी अंग न्यायपालिका को प्रभावित नहीं कर सकता है।

(ख) भारत में धर्मनिरपेक्षता की मुख्य विशेषताएं

भारत में धर्मनिरपेक्षता की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

- **उदारवादी** : इसका अर्थ है कि संविधान न केवल सभी भारतीय नागरिकों को धार्मिक समानता और स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है, बल्कि यह भारत में रहने वाले सभी धार्मिक समुदायों के मूल अधिकारों और विशेषाधिकारों की भी रक्षा करता है।
- **निरपेक्ष नहीं** : यह एक योग्य धर्मनिरपेक्षता है, जिसका अर्थ है कि धार्मिक स्वतंत्रता सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और लोगों के स्वास्थ्य जैसी कुछ शर्तों के अधीन है। इसके अलावा, न्यायपालिका को यह तय करना होता है कि क्या कला के अंतर्गत भारत के लोगों के लिए अंतरात्मा की स्वतंत्रता पर राज्य द्वारा किसी भी प्रकार के प्रतिबंध न लगाए जाने की गारंटी सुनिश्चित हो रही है तथा जो संविधान के अधिनियम 25 के अंतर्गत धर्मनिरपेक्षता के मूल दर्शन के अनुरूप हैं या नहीं।
- **गतिशील** : यह धर्म को राजनीति में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देता है, और यह राज्य को सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाने का निर्देश देता है। सरकार जरूरत पड़ने पर किसी समुदाय के पर्सनल लॉ को बदल भी सकती है।

1.5.2 लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष राजनीति

भारतीय लोकतंत्र संसदीय व्यवस्था पर आधारित है। भारत राज्यों का संघ है जिसमें संघीय शासन की व्यवस्था है। भारत में अंग्रेजी शासनकाल में संसदात्मक शासन का क्रमिक इतिहास रहा है। सन् 1833 के चार्टर एक्ट द्वारा परिषद में विधायी कार्य के लिए एक सदस्य को और शामिल किया गया, इस प्रकार भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा

टिप्पणी

टिप्पणी

आरम्भिक स्तर पर व्यवस्थापिका सभा की स्थापना हुई। सन् 1853 में इस संस्था की सदस्य संख्या फिर से बढ़ाई गई तथा इसमें प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधियों को भी स्थान दिया गया। इसके साथ एक और शर्त जोड़ दी गई कि विधायी कार्यों से संबंधित कार्यवाही को सार्वजनिक किया जायेगा। 1853 की यह संस्था प्रतिवेदनों की जांच करने, उनमें व्यक्त की समस्याओं को दूर करने का भी कार्य करती थी। 1861 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय विधान परिषदों की स्थापना कर दी गई, इससे विधायी क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण की नीति की शुरूआत हो गई, इस अधिनियम के द्वारा गैर सरकारी तत्वों को भी विधायी संस्थाओं के प्रतिनिधित्व देने का महत्वपूर्ण कदम भी इसी अधिनियम की देन है। इससे विकेन्द्रीकरण की नींच तो पड़ी हो साथ ही कुछ प्रान्तीय विधानमण्डलों की भी नींव पड़ी। 1892 में जो अधिनियम आया इसमें विधानपरिषद के सदस्यों को कुछ प्रतिबन्धों का पालन करते हुए बजट पर चर्चा करने, वित्तीय नीति की आलोचना करने तथा लोक महत्व के प्रश्नों को पूछने का अधिकार दिया गया। सन् 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम के अन्तर्गत विधान परिषदों को साधारण और वित्तीय दोनों प्रकार के प्रश्न पूछने, प्रस्तावित करने, पूरक प्रश्न पूछने तथा उन्हें पारित करने का अधिकार प्रदान करके उनके अधिकारों में वृद्धि की गई परन्तु प्रश्नों को सुझाव के रूप में ही रखा गया, ये वास्तविक रूप में न कभी प्रभाव डाल पाये न क्रियान्वित हो पाये। कार्यपालिका पूर्ण रूप से निरंकुश ही रही तथा निर्वाचित परिषदों के प्रति पूर्ण या आंशिक रूप से उत्तरदायी कार्यपालिका का सपना अभी तक साकार नहीं हो पाया था। वास्तविक शक्ति का केन्द्रीयकरण अब भी कार्यपालिका में ही था तथा परिषदें उसकी आलोचना करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती थी। इन परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई थी।

सन् 1919 में एक नए युग का आरम्भ हुआ, इसके पीछे स्वाधीनता आन्दोलन की तीव्रता भी एक प्रमुख कारण था। ब्रिटिश शासन भारतीयों को कुछ और अधिकार देकर स्वतंत्रता आन्दोलन की तीव्रता को कुछ कम करना चाहता था। सन् 1919 का भारत सरकार अधिनियम–ब्रिटिश भारतीय इतिहास में उत्तरदायी शासन का आरम्भ इसी 1919 के अधिनियम से होता है। इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा प्रान्तीय प्रशासन को दो भागों में विभाजित किया गया है–हस्तान्तरित और आरक्षित।

1. हस्तान्तरित– हस्तान्तरित विषय गवर्नरों के आधीन रखे गये थे, उनके प्रशासन के लिए मंत्री गवर्नरों का पथ प्रदर्शन करते थे। व्यावहारिक रूप से मंत्रियों पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई थी तथा सामान्यतया उनके परामर्श को माना भी जाता था। मंत्रियों को व्यवस्थापिका का सदस्य होना आवश्यक था, व्यवस्थापिका उनके वेतन तथा भत्तों को अस्वीकार कर सकती थी। उनकी प्रशासनिक नीतियों की आलोचना भी कर सकती थी। मंत्री की आलोचना की स्थिति में तथा उसके द्वारा प्रस्तुत विधेयक अस्वीकार होने की स्थिति में मंत्रियों को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ता था। इस व्यवस्था से यह संकेत मिलता है कि इस अधिनियम के द्वारा हस्तांतरित विषयों की श्रेणी में उत्तरदायी शासन की शुरूआत हो चुकी थी। इस अधिनियम में कुछ कमियां रह गई थी जैसे

मंत्रिपरिषद की अध्यक्षता गवर्नर करता था तथा सामूहिक उत्तरदायित्व की कोई व्यवस्था नहीं थी।

टिप्पणी

2. आरक्षित– गवर्नर की असीमित शक्तियां और आरक्षित विषय इन सदस्यों के अधीन थे जो न तो व्यवस्थापिका के सदस्य थे और न इसके प्रति उत्तरदायी। आरक्षित के विषय जिसमें न्याय, वित्त, जेल पुलिस, सिंचाई इत्यादि का प्रशासन गवर्नर जनरल अपनी कार्यपालिका की सहायता से करता था, इन विषयों के प्रति वह राज्य सचिव के माध्यम से ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था। यह उत्तरदायित्व उत्तरदायी कार्यपालिका के सिद्धान्तों के विरुद्ध था।

1919 के अधिनियम के अन्तर्गत गठित व्यवस्थापिका में कठिनाइयां उपस्थित हो रही थीं, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने 1928 में ब्रिटिश भारत में शासन पद्धति के क्रियान्वयन और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की जांच करने तथा इस बात पर प्रतिवेदन देने के लिए कि उसमें वर्तमान उत्तरदायी शासन के अंशों में विस्तार परिवर्तन या संकुचन करना या उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त को स्थापित करना, क्या और कैसे वांछनीय है? इसके लिए सर जान साइमन की अध्यक्षता में साइमन कमीशन स्थापित किया। साइमन कमीशन का भारत में व्यापक विरोध हुआ, भारत में भ्रमण करने के पश्चात यहां की परिस्थितियों का अध्ययन करके अपनी राय निम्न शब्दों में व्यक्त की–

"जबकि ब्रिटिश संसदीय पद्धति के सिद्धान्त और व्यवहार शिक्षित जनता द्वारा स्थापित प्रजातंत्र का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है, उन्हें एक ऐसे देश में प्रयोग किया जा रहा है जहां दशाएं और जनता का मानसिक स्वभाव अत्यन्त भिन्न है।" आयोग इस बारे में आगे लिखता है कि, "हम नहीं समझते कि ब्रिटिश संसदीय पद्धति, जिसमें कार्यपालिका एक ही राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व करती है और प्रतिदिन प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों के बहुमत के समर्थन पर निर्भर होती है, वह प्रतिमान होना संभव है जिसके अनुसार केन्द्र में उत्तरदायी शासन विकसित किया जाएगा। इस प्रकार का संसदीय शासन ही एक मात्र स्वरूप नहीं है जो उत्तरदायित्व ग्रहण करे। वह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों और स्थानों में भिन्न स्वरूप धारण करता है। ब्रिटिश पद्धति न तो इच्छानुसार प्रतिरोपित की जा सकती है और न उसे निष्पक्ष रूप से अंगीकरण किया जा सकता है। भारत में जितनी भी संवैधानिक योजनाओं की चर्चा होती है वह ब्रिटिश प्रतिमान को आधार बनाकर ही की जाती है। इन योजनाओं को बनाने और प्रस्तुत करने वाले विद्वानों को ब्रिटिश पद्धतियां जन्म से मिली थी या राजनीतिक सिद्धान्तों को ब्रिटिश स्रोतों से लिया है।"

ब्रिटिश पद्धति को भारत में स्थापित करने के प्रयास के ऊपर आयोग के विचार और भी हैं ये विचार इस प्रकार है, "यह स्मरण रखना चाहिए कि इंग्लैण्ड में यह पद्धति स्थायी सरकार इसलिए देती है कि कामन्स सभा के द्वारा मंत्रिमण्डल का नियंत्रण किए जाने की बजाय मंत्रिमण्डल कामन्स सभा को नियन्त्रित करता है। लेकिन इस सिद्धान्त से प्रत्येक स्थान पर स्थायी सरकार स्थापित नहीं हो सकती है या यह मान लेना कि

टिप्पणी

इसका अनुसरण करने से सम्पूर्ण भारत स्थायी सरकार के अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होगा यह बहुत बड़ी अभिधारणा है।" आयोग ने यह भी विचार रखा कि ब्रिटिश संसद को अति निकट से दृष्टि में रखने के कारण भारतीय दिगभ्रमित होकर पथभ्रष्ट हो गए, उन्होंने यह कल्पना करली कि दिल्ली में वेस्टमिनी स्तर के प्रतिमान पर कार्य करने वाली अखिल भारतीय संसद विकसित हो सकती है। आयोग का यह भी विचार था कि, "संसदात्मक कार्यपालिका भारतीय दशाओं के लिए उपयुक्त नहीं थी" और आयोग ने स्पष्ट सुझाव दिया था कि "भारतीय केन्द्र सरकार के लिए विकल्प कहीं और ही खोजना होगा।" मुख्य उत्तरदायी कारणों की ओर इशारा करते हुए आयोग ने कहा, "यदि ब्रिटेन भारत के आकार का होता, साम्प्रदायिक और धार्मिक विभाजन यदि राजनीति को इतना अधिक प्रभावित करते और अल्पसंख्यकों को दूसरे के शासन में इतना कम विश्वास होता, जितना कि भारत में है तो संभवतया प्रतीत नहीं होता कि ब्रिटेन में लोकतांत्रिक सरकार यह स्वरूप ग्रहण करती।" साइमन कमीशन ने भारत में स्थायी सरकार के लिए अपनी जो योजना प्रस्तुत की थी वह संसदात्मक और अध्यक्षात्मक दोनों प्रकार की कार्यपालिकाओं में विकसित हो सकती थी, पर इसका स्वरूप अध्यक्षात्मक कार्यपालिका के अधिक निकट था। इस प्रकार साइमन कमीशन के प्रतिवेदन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परिस्थितियां मंत्रिमण्डलीय कार्यपालिका के अनुरूप नहीं थीं।

संसदीय लोकतंत्र : वर्तमान प्रवृत्तियां

विश्व में लोकतंत्र का कोई सार्वभौमिक रूप नहीं मिलता है जो सभी देशों में जिनमें लोकतंत्र है बिल्कुल एक जैसा हो। प्रत्येक देश में लोकतंत्र एक दूसरे से भिन्न है, उसमें लागू की जाने वाली शासन प्रणाली भी एक दूसरे से भिन्न है। कहीं–कहीं यह भेद बड़े व्यापक स्तर पर मिलते है और कहीं–कहीं छोटे स्तर पर मिलते हैं। न तो सरकारें एक जैसी मिलती हैं न शासन व्यवस्थायें एक–एक जैसी मिलती हैं।

यह शत–प्रतिशत सत्य है कि भारत में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। साधारणतया माना यह जाता है कि भारत में ब्रिटिश शासन प्रणाली का अनुकरण किया गया है। यह भी सत्य है कि हमें अपने देश में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली लागू करने की प्रेरणा ब्रिटेन से ही मिली, हमारी शासन प्रणाली पर ब्रिटिश शासन प्रणाली का पूर्ण प्रभाव है। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि हमने ब्रिटिश मॉडल को हूबहू अपने देश में लागू कर दिया। हमारी शासन व्यवस्था ब्रिटिश मॉडल की अनुकृति नहीं है, यह पूर्णतः हमारी व्यवस्था है जिसके प्रावधान और घटक पूरे विश्व के अन्य देशों में नहीं मिल सकते। क्योंकि इसके वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में भारत की विशेष परिस्थितियों का विशेष योगदान है, इसलिए इसे ब्रिटिश शासन प्रणाली की अनुकृति मात्र नहीं माना जा सकता है। श्यामलाल शकधक के शब्दों में, "ब्रिटिश सरकार से विरासत में हमें जा कुछ मिला और हमारी अपनी जो परम्पराएं है, उन्हें लेकर हमने अपना संविधान बनाया। इसमें हमने अन्य देशों के अनुभवों का लाभ उठाया है। हमारी संसदीय पद्धति हम पर किसी देश द्वारा थोपी नहीं गई है। यह पद्धति हमने और हमारे नेताओं ने, जो बहुत प्रतिभाशाली, विद्वान और राजनीतिज्ञ थे, अपने इच्छा से अपनाई।"

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की मौलिक विशेषताएं यह है कि हमारा संविधान लिखित है, जिसमें राज्य के विभिन्न अंगों के कार्य और शक्तियों की परिभाषा दी गई

टिप्पणी

है तथा उनका सीमांकन किया गया है, भारतीय संविधान संघात्मक तथा इसका स्वरूप गणतंत्रात्मक है तथा इसमें पिछड़ी अर्थव्यवस्था तथा विकासशील समाज की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं का उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त सभी विशेषताएं हमारी मौलिक विशेषताएं हैं। इनमें से ब्रिटेन की व्यवस्था से कोई बात मेल नहीं खाती है क्योंकि ब्रिटेन का संविधान अलिखित है, वहां की शासन व्यवस्था एकात्मक है और राजतन्त्रात्मक है तथा अभिसमयों का विशेष स्थान है। भारत का संविधान लिखित होने के कारण भारतीय संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार पर कुछ प्रतिबन्ध लगते हैं।

ब्रिटेन में संसद द्वारा पारित किसी भी कानून को कहीं भी, किसी भी न्यायालय में भी चुनौती नहीं दी जा सकती है। ब्रिटेन में कोई भी व्यक्ति न्यायालय में जाकर यह नहीं कर सकता कि अमुक कानून एक अवैध कानून है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। कानून निर्माण की दृष्टि से ब्रिटिश संसद इतनी सर्वोच्च है कि वह किसी भी प्रकार का कानून बना सकती है। ब्रिटिश संसद वहां के लिए कोई भी कानून बना सकती है और वह वहां वह लागू भी होता है। कानून का अधिकार भारत में भी संसद को प्राप्त है, संसद संविधान के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कानून बना सकती है। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में बनाए कानूनों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। यदि यह साबित हो जाता है कि कानून सचमुच संविधान को चुनौती दे रहा है तो न्यायालय संसद को वांछित परिवर्तन के लिए कह सकता है इसे न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धान्त कहते हैं इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संसद ब्रिटिश संसद के बराबर सर्वोच्च नहीं है।

ब्रिटेन में एकात्मक शासन प्रणाली है जबकि भारत में संघीय शासन प्रणाली है। संघीय शासन व्यवस्था में संसद और विधानसभाओं में शक्तियों को विभाजन होता है। दोनों के क्षेत्राधिकार हैं, संविधान ने सुविधाजनक दृष्टिकोण को अपनाते हुए अलग–अलग सूचियों की व्यवस्था की है–संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संघ सूची पर कानून बनाने का अधिकार केवल केन्द्र को है, राज्य सूची पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों को है लेकिन यदि राज्य केन्द्र से सूची के किसी विषय पर कानून बनाने के लिए कहे या आपातकाल की घोषणा हो ऐसी स्थिति में केन्द्र राज्य सूची पर भी कानून बना सकता है तथा समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र ही कानून बना सकता है। इस व्यवस्था के कारण केन्द्र और राज्य एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन नहीं कर सकते। सामान्य स्थिति में यदि केन्द्र राज्य के बारे में कानून बना दे जो राज्य सूची के अन्तर्गत आता हो तो उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

ब्रिटेन में राजा का पद उत्तराधिकार द्वारा निश्चित होता है जबकि भारत में राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है। ब्रिटेन में संसद की कार्यवाहियों से संबंधित समारोह, राजचिह्नों से जुड़े नियमों, प्रार्थनाओं, अध्यक्ष का जुलूस, 'मेरा' का प्रयोग तथा अन्य रीतियों को व्यापक रूप से किया और अपनाया जाता है परन्तु यह सब रीतियां भारत में कभी भी नहीं अपनायी गईं। स्वतंत्रता से पूर्व के समय में सरकारी कार्यवाहियों के दौरान विशेष वस्त्र धारण किए जाते थे जैसे केन्द्रीय विधानसभा के पीठासीन अधिकारी औपचारिक रूप से 'रोब' और 'विग' पहने जाते थे। स्वतंत्रता के उपरान्त लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष जी.वी. मावलंकर ने उसके प्रयोग का बहिष्कार कर दिया। ब्रिटेन की भांति भारत में विधेयकों पर विचार करने हु 'कमेटी ऑफ दि होल हाउस' जैसी भी कोई व्यवस्था नहीं

टिप्पणी

है और न ही ब्रिटेन की भांति स्थायी सदस्यों वाली विधेयकों संबंधी स्थायी समितियां हमारे यहां होती है। इनके स्थान पर हमारे यहां सदन की तदर्थ प्रवर समितियां अथवा संसद के दोनों सदनों की संयुक्त संसदीय समितियां होती है जो विशेष विधेयकों के लिए विशेष रूप से नियुक्त की जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति से ही वित्तीय कार्यों के निष्पादन के लिए 'कमेटी आफ वेज एण्ड मीन्स' या 'कमेटी ऑफ सप्लाई' जैसी कोई समिति नहीं है, जैसा यू.के. में अभी हाल तक व्यवस्था थी।

ब्रिटेन में प्रचलित बहुत सी प्रथाओं को भारत में नहीं अपनाया गया है लेकिन भारत में संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत अनेक प्रथाएं अपनाई भी गई हैं जैसे– (i) निर्धारित समय–सारिणी के अनुसार कार्य संचालन तथा (ii) सदन में दिए गए आश्वासनों अथवा वचनों पर अनुवर्ती कार्यवाही करना। कम से कम इन दो महत्वपूर्ण दिशाओं में नई शुरुआत करने का श्रेय भारतीय संसद को जाता है। कार्यमंत्रणा समिति की तरह लोकसभा में सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति भी भारत में सर्वथा नई व्यवस्था है। यह समिति इस बात का ध्यान रखती है कि मंत्रियों द्वारा दिए आश्वासनों तथा वचनों का उचित समय में तथा सभा द्वारा वांछित ढंग से पालन किया जा रहा है या नहीं। 'ध्यानाकर्षण प्रस्ताव' भारतीय संसदीय प्रणाली में एक और नवीन व्यवस्था है। इसके माध्यम से सदस्य बिना विलम्ब किए लोक महत्व की किसी घटना पर जो कि अचानक घटित हो गयी है, सरकार का ध्यान आकर्षित करते है तथा उन पर सरकार की नीति का पता लगाते हैं।

भारत में संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार बदलती परिस्थितियों तथा बढ़ते हुए कार्यों को बेहतर ढंग से करने के अच्छे तरीके खोज निकालने के परिणामस्वरूप लगातार विकसित हो रहे हैं। हमारा दृष्टिकोण व्यावहारिक है। यद्यपि हमारी प्रक्रियाएं संसदीय प्रणाली के विश्वव्यापी मूलभूत सिद्धान्तों के अनुकूल रही है फिर भी हमने आगे बढ़ते हुए जहां भी आवश्यक हुआ, बदलाव करते हुए, नई प्रक्रियाएं अपनाने में कभी हिचकिचाहट महसूस नहीं की। 23 अगस्त, 1975 को पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में विचार व्यक्ति करते हुए लोकसभा अध्यक्ष ने कहा था कि, 'संसदीय संस्था, मानव निर्मित अन्य संस्थाओं की भांति सदैव विकासशील रहती है जबकि इसके मूल्य, जिनकी यह प्रतीक है तथा इसके मूलभूत सिद्धान्त सर्वदा मान्य रहते हैं, इनकी कार्य पद्धतियों तथा प्रक्रियाओं को बदलती परिस्थितियों तथा समय की तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना होता है। जो कोई भी हमारे विधानमण्डलों की प्रक्रियाओं से कुछ भी परिचित है, वह जानता है कि हम 'वेस्टमिनिस्टर' की तथा स्वतंत्रता के पूर्व के दिनों की अपनी प्रक्रियाओं से कितना आगे बढ़ गए हैं।'

धर्मनिरपेक्ष राजनीति

धर्म आदिकाल से मानव चेतना को प्रभावित करता रहा है। राज्य एवं समाज के संगठन में धर्म की महान भूमिका थी, क्योंकि धर्म से एकीकरण का भाव पैदा हुआ था। परंतु कालांतर में जब विभिन्न धर्मों का उदय हो गया तो समाज विभिन्न धर्मों एवं समुदायों में विभाजित हो गया और तब एकीकरण के स्थान पर धर्म संघर्ष का पर्याय बन गया। इससे न केवल सामाजिक बल्कि राजनीतिक क्षेत्र भी प्रभावित हुआ।

धर्म को हर क्षेत्र में नैतिकता और एकता को प्रोत्साहन देना चाहिए, लेकिन भारत में धर्मांध भावनाओं ने देश की राजनीतिक और सामाजिक एकता को आघात पहुंचाया

टिप्पणी

है तथा अनैतिकता के प्रसार में योगदान दिया है। जो धर्म संयोजक शक्ति का काम कर सकता है, वही आज विभेदक शक्ति के रूप में अधिक व्याप्त है। जिस सांप्रदायिकता एवं धर्म के संकीर्ण और अनुदार रूप ने भारत का विभाजन करवाया, वही आज भी सिर उठाए है। भारत में एक धार्मिक समुदाय का दूसरे धार्मिक समुदाय से, एक वर्ग का दूसरे वर्ग से और एक जाति का दूसरी जाति से मनमुटाव चलता रहता है, जिससे विभिन्न राजनीतिक समस्याएं उठती रहती हैं। इतिहास बतलाता है कि भारत हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक मतभेदों और तनावों से घिरा हुआ है। एक घरेलू मामले के रूप में इसका प्रारंभ 1905 में बंगाल के विभाजन से हुआ और अन्त में इसने इतना विस्तार कर लिया कि धर्म के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण हो गया। वर्षों से मुस्लिम लीग ने खुलकर जिस दो राष्ट्र के सिद्वांत का प्रचार किया था, वह भारत विभाजन की जहरीली बेल के रूप में सामने आया। दो राष्ट्र सिद्धांत के मानने वालों ने हमारी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता को खंडित किया और भारत के दो टुकड़े हो गए।

भारत में धर्म विभिन्न रूपों में राजनीति का आधार बना हुआ है। यदि धर्म केवल व्यक्तिगत विषय हो और केवल मानसिक शांति के लिए धर्म का पालन किया जाए तो अच्छी बात है, लेकिन धर्म आपस में फूट पैदा करे और विभिन्न धर्मों के अनुयायी आपस में एक–दूसरे से बैर रखें तथा एक–दूसरे पर अपना राजनीतिक प्रभाव जमाना चाहें तब समस्या उत्पन्न होती है। राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में धर्म के कुप्रभाव देखने–सुनने में आते रहते हैं। बहुधा यह शिकायत की जाती है कि हिंदू अधिकारी मुस्लिम धर्मावलंबियों के साथ पक्षपात करते हैं तो मुस्लिम अधिकारी हिंदू धर्मावलंबियों के साथ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया गया, लेकिन संविधान की इस घोषणा का तब तक कोई खास मतलब नहीं निकल सकता जब तक लोगों में भी धर्मनिरपेक्षता की भावना का प्रचार न हो और प्रशासन सम्पूर्णतः धर्म के प्रभाव से मुक्त न हो। कोई भी कानून, संविधान या विधेयक निरर्थक है, यदि लोग उसका पालन सही ढंग से नहीं करें।

धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, " 'धर्मनिरपेक्ष' व्यक्ति वह है जो केवल दुनियावी या लौकिक मामलों से संबंध रखता है, धार्मिक मामलों से नहीं।'' साम्यवादी देशों में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ 'अधार्मिक या धर्म–विरोधी प्रवृत्ति' से लिया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान ने धर्म और राज्य को अलग–अलग रखने की नीति अपनाई है। भारत में धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य न तो अधार्मिक है, और न ही धर्म विरोधी। राज्य का कोई विशेष धर्म नहीं है तथा राज्य सभी धर्मों का समान आदर करता है। एक शब्द में भारतीय संदर्भों में धर्मनिरपेक्षता से तात्पर्य सर्व–धर्म समभाव से है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से धर्मनिरपेक्ष शब्द को समाहित किया गया। परंतु संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में 'धर्मनिरपेक्षता की भावना' को सम्मिलित किया गया है जो निम्न हैं–

प्रथम– भारतीय राज्यव्यवस्था धर्मतंत्रवादी नहीं है। धर्मतंत्रवादी राज्य एक धर्म विशेष से संबद्ध होता है और इसके कायदे कानून धर्मपुस्तकों के आधार पर निर्मित होते हैं। पाकिस्तान, ईरान या सऊदी अरब को इसी अर्थ में एक मजहबी देश कहा जाता

है। इसके ठीक विपरीत भारतीय सरकार ने देश में धर्मनिरपेक्ष राज्य की संस्थापना की है।

टिप्पणी

द्वितीय– भारत में धर्म एक व्यक्तिगत मामला माना जाता है। व्यक्ति के क्या धार्मिक विचार या विश्वास हैं, इस बारे में राज्य कोई हस्तक्षेप नहीं करता। भारत के विभाजन की सबसे बड़ी सीख यही है कि धर्म और राजनीति को एक दूसरे से अलग रखना चाहिए।

तृतीय– भारत के सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समता और कानूनों के अंतर्गत समान सुरक्षा प्रदान की गई है। संविधान का अनुच्छेद 15 यह घोषणा करता है कि राज्य केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान या इनमें से किसी एक आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं करेगा। इन आधारों पर कोई नागरिक भोजनालयों, सड़कों, कुओं और आम जगहों का इस्तेमाल करने से वंचित नहीं किया जा सकेगा।

चतुर्थ– संविधान के चार अनुच्छेद (25,26,27 व 28) धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों से संबंध रखते हैं। ये अनुच्छेद यह घोषणा करते हैं कि सब लोग अपने धर्म को मानने, उस पर अमल करने और उसका प्रचार करने का हक रखते हैं। किसी व्यक्ति को कोई ऐसा कर देने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा जिससे प्राप्त आय किसी धर्मनिरपेक्ष राज्य की आधारशिला है।

धर्म और राजनीति में अन्तःक्रिया

धर्म तथा धार्मिक संकीर्णता से उपजी सांप्रदायिकता ने भारतीय राजनीति को अनेक स्तरों को प्रभावित किया है। धर्म गुरुओं या धार्मिक नेताओं ने अपना सामाजिक एवं राजनीतिक महत्व बढ़ाने के लिए धर्म का आश्रय लिया, जैसे जामा मस्जिद के शाही इमाम अब्दुल्ला बुखारी एवं अयोध्या विवाद से जुड़े विभिन्न महंतों ने धर्म का आश्रय लेकर अपनी राजनीतिक पहचान बनाई। वहीं दूसरी ओर राजनीति के धर्म में हस्तक्षेप से धर्म ने अपने आध्यात्मिक स्वरूप को खो दिया और राजनेताओं ने सतही धार्मिक भावनाओं को भड़काकर अपना वोट बैंक सुनिश्चित किया। धर्म और राजनीति निम्न प्रकार से एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं–

(1) **धर्म बनाम राजनीतिक दल**– भारत में धर्म इतना प्रभावशाली तत्व बना हुआ है कि कतिपय राजनीतिक दलों का निर्माण भी वस्तुतः विशुद्ध धर्म के आधार पर हुआ है, यद्यपि प्रकटतः वे दल इससे इंकार करते हैं। भारतीय जनसंघ पर प्रायः आरोप लगाया जाता है कि वह मुख्य रूप से अपनी सांस्कृतिक इकाई के राजनीतिक हितों के लिए ही प्रयत्नशील रहता है। किंतु इसके संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का मत था कि जनसंघ एक सांप्रदायिक अथवा धर्म विशेष से प्रभावित दल नहीं है। पिछले दिनों में इनके नवीन संस्करण भारतीय जनता पार्टी ने राम मंदिर मुद्दे पर अपना प्रभाव बढ़ाकर केंद्र की सत्ता प्राप्त की है। मुस्लिम लीग एवं पंजाब का अकाली दल भी धार्मिक राजनीतिक दलों का उदाहरण है।

(2) **धर्म बनाम राजनीतिक संघर्ष**– धर्म के आधार पर भारत में समय–समय पर राजनीतिक संघर्ष और विवाद उत्पन्न होते रहे हैं। 1956 से 1960 के मध्य बंबई नगर पर नियंत्रण के लिए मराठी गुजराती संघर्ष का जो दौर चला, वह

टिप्पणी

धार्मिक उग्रवादी राजनीति का ज्वलंत प्रमाण है। भारत के एक सर्वाधिक शिक्षित राज्य केरल पर राजनीतिक प्रभुसत्ता के लिए हिंदुओं, मुसलमानों और इसाइयों में निरंतर खींचा–तानी चलती रहती है। केरल की 60 प्रतिशत से भी अधिक जनता हिंदू है, 20 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या ईसाई है और मुसलमान लगभग 17 प्रतिशत हैं। केरल में विधानसभा में कामचलाऊ बहुमत प्राप्त करने के लिए किसी भी दल को इन विभिन्न धर्मावलंबियों को अपने पक्ष में करना आवश्यक होता है। धर्म और शिक्षा के प्रश्न केरल में इतने प्रबल हैं कि इनके आधार पर सरकारों का उत्थान और पतन हो जाना सरल है। वर्तमान समय में गुजरात का गोधरा काण्ड एवं उसके बाद हुई व्यापक सांप्रदायिक हिंसा का धार्मिक आधार हिंदू और मुसलमानों के बीच राजनीतिक एवं हिंसक संघर्ष की जीवंत गाथा है।

(3) **धर्म और मत व्यवहार**– भारतवर्ष में चुनाव के समय जनता का मत व्यवहार धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होता है। वोट प्राप्त करने के लिए राजनेता विभिन्न धर्मों के इमामों, पादरियों, साधुओं तथा मठाधीशों से सांठ–गांठ करते हैं। राजनीतिक दलों द्वारा शाही इमामों एवं शंकराचार्यों से अपने पक्ष में वोट देने की अपील करवाना इस बात का प्रमाण है कि भारतीय मतदाता का व्यवहार आज भी धार्मिक रुझानों से प्रभावित होता है।

(4) **धर्म एवं धार्मिक हित समूह**– भारतीय राजनीति में धार्मिक हित या दबाव समूह की विशेष भूमिका है। ये गुट अपनी शक्ति एवं कार्य प्रणाली से शासन की नीतियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए हिंदूवादी दबाव समूहों में बजरंग दल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा मुस्लिम संगठनों में जमायते–इस्लामी, अमारते–शरिया तथा बाबरी एक्शन कमेटी आदि हैं। बाबरी मस्जिद विवाद के संदर्भ में बजरंग दल, विश्व हिंदू परिषद् तथा एक्शन कमेटी ने अपनी–अपनी तरह से सरकार की नीतियों को प्रभावित किया है।

(5) **धर्म एवं अन्य राजनीतिक प्रक्रिया**– भारत में धर्म ने विभिन्न राजनीतिक प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। जैसे पंजाब में धर्म के आधार पर अलग राज्य 'खालिस्तान' की मांग की गयी। केंद्र एवं राज्य में मंत्रिमंडल बनाते समय विभिन्न धार्मिक समुदायों के प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा जाता है। विभिन्न राज्यों की राजनीति में धर्म विशेष विशिष्ट भूमिका अदा करता है। केरल राज्य में मुस्लिम संप्रदाय एवं पंजाब की राजनीति में सिक्ख धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है।

स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धर्म गलत भूमिका अदा कर रहा है। यदि भारत में ससंदीय लोकतंत्र को सफल होना है और राजनीतिक एकता को स्थायित्व देना है तो धर्मांधता का वातावरण मिटाना होगा। सरकारी तथा अन्य हैसियत से हम किसी भी प्रकार ऐसे राष्ट्र की कल्पना नहीं कर सकते जिसे सांप्रदायिक या धार्मिक राष्ट्र कहा जाए। हम यदि किसी आदर्श पर चल सकते हैं तो वह धर्मनिरपेक्ष, असांप्रदायिक लोकतांत्रिक राष्ट्र का आदर्श है, जिसमें हर आदमी चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो, बराबर अधिकार और सुविधाओं का हकदार है। वास्तव में भारत राष्ट्र का कल्याण इसी बात में है कि राजनीति और नैतिकता में मेल

रखा जाए। राजनीति को नैतिकता के स्तर पर कायम रखा जाए। राजनीति और कट्टरता या धर्मांधता के मेल का परिणाम तो सांप्रदायिक राजनीति होगी जो एक अत्यंत भयानक रोग है और जिसका परिणाम हम भारत विभाजन के रूप में भोग चुके हैं।

टिप्पणी

1.5.3 संघीय संरचना : शैक्षिक व्यवस्थाओं और जिम्मेदारियों के लिए निहितार्थ

मुख्य रूप से अंग्रेजी भाषा में फेडरल शब्द का उद्भव फॉइड्स शब्द से है, जिसका अर्थ है लोक संघीय प्रणाली इसमें सरकारी प्राधिकार जो कि विभिन्न वर्गों में विभाजित होते हैं। विश्व का सबसे बृहद लोकतंत्र भारत का एक संसदीय लोकतंत्र और एक संघीय राज्य माना जाता है । जैसा कि हम सभी जानते हैं भारत राज्यों का एक संघ है और संविधान के अनुसार भारत संप्रभु, समाजवादी, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है।

भारत की संघीय संरचना की विशेषताएं

संघीय ढांचे को संघीय संविधान की विशेषताओं के अध्ययन से समझा जा सकता है। एक संघीय संविधान से हमारा तात्पर्य केंद्रीय सरकार (जिसका कि पूरे राष्ट्रीय क्षेत्र पर अधिकार है) और राज्य सरकारों के बीच सत्ता के संवैधानिक विभाजन से है। राज्य सरकारों का अपने स्वयं के क्षेत्रों पर अपना स्वतंत्र अधिकार होता है किन्तु किसी भी मतभेद की स्थिति में केंद्र सरकार का मत प्रभावी होता है। एक संघीय संविधान की विशिष्ट विशेषताएं निम्न प्रकार से होती हैं:

- शक्ति का विभाजन
- राज्य की स्वतंत्रता
- केंद्रीय प्राधिकरण और क्षेत्रीय प्राधिकरण के बीच सहयोग
- दोहरी सरकार
- एक कठोर और साथ ही लिखित संविधान
- दोनों सरकारों के लोगों पर सीधा अधिकार
- संविधान की सर्वोच्चता

संघीय ढांचे और संविधान के कामकाज का निम्न प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है।

शक्ति का विभाजन

शक्तियों को तीन संस्थानों, अर्थात् संसद या विधानसभा, न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच क्षैतिज रूप से वितरित किया जाता है। तीनों संस्थाओं में कोई भी दूसरे से श्रेष्ठ नहीं है, और कोई एक दूसरे को किसी भी तरह से नियंत्रित नहीं कर सकता है, बल्कि तीनों अंगों को सद्भाव से काम करने की आवश्यकता है।

(क) कार्यपालिका

टिप्पणी

सरकार का सबसे शक्तिशाली अंग कार्यपालिका है। यह वह अंग है जो विधायिका द्वारा पारित कानूनों और सरकार की नीतियों को लागू करता है। गार्नर के अनुसार, "व्यापक और सामूहिक अर्थों में, कार्यकारी अंग उन सभी पदाधिकारियों और एजेंसियों की समग्रता को समाहित करता है जो राज्य की इच्छा के निष्पादन से संबंधित हैं क्योंकि राज्य की इच्छा कानून के संदर्भ में तैयार और व्यक्त की गई है।"

गेटेल के अनुसार, "अपने व्यापक अर्थों में, कार्यकारी विभाग में विधायी या न्यायिक क्षमता में कार्य करने वालों को छोड़कर सभी सरकारी अधिकारी होते हैं। इसमें सरकार की सभी एजेंसियां शामिल हैं जो राज्यों के कार्यों के निष्पादन से संबंधित हैं, जैसा कि कानून के संदर्भ में व्यक्त किया गया है।"

कार्यपालिका में दो भाग होते हैं, अर्थात् राजनीतिक और स्थायी। कार्यपालिका के राजनीतिक भाग में राज्य के कार्यकारी प्रमुख और कार्यकारी विभागों के अन्य प्रमुख होते हैं जिन्हें मंत्री कहा जाता है। मंत्री राजनीतिक नेता हैं। वे ज्यादातर लोगों के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं और जनता के सामने अपने सभी निर्णयों और नीतियों के लिए जिम्मेदार होते हैं। राजनीतिक कार्यकारिणी लगभग 5 वर्षों के निश्चित कार्यकाल के लिए कार्य करती है। स्थायी कार्यपालिका में निम्न से उच्चतम स्तर तक के सिविल सेवक (नौकरशाह) होते हैं। यह सरकारी विभागों में काम करके दैनंदिन प्रशासन करता है। सिविल सेवक राजनीतिक रूप से तटस्थ होते हैं। वे किसी भी राजनीतिक दल के प्रति निष्ठा नहीं रखते हैं। वे बिना किसी राजनीतिक विचार के सरकार के कानूनों और नीतियों को लागू करते हैं। वे राजनीतिक कार्यपालिका को डेटा एकत्र, वर्गीकृत और प्रस्तुत करते हैं जिसके आधार पर राजनीतिक कार्यपालिका सभी निर्णय लेती है।

कार्यपालिका के कार्य निम्नलिखित हैं–

- कानूनों का प्रवर्तन
- नियुक्ति करने के कार्य
- संधि बनाने के कार्य
- रक्षा, युद्ध और शांति कार्य
- विदेश नीति निर्माण और विदेश संबंधों का संचालन
- नीति–निर्माण
- कानून बनाने से संबंधित कार्य
- प्रत्यायोजित विधान की प्रणाली के अंतर्गत कानून बनाना
- वित्तीय कार्य
- कुछ अर्ध–न्यायिक कार्य
- उपाधियों और सम्मानों का अनुदान

कार्यपालिका की संरचना

टिप्पणी

भारत का राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख होता है। उन्हें भारत के पहले नागरिक के रूप में नामित किया गया है

सरकार के सभी कार्यकारी कार्य औपचारिक रूप से उनके नाम पर किए जाते हैं।

राष्ट्रपति के पास संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी सदन की सदस्यता नहीं होती है। लेकिन वह संसद का अभिन्न अंग हैं

उनके अधीन उप राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री हैं;

कार्यपालिका विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों और नीतियों के कार्यान्वयन के लिए जवाबदेह है।

राष्ट्रपति सरकार का औपचारिक प्रमुख होता है;

राष्ट्रपति का चुनाव संसद सदस्यों (सांसदों) और प्रत्येक राज्य की विधान सभाओं के सदस्यों (विधायकों) द्वारा किया जाता है;

राष्ट्रपति के पास कार्यकारी, विधायी, न्यायिक और आपातकालीन शक्तियों सहित शक्तियों की एक विस्तृत श्रृंखला है। हालांकि, हमारी जैसी संसदीय प्रणाली में, इन शक्तियों का उपयोग वास्तव में राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही किया जाता है; तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 (1) में कहा गया है कि "राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए प्रधान मंत्री के साथ एक मंत्रिपरिषद होगी और वह उनकी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

उपाध्यक्ष

उपराष्ट्रपति पांच साल के लिए चुना जाता है और चुनाव पद्धति राष्ट्रपति के समान ही होती है; हालांकि, अंतर केवल इतना है कि राज्य विधानसभाओं के सदस्य चुनावी प्रक्रिया में भाग नहीं लेते हैं; तथा

उपराष्ट्रपति राज्यसभा के पदेन सभापति के रूप में कार्य करता है।

(ख) संसद

- निर्वाचित प्रतिनिधि सामूहिक रूप से एक निकाय बनाते हैं जिसे संसद कहा जाता है।
- यह देश का सर्वोच्च विधायी निकाय है।
- संसद के अंतर्गत राष्ट्रपति तथा दो सदन होते हैं, अर्थात् राज्यसभा (उच्च सदन या राज्यों की परिषद) और लोकसभा (निचला सदन या लोगों का सदन)।
- संसद केंद्रीय विधायिका या संघ विधायिका है, और राज्य की विधायिका को 'राज्य विधानमंडल' के रूप में जाना जाता है।
- भारत का संघ विधानमंडल न केवल कानून बनाने वाला निकाय है, बल्कि सभी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया का केंद्र है।

टिप्पणी

- राज्य सभा एक अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित निकाय है और भारत के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है।
- लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के सदस्यों को लोगों द्वारा सीधे पांच साल की अवधि के लिए चुना जाता है।
- संसद देश में बहस का सर्वोच्च मंच है और इसलिए, इसकी चर्चा की शक्ति पर कोई सीमा नहीं है।
- संसद के पास संविधान में परिवर्तन पर चर्चा करने और अधिनियमित करने की शक्ति है (अर्थात, संशोधन शक्ति)।
- संसद कुछ चुनावी कार्य भी करती है, क्योंकि यह भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है।
- संसद के न्यायिक कार्य भी हैं, क्योंकि वह राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने के प्रस्तावों पर विचार करती है और निर्णय लेती है।

राज्य सभा की विशेष शक्तियां

राज्य सभा को कुछ विशेष शक्तियां प्राप्त हैं। यदि संसद राष्ट्रहित में किसी विषय को राज्य सूची (जिस पर केवल राज्य विधानमंडल कानून बना सकता है) से हटाकर संघ सूची या समवर्ती सूची में लाना चाहती है, तो राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है।

लोकसभा की विशेष शक्तियां

धन विधेयकों के संबंध में, लोकसभा के पास अनन्य शक्ति है और इसलिए, राज्य सभा धन विधेयकों को आरंभ, अस्वीकार या संशोधित नहीं कर सकती है; तथा

राज्यसभा द्वारा धन विधेयक में किए गए संशोधनों को लोकसभा द्वारा स्वीकार किया भी जा सकता है और नहीं भी, यह लोकसभा का अधिकार है।

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद

- भारत का संविधान केंद्र और राज्यों दोनों में सरकार की संसदीय प्रणाली का प्रावधान करता है।
- सरकार की संसदीय प्रणाली के केंद्र में वास्तविक कार्यकारी प्राधिकरण के रूप में प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में मंत्रिपरिषद होती है
- प्रधान मंत्री (पीएम) के पद के लिए कोई सीधा चुनाव नहीं होता है, बल्कि प्रधान मंत्री को आम तौर पर निर्वाचित सांसदों में से चुना जाता है;
- प्रधानमंत्री की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति एक व्यक्ति को प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त करता है, जो लोकसभा में बहुमत वाले दल का नेता होता है; तथा
- राष्ट्रपति अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर करता है।

टिप्पणी

मंत्रियों की विभिन्न श्रेणियां इस प्रकार से हैं–

कैबिनेट मंत्री सत्ताधारी दल के सबसे अनुभवी और शीर्ष स्तर के नेता होते हैं।

वे आम तौर पर वित्त, रक्षा, गृह, विदेश, खाद्य और आपूर्ति आदि जैसे प्रमुख मंत्रालयों का प्रभार रखते हैं। सरकार के फैसले आम तौर पर प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में कैबिनेट मंत्रियों की बैठक में लिए जाते हैं। इस प्रकार, मंत्रिमंडल मंत्रिपरिषद के भीतर मंत्रियों का मुख्य समूह है।

स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्री आमतौर पर छोटे मंत्रालयों का स्वतंत्र प्रभार रखते हैं। वे आम तौर पर कैबिनेट की बैठकों में भाग नहीं लेते हैं, लेकिन विशेष रूप से आमंत्रित होने पर भाग ले सकते हैं। राज्य मंत्रियों को आम तौर पर कैबिनेट मंत्रियों की सहायता के लिए नियुक्त किया जाता है।

उप मंत्री स्वतंत्र प्रभार नहीं रख सकते हैं और हमेशा कैबिनेट मंत्रियों या राज्य मंत्रियों या दोनों की सहायता करते हैं

(ग) न्यायपालिका

इसमें न्यायालयों का एक पदानुक्रम शामिल है। न्यायालयों में सर्वोच्च निकाय भारत का सर्वोच्च न्यायालय है;

सर्वोच्च न्यायालय (और उच्च न्यायालयों) के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति (भारत के) द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) से 'परामर्श' करने के बाद की जाती है; तथा आम तौर पर, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायाधीश (सीजेआई) के रूप में नियुक्त किया जाता है।

केंद्र और राज्य सरकारों के अलावा, हमारे पास नगर निगम और पंचायतें हैं, जो स्थानीय शासन के रूप हैं। 73वें संशोधन के बाद, सभी राज्यों में अब एक समान त्रिस्तरीय पंचायती राज संरचना है; निचले स्तर पर 'ग्राम पंचायत' के रूप में, मंडल पंचायत (जिसे ब्लॉक या तालुका भी कहा जाता है) मध्यवर्ती स्तर पर और 'जिला पंचायत' उच्च स्तर पर।

(घ) सरकार के स्तर

- भारत में, सरकार के तीन स्तर हैं, अर्थात्, केंद्र, राज्य और स्थानीय स्तर।
- केंद्र स्तर पर, संसद सदस्यों के लिए चुनाव कराए जाते हैं, जिसे लोकसभा चुनाव के रूप में जाना जाता है। लोकसभा चुनाव के लिए पूरे देश को 543 निर्वाचन क्षेत्रों में बांटा गया है, और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र संसद सदस्य (एमपी) के रूप में एक प्रतिनिधि का चुनाव करता है।
- राज्य स्तर पर चुनाव को विधानसभा चुनाव कहा जाता है। प्रत्येक राज्य को विधानसभा क्षेत्रों की एक अलग विशिष्ट संख्या में विभाजित किया गया है।
- विधानसभा चुनाव में निर्वाचित प्रतिनिधि को विधान सभा का सदस्य (एमएलए) कहा जाता है।
- इसी प्रकार स्थानीय स्तर पर पंचायत (ग्रामीण) क्षेत्रों में प्रधान तथा नगर (नगरीय) क्षेत्रों में काउंसलर के चुनाव होते हैं।

- प्रत्येक गांव या कस्बा कई 'वार्ड' (निर्वाचन क्षेत्रों के समान) में विभाजित है, और प्रत्येक वार्ड गांव या शहरी स्थानीय निकाय के एक सदस्य का चुनाव करता है।

संघीय ढांचे के विषय

टिप्पणी

हमारा संविधान विधायी शक्तियों और अधिकार क्षेत्र के बारे में स्पष्ट सीमांकन करता है। यह तीन सूचियों के माध्यम से किया जाता है। वे हैं :

- **संघ सूची** : इसमें राष्ट्रीय महत्व के विषय शामिल हैं, जैसे रक्षा, वित्त, रेलवे, बैंकिंग आदि। इसलिए ऐसे विषयों पर केवल केंद्र सरकार को कानून बनाने की अनुमति है।
- **राज्य सूची** : परिवहन, व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि जैसे किसी विशेष व्यापार के कामकाज के लिए महत्वपूर्ण सभी मामलों को शामिल करता है। राज्य सरकार इन विषयों पर कानून बनाने के लिए निर्णायक प्राधिकरण है।
- **समवर्ती सूची** : इस सूची में ऐसे विषय शामिल हैं जिन पर केंद्र और राज्य सरकार दोनों कानून बना सकते हैं। ये शिक्षा, वनों, ट्रेड यूनियनों आदि से संबंधित हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि दोनों सरकारें इन कानूनों का विरोध करती हैं, तो केंद्र सरकार का निर्णय मान्य होगा। यह अंतिम प्राधिकरण है।

शैक्षिक व्यवस्थाओं और जिम्मेदारियों के लिए निहितार्थ

स्वतंत्रता के बाद 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्य का उत्तरदायित्व था । इसमें राज्य पूर्ण रूप से शिक्षा के लिए उत्तरदायित्व था जिसमें संविधान द्वारा 1976 में किए गए जो संशोधन थे उसमे शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया और उसके दूरगामी परिणाम हुए।

इसके बाद ही शिक्षा को लेकर के राज्य एवं केंद्र सरकार के बीच उस पर होने वाले खर्च से निजात पाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को आर्थिक सहयोग की गई, जिससे शिक्षा को राष्ट्रीय एवं एकीकृत स्वरूप को केंद्र स्वयं स्वदृढ़ करने का भार स्वीकार किया। इसके अंतर्गत सभी स्तरों पर शिक्षकों की योग्यता एवं उनके स्तर को बनाए रखने के लिए देश के शैक्षिक जरूरतों का आकलन एवं रखरखाव को भी स्वागत किया गया। केंद्र सरकार ने अपनी अगुवाई में विभिन्न शैक्षिक नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने पर विशेष ध्यान दिया और उनके क्रियान्वयन पर नजर रखने के कार्य को निरंतर जारी रखा। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय एवं शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जन आंदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने एवं बुनियादी अर्थात प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने तथा देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसाय और व्यवसाय परख बनाने, उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की जानकारी देने और अंतर तकनीकी शिक्षा परिषद दो स्वदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने का प्रयास भी शामिल किया गया। एनईपी द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में एक ऐसे राष्ट्रीय

पाठ्यक्रम पर आधारित है जिसमें अन्य लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान है।

टिप्पणी

जहां एक और शिक्षा नीति लोगों के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराने पर ज्यादातर जोर देती है वहीं दूसरी तरफ उच्च एवं तकनीकी शिक्षा को वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आवाहन भी करती है। केंद्रीय शिक्षा परामर्शदाता बोर्ड यानी सीबीएसई शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रीय और राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिए गठित सर्वोच्च संस्थान है जिसमें सीबीएसई परामर्श पर महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए और और शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर व्यापक विचार–विमर्श एवं परीक्षण हेतु इसने एक मंच उपलब्ध कराया। देश में हो रहे सामाजिक आर्थिक परिवर्तन एवं राष्ट्रीय नीति की समीक्षा की वर्तमान जरूरतों को देखते हुए सीबीएसई की भूमिका और भी बढ़ जाती है। सबसे बड़े महत्व का विषय यह है कि केंद्र और राज्य सरकारें शिक्षाविद एवं समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि आपसी विचार विमर्श बढ़ाएं और शिक्षा के क्षेत्र में निर्णय लेने की ऐसी सभा की प्रक्रिया और प्रणाली तैयार करें जिससे संघीय ढांचे की हमारी नीति को मजबूती मिले यानी जब तक संघीय प्रणाली मजबूत नहीं होगा तब तक हम एक सुचारू एवं ढंग की शिक्षा व्यवस्था को नहीं लागू कर सकते हैं और ना ही मजबूती मिलेगी। राष्ट्रीय नीति 1986 को वर्ष 1993 में संशोधित को किया गया था इसमें यह प्रावधान है कि शैक्षिक विकास की समीक्षा करने तथा व्यवस्थापक एवं कार्यक्रमों पर नजर रखने के लिए आवश्यक परिसर परिवर्तनों को निर्धारित करने में सीबीएससी की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। यह मानव संसाधन विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आपसी तालमेल एवं पारस्परिक संपर्क सुनिश्चित करने के लिए तैयार की गई उपयुक्त प्रणाली के माध्यम से अपना कार्य करेगा। शिक्षा में कुछ ऐसे भी संवेदनशील मुद्दे पर विशेष विचार विमर्श करने की आवश्यकता हो गई थी जिसमें निम्नलिखित विषयों के लिए सीबीएसई की सात समितियां बनाई गई थीं जो इस प्रकार हैं:

- कन्या शिक्षा तथा एक समान स्कूल प्रणाली।
- एक समान माध्यमिक शिक्षा।
- निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक तथा प्राथमिक शिक्षा से जुड़े अन्य मामले।
- उत्तम शिक्षा संस्थानों को स्वायत्तता । स्कूल पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक शिक्षा का एकीकरण।
- सरकार संचालित प्रणाली के बाहर चल रहे स्कूलों के लिए पाठ पुस्तकों एवं समानांतर पाठ्य पुस्तकों के लिए नियामक व्यवस्था।

सीबीएसई द्वारा प्रतिपादित रिपोर्टों पर 14–15 जुलाई 2005 को नई दिल्ली में हुई सीबीएसई की 53वी बैठक में विचार विमर्श किया गया। इन सभी प्राप्त रिपोर्टों से उभरे हुए कार्य बिंदुओं की पहचान करने तथा उन पर निश्चित कार्य विधि को अमल करने के लिए कार्य योजना तैयार करने की आवश्यक उपाय किए गए, जिसमें सीबीएसई ने तीन स्थाई समितियां बनाई और उसको अमल करने का निर्णय लिया गया जो निम्न रूप से इस प्रकार हैं:

(1). नई शिक्षा नीति को लागू करने के विशेष आवश्यकता सहित बच्चों में युवाओं के लिए सन्निहित शिक्षा हेतु अस्थाई समिति।

टिप्पणी

(2). राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को निर्देश देने के लिए साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा पर अस्थाई समिति।

(3). बच्चों की शिक्षा बाल विकास पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न योजनाओं को ध्यान में रखते हुए बाल विकास प्रयासों को समन्वयक और एकीकरण मामलों के लिए एक स्थाई समिति।

(4). राष्ट्रीय शिक्षा नीति एनईपी 1986 में यह प्रस्तावित किया गया था कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को शिक्षा की राष्ट्रीयकरण व्यवस्था विकसित करने का एक साधन होना चाहिए जो भारतीय संविधान में राष्ट्रीय निर्माण के दर्शन को अपने आधार भूमि माने।

(5). राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद अर्थात एनसीईआरटी की कार्यकारिणी ने 14 एवं 19 जुलाई 2004 की बैठक में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को संशोधित करने का निर्णय लिया।

(6). सामाजिक न्याय और समानता के संवैधानिक मूल्यों पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष समता मूलक और बहुलवादी समाज के आदर्श से प्रेरणा लेते हुए इस दस्तावेज में शिक्षा के कुछ व्यापक उद्देश्य को लिया गया।

(7). जिसमें शामिल किया गया विचार और कर्म की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नई स्थितियों का लचीलापन और रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक प्रक्रिया तथा सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता।

(8). इसमें इन बातों का भी ध्यान दिया गया कि शिक्षा सिर्फ स्कूलों के चारदीवारी तक ही ना रह जाए इसका समाज पर प्रभाव एवं संस्कार का वितरण पूर्ण रूप से किया जा सके।

(9). अगर शिक्षा को जीने के लोकतांत्रिक तरीकों को सुदृढ़ करना है तो उसमें स्कूल में जाने वाली पहली पीढ़ी की उपस्थिति का भी ध्यान रखना होगा जिसका स्कूल में बने रहना उस संविधान संशोधन के चलते अनिवार्य हो गया है।

(10). जिसने आरंभिक जिम्मेदारी आ गई है कि हम सारे बच्चों को जाति धर्म संबंधी अंतर लिंग और और समर्थन संबंधी शिक्षा ग्रहण में मदद पहुंचाएं तथा उन्हें सशक्त बनाए।

हमारे सैनिक उद्देश्यों और शिक्षा की गुणवत्ता में आज गहरी विकृति आ गई है इसका प्रमाण यह है कि तत्व की शिक्षा स्कूल बेस्ड एजुकेशन और उनके मां–बाप के लिए तनाव और बोझ का कारण बन गई है। इस विकृति को दुरुस्त करने के लिए पात्रता 2005 के इस दस्तावेज ने पाठ्य चर्चा निर्माण के पांच निदेशक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा है जो इस प्रकार हैं:

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना
- पाठ्यचर्चा का इस तरह से संवर्धन कि वह बच्चों को बहुमुखी विकास के अवसर प्रदान कराएं बजाय इसके कि पाठ्य पुस्तक ही केंद्र बनकर रह जाए।

टिप्पणी

- पढ़ाई का तरीका रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना।
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और उसे कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएं भी समाहित हो।

जैसा कि हम सभी जानते हैं 42वें संशोधन द्वारा संविधान का प्रस्तावना में समाज के विशेषण के रूप में धर्मनिरपेक्ष शब्द को जोड़ दिया गया। जिसमें धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा संविधान में प्रयुक्त विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतंत्रता की पदावली में अंतर्निहित है। इस संशोधन द्वारा यह और भी स्पष्ट कर दिया गया है "धर्मनिरपेक्षता राज्य" से ऐसे राज्य का अर्थ प्रकट होता है जोकि धर्म विशेष को राज्य धर्म के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करता है। इसे हम इस प्रकार का समझ सकते हैं जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को मानने आचरण करने तथा उसके प्रचार–प्रसार करने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है अर्थात उसे धार्मिक स्वतंत्रता है जिसके अंतर्गत वह व्यक्ति विशेष किसी अन्य धर्म के लोगों पर कोई अत्याचार या जबरदस्ती धर्म को मानने के लिए बाधित नहीं कर सकता है। भारत में समाज की ऐसी व्यवस्था है जिसमें धर्म को सर्वधर्म सद्भाव पर आधारित माना जाता है। कोई भी देश केवल किसी आदर्श के सामने रखने मात्र से उस आदर्श का ग्रहण किया हुआ नहीं माना जा सकता अपितु आदर्श ग्रहण के लिए आदर्श के अनुरूप नागरिकों के व्यवहार में भी परिवर्तन और रूपांतरण करना आवश्यक होगा। व्यवहार शिक्षा यानी बिहेवियर एजुकेशन के लिए शिक्षा को सबसे बड़ा हथियार माना गया है। शिक्षा को कभी भी जाति, धर्म, जन्म स्थान एवं उसके रंग एवं लिंग के आधार पर विभाजित नहीं किया जा सकता है। लोकतंत्र शिक्षा का उद्देश्य उच्च शिक्षा से है जिसकी व्यवस्था जनतंत्र की उनके उपयुक्त सिद्धांतों पर होती है इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है जिस शिक्षा का उद्देश्य पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय प्रबंधन आदि सभी लोकतांत्रिक सिद्धांतों के आधार पर बने होते हैं ऐसी शिक्षा को हम जनतंत्र अर्थात लोकतंत्र की शिक्षा की संज्ञा देते हैं।

भारतीय लोकतंत्र में शिक्षा एवं इसका सिद्धांत

लोकतंत्र राज्य में पाठ्यक्रम की रचना, लोकतंत्र आदर्शों एवं उनमें मूल्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। हम इसे इस तरह से भी समझ सकते हैं कि आदर्श एवं मूल्यों के बिना कोई भी लोकतंत्र सफल एवं संपूर्ण नहीं है। अतः लोकतंत्र पाठ्यक्रम के अंतर्गत उन विषयों को मुख्य स्थान दिया गया है जिनके अध्ययन से छात्रों में उच्चतम मनोवृति या उत्तम अभ्यास तथा योग्यता एवं सूझबूझ विकसित हो जाए और यह सच्चे नागरिक बनकर सफल जीवन व्यतीत कर सकें। इन सभी बिंदुओं को मध्य नजर रखते हुए लोकतांत्रिक पाठ्यक्रम को निम्नलिखित सिद्धांत ऑफर आधारित होता है जो इस प्रकार है:

(1). जन तांत्रिक पाठ्यक्रम का लचीला होना

(2). पाठ्यक्रम का क्रिया से जोड़कर उन पर बल देना

(3). पाठ्यक्रम को बहुमुखी स्तर पर तैयार करना

(4). व्यवसायिक आवश्यकताओं की व्यवस्था से जोड़ना

(5). समाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति पाठ्यक्रम के अंतर्गत नहीं होना

(6). अवकाश काल की क्रियाओं को स्थान देना

टिप्पणी

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफल बनाने के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने 1952–1953 में भारत की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को मध्य नजर रखते हुए शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों की चर्चा की है जिसमें:

1. **समृद्ध जीवन यापन की कला की दीक्षा** : एक समृद्ध जीवन यापन की कला में दीक्षित करना भारतीय शिक्षा का दूसरा मूल उद्देश्य है। जिसमें कोई भी व्यक्ति एकांत में रहकर ना तो जीवन यापन कर सकता है और ना ही वह पूर्ण रूप से स्वयं को विकसित कर सकता है। व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व की आवश्यकता को समझते हुए व्यावहारिक अनुभवों द्वारा सहयोग के महत्व को मूल्यांकन करना सीखें। उन्हें यह पता होना चाहिए कि किस व्यक्ति विशेष को हमें किस भाव से समझना है या उनके विषय में जानना है। अतः एक सफल सामुदायिक जीवन व्यतीत करने के लिए बच्चों में सहयोग सहनशीलता सामाजिक चेतना तथा अनुशासन इत्यादि सामाजिक गुणों का विकास किया जाना आवश्यक है जिससे वह प्रत्येक बालक एक दूसरे के विचारों का आदर करते हुए घुल मिलकर उस समाज में रहना सीख ले तथा लोगों का सम्मान एवं आदर करें जो कि शिक्षा का मूल उद्देश में निहित है।
2. **लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास** : जैसा कि हम सभी जानते हैं भारतवर्ष एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। इसके निर्वहन के लिए देश के प्रति नागरिक को चाहे वह स्त्री/महिला, पुरुष एवं अन्य वर्ग के लोग हो उनको सच्चा, ईमानदार तथा निष्ठावान नागरिक बनाना आवश्यक है। चुकी आज के बालक ही कल के नागरिक बनेंगे इसलिए प्रत्येक बालक में लोकतांत्रिक अथवा जनतांत्रिक नागरिकता का विकास करना भारतीय शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। वर्तमान परिस्थितियों को देखकर वही समझा जा सकता है कि जनतंत्र में नागरिकता एक प्रकार की चुनौती होती है और इस चुनौती का सामना करने के लिए प्रत्येक बालक में उसकी परिस्थिति के अनुसार ऐसे बौद्धिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, समाजिक एवं नैतिक गुणों का विकसित करना आवश्यक हो जाता है। जिसके आधार पर वह नागरिक के रूप में देश की राजनीति, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सभी समस्याओं के विषय वस्तु से चिंतन करके अपना निजी निर्णय ले सके और उन्हें सुझाव दे सके। इन सभी शक्तियों को विकसित करने के लिए बालकों में बौद्धिक विकास आवश्यक है क्योंकि बौद्धिक विकास हो जाने से विषय तथा वास्तविकता एवं प्रचार अंतर समझते हुए अंधविश्वास तथा निरीक्षक परंपराओं का उचित विश्लेषण करके अपने जीवन में आने वाली विभिन्न विषय से जुड़ी समस्याओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा निर्णय ले सके तथा हर प्रकार की समस्याओं को आसानी से हल कर सके।

टिप्पणी

3. **कुशलता की उन्नति का सूझ–बूझ होना** : लोकतंत्र की सफलता तब तक सिद्ध नहीं हो सकती जब तक कुशल विषयों तथा आर्थिक दृष्टिकोण से संपन्न नागरिकों का योगदान ना हो। हम अभी कह सकते हैं कि जनतंत्र की सफलता कुशल व्यावसायिक तथा आर्थिक दृष्टि से संपन्न नागरिकों पर निर्भर करती है। वैसी ही कुशलता के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण का होना परम आवश्यक है। वर्तमान में व्यावसायिक परिदृश्य को देखते हुए आईआईटी, आईआईएम, आईटीआई एवं अन्य डिप्लोमा एवं सटिफिकेट कोर्स का ईजाद किया गया है। जिससे लोगों को वैसा ही ज्ञान एवं प्रशिक्षण दिया जा सके जो देश की शिक्षा व्यवस्था के लिए कम से कम एक आधारभूत स्तंभ साबित हो सके। बालकों के मन में आरंभ से ही सही काम के प्रति श्रद्धा जागृत करनी चाहिए। जिसमें हस्तकला के कार्य पर बल देना चाहिए तथा पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों को सम्मिलित करना चाहिए। जिसके प्रति बालक अपनी रूचि के अनुसार उस व्यवसाय को चुन सके एवं उसमें उचित प्रशिक्षण प्राप्त करके अपने जीवन में उसका प्रयोग कर अपना जीवन निर्वाह कर सके। इसे देश को विभिन्न प्रकार के कुशल कारीगर एवं दक्ष वैज्ञानिक एवं इंजीनियर प्राप्त होंगे जिससे देश की आर्थिक व्यवस्था मजबूत हो सकेगी और देश की गरीबी को मिटाया जा सकता है।

4. **व्यक्तित्व का विकास** : लोकतंत्र में सभी बालकों को अमूल्य एवं बड़ी संपत्ति समझा जाता है जिसके अंतर्गत प्रत्येक बालक का आदर करना परम आवश्यक हो जाता है अतः भारतीय शिक्षा का चौथा उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। इस उद्देश्य के अनुसार बालकों को क्रियात्मक कार्यों को करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। जिससे उनमें साहित्यिक, कलात्मक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न प्रकार की रूचि का निर्माण हो जाए। रुचि अर्थात इंटरेस्ट के विकसित हो जाने से बालकों को आत्माभिव्यक्ति, सांस्कृतिक तथा सामाजिक संपत्ति की प्राप्ति, अवकाश काल के सदुपयोग करने की योग्यता तथा बहुमुखी विकास में सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से बालकों के विकास हेतु पूर्ण रचनात्मक क्रियाओं अर्थात क्रिएटिविटी में भाग लेने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना चाहिए। जिससे उनके स्वयं के विकास के साथ इस देश का विकास संभव हो पाएगा।

5. **शिक्षा का नेतृत्व में सहयोग** : लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए राजनेताओं की बड़ी भूमिका है। जिससे उनकी विभिन्न योजनाएं जिनसे लोक कल्याण संभव हो सके एवं समाज से चुने हुए प्रतिनिधि पूर्ण रूप से उस समाज को सुरक्षित एवं विभिन्न सुविधाओं से अलंकृत कर सकें। लोकतंत्र में छात्रों को लीडरशिप क्वालिटी का सृजन करना अत्यंत आवश्यक है जिसके अंतर्गत सामाजिक समस्या को समझदारी से तथा नागरिक एवं व्यवहारिक कुशलता को विकसित करना चाहिए। उचित शिक्षा द्वारा अनुशासन, सहनशीलता एवं त्याग जैसी चीजों का वशीकरण आवश्यक हो जाता है। यही छात्र बाद में बड़े होकर नागरिक के रूप में देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जैसे सभी क्षेत्रों में सफल नेतृत्व कर सकेंगे जिससे देश का विकास संभव हो सकेगा।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. एक विकासशील राष्ट्र निम्न में से क्या इंगित करता है?

   (क) वृद्धि (ख) विकास

   (ग) नवाचार (घ) ये सभी

8. सरकार का वह कौन–सा शक्तिशाली अंग है जो विधायिका द्वारा पारित कानूनों और सरकार की नीतियों को लागू करता है?

   (क) कार्यपालिका (ख) संसद

   (ग) न्यायपालिका (घ) इनमें से कोई नहीं

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)
7. (घ)
8. (क)

1.7 सारांश

मानव की विगत विशिष्ट घटनाओं का दूसरा नाम ही इतिहास है। अतीत के सभी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास एवं परिवर्तन, भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान एवं पुनरुत्थान वर्तमान का इतिहास बनकर प्राचीन मानव तथा उसके कृत्यों की स्मृति दिला रहे हैं अर्थात जो बीत गया वही इतिहास है, मूलतः महत्वपूर्ण तथ्यों को चुनकर अतीत के पुनर्निर्माण करने को ही इतिहास कहते हैं।

इतिहास मानव की सभ्यता व संस्कृति के विकास का रोचक विवरण है। किसी देश का इतिहास वहां के निवासियों के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के विकास और परिवर्तन का लेखा-जोखा है। प्रत्येक देश के इतिहास और उनके निवासियों के जीवन पर उस देश की भौगोलिक परिस्थितियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। किसी देश के वातावरण का वहां के निवासियों की शारीरिक आकृति पर उनके मानसिक और शारीरिक विकास तथा उनके कार्यों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी देश के रहने वालों का रहन-सहन, रीति-रिवाज वेशभूषा, भोजन, उद्योग-धंधे, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं वहां की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर रहती हैं। मानव भूगोल की

छाप मानव के विकास, उसकी सभ्यता और संस्कृति पर प्राचीन काल से ही पर्याप्त रही है।

टिप्पणी

भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का श्रीगणेश यूरोपीय ईसाई मिशनरियों द्वारा हुआ। इस देश में सर्वप्रथम 1510 पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों का प्रवेश हुआ। उन्होंने यहां प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ गोआ, कोचीन, चाल और बान्द्रा में कुछ उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना भी की। इन कॉलिजों में लैटिन पुर्तगाली व्याकरण, संगीत और तर्कशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। सही अर्थों में भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा का श्रीगणेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किया।

मानव जीवन के विभिन्न आयामों की व्याख्या विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के द्वारा की जाती है। इन सामाजिक विज्ञानों में राजनीति विज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसे प्राचीन यूनानी राजनीतिक विज्ञानी अरस्तू ने 'मास्टर साइंस' कहा है। राजनीति विज्ञान में राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जो मानवीय चेतना से संबंधित है। हर युग में राजनीतिक दार्शनिकों और विचारकों ने मानवीय गतिविधियों एवं आवश्यकताओं के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण को रखा। मानवीय जीवन के राजनीतिक पक्ष से संबंधित विभिन्न दार्शनिकों एवं विचारकों के दृष्टिकोण को राजनीतिक सिद्धांत माना जाता है।

समाज का अर्थ व्यक्तियों के समूह से होता है जैसे–वैश्य समाज, ब्राह्मण समाज, आर्य समाज जैन समाज, हिन्दू समाज, महिला समाज, पुरुष समाज आदि। कोई इसका प्रयोग व्यक्तियों के समूह के रूप में कोई समिति के रूप में तो कोई संस्था के रूप में, करता है। उदाहरणार्थ– राजनीतिशास्त्र समाज को व्यक्तियों का समूह, मानवशास्त्री आदि समुदाय को समाज तथा अर्थशास्त्री आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों के समूह को समाज मानते हैं।

भाषाई भिन्नता के स्वरूप को जानने से पूर्व आवश्यक है कि भाषाई भिन्नता के प्रत्यय को स्पष्ट रूप से समझा जाए। भाषाई भिन्नता वस्तुतः किसी समाज में भाषायी सन्दर्भ में वह स्थिति है, जब समाज में आचार व्यवहार तथा सम्प्रेषण के लिए मातृभाषा के साथ–साथ अन्य भाषाओं का भी व्यवहार समान रूप में चलता रहता है। दूसरे तथ्यों में किसी राजभाषा (मातृभाषा से इतर) राष्ट्रभाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में किन्हीं दूसरी भाषाओं का व्यवहार किया जाता हो।

भारतीय कला में भी विभिन्नता के दर्शन होते हैं। भारतीय कला काल, धर्म, राजनैतिक बदलाव और सांस्कृतिक बदलाव के आधार पर अत्यंत सुंदर और श्रेष्ठ है। यहां की कलाकृति कुछ ऐसी है मानो कि जिंदगी के तत्वज्ञान को कैनवास पर उतार दिया गया हो। देवताओं का मानवीकरण, दिव्य प्राणियों की परिकल्पना, मानवीय लक्षण, जीवन का आदर्श, राजनैतिक आंकड़े, प्राचीन इतिहास का सत्य, स्वतंत्रता की लड़ाई, विकास के चरण और असंख्य रूप अलंकार कला के रूप में बेजोड़ दर्शाए गए हैं। बहुत सारे भारतीय कलाकार अपनी नवीनता, रचना, और सोच के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध हुए हैं।

टिप्पणी

सामाजिक स्तरीकरण समाज के विभिन्न स्थिति–समूह को ऊंच–नीच के स्तरों में बांधे रखने की एक सामाजिक योजना है। समाज केवल विभिन्न स्तरों में बंट जाता है और उनमें आपस में ऊंच–नीचे की भावना पनपने में मदद मिलती हैं। सामाजिक स्तरीकरण का परिचय व प्रकृति की परिधि हालांकि इतनी संकुचित नहीं है। समाज के लिए सामाजिक स्तरीकरण कुछ सकारात्मक प्रकार्यों को भी करता है।

भारतीय लोकतंत्र संसदीय व्यवस्था पर आधारित है। भारत राज्यों का संघ है जिसमें संघीय शासन की व्यवस्था है। भारत में अंग्रेजी शासनकाल में संसदात्मक शासन का क्रमिक इतिहास रहा है। सन् 1833 के चार्टर एक्ट द्वारा परिषद में विधायी कार्य के लिए एक सदस्य को और शामिल किया गया, इस प्रकार भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा आरम्भिक स्तर पर व्यवस्थापिका सभा की स्थापना हुई।

विश्व में लोकतंत्र का कोई सार्वभौमिक रूप नहीं मिलता है जो सभी देशों में जिनमें लोकतंत्र है बिल्कुल एक जैसा हो। प्रत्येक देश में लोकतंत्र एक दूसरे से भिन्न है, उसमें लागू की जाने वाली शासन प्रणाली भी एक दूसरे से भिन्न है। कहीं–कहीं यह भेद बड़े व्यापक स्तर पर मिलते है और कहीं–कहीं छोटे स्तर पर मिलते हैं। न तो सरकारें एक जैसी मिलती हैं न शासन व्यवस्थायें एक–एक जैसी मिलती हैं।

लोकतंत्र राज्य में पाठ्यक्रम की रचना, लोकतंत्र आदर्शों एवं उनमें मूल्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। हम इसे इस तरह से भी समझ सकते हैं कि आदर्श एवं मूल्यों के बिना कोई भी लोकतंत्र सफल एवं संपूर्ण नहीं है। अतः लोकतंत्र पाठ्यक्रम के अंतर्गत उन विषयों को मुख्य स्थान दिया गया है जिनके अध्ययन से छात्रों में उच्चतम मनोवृति या उत्तम अभ्यास तथा योग्यता एवं सूझबूझ विकसित हो जाए और यह सच्चे नागरिक बनकर सफल जीवन व्यतीत कर सकें।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **सोपान** – चरण, सीढ़ी
- **प्रचुरता** – अधिकता
- **आक्रांता** – आक्रमणकारी
- **दुर्लभ** – आसानी से प्राप्त न होना
- **उपेक्षा** – तिरस्कार
- **मरुभूमि** – बंजर भूमि, अनउपजाऊ खंड
- **विशद** – विशाल
- **विवादास्पद** – विवादों से ग्रस्त
- **अवलोकन** – देखना
- **जटिल** – कठिन
- **आश्रय** – सहारा

टिप्पणी

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सिंधु घाटी (हड़प्पा) सभ्यता की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
2. भारत में उच्च शिक्षा की शुरुआत कब हुई थी? उसके उद्देश्य क्या हैं? बताइए।
3. समाज का अर्थ बताते हुए समाज को परिभाषित कीजिए।
4. सामाजिक स्तरीकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
5. धर्मनिरपेक्षता से क्या तात्पर्य है? समझाइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत की प्राचीन सभ्यता की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. राजनीतिक इकाई के रूप में भारत के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालिए।
3. भारत में समाज की क्या अवधारणा है? स्पष्ट कीजिए।
4. भारत में उच्च शिक्षा के महत्व एवं विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. भारत में भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता का विश्लेषण कीजिए।
6. भारत की संघीय संरचना को स्पष्ट करते हुए लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष राजनीति की व्याख्या कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Allen, L.A. 1995 Management and Organization, Mc Graw Hill, Auckland
- Anand, C.L. et.al. 1983 Teacher and Education in Emerging in Indian Society, NCERT, New Delhi.
- Coombs, Philip H. 1985 The World Crisis in Education, Oxford University Press New York.
- Govt. of India 1986 National Policy on Education, Min. of HRD, New Delhi.
- Govt. of India 1992 Programme of Action (NPE). Min of HRD.
- Koontz, Harold et al : 1981 Management, Mc Graw Hill, Auchland.
- Mohanty, J., 1986 School Education in Emerging Society, Sterling Publishers, New Delhi.
- Mukherjee, S.N. 1963 Secondary School Administration, Acharya Book Depot, Baroda.
- Mukherji, S.M., 1966 History of Education in India, Acharya Book Depot, Baroda.

इकाई 2 भारत और विकास

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय

2.1 उद्देश्य

2.2 विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : मुख्य विशेषताएं और विरोधाभास

- 2.2.1 विकास और विस्थापन
- 2.2.2 विकास और पर्यावरण ह्रास
- 2.2.3 बढ़ती आय और बढ़ती असमानता

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा

- 2.3.1 कृषि क्षेत्र और शैक्षिक संबंध
- 2.3.2 औद्योगिक क्षेत्र और शैक्षिक संबंध
- 2.3.3 सेवा क्षेत्र और शैक्षिक संबंध
- 2.3.4 वैश्वीकरण और ज्ञान अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : शिक्षा की भूमिका

2.4 आधुनिक भारतीय समाज

- 2.4.1 मानव समाज : मानक संबंध
- 2.4.2 भारतीय समाज : बहुनियामक ढांचा– एक आलोचनात्मक समझ
- 2.4.3 आधुनिक भारतीय समाजः संवैधानिक नियामक ढांचा

2.5 शिक्षा में बदलाव : महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान

- 2.5.1 महात्मा गांधी
- 2.5.2 ज्योतिबा फुले
- 2.5.3 दादाभाई नौरोजी
- 2.5.4 गोपाल कृष्ण गोखले
- 2.5.5 एसएसए और आरएमएसए के अंतर और स्कूल के अवसरों पर उनका प्रभाव

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 मुख्य शब्दावली

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

भारत की अर्थव्यवस्था एक निम्न आय वाली विकासशील अर्थव्यवस्था है। भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग गरीबी में रह रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि भारत में गरीबी का रोग तीव्र होने के साथ-साथ चिरस्थायी भी है। भारत में प्राकृतिक संसाधनों की भरमार है परंतु उनका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। इतना होने के बाद भी भारत पिछड़ा हुआ राष्ट्र नहीं है। स्वतंत्रता के बाद नियोजन प्रक्रियाओं को लागू करने से भारत ने प्रत्येक क्षेत्र में काफी प्रगति की है। कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। नये-नये उद्योगों की स्थापना हुई है तथा पुराने उद्योगों की कार्य पद्धति एवं उत्पादन में भी परिवर्तन हुआ है। सामाजिक चिंतन की राह भी परिवर्तित सी दिखाई देती है। यहां की नियोजित अर्थव्यवस्था की सार्वजनिक क्षेत्र में वृद्धि, औद्योगिक विकास, बैंकिंग सुविधाओं का विकास, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं पूंजी-निर्माण में वृद्धि व

टिप्पणी

नवीन उद्योगों की स्थापना आदि। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार मजबूत है। भारतीय अर्थव्यवस्था विकसित देशों के साथ प्रगति के दौर में है। देश में हुए विकास के कारण संस्थागत एवं ढांचागत परिवर्तन साफ नजर आते हैं। संरचनात्मक तथा वित्तीय व्यवस्था ने मजबूती पकड़ी है। देश की अर्थव्यवस्था में विकसित बाजार तंत्र से विश्व की अर्थव्यवस्था से जुड़ाव बढ़ा है। अब भारतीय अर्थव्यवस्था की गणना विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में होती है।

प्रस्तुत इकाई में भारत की विकासशील अर्थव्यवस्था, विकास और विस्थापन, वैश्वीकरण, आधुनिक भारतीय समाज, शिक्षा में बदलाव तथा शिक्षा में महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, दादाभाई नौरोजी, गोखले आदि विद्वानों के योगदान का विशद अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारत की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- विकास और विस्थापन की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- भारतीय अर्थव्यवस्था और शैक्षिक संबंधों को जान पाएंगे;
- कृषि, औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र में शिक्षा के महत्व को जान पाएंगे;
- आधुनिक भारतीय समाज की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गांधी एवं ज्योतिबा फुले आदि विद्वानों के योगदान को समझ पाएंगे।

2.2 विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : मुख्य विशेषताएं और विरोधाभास

भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय अर्थव्यवस्था ब्रिटिश शासन से पूर्व आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि 'अतिरेक सृजक अर्थव्यवस्था' (Surplus creating Economy) थी। उस समय की अर्थव्यवस्था ग्रामीण थी तथा ग्रामीण समुदाय श्रम-विभाजन को आधार मानकर आर्थिक क्रियाओं का संपादन किया करते थे। उस समय औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन कुटीर उद्योगों के द्वारा होता था परंतु ब्रिटिश शासन काल में शोषणकारी नीतियों, बेरोजगारी एवं गरीबी के कारण अर्थचक्र ऐसा बदला कि जब 1947 में देश आजाद हुआ तब तक आर्थिक ढांचा पूरी तरह चरमरा चुका था।

भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति

भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति का निम्न प्रकार उल्लेख किया जा सकता है–

टिप्पणी

1. **उपनिवेशी अर्थव्यवस्था–** इस काल में भारत कच्चे माल का विशाल स्रोत था और विनिर्माणों के लिए बाजार बन चुका था। भारत जूट के कपड़े का निर्यात करता था, परंतु कच्चा कपास, कच्चा जूट तथा खाद्यान्नों का आयात करता था। भारत तथा पाकिस्तान का बंटवारा होने पर चावल, कपास तथा जूट वाले क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में जाने से भारत को बहुत आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा।

   विदेशी पूंजी धीरे-धीरे करके देश की अर्थव्यवस्था के आधुनिक क्षेत्रों पर कब्जा करती चली गई। द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) में विदेशी पूंजी का प्रभाव देश के ऊपर कुछ कम हुआ परंतु स्वतंत्रता के बाद पुनः भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी पूंजी हावी होती चली गई।

2. **अर्द्धसामंती अर्थव्यवस्था–** स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था दोराहे पर खड़ी थी यानी न तो वह पूर्णरूप से सामंतवादी थी और न ही पूंजीवादी। यह पूंजीवाद और सामंतवाद की मिश्रित अर्थव्यवस्था थी जिसे अर्द्ध सामंतवादी अर्थव्यवस्था कहा गया। इस व्यवस्था में उत्पादन निम्न दो प्रकार से होता था–

   (i) **सामंतवाद–** भारत के जिन क्षेत्रों में रैयतवाड़ी और महालवाड़ी प्रथा थी, वहां पर भी बड़े किसानों ने अपनी भूमि काश्तकारों को दे दी जिसके कारण अनेक बिचौलिए उत्पन्न हो गए। परिणामस्वरूप पूरे भारत देश में काश्तकार और भूमिपति के सामंतवादी संबंध बन गए।

   (ii) **पूंजीवाद–** स्वतंत्रता से पूर्व भारत पूर्ण रूप से सामंतवादी भी नहीं था। विदेशी पूंजी ने प्रत्यक्ष रूप में एक पूंजीभूतक क्षेत्र का निर्माण कर लिया था। ब्रिटिशकाल के समाप्त होने तक यह क्षेत्र अच्छी तरह फल-फूल चुका था। पूरा देश पूंजीवादी उत्पादन संरचना की गिरफ्त में फंस चुका था। परिणामतः स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था बन चुकी थी।

3. **पिछड़ी अर्थव्यवस्था–** ब्रिटिशकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत पिछड़ गई थी क्योंकि प्रति व्यक्ति कम आय, आयतों पर निर्भरता, अशिक्षा, ऊंची मृत्यु एवं जन्मदर, व्यापक बेरोजगारी, पूंजी की कमी आदि देश में पूरी तरह व्याप्त थे।

4. **आर्थिक गतिहीनता–** इस काल में ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार की नीतियों को अपना लिया था जिसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था चहुंमुखी और समन्वित विकास करने में असमर्थ रही।

भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

भारतीय अर्थव्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था है। भारत में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीबी रेखा के नीचे रहता है। इसके साथ ही अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन भी विद्यमान हैं, इसलिए भारत को विश्व के विकासशील देशों में से एक माना जाता है। इसकी निम्न विशेषताएं हैं–

टिप्पणी

1. **प्रति व्यक्ति निम्न आय–** विश्व के कुछ देशों को छोड़कर भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। विश्व विकास रिपोर्ट 2010 के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति आय 1070 डॉलर थी जबकि यह आय अमेरिका में 47,580 डॉलर थी। भारत की प्रति व्यक्ति आय में काफी वृद्धि हुई है परंतु आज भी यह अमेरिका या विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण गरीबी है। गरीबी इसलिए भी है क्योंकि राष्ट्रीय आय का केवल 19.7% ही 40% जनसंख्या प्राप्त कर पाती है। तालिका 1 में विकसित और अल्प विकसित या विकासशील देशों के बीच का अंतर दर्शाया जा रहा है–

तालिका-1 : प्रति व्यक्ति आय (2009) (यू.ए. डॉलर)

देश	विनिमय दर के आधार पर	क्रय शक्ति के आधार पर
स्विट्जरलैंड	56,370	41,830
यू. एस. ए.	47,240	46,730
जापान	37,870	33,280
जर्मनी	42,560	36,960
यू. के	41,520	37,360
भारत	1,180	3,260
चीन	3,590	6,770

स्रोत : विश्व बैंक, विश्व विकास सूचकांक– **2010 (2008)**

2. **कृषि पर निर्भरता–** ब्रिटिश शासन काल में ग्रामीण एवं शहरी दस्तकारियों का तेज गति से पतन हुआ और भारतीय अर्थव्यवस्था का झुकाव कृषि की ओर बढ़ गया। देश में कृषि योग्य जमीन की कमी महसूस होने लगी। बढ़ती हुई जनसंख्या ने कृषि उत्पादकता का ह्रास किया। कार्यकारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि में लगा रहता है और राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान का अंश बहुत बड़ा होता है। कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 58%, 2008 में कृषि व्यवसाय में तथा शेष 42% उद्योग एवं सेवाओं में लगा हुआ था। राष्ट्रीय आय में 17.5% भाग कृषि का है। स्पष्ट है कि विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों में कृषि पर जनसंख्या कम निर्भर है जिसे तालिका 2 के माध्यम से समझा जा सकता है।

तालिका-2 : कृषि में लगी कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत

देश	कृषि में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत	सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का प्रतिशत		
		कृषि	उद्योग	सेवाएं
इंग्लैंड	1	0.7	23.7	75.6
संयुक्त राज्य अमेरिका	4	1.3	21.8	76.9
जापान	5	1.4	29.3	69.3
थाईलैंड	45	11.6	44.2	44.2

पाकिस्तान	52	20.4	26.9	52.7
चीन	47	11.3	48.6	40.1
भारत	58	17.5	28.8	53.7

स्रोत : विश्व बैंक, विश्व विकास सूचकांक – 2010 (2007)

टिप्पणी

3. **जनसंख्या का अधिक दबाव–** विकासशील देशों को जब विकसित देशों जैसी चिकित्सा सुविधाएं तथा तकनीकी ज्ञान मिलने लग जाता है तो वहां मृत्यु दर गिरने लगती है परंतु गरीबी, अज्ञानता, अंधविश्वास धार्मिक रूढ़िवादिता के कारण परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को सफलता नहीं मिल पाती है। इसी कारण इन देशों में जनसंख्या तेजी से बढ़ना प्रारंभ कर देती है। 2010 की जनगणना के अनुसार संपूर्ण विश्व की 17.5% जनसंख्या भारत में निवास करती है जबकि उसके पास विश्व के कुल स्थल क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग ही है, इसलिए इन देशों में तीव्र विकास की आवश्यकता है।

4. **व्यापक बेरोजगारी** – भारत में श्रम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है परिणामत: समस्त कार्यकारी जनसंख्या को काम दिलाना बहुत कठिन होता है। भारत में व्यापक बेरोजगारी है और इसमें लगातार वृद्धि होती जा रही है। वर्तमान समय में भारत में लगभग 4 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं तथा 60 लाख व्यक्ति हर साल जुड़ जाते हैं। व्यापक बेरोजगारी के साथ-साथ यहां अर्द्ध-रोजगार भी पाया जाता है यानी व्यक्तियों को साल के कुछ महीनों में ही कार्य करने को मिल पाता है। कृषि में अदृश्य या गुप्त बेरोजगारी भी विद्यमान है तथा शहरों में खुली बेरोजगारी (open unemployment) अधिक मात्रा में पाई जाती है। योजना आयोग ने NSSO (National Sample Survey Organisation) के आधार पर कहा कि 2004-05 में 8.36% बेरोजगारी बढ़ी जबकि यह 1999-2000 में 7.32% थी। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) के अनुसार 37 मिलियन पहले से ही बेरोजगार थे तथा 45 मिलियन बेरोजगार इस योजना में और जुड़ गए जिनके कारण 82 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराना होगा।

5. **पूंजी की कमी–** पूंजी की कमी के कारण बचत तथा विनियोग की दरें कम होती हैं तथा राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण बचत प्रभावित होती है। आय अधिक होने से बचत और पूंजी निर्माण अधिक होता है, जापान इसका उदाहरण है। अल्पविकसित देशों में सबसे ज्यादा बचत का स्तर चीन का है। प्रो. कोलिन क्लार्क (Colin Clark) के अनुसार यदि किसी देश की जनसंख्या एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही हो तो उसे अपने वर्तमान जीवन स्तर को कायम रखने के लिए 4 प्रतिवर्ष अतिरिक्त विनियोग की आवश्यकता पड़ेगी। तालिका 3 में इसका विवरण दिया जा रहा है।

टिप्पणी

तालिका-3 : सकल पूंजी निर्माण और सकल देशीय बचत, सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में

देश	सकल पूंजी निर्माण		सकल देशीय बचत	
	1990	2008	1990	2008
संयुक्त राज्य अमेरिका	18	18.3	16	13.7
इंग्लैंड	20	16.8	18	15.9
जापान	33	24.1	34	28.9
जर्मनी	24	19.3	24	25.8
चीन	35	44.4	38	54.3
भारत (2007)	24	39.7	23	38.0

स्रोत : विश्व बैंक, विश्व विकास सूचकांक – 2010, '2007

2008 में सकल देशीय बचत 38.00 प्रतिशत पहुंच गयी थी और सकल पूंजी निर्माण 39.7% के उच्च स्तर पर पहुंच गया था। बढ़ती हुई जनसंख्या के संदर्भ में चाहे वर्तमान पूंजी-निर्माण दर काफी ऊंची है परंतु पर्याप्त नहीं है।

6. **घटिया किस्म की मानव पूंजी–** मानव पूंजी की घटिया किस्म भी विकासशील देशों की विशेषता है। ऐसे देशों में स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक कल्याण, सामाजिक सेवाओं पर व्यय करना पड़ता है। अगर पूंजी निर्माण की भांति मानव पूंजी पर भी ध्यान दिया जाए तो समस्या का निदान हो सकता है। भारत में शिक्षा और अनुसंधान पर 2000-04 में खर्च कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 4.1% था तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में 5.9% था। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (United Nations of Development Programmes (UNDP)) ने मानवीय विकास संयुक्त सूचकांक के आधार पर देशों की स्थिति बताई है। यह सूचकांक जीवन प्रत्याशा, वयस्क निरक्षरता (Combined Enrolment Ratio) – प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्तर और वास्तविक सकल घरेलू उत्पादन प्रति व्यक्ति (क्रय शक्ति के आधार पर) डॉलर में निकाली गई है, जिसे तालिका 4 द्वारा स्पष्ट किया गया है–

तालिका-4 : मानव विकास सूचकांक (2007)

देश	जीवन प्रत्याशा	वयस्क शिक्षा (%)	Combined Enrolment Ratio %	Per capita real GDP (PPP)	HDI & Rank
	2007	2007	2007	2007	2010
कनाडा	80.6	99.0	99.3	35,812	4
संयुक्त राज्य अमेरिका	79.1	99.0	92.4	45,592	13
जापान	82.7	99.0	86.6	33,632	10 11
फ्रांस	81.0	99.0	95.4	33,674	8

इंग्लैंड	79.3	99.0	89.2	35,130	21	26
चीन	72.9	93.3	68.7	5,383	92	09
भारत	63.4	66.0	61.0	2,753	134	119

Source: UNDP, Human Develpment Report (2009) '2004

टिप्पणी

7. **घटिया तकनीक–** अल्पविकसित देशों में उत्पादन संबंधी तकनीक पिछड़ी हुई होती है। इसका कारण अज्ञानता माना जाता है परंतु वास्तविकता यह है इन देशों में पूंजी का अभाव और श्रम की अधिकता होने के कारण नई तकनीकों का प्रयोग संभव नहीं हो पाता है। अगर ये देश नई तकनीक को अपनाने का प्रयास करते भी हैं तो श्रमिक छंटनी के डर की वजह से विरोध करने लगते हैं। परिणामस्वरूप इन देशों की अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतियोगिता कर सकने की क्षमता कम हो जाती है।

8. **निम्न जीवन स्तर–** भारत में अधिकतर जनता को संतुलित भोजन नहीं मिल पाता है। विकसित देशों में खाद्य का औसत कैलोरी उपयोग (Calorie in Take) 3,400 से अधिक है परंतु भारत में केवल 2,415 है। प्रतिदिन न्यूनतम 2100 कैलोरी की आवश्यकता प्रति व्यक्ति होती है। विश्व विकास सूचकांक के अनुसार 46% बच्चों को पौष्टिक भोजन नहीं मिलता है तथा 60% माताएं भी पौष्टिक भोजन से वंचित रहती हैं।

9. **आर्थिक असमानताएं–** भारतीय अर्थव्यवस्था में संपत्ति एवं आय के वितरण में काफी असमानता या विषमता है। राष्ट्रीय आय के आंकड़ों के अनुसार वर्तमान मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय में सभी प्रदेशों में समानता नहीं है।

10. **परिवहन व संचार साधनों का अभाव–** भारत में परिवहन व संचार साधनों का भी अभाव है। यहां पर सड़कें कम हैं तथा अधिकांश सड़कें कच्ची हैं। यहां पर 1 वर्ग कि.मी. में 0.7 किलोमीटर सड़कें हैं, जबकि जापान में 4 किलोमीटर व अमेरिका में 1.3 किलोमीटर सड़कें हैं। संचार साधन भी भारत में विकसित देशों की अपेक्षा कम विकसित हुए हैं।

11. **आयात पर निर्भरता–** स्वतंत्रता के समय भारत अपने आर्थिक विकास के लिए आवश्यक मशीनों तथा उपकरणों के लिए विदेशों पर निर्भर था। भारत की अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत आवश्यक वस्तुओं को भी विदेशों से मंगाना पड़ता था। भारत आधुनिक सुरक्षा उपकरणों का उत्पादन करने की स्थिति में नहीं था। यहां तक कि राष्ट्रीय सुरक्षा के साधनों की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के लिए भी देश बाहरी संसार पर निर्भर था।

12. **बैंकिंग सुविधाओं का विकास–** जून 1969 में भारत में व्यापारिक बैंकों की 8,262 शाखाएं थीं लेकिन जून 2010 के अंत में इन शाखाओं की संख्या 85,638 हो गई है।

13. **जनसंख्या का घनत्व–** विश्व जनसंख्या का घनत्व इतना अधिक बढ़ जाएगा कि सन् 3090 में पृथ्वी पर केवल प्रत्येक व्यक्ति को खड़े रहने की ही जगह

मिल सकेगी तथा सन् 4250 में पृथ्वी पर मानव का भार स्वयं पृथ्वी के भार के बराबर होगा।

टिप्पणी

आर्थिक विकास में विरोधाभास

अल्पविकसित देशों के विकास में मुख्य बाधा पूंजी की कमी है। बिना पूंजी के तकनीकी विकास नहीं हो पाता है और इसी वजह से श्रम की उत्पादकता कम हो जाती है। इन देशों में पूंजी अभाव के लिए गरीबी उत्तरदायी है। यह माना जा रहा है कि तीसरी दुनिया के बहुत सारे देशों में अर्थव्यवस्था 'गरीबी के दुष्चक्र' में फंसी हुई है। पूंजी अभाव के साथ-साथ पिछड़ी तकनीक, जनसंख्या की अधिकता, राजनैतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक कारण भी बराबर के उत्तरदायी हैं।

1. **बाजार की अपूर्णताएं–** बाजार की अपूर्णताओं से आशय उत्पत्ति के साधनों की अगतिशीलता, कीमत दृढ़ता, बाजार की दशाओं का पूर्णज्ञान न होना, दृढ़ सामाजिक ढांचा, विशिष्टीकरण का अभाव तथा एकाधिकारिक दशाओं का होना है। इन अपूर्णताओं की वजह से साधनों का अनुकूलतम आवंटन नहीं हो पाता है जिसके कारण साधन पूरी तरह प्रयोग में नहीं लाए जाते हैं और साधन बेकार पड़े रह जाते हैं जो बेकारी को जन्म देते हैं, श्रमिकों की उत्पादकता घट जाती है, पूंजी की सीमांत उत्पादकता कम हो जाती है। इन कारणों से आर्थिक विकास रुक जाता है और वास्तविक उत्पादन (Actual Production), संभाव्य उत्पादन (Potential Production) से कम रहता है।

2. **गरीबी का दुष्चक्र–** प्रो. रेग्नर नर्क्स ने गरीबी के दुष्चक्र को इस प्रकार परिभाषित किया है–"यह दुष्चक्र अनेक शक्तियों का ऐसा वर्तुल (circular) समूह है जो परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हुए निर्धन देश को गरीबी की स्थिति में बनाए रखता है।" इसी आधार पर उन्होंने कहा है कि एक देश इसलिए निर्धन है, क्योंकि वह पहले से निर्धन है। ऐसे देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर नीचा होता है और जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं हो पाता है। स्वतंत्रता प्राप्त होने के इतने वर्षों के बाद भी इस स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है।

   निर्धनता के दुष्चक्र की व्याख्या दो पक्षों के आधार पर की जा सकती है–

   (क) पूर्ति पक्ष (Supply Aspect)– अल्पविकसित देशों में पूंजी का अभाव, बाजार की अपूर्णताएं, आर्थिक पिछड़ापन तथा अल्पविकास के कारण कुल उत्पादकता कम होती है। कुल उत्पादकता के कम होने से वास्तविक आय, बचत व विनियोग की दर कम हो जाती है तथा पूंजी निर्माण की दर गिरती है साथ ही उत्पादकता का स्तर गिरने लगता है। इस प्रकार दुष्चक्र पूरा हो जाता है।

टिप्पणी

पूर्ति पक्ष-आर्थिक पिछड़ापन

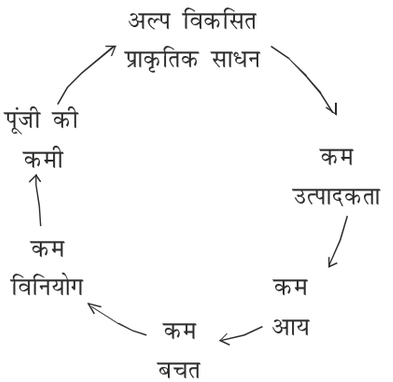

(ख) मांग पक्ष– यह चक्र पूंजी की मांग पर आधारित है। वास्तविक आय कम होने पर → वस्तुओं की मांग कम → उत्पादन कम → विनियोग की प्रेरणाएं कम → पूंजी की मांग कम होने से और उत्पादकता गिरने लगती है।

मांग पक्ष–आर्थिक पिछड़ापन

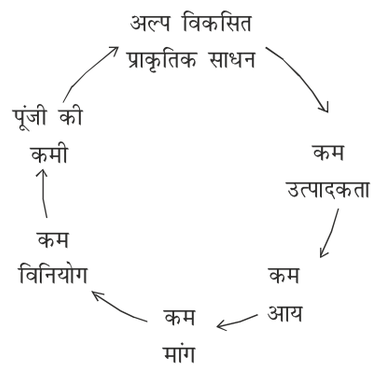

3. **पूंजी निर्माण की निम्न दर–** आय का निम्न स्तर बचत एवं निवेश की कमी के लिए उत्तरदायी है। वास्तव में गरीबी, पूंजी निर्माण की निम्न दर का कारण और परिणाम दोनों है। गरीबी के कारण अपनाई जाने वाली परंपरागत तकनीक श्रम की सीमांत उत्पादकता को नीचा बनाए रखती है जिसके कारण आय, बचत, निवेश और पूंजी-निर्माण की दर-सभी निम्न स्तर पर बने रहते हैं।

4. **पिछड़ी हुई तकनीक–** पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रांति के समय से इस दिशा में लगातार प्रयास चल रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वहां आज उत्पादन के बहुत सारे क्षेत्रों में स्वचलीकरण का प्रारंभ हो चुका है। अल्पविकसित देशों को भी तकनीकी ज्ञान प्राप्त हो चुका है परंतु क्या इस तकनीक को ऐसे देश अपना सकते हैं? ऐसे देशों में इन तकनीकों में पूंजी की अधिक और श्रम की कम आवश्यकता होती है। भारत में श्रम ज्यादा और पूंजी कम है जिसके कारण इन तकनीकों को नहीं अपनाया जा सकता है, परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अल्पविकसित देश पुरानी तकनीक पर ही पड़े रहेंगे। उनको अपनी आवश्यकतानुसार तकनीक में परिवर्तन करने की जरूरत है, जिससे देश का आर्थिक विकास हो सके।

टिप्पणी

5. **उद्यमशीलता एवं प्रबंधकीय योग्यता का अभाव–** किसी भी देश का विकास मुख्य रूप से नव-प्रवर्तकों एवं उद्यमियों पर निर्भर करता है किंतु अल्पविकसित देशों में इनकी कमी पायी जाती है। नव-प्रवर्तकों एवं उद्यमियों की कमी, आर्थिक उत्प्रेरणाओं का अभाव, जोखिम उठाने की क्षमता का अभाव आदि के कारण ये देश विकास की गति को आगे नहीं बढ़ा सके हैं। इसके अतिरिक्त इन देशों का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढांचा आधुनिक उद्यम के विकास के उपयुक्त नहीं रहा है।

6. **आधारभूत संरचना का अभाव–** आर्थिक विकास के लिए एक विशेष प्रकार की आर्थिक एवं भौतिक संरचना की आवश्यकता होती है। इसके अंतर्गत परिवहन एवं संचार, शक्ति, पानी, विद्युत, जल तथा आवास आदि आते हैं। इनके आधार पर ही किसी देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की नींव रखी जाती है। पूंजी की कमी, बैंक बीमा, स्कंध बाजार जैसी वित्तीय संस्थाओं का अभाव, उपज-विपणन संस्थाओं का अभाव आदि के कारण इन देशों में आधारभूत संरचना का अभाव पाया जाता है जिससे देश में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की गति धीमी रह जाती है।

7. **जनसंख्या संबंधी समस्या–** अल्पविकसित देशों में जनसंख्या विस्फोट एक वास्तविक समस्या है। इसका प्रमुख कारण जन्मदर का ऊंचा होना तथा मृत्यु-दर का कम होना है। जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण जनसंख्या घनत्व अधिक हो जाता है तथा पूंजी श्रम अनुपात कम होता है। जनसंख्या के बढ़ने से नई पूंजी का अधिकांश भाग विद्यमान रहन-सहन के स्तर को बनाए रखने में खर्च हो जाता है जिससे विनियोजन के लिए राशि कम हो जाती है। परिणामस्वरूप देश में जनसंख्या का गुणात्मक स्तर नीचा हो जाता है तथा जनसंख्या, निर्धन, अशिक्षित तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर हो जाती है जिसके कारण उत्पादकता का स्तर कम हो जाता है।

   जनसंख्या के अधिक होने के कारण बेरोजगारी बढ़ जाती है तथा कीमत वृद्धि की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। भारत जैसे देश में गर्म जलवायु होने के कारण कार्यशील जनसंख्या का अनुपात कम रहता है तथा बच्चों और आश्रितों की संख्या अधिक होती है। कम जीवन प्रत्याशा भी इन देशों के आर्थिक विकास में रुकावट का एक प्रमुख कारण है।

8. **राजनीतिक कारक–** अनेक अल्पविकसित देशों में राजनीतिक अस्थिरता का बोलबाला है। राजनैतिक दांव-पेंच खेले जाने के कारण सरकार बदलती रहती है। प्राय: अल्पविकसित देशों में विकसित देशों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप किया जाता है। यह ऐसी स्थिति होती है जिसमें आर्थिक विकास का कोई भी कार्य ठीक तरह से लागू कर सकने में किसी सरकार की रुचि नहीं होती है और यदि कोई लोकतंत्रीय सरकार बन भी जाती है तो उसके लिए कुछ कर पाना भी संभव नहीं होता है। भारत की सरकार में जमींदारों व बड़े किसानों के साथ-साथ पूंजीपतियों का काफी दबाव है जिसके कारण लोकतंत्रीय आर्थिक आयोजन का प्रयोग सफल नहीं हुआ। आर्थिक विकास के लिए राजनैतिक स्थिरता परम आवश्यक है।

टिप्पणी

9. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक–** अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में सामाजिक रीति-रिवाज तथा धार्मिक मान्यताएं भी बाधा उपत्पन्न करती हैं। जाति प्रथा, संयुक्त परिवार-प्रथा, उत्तराधिकार के दोषपूर्ण नियम तथा कठोर सामाजिक बंधन सभी आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। जाति-प्रथा ने साधनों की गतिशीलता कम की है, संयुक्त परिवार प्रणाली ने लोगों को अकर्मण्य बना दिया।

   धार्मिक भावनाओं एवं मान्यताओं ने नवीन उत्पादन तकनीक को अपनाने में बाधाएं उत्पन्न की हैं। भाग्यवाद, अंधविश्वास व परंपरावाद ने इन्हें कमजोर बना दिया और आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने इन्हें भौतिकता के प्रति उदासीन बनाया है। वे प्रयास के स्थान पर समर्पण की भावना रखते हैं तथा निर्धनता को ईश्वर की देन कहते हैं।

10. **प्रशासनिक कारक–** किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए सुदृढ़, कुशल, योग्य और ईमानदार प्रशासन की आवश्यकता होती है परंतु दीर्घकाल तक पराधीनता की जंजीरों में जकड़े रहने के कारण अल्पविकसित देशों में जहां अनेक साधनों का अभाव पाया जाता है वहीं पर अनेक साधनों का अविकसित होना भी देखा जा सकता है। आंतरिक शांति एवं स्थिरता का भी अभाव पाया जाता है। ऐसे देशों को प्रतिरक्षा पर व्यय ज्यादा करना होता है जिसके कारण विकास के लिए धनराशि का अभाव रहता है। अल्पविकसित देशों में प्रशासन तंत्र न तो कुशल होता है और न ही ईमानदार। सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही का बोलबाला रहता है। इसलिए इन देशों में जोखिम उठाने तथा पूंजी लगाने की अपेक्षा लोग अपनी पूंजी विदेशों में सुरक्षित स्थानों पर ले जाना अधिक पसंद करते हैं। सरकारी कर्मचारियों की अयोग्यता, अकुशलता और भ्रष्टाचार, विदेशों में कच्चे माल के आयात तथा उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस, सरकार से उद्योगों की स्थापना के लिए अनुदान, सरकारी वित्त निगमों के ऋण, उत्पादन तथा बिक्री कर निर्धारण आदि के संबंध में दोषपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था का औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रशासन तंत्र जब तक ईमानदार तथा कर्मठ नहीं होगा तब तक आर्थिक विकास असंभव है।

2.2.1 विकास और विस्थापन

विकास और विस्थापन की बहस से कई मर्तबा गुजरने के बाद हम सबके सामने यह सवाल आया कि बिजली, सड़क, कारखाने या किसी तानाशाह की मनोवृत्ति को संतृप्त करने के लिये जब विकास की परिभाषा गढ़ी जाती है, तब क्या–क्या घटता है? अक्सर बहस इस बात पर आकर टिक जाती है कि विकास के लिये विस्थापन जरूरी है और जब किसी का विस्थापन होता है तो उसका अच्छे से पुनर्वास होना चाहिए। बस यहां आकर विस्थापन से जुड़ी और बाकी की तमाम दुर्घटनाओं को विकास के कालीन के नीचे बुहार दिया जाता है। जो सवाल विकास के लाल मखमली कालीन के नीचे दबे हुए हैं (पर जिन्दा हैं) उनमें से एक सवाल उन समाजों की पहचान का भी है, जो विस्थापन की आंधी में इस तरह उड़ती है कि बस कुछ मत पूछिए। हम सोचते हैं कि

इस समाज में जितना विकास हो रहा है उससे तो समाज और स्वतंत्र होना चाहिए, उसकी पहचान और साफ होना चाहिए पर हो कुछ उल्टा रहा है।

टिप्पणी

विस्थापन का अर्थ

जैसा कि हम जानते हैं संविधान के 11वें अनुच्छेद में मानव के जीने का अधिकार के महत्वपूर्ण बिंदु दिए गए हैं। देश की सर्वोच्च अदालत यानी कि सुप्रीम कोर्ट ने इस अधिकार की कारक का करते हुए हर व्यक्ति के लिए सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार करार किया है। इसमें मुख्य रूप से आर्थिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं तथा उनके हित को शामिल किया गया है। विभिन्न अध्ययनों से यह पता चला है कि लोगों को विस्थापित करने वाली अधिकांश परियोजनाएं जो बनी हैं इनमें कर्तव्य को पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया है जिसका नतीजा परियोजना से प्रभावित लोगों की गिरती हुई स्थिति के रूप में सामने आया है। विकास का पैमाना होता क्या है इसका आधार क्या है यह सबसे बड़ा चुनौतीपूर्ण सवाल देश के सामने मौजूद है अतः देश विकास के लिए आर्थिक विकास का होना अति आवश्यक है और इन्हें प्रमुख तंत्र भी माना गया है। अभी हम विस्थापन के मुख्य बिंदुओं पर चर्चा की अब हम विस्थापन के मुख्य कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

विस्थापन के मुख्य कारण

विस्थापन के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

1. पारंपरिक संपोषित हुनर आधारित ज्ञान विज्ञान का लोप एवं स्थानीय आजीविका की कड़ी का टूट जाना अर्थात आवश्यक एवं मूलभूत सुविधाओं की कमी।
2. विकास परियोजनाओं में राजनीति व औद्योगिक घरानों का दबाव। वृहद परियोजना निर्माण व औद्योगिक विकास के बढ़ते दूषण।
3. आजीविका के साधनों में परिवर्तन से संपोषित उपभोग व्यवस्था का भौतिकता वादी लालसा की ओर उन्मुख हो जाना।
4. युवाओं में स्वावलंबी उद्यमी बनने के बजाय जोखिम रहित नौकरी करने की मानसिकता का बढ़ना।
5. भारत निर्मित आपदाओं का शिकार होने के कारण विस्थापन में तेजी।
6. व्यक्ति अपने विकास शिक्षा नौकरी आवास आदि के लिए स्वयं विस्थापन का निर्णय होता है और ऐसे विस्थापन को स्वैच्छिक विस्थापन की संज्ञा दी गई है।
7. प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़ सूखा औद्योगिक हादसे भूस्खलन कारखानों के बंद होने आदि पर्यावरण विनाश के कारण व्यक्तियों का विस्थापन होना उदाहरण स्वरूप कोसी बाढ़ बिहार उत्तराखंड में बाढ़ राजस्थान में सूखा किसी पर ओलावृष्टि इत्यादि।

विस्थापन और विकास प्रतिमान

आजादी के बाद पहले दशक में योजना निर्माण कर्ताओं ने विभिन्न योजनाएं राष्ट्र निर्माण के सिद्धांत के आधार पर तैयार किया परंतु इसमें यह पाया गया कि विकास के फायदे बहुत संख्यक तक ही ना पहुंच पाए उन्होंने निर्णय लिया कि राष्ट्र निर्माण

टिप्पणी

के स्थान पर राष्ट्रीय विकास करना आवश्यक है। इसके लिए यह माना गया कि आर्थिक तरक्की कल आप सभी नागरिकों एवं जन जन तक पहुंचाया जा सके। हमारे सर प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं अन्य लोगों ने देश के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था तैयार किया जिससे भारत की समस्याओं के निदान के लिए तकनीक को ही मुख्य समाधान के तौर पर अपनाया गया। नेहरू जी ने विशेष तौर पर औद्योगिकरण पर ज्यादा जोर दिया। जैसा कि हम सभी जानते हैं भारत के विकास के लिए अंधविश्वास एवं रूढ़िवादी दृष्टिकोण व परंपराओं का बदलाव आवश्यक है। इससे देश आधुनिकीकरण की ओर बढ़ेगा और संपूर्ण विकास एवं शाश्वत विकास संभव हो पाएगा।

आजादी के बाद भारत के सभी नेतागण इस बात से प्रभावित थे कि तकनीकी विकास द्वारा ही बेरोजगारी गरीबी एवं और शिक्षा जैसी समस्याओं को दूर करना संभव हो पाएगा तथा विकास का फायदा हर भारतीय तक पहुंचना संभव हो पाएगा। वही महात्मा गांधी पश्चिमी संस्कृति और प्रकरण के विरोध में थे तथा उन्होंने औद्योगिकरण का नहीं उद्योगवाद का विरोध किया। गांधी जी एक ऐसे विकास की विरोधी थे जो तकनीकी और उपयोग की राह पर चलता है जो बहुमत तक नहीं पहुंच पाता। भारत की आजादी के समय हमारे देश की साक्षरता दर में भी बहुत कमी थी इसमें मुख्य रूप से महिलाओं आदिवासी व दलित निरक्षर थे। यह इस बात को संकेत करता है एवं इंगित करता है कि सामाजिक बदलाव के अभाव में सारे फायदे मध्यम व उच्च वर्ग को ही मिले हैं और मिलते थे। इससे अमीर व गरीब के बीच एक बड़ी खाई का निर्माण हो गया। इस खाई को कम करने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाने का विचार किया गया अर्थात सरकार तथा बाजार एक साथ निम्न प्रकार से तीन प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम हो सके।

देश में किस तरह की वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाए जिससे यहां की गरीबी एवं निर्धनता को शीघ्र ही दूर किया जा सके। वस्तुएं एवं सेवाएं किस तकनीकी के तौर पर उत्पादित की जाएं अर्थात किस प्रकार का उत्पादन संभव हो सकेगा। उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का विभिन्न व्यक्तियों के बीच किस प्रकार वितरण किया जाना चाहिए जिससे समान रूप से सभी को वितरित करना संभव हो सके। इन सभी सवालों के जवाब के लिए सन 1950 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु जी की अध्यक्षता में योजना आयोग की स्थापना की गई जिसका मूल उद्देश्य विकास की ऐसी प्रक्रिया प्रारंभ करना था जो रहन–सहन के स्तर को ऊंचा उठाए तथा लोगों के लिए समृद्ध एवं विविध पूर्ण जीवन के नए अवसर उपलब्ध करा सके। प्रथम पंचवर्षीय योजना मैं मुख्य रूप से समृद्धि आधुनिकीकरण आत्मनिर्भरता और समानता को रखा गया। इन लक्ष्यों में योजनाकारों ने इन बातों का अच्छे से ध्यान रखा कि इन चारों उद्देश्यों में कोई अंतर्विरोध तो नहीं है।

हम अब और ज्यादा संग्रहालय (म्यूजियम) बना रहे हैं। इन संग्रहालयों में हमें क्या देखने को मिलता है? कुछ टूटे हुए बर्तन, कुछ घरों की प्रतिकृति आलों और ओटलों की नकल, पानी भरने वाले घड़े, चटाई और खाट, अनाज रखने वाले मिट्टी के भण्डार, बच्चों के खिलौने, उन चित्रों की प्रतिलिपि हैं जो घरों के दरवाजों पर उकेरे जाते रहे और भी शायद कई वस्तुएं।

टिप्पणी

कुल मिलाकर समाज को हम दिखाते हैं कि देखिये किसी जमाने में अलग–अलग समुदायों के लोग क्या करते थे, क्या पहनते थे, क्या गाते थे और कैसे रहते थे। वास्तव में संग्रहालय बताते हैं कि अब वह समुदाय या उसकी पहचान नहीं रही! जो कुछ भी इन संग्रहालयों में रखा जाता है, वह उन समाजों की संस्कृति और पहचान के अवशेष होते हैं, जो किसी कारण से खत्म हो गयी। कपड़ों पर की गयी बुनाई से लेकर अपने घर के दरवाजे पर बने हुए चित्रों तक, रसोई के बर्तनों से लेकर शिकार के हथियार तक जो कुछ भी एक समाज रचता है, वह उसकी सांस्कृतिक पहचान बन जाता है।

हम सब जानते हैं कि यह पहचान बदलती रहती है और अक्सर खत्म भी हो जाती है। वास्तव में दुनिया का इतिहास समाज के बदलते चरित्र की कहानी ही तो है। कहते हैं कि हड़प्पा की संस्कृति (समुदाय) के लुप्त होने का कारण जलवायु परिवर्तन था। प्राकृतिक घटनाओं के फलस्वरूप होने वाले विनाश को तो शायद हम कभी रोक नहीं पाये और ये घटनाएं समुदायों या उनकी पहचान की विलुप्ति का कारण बनती गई। 1940 के दशक में जब बंगाल में अकाल पड़ा और तीन लाख लोग अकाल के गाल में समा गए, तब भी लोग ही मरे थे। लेकिन उनकी पहचान किसी न किसी रूप में जिन्दा रही और वक्त ने उसे फिर से स्वस्थ बना दिया। हमारे सामने यह सवाल भी आया कि क्या पहले कभी भी इंसानी व्यवहार या कृत्यों के कारण कभी समुदायों की सांस्कृतिक पहचान खतम हुई? शायद विस्थापन समुदायों की पहचान को खत्म करता है। हमें अब तक इसका पूरा जवाब तो नहीं मिला है, पर विस्थापन की घटनाओं ने एक परीक्षण करने का अवसर जरूर दिया।

कुछ विशालकाय निर्माण परियोजनाओं, जिन्हें सभ्य भाषा में विकास परियोजनाएं कहा जाता है, से प्रभावित समुदायों के मूल अधिकारों के मुद्दों पर अध्ययन करते हुए अक्सर यह पाया कि इनके विषय और चुनौतियां बहुत भिन्न किस्म की हैं और यह भिन्नता विस्थापन के कारण है। बहुत आसानी से यह कह दिया जाता है कि बिजली, सिंचाई या परिवहन के लिये ऐसी परियोजनाएं तो बनानी ही पड़ेगी। और जब इस तरह की परियोजनाएं बनेंगी, तो विस्थापन तो होगा ही।

जिनका विस्थापन होगा, उनका पुनर्वास कर दिया जाएगा। अब प्रश्न यह है कि जब विस्थापन होता है, तब किसका स्थान परिवर्तन होता है, क्या कभी भी सोचा गया है ? जब यह कभी सोचा ही नहीं गया, तो फिर हम विकास के नाम पर होने वाले विस्थापन में पुनर्वास किसका करते हैं ? लोगों को तो विस्थापित कर दिया गया, लेकिन उन गांवों की गायों को सरकार विस्थापित न कर पायी। लोग जाते समय अपनी गायों को भी साथ ले गए, पर कुछ समय बाद ही हजारों की संख्या में ये गायें वापस लौटकर अपने पुराने गांवों को लौट आयीं। उन्होंने उस उजाड़ को महसूस किया था। वो निर्जीव नहीं थी। विस्थापन की दुर्घटना ने इन गायों को जंगली बना दिया। अब वे हमेशा आक्रोशित रहती हैं और आक्रमण भी करती हैं।

हम सोचते हैं इनका तो पुनर्वास हुआ था, परन्तु ये लौट कर उन्हीं उजड़े गांवों कीं तरफ क्यों लौट गयीं ? इसका जवाब है कि जीव का सम्बन्ध सम्पत्ति से नहीं, प्रकृति और परिवेश से होता है । वह जमीन से जुड़ा रहता है, वह पगडंडियों से जुड़ा रहता है, वह बरगद और आम के पेड़ से रिश्ता बना लेता है। उसे पहाड़ और नदियों

से प्रेम हो जाता है। हवा का बहाव उसे सुकून देता है। वह यह सब अपने गांव और अपने घर के आस–पास जुटाता है।

टिप्पणी

वह एक मजदूर, एक किसान, एक व्यापारी के रूप में दुनिया के किसी भी हिस्से में चला जाता है, पर वह सबसे सुरक्षित अपने गांव–अपनी बस्ती में ही होता है। उसे कितनी भी भौतिक सुविधाएं या वस्तुएं किसी दूसरे शहर में मिल जायें, पर रिश्ते उसे हमेशा पुकारते हैं। उसके ये रिश्ते केवल मां–बाप, भाई–बहन या पति–पत्नी होने से नहीं होते, हवा और पेड़ो से भी उसके रिश्ते होते हैं। उसे अपने माहौल की भाषा, बोलियां, मादक पेय, नृत्य और रूप–प्रदर्शन सबसे ज्यादा आत्म–विश्वास देते हैं। हर एक इंसान को पता है कि यदि जीवन की जरूरत को पूरा करने के लिये घर के आस–पास ही संसाधन उपलब्ध हो, तो इससे बेहतर उपलब्धि कोई और नहीं है। जब विकल्प खत्म हो जाये, तब ही घर से बाहर कदम रखना। क्योंकि जिस सामाजिक–पारिस्थितिकी से हमारा रिश्ता नहीं है, वहां जीवन के सबसे सार्थक पल हमें मिल न सकेंगे।

विकास के नाम पर होने वाला विस्थापन इसी भाषा–त्योहार–उत्सव–सुरक्षा और प्रेम की संस्कृति के ताने–बाने को तोड़ कर रख देता है । बहुत ही बुनियादी भी बात है कि स्थानीय पारिस्थितिकी और संसाधन ही एक समुदाय को खाद्य सुरक्षा देते हैं। समुद्र के किनारे रह कर कोई गेहूं की खेती नहीं कर सकता। वहां तो समुद्र ही भोजन देता है और इसी से मछली पालन लोगों की आजीविका जीवन का काम बन जाता है।

जंगल में रहने वाले ऐसी व्यवस्था बना लेते हैं कि अनाज से लेकर फल और मादक पेय तक सब कुछ बिना किसी कारखाने के पैदा कर लेते हैं और जिन्दगी जी लेते हैं। कभी भी वे आर्थिक गरीबी का रोना रोते नहीं पाये गए। इस तरह से संसाधनों पर आधारित काम–काज उन्हें सुखी करते रहे। इसीलिये तो उन्होंने जंगल, जमीन और समुद्र से अपने रिश्तों और काम–काज से जुड़े गीत और धुनें रच दीं, नृत्य गढ़ लिये। जरा आप बताइये कि आज, जब पूरा जोर आर्थिक सम्पन्नता पर है, लोग अपने काम–काज से जुड़ाव रखते हुए क्या गीता–धुन–नृत्य रचते हैं या रच सकते हैं? विकास ने हमें शायद आर्थिक सम्पन्नता दी होगी शायद पर क्या खुद के गीत और नृत्य रचने दिये क्या ? हम सोचते हैं कि आजीविका और आय–अर्जन की गतिविधियों (लाइवलीहुड और इनकम जनेरशन एक्टिविटी) क्या एक ही मायनों वाले शब्द हैं? जंगलों और दूसरे प्राकृतिक संसाधनों से जीवन जोड़ने वाले बताते हैं कि आजीविका में जीवन्तता है और आय–अर्जन के काम में एक निर्जीवता! यानी आजीविका का काम भी संस्कृति का ही हिस्सा है, अटूट हिस्सा। जब उनके पास बहुत मुद्रा न रही होगी, तब भी वे भूख से तो नहीं मरे, अब जबकि सबकुछ मुद्रा से मापा जा रहा है, तब विकास भूख पैदा कर रहा है। यह कैसा जाल है ? विकास के लिये भीमकाय परियोजनाएं, उन परियोजनाओं के लिये विस्थापन, उस विस्थापन से भुखमरी और अस्मिता की समाप्ति, इसी विकास से असमानता में वृद्धि और टकराव भी।

2.2.2 विकास और पर्यावरण ह्रास

मानव का अस्तित्व वनस्पति और जीव–जंतु के अस्तित्व पर निर्भर है। हमारे आसपास वृक्ष, जल वायु एवं विभिन्न प्राकृतिक कारकों को हम पर्यावरण के रूप में जानते हैं। पर्यावरण का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से है। अपने परिवेश में हम तरह–तरह के

टिप्पणी

जीव–जन्तु, पेड़–पौधे तथा अन्य सजीव–निर्जीव वस्तुएं पाते हैं। ये सब मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं। आज के मशीनी युग में हम ऐसी स्थिति से गुजर रहे हैं। आज पर्यावरण से सम्बद्ध उपलब्ध ज्ञान को व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है ताकि समस्या को जनमानस सहज रूप से समझ सके। ऐसी विषम परिस्थिति में समाज को उसके कर्त्तव्य तथा दायित्व का एहसास होना आवश्यक है। इस प्रकार समाज में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा की जा सकती है। वास्तव में सजीव तथा निर्जीव दो संघटक मिलकर प्रकृति का निर्माण करते हैं।

जब अर्थव्यवस्था में तेजी से वृद्धि की क्षमता विकसित होती है तो कई नई चुनौतियां भी आती हैं। हमें आर्थिक वृद्धि तथा सतत विकास के नजरिये से यह निर्णय करना है कि दुर्लभतम संसाधनों का कैसे अनुकूलतम उपयोग होगा। कई ऐसे प्रमाण हैं जो यह बताते हैं कि ऐसी नीतियों की वजह से कुल मिलाकर मानव कल्याण घट भी सकता है। आर्थिक वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग पर आधारित होनी चाहिए और साथ ही विकास को पर्यावरण की दृष्टि से संतुलित रखा जाना चाहिए। पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की देखरेख के बिना गरीबी उन्मूलन और एक स्थायी समृद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। पर्यावरण और आर्थिक वृद्धि में परस्पर संबंध है। पर्यावरण और सामाजिक–आर्थिक विकास आपस में इस तरह से सम्बद्ध हैं कि उनके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के बिना विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

औद्योगिक उत्पादन में प्राकृतिक संसाधनों और कच्चे पदार्थों जैसे कि जल, इमारती लकड़ी और खनिजों का प्रयोग किया जाता है और इसी के चलते औद्योगिक वृद्धि पर्यावरण के नुकसान का कारण बन जाती है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के एजेंडे की स्थिरता के लिए अच्छा संतुलन कायम करना बहुत जरूरी है। पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में सतत विकास के लिए सभी आयामों का संतुलित तरीके से इस्तेमाल करना होगा। विकास तभी टिकाऊ रह सकता है, जब वह प्राकृतिक संतुलन की रक्षा करता हो। पर्यावरण को सामान्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला भौगोलिक और प्राकृतिक पर्यावरण तथा दूसरा कृत्रिम एवं सामाजिक पर्यावरण। प्राकृतिक एवं भौगोलिक पर्यावरण में जल, वनस्पति, पशुधन, खनिज सम्पदा आदि शामिल हैं।

प्राकृतिक वातावरण का हमारे सामाजिक व आर्थिक जनजीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। कृत्रिम एवं सामाजिक वातावरण का निर्माण हमारे सुखी एवं समृद्ध जीवन से है। इस प्रकार आर्थिक पर्यावरण में अर्थ व्यवस्था की स्थिति, आर्थिक नियम, मान्यताएं, आर्थिक विकास की दिशा आदि शामिल हैं। आर्थिक पर्यावरण मानव की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित है। इसमें मानव द्वारा धनोपार्जन एवं उसे कुशलतापूर्वक व्यय करने से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को शामिल किया जाता है। इसमें कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, संचार, बीमा, बैंकिंग, सरकारी आय–व्यय एवं अन्य सभी वैधानिक आर्थिक गतिविधियां शामिल हैं। आर्थिक पर्यावरण स्थिर नहीं रहता। आर्थिक पर्यावरण देश की आन्तरिक एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से भी प्रभावित रहता है। आर्थिक समृद्धि एवं विकास पर्यावरण पर निर्भर करता है। आर्थिक पर्यावरण रोजगार मूलक है और देश की प्रगति को संचालित करने में भी सहायक होता है। यदि आर्थिक

टिप्पणी

पर्यावरण प्रतिकूल हो तो गरीबी, बेकारी, भुखमरी, जन असंतोष का सामना करना पड़ता है जो किसी भी देश के विकास को अवरुद्ध करता है। यदि देश का आर्थिक पर्यावरण सही और संतुलित होगा तो देश प्रगति एवं विकास के मार्ग पर आगे बढ़ेगा। लोक कल्याणकारी योजनाएं भी सही दिशा में संचालित होंगी। मानव का सुखमय जीवन भी आर्थिक पर्यावरण के संतुलित विकास पर निर्भर करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक पर्यावरण की अनुकूलता देश के विकास को आगे ले जाने में सहायक का कार्य करती है।

मानव के लिए पर्यावरण का अनुकूल और संतुलित होना बहुत जरूरी है। यदि हमने पर्यावरण संरक्षण पर अभी से ध्यान नहीं दिया तो आने वाला मानव जीवन अंधकारमय हो जाएगा। आर्थिक पर्यावरण का भी हमें ध्यान रखना होगा। आर्थिक पर्यावरण को बचाये रख कर हम मानव जीवन को सुखी और सुरक्षित कर सकते हैं।

विकास तभी टिकाऊ रह सकता है, जब वह प्राकृतिक संतुलन की रक्षा करता हो। ... प्राकृतिक एवं भौगोलिक पर्यावरण में जल, वनस्पति, पशुधन, खनिज सम्पदा आदि शामिल हैं। प्राकृतिक वातावरण का हमारे सामाजिक व आर्थिक जनजीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। कृत्रिम एवं सामाजिक वातावरण का निर्माण हमारे सुखी एवं समृद्ध जीवन से है।

सतत विकास के नजरिये से यह निर्णय करना है कि दुर्लभतम संसाधनों का कैसे अनुकूलतम उपयोग होगा। कई ऐसे प्रमाण हैं जो यह बताते हैं कि ऐसी नीतियों की वजह से कुल मिलाकर मानव कल्याण घट भी सकता है। आर्थिक वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग पर आधारित होनी चाहिए और साथ ही विकास को पर्यावरण की दृष्टि से संतुलित रखा जाना चाहिए। पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की देखरेख के बिना गरीबी उन्मूलन और एक स्थायी समृद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। पर्यावरण और आर्थिक वृद्धि में परस्पर संबंध है। पर्यावरण और सामाजिक.आर्थिक विकास आपस में इस तरह से सम्बद्ध हैं कि उनके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के बिना विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

पर्यावरणीय ह्रास

पर्यावरणीय ह्रास अर्थात पर्यावरणीय विघटन का आशय पर्यावरण के गुणों में गिरावट आ जाने से है क्योंकि मानव के प्रकृति–विरोधी कृत्यों के कारण प्रकृति के मौलिक घटकों की गुणवत्ता घट चुकी है। मानवों की अमानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण इस आधुनिक काल में अत्यधिक प्रतिकूलता से प्रभावित हो रहा है। इन मानव–जन्य परिवर्तनों के दुष्प्रभावों की परिधि में अन्य जीव–समुदायों सहित मानवप्रजाति स्वयं भी सम्मिलित है।

दएसकू एकेडा ने प्रकृति के विघटन के दो कारण दर्शाये हैंः (अ) आधुनिक मानव प्राकृतिक जगत को स्वयं के समकक्ष सजीव नहीं समझता; (आ) मानव समाज इस तथ्य की अनदेखी कर देता है कि सभी प्राणी/देहधारी परस्पर आश्रित व एक–दूसरे के जीवन के अविभाज्य भाग हैं।

टिप्पणी

पर्यावरण के विघटन को रोकने व निसर्ग का संतुलन पुनर्स्थापित करने के लिए मानव ही एकमात्र उत्तरदायी है। हॅज़ल हेंडर्सन ने अपनी पुस्तक 'वैकल्पिक भविष्य का निर्माण' में यह उल्लेख किया है कि जब हम ऊर्जा संकट, नगरीय संकट, पर्यावरण संकट अथवा जनसंख्या संकट के विषय की चर्चा करते हैं तो सर्वप्रथम हमें उस विस्तार को समझने का प्रयास करना चाहिए कि इन सभी संकटों की जड़ कहां है? यथार्थता की गंभीरता के प्रति हमारी अल्पज्ञता। 'पर्यावरणीय विघटन' व 'पर्यावरण–प्रदूषण' को अंतर्परिवर्तनीय रूपों में प्रयोग किया जा सकता है परंतु इन दोनों के अर्थों की गहनता भिन्न–भिन्न है–

- पर्यावरणीय विघटन प्रदूषण व संकटों/विपदाओं के कारण होता है। इन संकटों अथवा विपदाओं का आगमन किसी भी स्रोत से हो सकता है: ज्वालामुखीय विस्फोट जैसी आकस्मिक नैसर्गिक घटना अथवा मानव की गतिविधियों द्वारा उत्पन्न विकराल समस्या; दोनों ही स्थितियों में तत्काल राहत अपेक्षित है। यह आवश्यक है कि इस प्रकार के पर्यावरणीय विघटन के होने से पूर्व व दौरान किसी प्रकार की पूर्व–चेतावनी की व्यवस्था की जाए।
- पर्यावरण–प्रदूषण धीमे व क्रमिक मानव–कार्यकलापों के कारण होता है, उदाहरणार्थ जनसंख्या–वृद्धि, कारखानों व उद्योगों की स्थापना, परिवहन सुविधाओं का विकास इत्यादि के कारण। पर्यावरण–प्रदूषण के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता का अवनमन होता है। इससे बचने के लिए समुचित पर्यावरणीय प्रबंधन व मूल्यांकन प्रणालियों को अपनाना आवश्यक है।
- पर्यावरणीय विघटन से पारिस्थितिकी पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है क्योंकि पारितंत्र व पारिस्थितिक जैव–वैविध्य में कमी आ चुकी होती है।
- पर्यावरणीय विघटन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है– "जब पर्यावरण का मूल्य घट जाता है अथवा कोई क्षति पहुंचती है तो इसका तात्पर्य हुआ कि पर्यावरणीय विघटन हुआ है।" पर्यावरणीय विघटन में–

(क) पर्यावास नष्ट हो जाते हैं;
(ख) जैव–वैविध्य में कमी आती है;
(ग) नैसर्गिक संसाधन घट जाते हैं;
(घ) निर्वनीकरण, ओज़ोन–विलोपन एवं समुद्री पर्यावरण–विनाश के कारण पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो जाता है।

ह्रास के लिए उत्तरदायी कारक

पर्यावरणीय विघटन हेतु उत्तरदायी कारक निम्नांकित हैं–

- सामाजिक–आर्थिक, संस्थागत व प्रौद्योगिक गतिविधियों के पारस्परिक प्रभाव
- अवहनीय आर्थिक उन्नति
- जनसंख्या–विस्फोट

टिप्पणी

- तीव्र नगरीकरण
- कृषि का सघनीकरण
- ऊर्जा व परिवहन का बढ़ा प्रयोग
- निर्धनता

उपर्युक्त के अलावा भी मुख्य कारण निम्नांकित हैं–

- निर्वनीकरणः पेड़ों की कटाई
- अतीव जनसंख्या
- वायु, जल, मृदा व समुद्र का प्रदूषण
- ओज़ोन परत का लोपन
- वैश्विक भू–तापोन्नयन
- अनियोजित विकास, नगरीकरण एवं औद्योगिकीकरण
- विषाक्त गैसों का उत्सर्जन
- ऊर्जा का समुचित व मितव्ययी प्रयोग न करना
- संसाधनों का अतिदोहन
- अपशिष्ट–निपटान का कुप्रबंधन
- नदियों व समुद्रों में विषाक्त अपशिष्ट डाला जाना
- संसाधनों का असमान वितरण
- पर्यावरणीय जागृति एवं समुचित अधिनियमों का अभाव
- अनियंत्रित विधि–प्रावधान
- उत्पादों के पोषणात्मक मान में कमियां

पर्यावरणीय विघटन के कारण

सामाजिक–आर्थिक, वैज्ञानिक व प्रौद्योगिक विकास के साथ पर्यावरणीय विघटन की गंभीर समस्याएं उपजती आ रही हैं। इनके कुछ कारण अग्रलिखित हैं–

1. **साम्प्रदायिक कारण** : यदा–कदा विभिन्न सम्प्रदायों में मानी जाने वाली धारणाओं के कारण वायु व समुद्री परिवेश प्रदूषित हो जाता है। कुपरंपरानुसार सामूहिक नदीस्नान, शव व अस्थिभस्म बहाने, मूर्ति–विसर्जन व पुतला–दहन ऐसे प्रमुख साम्प्रदायिक आयोजन है जिनसे अत्यधिक पर्यावरणीय विघटन होता है। उदाहरणार्थ इन्हीं अप्रासंगिक हो चले रीति–रिवाजों के कारण गंध व गति में गंगा गटर समान बना दी गयी है। माता कही जाने वाली गंगा प्रतीकात्मक रूप से ही पवित्र रह गयी है, अधिकांश स्थानों पर इसका जल पीने तो क्या अर्घ्य देने योग्य भी शुद्ध नहीं बचा है।

टिप्पणी

2. **आधुनिक प्रौद्योगिकी का विकास** : देश के आधुनिकीकरण से कोई बैर नहीं है परंतु आधुनिकीकरण की दौड़ में विवेकरहित विकास के कारण निसर्ग में असंतुलन आ गया है। वातानुकूलित्रों, यातायात–साधनों, भारी मशीनरी, रसायनों व नाभिक युक्तियों का प्रयोग, बांध–विनिर्माण इत्यादि ऐसे प्रधान कारक हैं जिनसे पर्यावरणीय विघटन गंभीर स्तर पर होता है।
3. **कृषि–विकास** : फसलोपज बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों, पीड़कनाशियों का अत्यधिक प्रयोग किया जा रहा है। अप्राकृतिक रूप से फल पकाने व लौकी जैसी अन्य सब्जियों के आकार रातों–रात बढ़ाने के लिए रसायनों का प्रयोग किया जा रहा है। इन समस्त प्रयोगों से मृदा की गुणवत्ता तो घटती ही है, साथ ही में उत्पादों का पोषणात्मक मान भी घटता है।
4. **जनसंख्या वृद्धि** : जनसंख्या बढ़ाती चली जाने से संसाधनों पर दबाव पड़ता है जिससे प्रकृति में असंतुलन छा जाता है।
5. **निर्वनीकरण** : जनसंख्या–वृद्धि से भी निर्वनीकरण भी होता है; अधिक से अधिक भूमि को उजाड़कर खेत बना लिए जाते हैं एवं आवासीय व औद्योगिक विदोहन के विस्तार के लिए और अधिक भूमि को वनहीन कर दिया जाता है।
6. **औद्योगिक विकास** : ज्यों–ज्यों उद्योगों द्वारा नित नवीन उत्पाद लाये जा रहे हैं त्यों–त्यों इनकी हानिप्रद गैसें व अपशिष्ट उत्पाद पर्यावरण में आते जा रहे हैं।
7. **नगरीकरण** : आधुनिकीकरण से ग्रामीण क्षेत्र भी प्रभावित हो रहे हैं। इसीलिए ग्रामीण आजकल शिक्षा व आर्थिक बढ़त की आस में नगरों की ओर आप्रवास कर रहे हैं। इससे बड़े शहरों में झुग्गी–झोपड़पट्टी का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है एवं अधिक जनसंख्या के लिए अधिक आवासीय निर्माण व अधिक संसाधनात्मक प्रयोग किया जा रहा है।
8. **संसाधनों का अतिप्रयोग व अभाव** : समाज का धनाढ्य पक्ष तो संसाधनों की बर्बादी करने पर तुला है तथा दूसरा पक्ष संसाधनों की विपन्नता से जूझ रहा है। आर्थिक व सामाजिक विषमता बढ़ती ही जा रही है।
9. **प्राकृतिक आपदाएं** : बाढ़, सूखा/अकाल, चक्रवात्, अतिवृष्टि, भूकंप, ज्वालामुखी, अम्लवर्षा एवं ओज़ोन–लोपन से भी पर्यावरणीय विघटन होता है।
10. **आकस्मिक पर्यावरण–परिवर्तन** : वैश्विक तापोन्नयन, अप्रत्याशित मौसम–परिवर्तन, मरुस्थलीकरण, महासागर–स्तरवृद्धि पर्यावरणीय विघटन के प्रमुख ऐसे कारक हैं जो ऐसे आकस्मिक पर्यावरण–परिवर्तनों के रूप में हो सकते हैं जिनसे पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है।
11. **जैविक संकट** : पेड़ों की कटाई, जंतु–आखेट, जैविक अपशिष्टों की निकासी, वायु व जल का संदूषण, विषाण्विक व जीवाण्विक महामारी ऐसे कारक हैं जिनसे पर्यावरण का विघटन होता है। मृदा की उर्वरता घटने से उत्पादकता घट जाती है।

टिप्पणी

12. **घरेलू अस्थिरता** : इसके परिणामस्वरूप आर्थिक अवसरों में कमी आती है।

13. **अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थियों की समस्या** : वर्तमान में देश की कुल जनसंख्या एक अरब इक्कीस करोड़ है। इस जनसंख्या में बांग्लादेश व सिंध (पाकिस्तान) से आकर बसने वाले लोग भी सम्मिलित हैं जो कि भारत के सीमावर्ती समुदायों के मुख्य भाग हैं। इनके कारण भारत की जनसंख्या और अधिक हो जाती है, साथ ही में भारतीय संसाधनों पर विदोहित किये जाने का भार भी अधिक बढ़ जाता है, इस प्रकार देश का आर्थिक संतुलन भी दुष्प्रभावित हो रहा है।

14. **अप्रत्याशित मौसम–व्यवहार** : चूंकि पर्यावरणीय संतुलनों को बाधित किया जा चुका है, अतः मौसमों में परिवर्तन अप्रत्याशित व आश्चर्यजनक रूप में होते दिख रहे हैं। दिन का तापक्रम अत्यधिक व रात्रि का अत्यल्प हो जाता है। इसी प्रकार शीतकाल में मूसलाधार वर्षा हो जाती है, ये वर्तमान अप्रत्याशित भारतीय मौसमी परिवर्तनों अर्थात् मौसम–असंतुलन के कुछ उदाहरण हैं।

15. **पर्यावास नाश एवं प्रजाति–विलुप्ति** : प्रकृति के असंतुलन, रहने के स्थान की कमी, वायु व जल प्रदूषण में निरंतर वृद्धि, आखेट, खाद्यान्न अल्पता, जलवायु में तीक्ष्ण परिवर्तनों के कारण प्रतिदिन–प्रतिरात्रि अनेक प्रजातियां विलुप्त होती जा रही हैं।

16. **समुद्रस्तर में वृद्धि** : वैश्विक तापोन्नयन के कारण हिमनद (ग्लैशियर्स) पिघलते जा रहे हैं। इससे समुद्र का जलस्तर ऊपर उठ रहा है। स्तर बढ़ने से होने वाली हानि में मुम्बई महानगर सहित विश्व के अनेक देश पूरे के पूरे जलमग्न होने की कगार पर दिख रहे हैं।

17. **पेयजल न्यूनता** : पानी के सार्वजनिक वितरण व इसकी खपत में अत्यधिक विषमता व अनियमितताएं हैं। विभिन्न देशों में प्रतिव्यक्ति जल–उपभोग पृथक–पृथक दर्ज किया गया है, जैसे– यूनाइटेड स्टेटः 2300 m^3 प्रतिवर्ष, कनाडाः 1500 m^3 प्रतिवर्ष, ब्रिटेनः 225 m^3 प्रतिवर्ष। भारत सरीखे विकासशील देशों में जल का औसत प्रतिव्यक्ति उपभोग 20 से 40m^3 है। पेयजल की अल्पता जल–संसाधनों के अतिदोहन एवं जलप्रदूषण के कारण है।

18. **वैश्विक तापोन्नयन** : वाहनों व उद्योगों के निकाली गयी गैसों एवं खतरनाक रसायनों के प्रयोग के कारण वायुमंडलीय तापक्रम असाधारण रूप से बढ़ रहा है व इससे वैश्विक तापोन्नयन हो रहा है।

19. **अम्लवर्षा** : धुएं के साथ निकली विभिन्न गैसों से वायु में कार्बन अंशों का परिमाण बढ़ जाता है। मेघों से नीचे आ रहा जल वायुमंडलीय गैसों कार्बन डाई–ऑक्साइड व सल्फ़र डाई–ऑक्साइड जैसी गैसों से मिल जाता है। इस प्रकार वायु में ही अम्लों का निर्माण हो जाता है। अम्लवर्षा से मानव व प्राकृतिक पर्यावासों सहित फसलों को क्षति पहुंचती है।

20. **मरुस्थलीकरण** : पेड़ों की अत्यधिक कटाई, औद्योगिकीकरण किये जाने एवं हरित भूमि को व्यावसायिक अथवा अन्य प्रकार के कृत्रिम साधन में रूपांतरित

टिप्पणी

कर दिए जाने से समूचा विश्व विध्वंस की ओर बढ़ चला है। नैसर्गिक भू–स्थलों को वनविहीन करके खेत बनाये जा रहे हैं अथवा मानव–बसाहट की जा रही है। प्राकृतिक वनों को उजाड़कर प्रकृति के भीषण असंतुलन को आमंत्रित किया जा रहा है।

21. **तीक्ष्ण रोग** : हरियाली भरे निर्मल क्षेत्रों की कमी से स्वास्थ्यप्रद स्थितियों की उत्पत्ति नहीं हो सकती; झोपड़ियों का विस्तार करने व अतीव जनसंख्या के कारण विषाण्विक एवं जीवाण्विक संक्रमण तीव्रता से फैल रहे हैं। वनस्पतियों, पशु–पक्षियों सहित मनुष्यों में ये महामारी का रूप धारण कर रहे हैं जिससे स्वस्थ जंतुओं व पादपों के भी संक्रमित हो जाने की आशंका बलवती हुई है।

22. **भू एवं मृदा का क्षरण** : उर्वर भूमि अब मानव बसाहटों व औद्योगिक परिसरों में तीव्रता से परिणत की जा रही है। अत्यधिक फसलें उगाने, रसायनों के प्रयोग, अनुपयुक्त सिंचन–पद्धति अपनाने से भी उर्वर भूमि अनुर्वर होती चली जाती है। इससे फसल–उपज घटने के साथ राष्ट्र की अर्थव्यवस्था बिगड़ती है।

23. **पर्यावरणीय नस्लवाद** : पर्यावरणीय नस्लवाद भी पर्यावरण–विघटन का एक कारण है। इस अवधारणा के अनुसार विगत कुछ शताब्दियों में विकसित विश्व द्वारा पर्यावरण का विघटन किया गया है। इस प्रकार इस दुर्दशा का उत्तरदायी पाश्चात्य विकास एवं सभ्यता है जबकि विकासशील देश व तृतीय विश्व के देश विकास की आरंभिक स्थितियों में हैं। इन देशों पर भी विश्व में प्रदूषण–स्तर बढ़ाने के आरोप लगाये जाते रहे हैं।

24. **आर्थिक अवसर घटनाः** कृषि–भूमि को भी मरुस्थलों, मानव–बसाहटों व उद्योगों में बदला जा रहा है एवं ग्राम्य नागरिक नगरीय क्षेत्रों की ओर बढ़ चले हैं। लोगों के इस अत्यधिक अभिमगन अथवा पलायन से बेरोज़गारी उत्पन्न होती व बढ़ती भी है। संसाधनात्मक आधार के विघटन से उत्पादन में गिरावट आती है व अंततः आय घट जाती है। इस प्रकार खाद्य उपलब्धता घटने से कुपोषण की आशंका घेर लेती है। इससे पुरानी व नयी समस्याओं का एक जाल–सा बन जाता है।

    इस प्रकार संसाधनात्मक आधार में कमी आने अथवा/एवं विघटन से मृदा (जहां कारखानों व आवासीय निवहों की स्थापना अब तक नहीं की गयी है) की उर्वरता घटती है जिससे उपज में कमी आने लगती है। रासायनिक खेतों से रिसकर आए संदूषित जल से दूर–दूर तक का जलीय जीवन भी दुष्प्रभावित हो जाता है। आय व संपत्ति–सृजन के मुख्य साधनों के विघटन के कारण श्रमिक अधिक उत्पादक गतिविधियों को खोजने के लिए लघु वनोपज पर ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं। इस प्रकार वनों पर दबाव में और वृद्धि हो जाती है। जैव–द्रव्यमान में इस प्रत्यक्ष कमी से हमें ऐसे खाद्य उत्पाद प्राप्त होते हैं जिनका पोषणात्मक मान कम होता है। बार–बार अकाल/सूखा पड़ने अथवा अन्य विकट आपदाओं के कारण भी जनसाधारण खाद्य–सुरक्षा से वंचित होते चले जाते हैं।

पर्यावरणीय विघटन से बचाव के चरण

टिप्पणी

पर्यावरण के प्रति जन–जागृति के स्वरूप में परिवर्तन देखा जा रहा है। हम सबको यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि–

(अ) जिस भंगुर पर्यावरण पर हम आजीवन निर्भर हैं उसे अनदेखा व अतिदोहित किया जा रहा है तथा अब इसकी वहनीयता पर ज़ोर देना एवं नैसर्गिक गौरव को पुनर्स्थापित करना अत्यावश्यक हो गया है।

(आ) पर्यावरण प्रत्यक्ष रूप में हमसे सम्बद्ध है इसलिए धरती के प्रति हमें अपने उत्तरदायित्वों को निभाना चाहिए। हमें समूहों, सहकारी संस्थाओं, ग्राम विकास संघों व अन्य समुदायों के रूप में गठित होकर प्रकृति का रक्षण व संवर्द्धन करना चाहिए।

पर्यावरणीय विघटन को रोकने के लिए निम्नांकित कदम उठाये जाने चाहिए–

1. विघटित भूमि का जीर्णोद्धार।
2. औद्योगिक संस्थापनाओं के स्वरूप में परिवर्तन (उदाहरणार्थ पारि–अनुकूल स्थापना व संचालन पद्धतियां अपनायी जाएं)।
3. पुनर्वनीकरण कार्यक्रम।
4. अक्षय ऊर्जा संसाधनों के उपयोग की व्यवस्था।
5. लोक–जागरण।
6. पाठ्यक्रमों में पर्यावरण–संबंधी विषयों का समावेशं
7. भिन्न–भिन्न अंचलों के लिए प्रतिक्रियाप्राप्ति–व्यवस्था।
8. संरक्षण व संवर्द्धन हेतु समस्त स्तरों पर विधान–निर्माण व यथा आवश्यकता संशोधन।
9. प्रौद्योगिक व वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार–प्रसार।
10. अपशिष्ट–निपटान के विकल्प (उदाहरणार्थ जल में न बहाकर स्थानीय स्तर पर पुनर्चक्रण) एवं अपशिष्ट सामग्री प्रबंधन।
11. ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर अंकुश व नियंत्रण।
12. आंचलिक एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिकाएं।
13. जागृति लाने में जनसंचार एवं प्रिण्ट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका।
14. विकासशील पर्यावरण–समर्थक नीतियों में शासन(केंद्र व राज्य शासनों) की भूमिका।
15. भू–तापीय, भू–अभियांत्रिकी, वाहनों व कारखानों में निस्यंदक (फ़िल्टर्स) व 'उत्प्रेरकी परिवर्तक' (कॅटेलाइटिक कन्वर्टर्स) अपनाने जैसी नवीन युक्तियों के अनुप्रयोग।
16. ऊर्जा के वैकल्पिक व अपारंपरिक स्रोत।

टिप्पणी

17. सल्फ़र डाई–ऑक्साइड को समतापमंडल (स्ट्रेटोस्फ़ियर) में छोड़े जाने को निषिद्ध करना।
18. आपदाओं में कमी लाने व मूल्यांकन के लिए लोगों में पारस्परिक संवाद प्रेरित करना।
19. मानव जीवन व वन्य जीवन पर योजनाओं, परियोजनाओं, बांधों, कुंडों (रिज़र्वोयर्स), कारखानों एवं निर्वनीकरण के प्रभावों का मूल्यांकन।
20. नैतिक व धार्मिक मूल्यों के प्रसार के लिए शिक्षा में विशेष प्रावधान।
21. सर्वसाधारण की संपूर्ण जागृति एवं संसाधनों के मितव्ययी उपभोग व इष्टतम आर्थिक मूल्य के संदर्भ में शिक्षा–व्यवस्था।

'पर्यावरणीय प्रबंधन योजना'(EMP) में पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाये रखने के निम्नांकित चरण सम्मिलित हैं–

- प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों के कारकों को समाप्त करना व वर्तमान प्रभावों का शमन।
- दुर्घटनाओं एवं आपदाओं से संबंधित अग्रिम तैयारी की योजनाएं।
- पुनर्वास व जीर्णोद्धार की योजनाएं।
- आवश्यक सुरक्षात्मक उपायों के क्रियान्वयन के संबंध में निगरानी एवं प्रतिक्रिया–प्राप्ति की व्यवस्था।

पर्यावरणगत दुष्प्रभावों को न्यूनतम करने के लिए निम्नांकित उपाय अपनाये जाने चाहिए–

- पुनर्चक्रण–अवशिष्ट व अपशिष्ट उत्पादों का पुनर्संस्करण/पुनर्प्रक्रमण करके पुनर्प्रयोग, उदाहरणार्थ कागज़ व प्लास्टिक का पुनर्प्रयोग।
- प्रतिबंध– प्रदूषणकारी इंजिन ढांचों पर प्रतिबंध तथा वनक्षेत्रों में जीवाश्म ईंधन–चालित वाहनों का निषेध।
- संगठनात्मक नियंत्रण– समूहों की प्रत्यक्ष एवं अहिंसक गतिविधियां।

पर्यावरण के महत्व एवं इसके संरक्षण की महती आवश्यकता के प्रति जागृति बढ़ी है। विकासशील देशों में निर्धनता की समस्या के प्रति लोगों की धारणाओं में परिवर्तन की बयार दिख रही है।

इस संदर्भ में 'पर्यावरण एवं विकास विश्व आयोग' की 'विश्व संरक्षण रणनीति (सन् 1984) रिपोर्ट– हम सबका भविष्य में एजेंडा 21' प्रस्तुत किया गया जिससे 170 राष्ट्र सहमत दिखे। इसे जून, 1992 में रियो, ब्राज़ील में आयोजित 'यूनाइटेड नेशन्स पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन' में अपनाया गया।

एजेंडा 21 में वैश्विक पर्यावरण से संबंधित सभी क्षेत्रों/विषयों को सम्मिलित किया गया है। इसमें ऐसे भिन्न क्षेत्रों का भी समावेश किया गया जिनके प्रयोग से पर्यावरण–अनुकूल विकास–नीतियों को बढ़ावा दिया जा सकता है। निर्धनता,

उपभोग–प्रवृत्तियां, जनसांख्यिकीय गतिकी, निर्वनीकरण एवं मरुस्थलीकरण इत्यादि विषय इसमें सम्मिलित किये गए हैं।

एजेंडा 21 में सुझाए गए अधिकांश परामर्श निम्नांकित हैं–

टिप्पणी

- मानव–स्वास्थ्य स्थितियों की सुरक्षा व बढ़ावा देना।
- निर्णायक (निर्णयन) स्तर पर पर्यावरण एवं विकास का समाकलन/एकीकरण।
- वायुमंडल की सुरक्षा।
- निर्वनीकरण का निराकरण।
- भंगुर पारिस्थितिक तंत्रों को संभालना; मरुस्थलीकरण व अकाल से निपटना।
- वहनीय पर्वत विकास।
- वहनीय कृषि एवं ग्रामीण विकास को बढ़ाना देना।
- जैव–वैविध्य का संरक्षण।
- जैव–प्रौद्योगिकी का पर्यावरण–अनुकूल प्रबंधन।
- महासागरों, समस्त प्रकार के समुद्रों एवं समुद्रतटीय क्षेत्रों की सुरक्षा; इनके सजीव संसाधनों का तर्कसंगत उपयोग व विकास।
- लवणमुक्त जल–संसाधनों की गुणवत्ता की सुरक्षा एवं विकास के एकीकृत प्रयास अपनाना तथा विषाक्त रसायनों का प्रबंधन जिसमें विषाक्त व ख़तरनाक उत्पादों का अवैध अंतर्राष्ट्रीय व्यापार रोका जाना सम्मिलित है।
- संकटकारी अपशिष्टों का पर्यावरण–अनुकूल प्रबंधन जिसमें संकटकारी अपशिष्टों के अवैध वैश्विक आदान–प्रदान को रोकना सम्मिलित है।
- ठोस अपशिष्टों व मलजल–संबंधी मुद्दों का पर्यावरण–अनुकूल प्रबंधन।
- रेडियोएक्टिव अपशिष्टों का सुरक्षित व पर्यावरण–अनुकूल प्रबंधन।
- वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक समुदायों की स्थापना व संचालन।
- कृषकों की भूमिका का सुदृढ़ीकरण।
- पर्यावरण–अनुकूल प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण।
- वहनीय विकास हेतु विज्ञान का सहयोग।
- जन–जागृति हेतु शिक्षा एवं प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करना।
- भू–संसाधनों के नियोजन एवं प्रबंधन की एकीकृत योजना।

2.2.3 बढ़ती आय और बढ़ती असमानता

असमानता के वास्तविक स्तर को हमारे नहीं जानने का मुख्य कारण यह है कि भारत में आय/संपत्ति वितरण का ऊपरी हिस्सा बिल्कुल रहस्यमय है। सर्वेक्षक समृद्ध या अति समृद्ध लोगों के घरों या अपार्टमेंट में जाकर उनसे उनकी आय या संपत्ति के बारे में पूछने में सक्षम नहीं होते हैं। यहां तक कि अगर किसी चमत्कार से कोई सर्वेक्षक

टिप्पणी

ऐसा करने में सफल रहे, तो यह उम्मीद करने का कोई कारण नहीं है कि उन्हें सच बताया जाएगा। इसलिए सर्वेक्षण आंकड़े के आधार पर असमानता पर सभी तर्क बेकार हैं, यह एक डुबकी लगाकर सागर की गहराई मापने जैसा है। कर (Tax) के आंकड़े कुछ जानकारियां देते हैं, लेकिन वे आबादी के एक छोटे हिस्से को कवर करते हैं और कुख्यात रूप से वे 'चुप्पी साधने' की ओर उन्मुख होते हैं। चूंकि किसी भी समाज में असमानता का विस्तार ऊपरी हिस्से की चोरी से प्रेरित होता है, तथ्य यह है कि इस पर भरोसेमंद जानकारी कम है, जिसका मतलब है कि भारत में असमानता की सच्चाई के बारे में हम अंधेरे में हैं। वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था COVID–19 महामारी की तबाही से धीरे–धीरे उबर रही है। हालांकि विश्व के अलग–अलग देशों और देशों के विभिन्न हिस्सों द्वारा इस चुनौती से उबरने की प्रक्रिया में भारी असमानता देखने को मिली है। COVID–19 महामारी के बाद विश्व के अधिकांश देशों में आर्थिक असमानता में तीव्र वृद्धि देखी गई है। इस तथ्य को ऑक्सफैम की हालिया रिपोर्ट के आधार पर समझा जा सकता है। जिसके अनुसार, विश्व के शीर्ष 1,000 सबसे धनी लोग COVID–19 महामारी के कारण हुई आर्थिक क्षति से सिर्फ 9 माह में उबरने में सफल रहे हैं, जबकि विश्व की सबसे गरीब आबादी को इस महामारी के दुष्प्रभाव से उबरने और पूर्व COVID–19 स्थिति को प्राप्त करने में एक दशक का समय लग सकता है। इस संदर्भ में विश्व आर्थिक मंच ने 'द ग्रेट रीसेट ऑफ कैपिटलिज़्म' नामक एक पहल का प्रस्ताव रखा है। WEF के अनुसार, यह अधिक निष्पक्ष, स्थायी और लचीले भविष्य के लिये हमारी आर्थिक तथा सामाजिक प्रणाली की नींव को संयुक्त और तात्कालिक रूप से स्थापित करने की प्रतिबद्धता है। पूर्व में भी इस प्रकार के आदर्श वाक्य जारी किये गए थे, हालांकि यह नव–उदारवादी आर्थिक व्यवस्था का जोखिम है जो विश्व भर में असमानताओं को बढ़ा रहा है।

हम जिन आंकड़ों पर लड़ते हैं, उसकी सीमाओं के कुछ उदाहरणों पर विचार करें। सबसे पहली बात है कि भारत सरकार आय का आंकड़ा संगृहीत नहीं करती है। वह खर्च का आंकड़ा जुटाती है। 2011–12 के चरण में (ताजा उपलब्ध आंकड़ा) एनएसएसओ के सैंपल में सबसे अधिक खर्च करने वाला समूह शीर्ष पांच फीसदी शहरी भारतीय था। इस सर्वाधिक खर्च करने वाले समूह का औसत खर्च प्रति वर्ष 1,23,000 रुपये था, जो 2,300 डॉलर से भी कम है। यह साफ तौर पर बेतुका है। आय का एकमात्र भरोसेमंद राष्ट्रव्यापी आंकड़ा भारत मानव विकास सर्वे (आईएचडीएस) द्वारा एकत्रित आंकड़े को माना जाता है। आईएचडीएस के 2004–05 के सर्वे में करीब 43,000 परिवारों में से उच्च आय वाले व्यक्ति की सालाना आय 22 लाख रुपये से कम थी, जो अभी के हिसाब से 48,000 डॉलर होती है। यह भी विश्वसनीय नहीं है। ऐसा लगता है कि आईएचडीएस सर्वे में शीर्ष एक से दो फीसदी कमाई करने वालों को छोड़ दिया गया। एनएसएसओ सर्वे में और भी ज्यादा लोगों को छोड़ा गया, संभवतः शीर्ष पांच फीसदी को पूरी तरह से। संपत्ति से संबंधित आंकड़ा उतना ही समस्याग्रस्त है। वह एनएसएसओ के अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वे (एआईडीआईएस) से आता है। बड़ी समस्या यह है कि एआईडीआईएस जमीन का मूल्य कैसे निर्धारित करता है, जो उनकी गणना के अनुसार 85 फीसदी संपत्ति बनाता है। लेकिन हम यहां उसकी चर्चा नहीं करते हैं, बल्कि इस तथ्य पर ध्यान देते हैं कि भारत की आधिकारिक संपदा सर्वेक्षण में भारत के समृद्धों पर कोई जानकारी नहीं है। मसलन, पिछले दशक में जब

भारतीय शेयर बाजार में तेजी आई, एआईडीआईएस के आंकड़े दिखाते हैं कि शेयर का वजन वास्तव में कुल संपत्ति का 0.13 फीसदी (एक फीसदी का दसवां हिस्सा) तक नीचे चला गया। यह सीधे तौर पर विश्वसनीय नहीं है।

टिप्पणी

यदि कुल आबादी की आय और संपत्ति अज्ञात है, तो अनिवार्य रूप से इसकी उप–आबादी (धर्म, जाति और जनजाति) की आय और संपत्ति भी अज्ञात है। इसका अर्थ है कि दशकों की सामाजिक नीति और आरक्षण पर संघर्ष उनके भौतिक प्रभावों के अल्प या शून्य जानकारी पर आधारित है। सर्वोत्तम उपलब्ध सबूत त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि ऊपरी हिस्से के बारे में कोई जानकारी नहीं है, पर उस त्रुटिपूर्ण सूचना से भी पता चलता है कि अगड़ी और पिछड़ी जातियों के बीच खाई बहुत चौड़ी है और बढ़ती जा रही है। असमानता के बारे में अभी जो जानकारी है, उसका इस्तेमाल जटिल हो सकता है। असमानता संबंधी उचित जानकारी मौजूद नहीं है। असमानता संबंधी उपयोग योग्य जानकारी के अभाव में सभी पक्षों को मनमाने दावे करने का हक मिल जाता है। तथ्यों का नहीं होना उनके लिए सुविधाजनक है, क्योंकि तथ्यों की कमी उन्हें लक्षित वर्ग को अपील करने की अनुमति देती है। असमानता पर अज्ञानता सभी के लिए राजनीतिक परमानंद है।

असमानताओं का सामान्यीकरण

विश्व भर में कई प्रमुख अर्थशास्त्रियों द्वारा बढ़ती असमानताओं को आर्थिक विकास, जिससे संपूर्ण गरीबी में कमी आई है, के एक अपरिहार्य उपोत्पाद के रूप में सही ठहराने का प्रयास किया जाता है।

- इसके अतिरिक्त असमानता के बारे में उठाई जा रही चिंताओं को भी आसानी से समाजवाद प्रेरित विचारों के रूप में अस्वीकार किया जा सकता है, जिसे लोकतंत्र के लिये खतरा माना जाता है।
- इसके कारण पूंजी और श्रम के बीच धन का वितरण इतना अधिक एकतरफा हो गया है कि यह श्रमिकों को लगातार निर्धनता की ओर धकेलता जा रहा है, जबकि धनी लोगों की संपत्ति में लगातार वृद्धि हो रही है।
- इसके अतिरिक्त लिंग, जाति और अन्य कारकों के आधार पर होने वाले भेदभाव के कारण आय और अवसरों के मामलों में बढ़ती असमानता कुछ वर्गों को असमान रूप से प्रभावित करती है।

एकाधिकार का निर्माण

बाज़ार प्रतिस्पर्द्धा के प्रति अपनी कथित प्रतिबद्धता के बावजूद नव–उदारवाद के आर्थिक एजेंडे ने प्रतिस्पर्द्धा की गिरावट और अर्थव्यवस्था के विशाल क्षेत्र (जैसे–फार्मास्यूटिकल्स, दूरसंचार, एयरलाइंस, कृषि, बैंकिंग, औद्योगिक, खुदरा आदि) में शक्ति के एकाधिकार को बढ़ावा दिया है।

अस्थायी आर्थिक विकास

वर्तमान में आर्थिक विकास के प्रमुख लक्षणों में से एक ऊर्जा उपयोग का तीव्रता से बढ़ना है।

टिप्पणी

- इन आर्थिक गतिविधियों को गति प्रदान करने के लिये अधिकांश ऊर्जा गैर–नवीकरणीय स्रोतों से प्राप्त की जाती है।
- विकसित विश्व का प्राथमिक उद्देश्य विश्व भर के विभिन्न हिस्सों से ऊर्जा–उत्पादक संसाधनों की खोज करना और उनका उपयोग अपनी जीडीपी की वृद्धि को अधिक ऊंचाइयों पर पहुंचाने के लिये करना है।
- यह अस्थायी आर्थिक विकास मॉडल सतत् विकास की अवधारणा के खिलाफ है, क्योंकि यह वर्तमान पीढ़ी के कल्याण हेतु भविष्य की पीढ़ियों की ज़रूरतों की अनदेखी कर देता है।

नॉर्डिक आर्थिक मॉडल

धन के पुनर्वितरण को अधिक न्यायसंगत बनाने के लिये वर्तमान नव–उदारवादी मॉडल को 'नॉर्डिक आर्थिक मॉडल' द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

नॉर्डिक आर्थिक मॉडल में सभी के लिये प्रभावी कल्याण सुरक्षा नेट, भ्रष्टाचार मुक्त शासन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा का मौलिक अधिकार, अमीरों के लिये उच्च कर इत्यादि शामिल हैं।

पूंजीवाद का 4 (P) पी मॉडल

केवल बयानबाज़ी के बजाय, नए पूंजीवाद मॉडल को 4P अर्थात् लाभ (Profit), लोग (People), ग्रह (Planet), प्रयोजन (Purpose)) पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये और यह सुनिश्चित करने का दायित्त्व सरकार का होना चाहिये कि कॉर्पोरेट द्वारा इस मॉडल का पालन किया जाए।

20वीं शताब्दी के विपरीत भारत वैश्विक पूंजीवाद के लिये नए नियमों के निर्धारण और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के पुनर्गठन में सक्रिय रूप से योगदान कर सकता है तथा भारत को इस दिशा में अवश्य ही कदम बढ़ाना चाहिये। इसके अतिरिक्त जैसे–जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था के समक्ष यह नया बदलाव (द ग्रेट रीसेट) खुलकर सामने आता है तो इसके साथ ही भारत को भी अपनी अर्थव्यवस्था और समाज में आवश्यक सुधार करना होगा ताकि इसे अधिक न्यायसंगत, टिकाऊ एवं तीव्र वाह्य परिवर्तनों का मुकाबला करने में सक्षम बनाया जा सके।

अपनी प्रगति जांचिए

1. पूंजीवाद और सामंतवाद की मिश्रित अर्थव्यवस्था को क्या कहा जाता है?
   (क) उपनिवेशी अर्थव्यवस्था (ख) अर्द्धसामंती अर्थव्यवस्था
   (ग) पिछड़ी अर्थव्यवस्था (घ) आर्थिक गतिहीनता
2. वैश्विक पर्यावरण से संबंधित विषयों को किस एजेंडा में सम्मिलित किया गया है?
   (क) एजेंडा–18 (ख) एजेंडा–20
   (ग) एजेंडा–21 (घ) इनमें से कोई नहीं

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा

टिप्पणी

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे–वैसे उनकी आवश्यकता भी बढ़ती चली गई। उन आवश्यकताओं की पूर्ति का मूल आधार उनका परिवार, समाज और राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था है। आर्थिक व्यवस्था युवा कारक है जो व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का अवसर प्रदान करती है। आज के समय में आर्थिक विकास ही एक राष्ट्र की प्राथमिक एवं मौलिक समस्या है। बच्चों के सभी राष्ट्र आज इस कोरोना जैसी महामारी के कारण आर्थिक समस्याओं से जूझ रही है। अर्ध विकसित राष्ट्र आज के दौर में आर्थिक स्थिति को सुधारने एवं वृद्धि कर अपना जीवन स्तर को ऊपर उठाने में प्रगतिशील है। वहीं दूसरी ओर विकसित राष्ट्र भी अपने जीवन स्तर तथा राष्ट्रीय आय को और अधिक बढ़ाने में प्रयासरत हैं। जिससे विश्व में अपना प्रभुत्व बनाए रखने में कामयाब हो पाए। शिक्षा समाज का एक अभिन्न अंग है जिसका मूल्य प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक समाज की व्यवस्था एवं इस संगठन में सहयोग करती आ रही है। प्राचीन काल से ही भारत कृषि जैसे मुख्य कार्यों द्वारा अपना आर्थिक स्थिति निरंतर बढ़ाने में सक्षम हो सकी है। क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। आदिकाल में शिकारी अर्थव्यवस्था में स्वयं स्वीकार कर अपना जीवन यापन करते थे अतः इस काल में शिक्षा की व्यवस्था विकसित नहीं थी। उन्हें यह भी पता नहीं था जीवन क्या है, जीवन स्तर क्या होता है, सकल घरेलू उत्पाद क्या है, अर्थव्यवस्था क्या है, इन सभी सवालों से यह पता चलता है कि वह अपना जीवन घुमंतू की तरह व्यतीत करते थे। कुछ समय पश्चात घुमंतू जीवन को त्याग कर स्थाई रूप से रहना शुरू कर दिया, नदियों के किनारे कृषि एवं मवेशियों का पालन करना शुरू कर दिया, धीरे–धीरे नदी के कारण वहां सिंचाई की व्यवस्था उपलब्ध हो पा रही थी एवं वह मवेशियों का पालन एवं कृषि से अपना जीवन यापन करना संभव कर सकें। यह देखा गया कि कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत यहीं शिक्षा का प्रारंभ हुआ और आदि काल में शिक्षा ही अर्थव्यवस्था का आधार बनी हुई है। शिक्षा सामाजिक विकास में अपना महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है क्योंकि शिक्षा विकास की प्रक्रिया है। शिक्षा ही बच्चों की आंतरिक गुणवत्ता की प्रकृति को बाहर निकालती है और इसका उपयोग समाज में आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक गुणवत्ता में और भी विकास करने में सफल हो सका है। आज मानव जीवन में शिक्षा के महत्व की विभिन्न विकृतियों से तुलना की जा सकती है जो बीज से वृक्ष बनने तक वातावरण को निर्मित करती है, जो उसके पूर्ण विकसित व्यक्तित्व के लिए आवश्यक होता है। अतः शिक्षा आर्थिक विकास की नींव है, इसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक वातावरण का निर्माण होता है और अंततोगत्वा वह राष्ट्र के विकास एवं हित में उपयोगी सिद्ध होता है।

2.3.1 कृषि क्षेत्र और शैक्षिक संबंध

आजादी के समय कृषि की अवस्था काफी दयनीय थी तथा खेती करने के तरीके भी पुराने थे। किसान के जीवन निर्वहन का एकमात्र साधन कृषि हुआ करता था। इसीलिए भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है। वही सबसे अधिक सकल घरेलू उत्पाद अर्थात जीडीपी में भी इसका अधिकतम सहयोग है। ग्रामीण भारत की 80% से अधिक आबादी

टिप्पणी

के लिए कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियां आजीविका के मुख्य स्रोत के रूप में कार्य करती हैं। यह लगभग 52% श्रमिकों को रोजगार प्रदान करता है। सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में इसका योगदान 14 से 15% के बीच है। स्वतंत्रता के समय, भारत को खाद्यान्न की कमी का सामना करना पड़ा। भारत ने 1966 से कृषि क्षेत्र में शानदार विकास हासिल किया है। भारत आज जनसंख्या वृद्धि के बावजूद अधिकांश खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर है।

भारत का खाद्यान्न उत्पादन 1950 में 51 मिलियन टन से बढ़कर 2016–17 में लगभग 273.38 मिलियन टन रिकॉर्ड हो गया। यह वृद्धि अपने आप में विश्व कृषि के इतिहास में एक उल्लेखनीय उपलब्धि का प्रतिनिधित्व करती है। भारत ने हरी, सफेद, नीली और पीली क्रांतियों के कारण कृषि, दूध, मछली, तिलहन, फलों और सब्जियों में महत्वपूर्ण वृद्धि हासिल की है । ये सभी क्रांतियां किसानों के लिए समृद्धि लाई हैं। इन उपलब्धियों के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं जैसे कि अनुकूल सरकारी नीतियां, किसानों की ग्रहणशीलता और उच्च कृषि शिक्षा संस्थानों की स्थापना।

भारत में कृषि शिक्षा के इतिहास का पता मध्यकाल से लगाया जा सकता है जब कृषि के अध्ययन को नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में शामिल किया गया था। हालांकि, कृषि शिक्षा में औपचारिक पाठ्यक्रम केवल 20वीं शताब्दी की शुरुआत में शुरू हुए, जब 1905 में कानपुर, लायलपुर (अब पाकिस्तान में), कोयंबटूर और नागपुर में, 1907 में पुणे में और 1908 में सबौर में सामान्य विश्वविद्यालयों के तहत छह कृषि महाविद्यालय स्थापित किए गए। आजादी के बाद, भारत सरकार ने एक व्यापक योजना प्रक्रिया शुरू की। व्यवस्थित विकास सुनिश्चित करने के लिए, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर), जो पूरे देश में कृषि में अनुसंधान और शिक्षा के समन्वय, मार्गदर्शन और प्रबंधन के लिए शीर्ष निकाय है, ने नेतृत्व किया और 1966 में भारत में कृषि विश्वविद्यालयों के लिए पहला मॉडल अधिनियम तैयार किया और स्थापना को प्रोत्साहित किया। अनुसंधान, विस्तार और शिक्षा सहायता के लिए विशेष राज्य कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना। देश में पहला कृषि विश्वविद्यालय 1960 में पंतनगर (अब उत्तराखंड) में स्थापित किया गया था, जिसने इसके लिए मार्ग प्रशस्त किया। अन्य राज्यों में कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना। वर्तमान में, 73 कृषि विश्वविद्यालय (एयू) हैं जिनमें पांच मानद विश्वविद्यालय, दो केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय और कृषि संकाय के साथ चार केंद्रीय विश्वविद्यालय शामिल हैं। छात्रों की प्रवेश क्षमता, जो 1960 में 5,000 से कम थी, अब 40,000 हो गई है। लगभग 350 संघटक कॉलेजों के साथ, ये एयू वार्षिक आधार पर, यूजी स्तर पर लगभग 25,000 छात्रों, मास्टर्स स्तर पर 15,000 से अधिक और पीएच.डी. कार्यक्रम में नामांकन लेना प्रारंभ कर दिया। इसके अलावा, कई निजी संबद्ध कॉलेज हैं जो सालाना हजारों छात्रों का नामांकन करते हैं। वर्तमान आईसीएआर–कृषि विश्वविद्यालयों (एयू) प्रणाली के तहत शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार के लिए लगभग 23,000 वैज्ञानिक हैं। 11 यूजी विषयों और 93 विषयों में डिग्री पाठ्यक्रम अभ्यास सत्रों पर हाथों के माध्यम से सीखने पर जोर देने के साथ पीजी स्तर की पेशकश की जाती है। लगभग 52 प्रतिशत छात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि से हैं और 36 प्रतिशत लड़कियां हैं।

कृषि में विभिन्न तरीके से शिक्षा का प्रयोग कर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इसी में शिक्षा की प्रमुख भूमिका कुछ इस प्रकार है:

टिप्पणी

1. फसल चक्र का ज्ञान
2. रासायनिक उर्वरक का प्रयोग करने की विधि का ज्ञान
3. उर्वरक का निर्माण एवं उसका प्रयोग
4. जलवायु के अनुसार बीजों का निर्माण
5. भूमिगत जल का संरक्षण
6. आर्थिक एवं आवश्यक फसलों का उत्पादन
7. सिंचाई विधियों का ज्ञान
8. उच्च स्तरीय तकनीक का ज्ञान
9. ग्रामीण किसानों को कृषि शिक्षा द्वारा उनके उत्पादन में वृद्धि कराना

2.3.2 औद्योगिक क्षेत्र और शैक्षिक संबंध

औद्योगिक व्यवस्था राष्ट्र की सबसे बड़ी व्यवस्था होती है जिसके अंतर्गत अधिक से अधिक लोगों को रोजगार एवं लघु एवं बड़े उद्योगों से उनके जीवन का निर्वहन होता है। औद्योगीकरण एवं उसके विकास के लिए वहां के युवाओं एवं कुशल योग्य लोगों के बीच तकनीकी ज्ञान का होना अति आवश्यक है जिससे हम यह आकलन कर पाते हैं कि उस देश की विकास गति किस तरह से रोजगार एवं उत्पादन में बढ़ोतरी कर सकती है।

औद्योगिक अर्थव्यवस्था को मुख्य रूप से चार तरह से हम विभाजित कर सकते हैं:

समाजवादी अर्थव्यवस्था : इसके अंतर्गत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से उत्पादन पर निर्भर करती है। उत्पादन के सभी संसाधनों पर समाज का पूर्ण अधिकार होता है वही संचालन उत्पादन हेतु समाज के व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं कार्य करने के अनुसार पारिश्रमिक अर्थात वेतन दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी समाज एवं राज्य की प्रगति के लिए तत्पर रहता है जो भी बचत होती है उस पर देश का अधिकार होता है। इस प्रकार की अव्यवस्था में अधिकांशत लोग उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेते हैं। सभी का शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार होता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था : इस अर्थव्यवस्था के अंतर्गत देश के सभी व्यक्ति अपनी योग्यता एवं कार्य क्षमता के अनुसार धन कमाते हैं। इसमें राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति को बचत धन का उपयोग अधिक लाभ कमाने और आगे बढ़ने का पूरा अधिकार होता है। इस प्रकार कुछ लोग पूंजीपति और शेष लोग श्रमिकों का जीवन व्यतीत करते हैं। दोनों समाज यानी पूंजीपति एवं श्रमिक वर्ग के बीच बड़ी खाई रहती है। यह संपत्ति के असमान वितरण के कारण उत्पन्न होती है। कोई डिप्लोमाधारी, कोई डिग्रीधारी अगर होता है। उन दोनों के बीच एक श्रमिक का जो वेतन होता है इसका आकलन किया जाता है एवं पूंजीपति एवं श्रमिकों के बीच की खाई को समझना

टिप्पणी

एक जटिल कार्य है। समाज में पूंजीपतियों के पुत्र एवं पुत्रियां उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के लिए देश के सर्वोच्च संस्थानों और विदेशों में जाकर ग्रहण करते हैं। वही श्रमिक वर्ग की संतान उच्च शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाती है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में शिक्षा विशेष वर्ग के लिए ही सीमित रह जाती है।

साम्यवादी अर्थव्यवस्था : इस अर्थव्यवस्था में संपूर्ण उद्योगों पर राज्य का नियंत्रण होता है जो इनके लाभों को प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता अनुसार वितरित करता है। यह समाजवादी अर्थव्यवस्था का ही एक रूप होता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में शिक्षा दो प्रकार से दी जाती है। 1 वर्ष से लेकर 8 वर्ष तक के पाठ्यक्रम को पूरा करना इसमें आवश्यक होता है। इसमें गणित एवं विज्ञान की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता है एवं इसके पश्चात प्रत्येक छात्र को व्यावसायिक पाठ्यक्रम जिसे आईटीआई डिप्लोमा आदि का पूर्ण अध्ययन कराना आवश्यक होता है। उसके बाद इस पाठ्यक्रम से पाठ्य सहगामी क्रियाएं नहीं रहती हैं। जिसके अंतर्गत व्यक्ति प्रैक्टिकल नॉलेज लेकर या सीधे–सीधे औद्योगिक क्षेत्रों में प्रवेश कर वहां अपनी जीविकोपार्जन के लिए काम कर सकता है। औद्योगिक व्यवस्था राष्ट्र की सबसे बड़ी व्यवस्था होती है जिसके अंतर्गत अधिक से अधिक लोगों को रोजगार एवं लघु एवं बड़े उद्योगों से उनके जीवन का निर्वहन होता है। औद्योगीकरण एवं उसके विकास के लिए वहां के युवाओं एवं कुशल योग्य लोगों के बीच तकनीकी ज्ञान का होना अति आवश्यक है जिससे हम यह आकलन कर पाते हैं कि उस देश के विकास की गति किस तरह से रोजगार एवं उत्पादन में बढ़ोतरी कर सकती है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था : यह व्यवस्था पूंजीवादी, समाजवादी तथा साम्यवादी व्यवस्था का कहीं न कहीं मिला–जुला रूप है। इसमें सार्वजनिक और निजी उत्पादन क्षेत्रों को बांटा गया है। इस अवस्था में देश के महत्व के उद्योगों जैसे विद्युत, रेल, इस्पात, सुरक्षा, रसायन इत्यादि पर सरकार का नियंत्रण होता है। इसमें शिक्षा का दायित्व राज्य पर होता है। इस व्यवस्था को लोकतांत्रिक समाजवाद भी कहते हैं।

2.3.3 सेवा क्षेत्र और शैक्षिक संबंध

हाल ही में देश में नई शिक्षा नीति को लाया गया है। जिसमें मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा बहुत से ऐसे बदलाव किए गए हैं जिससे वर्तमान जीवन का आकलन किया जा सकता है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए मानवीय संसाधन बहुत ही महत्वपूर्ण है। जितना सक्षम व योग्य मानवीय संसाधन होगा उस देश का, उस राज्य का, उस क्षेत्र का उतना ही विकास होना निश्चित है। उनकी योग्यता, क्षमता, निपुणता, कौशल का विकास आदि करना अति आवश्यक है। इसका विकास शिक्षा के द्वारा ही संभव हो सकता है इसीलिए मानव को संसाधन बनाने के लिए शिक्षा एक ऐसी कड़ी है जो दोनों के बीच तालमेल बिठाकर रखती है। जितना अधिक मानव कौशल होगा विकास उतनी ही अधिक क्षमता से बढ़ेगा, उत्पादकता बढ़ेगी व आर्थिक विकास होगा। इस तरह से हम कह सकते हैं कि शिक्षा और आर्थिक विकास एक दूसरे के पूरक हैं। देश का आर्थिक विकास उचित प्रकार से अगर करना चाहते हैं तो विद्यालयों की स्थापना, विश्वविद्यालयों की स्थापना, शिक्षा प्रणाली को कारगर बनाना, प्रशासनिक सुविधा को मुहैया कराना अति आवश्यक हो जाता है। शिक्षा का तात्पर्य सिर्फ साक्षर

टिप्पणी

बनाना ही नहीं है बल्कि मानव जाति के अंदर कौशल का विकास के लिए शिक्षा के सभी स्तरों पर होने वाली समस्याओं एवं अवरोधों को दूर करना पड़ेगा एवं विकास के बीच एक संबंध स्थापित करना पड़ेगा तभी हमारी शिक्षा आर्थिक विकास को संभव कर पाएगी और अपना पूर्ण योगदान दे सकेगी। आर्थिक गतिविधि प्राकृतिक संसाधनों के प्रत्यक्ष उपयोग पर आधारित होती है इनको हम क्षेत्र (Sector) भी कहते हैं।

क्षेत्र मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं:

प्राथमिक क्षेत्र : प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके हम किसी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं तो इसे प्राथमिक क्षेत्र कहते हैं। इन्हें कृषि एवं सहायक क्षेत्र का भी नाम दिया गया है। उदाहरण– कृषि डेयरी और वनों से प्राप्त प्राकृतिक उत्पाद।

द्वितीय क्षेत्र : प्राकृतिक उत्पादों की विनिर्माण प्रणाली द्वारा अन्य रूप में परिवर्तित किया जाता है। यह वस्तुएं सीधे प्रकृति से उत्पादित नहीं होती बल्कि इन्हें मानव द्वारा निर्मित किया जाता है। इसकी प्रक्रिया किसी कारखाने, कार्यशाला या घर में हो सकती है। उदाहरण कपास के पौधे से प्राप्त राशि का उपयोग कर सूत कातते हैं और उससे कपड़ा बनाया जाता है। यह क्षेत्र उद्योग से जुड़ा हुआ है इसीलिए इसे उद्योग क्षेत्र भी कहा जाता है

तृतीय क्षेत्र : यह गतिविधियां प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र के विकास में मदद करती है। ये गतिविधियां वस्तुओं का उत्पादन तो नहीं करतीं बल्कि उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग करती है। उदाहरणस्वरूप सूत या बुने कपड़े का थोक एवं खुदरा विक्रेताओं को बेचने के लिए भंडारण हेतु गोदामों की जरूरत, व्यापार में सहूलियत के लिए दूसरों से वार्तालाप संवाद या बैंक से कर्ज लेने हेतु सेवाएं देने की आवश्यकता पड़ती है या फिर वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने के लिए यातायात सुविधाओं यानी रेलवे इत्यादि का प्रयोग किया जाता है इसे सेवा क्षेत्र भी कहते हैं। सेवा क्षेत्र में कुछ ऐसी सेवाएं सम्मिलित हैं जो प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं के उत्पादन में सहायता नहीं करती हैं बल्कि विकास शिक्षा में योगदान के बिना संभव भी नहीं है। जैसे डॉक्टर, शिक्षक, मोची, नाई, वकील इत्यादि व्यक्तिगत सेवाएं उपलब्ध कराने वाले और प्रशासनिक एवं लेखन कार्य कराने वाले लोगों की आवश्यकताएं होती हैं। वर्तमान में सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित नवीन सेवाएं इंटरनेट, कैफे, एटीएम, सॉफ्टवेयर कंपनी, कॉल सेंटर इत्यादि भी सेवाएं प्रदान कर रही हैं। इन सेवाओं को बिना शिक्षा के प्रदान करना असंभव है। उच्च शिक्षा के कारण प्रतिभाशाली मानव शक्ति का सबसे बड़ा पुल है। लगभग 2 करोड़ से अधिक भारतीय विदेशों में काम कर रहे हैं और वे विश्व अर्थव्यवस्था में भी अपना योगदान कर रहे हैं। विश्व में भारत सॉफ्टवेयर इंजीनियरों के सबसे बड़े आपूर्तिकर्ताओं में से एक है और सिलीकान वैली जोकि यूएसए में है लगभग 30% उद्यमी पूंजीपति भारतीय मूल के हैं। उदाहरणस्वरूप विप्रो, TCS, Infosys इत्यादि।

2.3.4 वैश्वीकरण और ज्ञान अर्थव्यवस्था के रूप में भारत : शिक्षा की भूमिका

वैश्वीकरण या ग्लोबलाइजेशन एक ऐसा प्लेटफार्म है जहां विश्व के सभी देश आपस में सामंजस्य बिठाकर एक दूसरे की मदद करके विश्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होते

टिप्पणी

हैं। संसार के सभी देश एक दूसरे के विकास एवं समस्याओं के समाधान के लिए एकजुट होकर एक दूसरे के पूरक बनते हैं। विभिन्न तरह के शिखर सम्मेलन एवं अंतरराष्ट्रीय संगठन जैसे यूनेस्को, यूनिसेफ, डब्ल्यूएचओ, डब्ल्यूटीओ इत्यादि वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के उदाहरण हैं। आर्थिक विकास उदारीकरण एवं निजी करण के सामंजस्य की विश्व स्तरीय प्रक्रिया को वैश्वीकरण अर्थात ग्लोबलाइजेशन कहते हैं।

वैश्वीकरण के उद्देश्य

वैश्वीकरण के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से हैं–

- आर्थिक रूप से पिछड़े देशों की आर्थिक मदद करके विकासशील देश में परिवर्तित करना तथा विश्व की नवीन संरचना विकसित करके उन्हें भी सभी शक्तिशाली देशों की श्रेणियों में सम्मिलित करना वैश्वीकरण का मुख्य उद्देश्य है।
- आर्थिक रूप से कमजोर देशों को आर्थिक सहायता प्रदान कर वहां की गरीबी दूर करना एवं विश्व बैंक द्वारा उन्हें अनुदान प्रदान करके आर्थिक समस्याओं से निजात दिलाना।
- सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से पूंजी निजी व्यक्तियों को बेच दी जाती है। निजीकरण और विनिवेश अलग–अलग अवधारणा नहीं है परंतु एक दूसरे के पर्यायवाची हैं।
- निजीकरण द्वारा आर्थिक संसाधनों एवं व्यवस्था में सरकार की भागीदारी कम करना और बढ़ावा देना भी इनका मुख्य उद्देश्य है।

विश्व में शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक सुधार उदारीकरण द्वारा संभव हो सकता है। इसके द्वारा देशवासियों के जीवन स्तर को तीव्र और सदन में सुधार लाकर इसे समृद्ध बनाया जा सकता है। भूमंडलीकरण का एक और मुख्य उद्देश्य विभिन्न देशों के मध्य विश्व बंधुत्व की भावना का विकास करना है। भूमंडलीकरण का उद्देश्य देशों में सरकारी नियंत्रण, उद्योगों की सुरक्षा एवं अर्थव्यवस्था, संगठनों का संरक्षण करना आदि तक सीमित करना है।

वैश्वीकरण की विशेषताएं

वैश्वीकरण की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(1). समस्या का समाधान एवं मानवता का मानव जाति के अंदर विकास करना।

(2). तकनीकी शिक्षा का विकास करना भूमंडलीकरण की प्रमुख विशेषता है इसमें तकनीकी शिक्षा को विकास देना और एक देश दूसरे देश को तकनीकी ज्ञान का आदान–प्रदान करके उसे समृद्ध और शक्तिशाली बनाना।

(3). सूचना तकनीकी का विकास करके घर बैठे सूचना देश के हर कोने में भेज सकते हैं और वहां की सूचना प्राप्त कर सकते हैं और इसे कुछ और नहीं बल्कि वैश्वीकरण का ही उदाहरण समझा जा सकता है।

(4). सूचना तकनीकी के विकास से आज लोग एक स्थान से दूसरे स्थान के विषय में आसानी से बिना आवागमन के जान सकते हैं एवं वहां के हालात को सुधारने के लिए आवश्यकतापूर्ण कदम भी लिए जा सकते हैं।

(5). सहयोग व सद्भावना का विकास करके जटिल से जटिल परिस्थितियों में भी राष्ट्र एक दूसरे की अंतर्राष्ट्रीय लेवल पर मदद करते हैं जैसे कि विपरीत परिस्थितियां भूकंप, बाढ़, सुनामी, साइक्लोन और अन्य आपदाओं की स्थिति में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक दूसरे की मदद करते हैं चाहे वह आर्थिक हो या फिर मानसिक।

(6). सरकारी हस्तक्षेप वैश्वीकरण व्यवस्था में अधिक सरकारी हस्तक्षेप के बजाय आत्मानुशासन होना चाहिए।

किसी भी देश की समस्या को सभी देश अपनी समस्या मानते हैं, जैसे– आतंकवाद की समस्या। विचारधाराओं को एक मंच पर सुना जाना तथा आवश्यकता अनुसार उन्हें महत्वपूर्ण बनाना एक वैश्वीकरण का जीता–जागता उदाहरण है।

वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

यह स्पष्ट है कि वैश्वीकरण का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही रहा है। नीचे सूचीबद्ध कुछ बिंदु हैं जो शिक्षा में वैश्वीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को उजागर करते हैं।

- वैश्वीकरण ने दुनिया को हर सूरत में मौलिक रूप से बदल दिया है। लेकिन इसने विशेष रूप से विश्व अर्थव्यवस्था को बदल दिया है जो तेजी से निर्भर हो गई है। लेकिन इसने विश्व अर्थव्यवस्था को तेजी से प्रतिस्पर्धी और अधिक ज्ञान आधारित बना दिया, विशेष रूप से विकसित पश्चिमी देशों में।
- वैश्विक शिक्षा पर्यावरणीय स्थिरता के अंतर्राष्ट्रीय विकास को प्रोत्साहित करने के साथ–साथ वैश्विक उद्योगों को मजबूत करने की दिशा में योगदान देने के लिए दुनिया भर की प्रणालियों से शिक्षण के तरीकों को आपस में जोड़ती है। ये शैक्षिक पहल प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर पर स्कूल तक वैश्विक पहुंच को प्राथमिकता देती है, सीखने के अनुभवों को प्रेरित करती है जो छात्रों को बहुराष्ट्रीय नेतृत्व वाली भूमिकाओं के लिए तैयार करती है।
- चूंकि शिक्षा वैश्विक स्थिरता के लिए नींव के रूप में कार्य करती है, इसलिए कम उम्र से ही बहुसांस्कृतिक जागरूकता का विकास विभिन्न समाजों से जुड़ी विचारधाराओं को एकीकृत कर सकता है ताकि दुनिया भर के मुद्दों के बारे में अच्छी तरह से संतुलित निष्कर्ष पर पहुंच सकें। वैश्वीकरण और शिक्षा तब सफल भविष्य के लिए युवा लोगों को तैयार करने के आपसी लक्ष्यों के माध्यम से एक दूसरे को प्रभावित करने के लिए आते हैं, जिसके दौरान उनके राष्ट्र तेजी से जुड़े होंगे।
- वैश्वीकरण के साथ ज्ञान, शिक्षा और सीखने की कुछ चुनौतियां आज के शिक्षार्थियों को अमूर्त अवधारणाओं और अनिश्चित स्थितियों के साथ अधिक परिचित और आरामदायक होने की क्षमता प्रदान करेंगी।
- सूचना समाज और वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए सिस्टम थिंकिंग की समग्र समझ की आवश्यकता होती है, जिसमें वर्ल्ड सिस्टम और बिजनेस इको सिस्टम भी शामिल है। भूमंडलीकरण समस्याओं के लिए एक समग्र दृष्टिकोण का उपयोग करता है। अंतःविषय अनुसंधान दृष्टिकोणों को विश्व स्तर पर वर्तमान

टिप्पणी

में सामना कर रही जटिल वास्तविकता को अधिक व्यापक समझ प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण पहल के रूप में देखा जाता है।

- यह प्रतीकों में हेरफेर करने की छात्र की क्षमता को बढ़ाता है। आज की अर्थव्यवस्था में अत्यधिक उत्पादक रोजगार के लिए शिक्षार्थी को राजनीतिक, कानूनी और व्यावसायिक शब्दों और डिजिटल मनी जैसे प्रतीकों को लगातार हेरफेर करना होगा।
- वैश्वीकरण छात्र के ज्ञान प्राप्त करने और उपयोग करने की क्षमता को बढ़ाता है। वैश्वीकरण शिक्षार्थियों को ज्ञान का उपयोग करने, आकलन करने, अपनाने और लागू करने की क्षमता को बढ़ाता है, उचित निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र रूप से सोचने और दूसरों के साथ सहयोग करने के लिए नई स्थितियों की समझ बनाने के लिए।
- वैश्वीकरण वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों की एक बढ़ी हुई मात्रा का उत्पादन करता है। उभरती हुई अर्थव्यवस्था उत्पादन के एक प्रमुख कारक के रूप में ज्ञान पर आधारित है और उद्योगों की मांग है कि कर्मचारी विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अत्यधिक प्रशिक्षित रहें।
- यह छात्रों को टीमों में काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है। टीमों में बारीकी से काम करने में सक्षम होना कर्मचारियों की आवश्यकता है। टीमों में काम करने के लिए छात्रों को इन–ग्रुप गतिशीलता, समझौता, वाद–विवाद, अनुनय, संगठन और नेतृत्व और प्रबंधन कौशल विकसित करने की आवश्यकता होती है।
- वैश्वीकरण अंतरिक्ष और समय की सीमाओं को तोड़ता है। उन्नत सूचना और संचार तकनीकों का उपयोग करते हुए, ज्ञान, शिक्षा और सीखने की एक नई प्रणाली में समकालिक और अतुल्यकालिक गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला लागू होनी चाहिए जो शिक्षक और छात्र को अंतरिक्ष और समय की सीमाओं को तोड़ने में सहायता करती है।
- वैश्वीकरण सूचना युग की जानकारी, शिक्षा और सीखने की चुनौतियों और अवसरों से मिलती है। ज्ञान आधारित व्यवसाय अक्सर शिकायत करते हैं कि स्नातक नए कौशल सीखने और नए ज्ञान को आत्मसात करने की क्षमता की कमी रखते हैं। वैश्वीकरण व्यवसायों को आसान बनाता है।
- वैश्वीकरण शिक्षा प्रौद्योगिकी, नीति निर्माताओं, और चिकित्सकों को शिक्षा के पुनर्निर्धारण के उद्देश्य से बनाता और समर्थन करता है और शैक्षिक प्रौद्योगिकियों के उपयोग में विचारों और अनुभवों के आदान–प्रदान के लिए तंत्र का समर्थन करता है।
- वैश्वीकरण ने अधिक प्रभावी शिक्षण के लिए सूचना प्रौद्योगिकी और संचार की संभावनाओं के मोर्चे को आगे बढ़ाने के लिए अन्वेषण, प्रयोग को प्रोत्साहित किया है।
- विभिन्न स्तरों पर कई विकासों के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और बौद्धिक संपदा का वैश्विक साझाकरण।

टिप्पणी

- देशों, समुदायों और व्यक्तियों के विभिन्न विकासों के बीच तालमेल बनाने के लिए परस्पर समर्थन, पूरक और लाभ।
- उपरोक्त वैश्विक साझेदारी के माध्यम से मूल्यों का निर्माण और दक्षता बढ़ाना और स्थानीय जरूरतों और विकास को पूरा करने के लिए आपसी सहयोग।
- अंतरराष्ट्रीय समझ को बढ़ावा देना, सहयोग, सद्भाव, और देशों और क्षेत्रों में सांस्कृतिक विविधता के लिए स्वीकृति।
- देशों के बीच विभिन्न स्तरों पर संचार, बातचीत और बहु–सांस्कृतिक योगदान को प्रोत्साहित करना।
- शिक्षा में वैश्वीकरण की संभावित गिरावट उन्नत देशों और कम विकसित देशों के बीच बढ़ते तकनीकी अंतराल में डिजिटल विभाजन हो सकती है।
- विकासशील देशों के उपनिवेश के नए रूप के लिए शिक्षा में वैश्वीकरण कुछ उन्नत देशों के लिए अधिक वैध अवसर पैदा कर सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. देश में पहला कृषि विश्वविद्यालय कहां स्थापित किया गया था?

   (क) पंतनगर (उत्तराखंड) (ख) लखनऊ (उ.प्र.)

   (ग) कोलकाता (पं. बंगाल) (घ) भोपाल (म.प्र.)

4. औद्योगिक अर्थव्यवस्था को कितने प्रकारों में विभाजित किया गया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

2.4 आधुनिक भारतीय समाज

वर्तमान में भारत विश्व की दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है। भारत में विविधताओं में भी एकता है। इस देश में विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं। उनकी भाषा, उनका रहन–सहन, उनका खानपान, उनकी वेशभूषा एवं अन्य क्रियाकलापों में भी अंतर है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति परस्पर प्रेम सहानुभूति मित्रता तथा सहयोग अथवा विपरीत भावनाओं का अनुभव करने लगते हैं तो इस बीच एक सामाजिक वातावरण (सोशल एनवायरनमेंट) उत्पन्न हो जाता है और इसी वातावरण का नाम समाज है। भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की भिन्नताएं पाई जाती है, जैसे धार्मिक भिन्नताएं, भाषाई भिन्नताएं, सांस्कृतिक भिन्नताएं, प्रजाति भिन्नताएं, भौगोलिक भिन्नताएं, जनसंख्या एवं राजनीतिक भिन्नताएं। अतः अनेक भिन्नताओं के बाद भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारत के इतिहास में एक अनुपम एकता देखने को मिलती है। भारतीय समाज में विभिन्न धार्मिक व सामाजिक त्योहारों, धार्मिक ग्रंथों अध्यात्मवाद, सामाजिक रीति–रिवाजों और संयुक्त परिवार की व्यवस्था समाज की एकता को बढ़ाने वाले प्रमुख तत्व सिद्ध हुए। मध्यकालीन भारत में भारतीय संस्कृति की उदारता, धार्मिक समन्वय, भक्ति आंदोलन, भाषाएं मिश्रण, चित्रकला तथा

भवन निर्माण कला आदि एकता को बढ़ाने वाले प्रमुख सचिव सिद्ध हुए। ब्रिटिश काल में नई शिक्षा व्यवस्था से पैदा होने वाली जागरूकता समाज सुधार आंदोलन तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन ने इस एकता में योगदान किया।

टिप्पणी

2.4.1 मानव समाज : मानक संबंध

मानव के रूप में जीना भी उसके लिए मुश्किल से संभव होता है। वास्तव में मानव एवं समाज इतने परस्पर पूरक बन गए हैं कि एक के बिना दूसरे की सत्ता, स्थिरता एवं प्रगति की कल्पना करना भी असंभव है। जैसा कि समाज एवं विज्ञान के जनक अरस्तू (Aristotle) ने मानव को एक सामाजिक प्राणी अर्थात सोशल एनिमल कहा था उसी तरह समाज के बिना मानव केवल अन्य पशु है और मानव के बिना समाज विसंगत है एवं अर्थ विहीन है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज का निर्माण करते हैं जो बदले में उनके अस्तित्व को एवं जीवन की श्रृंखला को एक स्थान देता है और उसे सुखमय एवं संभव बनाने में मदद करता है। वास्तव में यह एक रहस्य है कि आदिमानव समाज की यथार्थ प्रकृति कैसी रही होगी, जो हो समाज की व्याख्या करने की सामान्य पद्धति यही रही है कि एक विशिष्ट परिस्थिति समूह में कृत्रिम विकास के रूप में मानव का उदय हुआ है। उन स्थितियों के बारे में भी हमें जानना होगा जिसमें उन्होंने कैसे समाज को जन्म दिया और कैसे वहां अपना जीवन निर्वहन किया। बहुत से सिद्धांतों का सत्र वही एवं 18वीं शताब्दी में प्रतिपादन हुआ जिससे नाना प्रकार के प्रश्नों के उत्तर मिलना संभव हो पाया। इसमें विभिन्न उद्देश्यों को रूसो के द्वारा दिया गया था। समाज व्यक्तियों का एक संगठन और समूह है तथा यह संगठन व्यक्ति को उसका खुद का अस्तित्व बनाए रखने के लिए आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है। समाज सामाजिक बंधनों का एक ऐसा जाल है जो स्थिर न रहकर सदा बदलता रहता है। समाज में धार्मिक विचारधाराएं होती हैं जिनके अनुसार वह व्यक्ति समस्त शक्तियों के विकास हेतु ऐसे नए–नए अवसर प्रदान करता रहता है कि विकसित होने के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति उसे सबल शोध एवं शक्तिशाली बनाने में अपना यथाशक्ति योगदान देता रहे। समाज व्यक्ति की समस्त आवश्यकताओं एवं जरूरतों को पूरा करता है तथा वह एक दूसरे के पूरक होते हैं उन्हें इस बात का ज्ञान कराया जाता है कि उसका एक उत्तरदाई नागरिक है। जिस प्रकार बिना समाज के मानव की कल्पना करना एक चुनौतीपूर्ण विचार है। ठीक उसी प्रकार बिना मानव के एक समाज की कल्पना एवं उनकी रचना करना भी एक बड़ी भूल साबित हो सकती है। जब हम किसी चीज को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो प्रत्येक मानव में कुछ जन्मजात शक्तियां तथा विशेषताएं होती है एवं इन विशेषताओं को विकसित होने पर सामाजिक प्रगति का क्षेत्र बढ़ा और बढ़ता ही जा रहा है।

समाज में मानव अपनी संस्कृति परंपरा ज्ञान तथा अनुभवों को भावी संतति को प्रदान करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखता है परंतु संस्कृति परंपरा ज्ञान तथा अनुभवों को संक्रमण करने का कार्य शिक्षा द्वारा ही होता है। इस तरह के समाज में अपने अस्तित्व को निरंतर बनाए रखने के लिए उन संस्थानों की स्थापना करता है जिसके द्वारा उसके सदस्यों के विचारों, भावों तथा आदर्शों का विकास उचित ढंग से संभव हो सके। आइए जानते हैं कि किस प्रकार से मानव इतिहास के विश्व भर के समाजों में पारिवारिक रूपों की अनेक रूपता दिखाई देती है। जैसे उदाहरण के लिए

टिप्पणी

आवास की दृष्टि से कुछ समाज विवाह और पारिवारिक रीति–रिवाजों में मातृ केंद्रित है जबकि अन्य समाज पितृ सत्तात्मक अथवा पितृ केंद्रित है। ऐसे ही एक ही प्रकार का परिवार हर जगह नहीं पाया जाता है जैसे उत्तर प्रदेश में परिवार एवं उनकी स्थिति है, वह कहीं न कहीं ऑस्ट्रेलिया में रहने वाले परिवार से भिन्न है। परिवार धर्म से जुड़ा हुआ है, अलग–अलग धर्म के लोग अलग–अलग परिवार की नीतियों का पालन करते हैं। जिसमें मुस्लिम परिवार, हिंदू परिवार या क्रिश्चियन परिवार या और भी अन्य धर्म के जो लोग हैं उनके परिवार के बीच नाना प्रकार के अंतर हैं। जैसे संयुक्त परिवारों में दो से तीन या अधिक पीढ़ियों के लोग एक साथ एक ही छत के नीचे रहते हैं। आधुनिक औद्योगिक क्रांति के परिणाम परिवार की रचना और कार्यों में गंभीर परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। पहले सभी समाजों में परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण और मौलिक संस्था थी। जीवन का अधिकांश व्यापार परिवार के माध्यम से संपन्न होता था। बच्चों के शिक्षण का कार्य शिक्षण संस्थाओं ने ले लिया है, रसोई का कार्य व्यावसायिक भोजन "आया" ने ले लिया है और इसी प्रकार सुरक्षा का दायित्व जहां समाज के पास होता था वहां अब राज्य के पास चला गया है। लोग व्यावसायिक होते जा रहे हैं। समाज के अंदर होने वाली गतिविधि पर भी राज्य का हस्तक्षेप हो गया है। इससे यह लग रहा है कि कहीं ना कहीं परिवार का स्वरूप पूर्ण रूप से परिवर्तन की ओर है।

एकल परिवारों (Nuclear Family) में स्वतंत्रता, स्वायत्तता (Autonomy), इच्छाओं की पूर्ति के अपेक्षाकृत अधिक अवसर होते हैं जिससे बचपन में आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता आदि के विकास के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। वही संयुक्त परिवार कहीं ना कहीं परिवार में मौजूद अधिकतम लोगों की वजह से अवसर से बिल्कुल दूर रहते हैं किंतु साथ ही उनके अन्य लाभ भी हैं जैसे भोजन की व्यवस्था, शिक्षा की व्यवस्था एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति संभव हो पाती है। एकल परिवार में माता–पिता का सारा ध्यान केंद्रीकृत हो जाता है जहां माता–पिता दोनों कामकाज पर चले जाते हैं तो बच्चे घर पर अकेले ही रहते हैं। इसमें ऐसे बच्चों को आत्मनिर्भर और जिम्मेदार होने की संभावना अधिक होती है किंतु बच्चे एकांकीपन (Lonliness) का अनुभव करना, खेल और मनोरंजन हेतु साथियों की कमी लगातार महसूस करते हैं। इन परिवारों की आर्थिक पूर्ति के लिए बच्चे माता पिता पर ही निर्भर रहते हैं। इन परिवारों में बच्चों में असुरक्षा की भावना भी पनपती है जिससे वह एकांत का मार्ग ढूंढ़ते हैं।

वहीं संयुक्त परिवार (Joint family) परिवार में बच्चों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान देते हैं और वे स्वतंत्रता या स्वायत्तता से काम करने के अवसरों को कम करते हैं या इच्छाओं का अनचाहे दमन होता है। संयुक्त परिवार में बच्चों की परवरिश का भार केवल माता–पिता पर ही निर्भर नहीं रह जाता है। यदि किसी कारणवश माता–पिता नहीं कमा पाते हैं तो भी वह पूरे घर की जिम्मेदारी होती है कि उनके बच्चे की परवरिश परिवार करें। बड़ों में जो कौशल होता है वह बच्चों में सहज तरीके से आता है। इसके विपरीत बच्चों एवं बड़ों द्वारा बुरी प्रवृतियां भी बच्चों के अंदर आ जाती हैं। संयुक्त परिवार में बच्चों में सहनशीलता आपसी सामंजस्य बेहतर तरीके से विकसित हो जाता है। कभी–कभी यह भी देखा गया है कि बच्चों के पास सीखने के कई तरीके होते हैं वह बड़ों से इतिहास जान लेते हैं, पुराने समय में उनके परिवार कहां कब कैसे अपना भरण–पोषण करते थे? परिवार का विकास कैसे हुआ? यहां बुजुर्गों की देखरेख कैसे

टिप्पणी

की जाती है? बुजुर्गों के प्रति हमारा क्या उत्तरदायित्व बनता है? इन सभी चीजों को आसानी से सीख पाते हैं। आपसे चर्चाएं, बातें और विभिन्न धारणाओं को देखने सुनने और समझने के मौके मिलते हैं। बच्चों की निर्णय क्षमता भी लंबे समय के बाद संयुक्त परिवार में स्वीकार की जाती है।

मानव समाज के अंतर्गत विभिन्न समूह आते हैं जो निम्नलिखित हैं:

जाति (Caste): प्राचीन भारत में हिंदू समाज के अंतर्गत गुण तथा कर्म के आधार पर ब्राह्मण प्रार्थना, कर्मकांड मंत्रों का जाप तथा विद्या का पठन–पाठन करते थे। वहीं क्षत्रिय अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश एवं प्रजा की सुरक्षा करते थे। वहीं वैश्य वाणिज्य व्यापार का संचालन करते थे तथा शूद्र उक्त तीनों वर्णों की सेवा करते थे। इस प्रकार की जाति अथवा वर्ण व्यवस्था से प्राचीन हिंदू समाज को स्थिर तथा सदैव बनाया रखा गया एवं अनेक संकटों से बचाया गया। भारत में जाति प्राचीन काल में कितनी उपयोगी क्यों ना रही हो पर इस समय यह सब प्रकार की उन्नति के मार्ग में बड़ी बाधा एवं रुकावट बनती हुई प्रतीत हो रही है।

व्यावसायिक समूह (Merchant Class): एक ऐसा समूह होता है जिसका प्रत्येक सदस्य किसी अलग–अलग व्यवसाय में लगा रहता है। कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाने में लगा रहता है वहीं नाई बाल काटने में लगा रहता है, किसान खेती करने में लगा रहता है और बढ़ई फर्नीचर बनाने का काम करता होता है।

धार्मिक समूह (Religious Class): भारत बहुत से धर्मों का केंद्र रहा है। भारतीय समाज में अनेक धार्मिक समूह के लोग निवास करते हैं जिनमें मुख्यतः हिंदू–मुस्लिम, जैन, बुद्ध, ईसाई एवं पारसी आदि हैं। इन समूहों का भी वर्गीकरण हो चुका है जिसमें अलग–अलग उप समूह पाए जाते हैं।

2.4.2 भारतीय समाज : बहुनियामक ढांचा– एक आलोचनात्मक समझ

भारत प्राचीन काल से ही विभिन्नता पूर्ण समाज का केंद्र रहा है। यहां का समाज, संस्कृति और परिवर्तन की प्रक्रिया दुनिया के सभी विद्वानों के लिए जिज्ञासा का विषय रही है। भारतीय समाज को बहुजन समाज की संज्ञा दी गई है जिसमें समाज शास्त्रियों का मानना है कि भारत का जो समाज है वह विभिन्न नेताओं के कारण एक विशेष संज्ञा का पात्र है। प्राचीन काल से भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण होते रहे हैं जिसमें शक मुगल, मंगोल, पुर्तगाली तथा ब्रिटिश आक्रमण प्रमुख थे। इसके फलस्वरूप भी भारत में अनेक संस्कृतियों, धर्मों भाषाओं, प्रजातियों और विश्वासों का मिश्रण होता रहा है। विदेशी इतिहासकारों ने भारतीय समाज के वास्तविक रूप को अपने निजी स्वार्थों के लिए तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया। इसके बाद भी सच तो यह है कि भारतीय समाज और संस्कृति का इतिहास संसार में सबसे अधिक प्राचीन है। आधुनिकता और वैज्ञानिक प्रगति के रास्ते पर भारत तेजी से बढ़ रहा है। यहां परंपरा और आधुनिकता का एक ऐसा संगम देखने को मिलता है जो संसार के किसी और समाज में दुर्लभ है। इसी कारण भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु जी ने लिखा है कि युगों–युगों से भारत की मौलिक एकता ही उसका सबसे महान और मौलिक तत्व रहा है। अतः भारत के समाज को समझने के लिए उसकी प्रमुख

सामाजिक, सांस्कृतिक भिन्नताओं को समझना आवश्यक है जो भारतीय समाज का विभिन्न अंग बन चुकी हैं।

टिप्पणी

प्रजाति विभिन्नताएं

प्रजाति का अर्थ एक ऐसे बड़े मानव समूह से होता है जिसमें कुछ विशेष तरह की शारीरिक विशेषताएं पाई जाती हैं। यह सारी विशेषताएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बिना किसी अधिक परिवर्तन के जैविक रूप से हस्तांतरित होती रहती हैं। प्रजाति आधार पर संसार में तीन मुख्य प्रजातियां हैं जिन्हें काकी साइड मंगोलॉयड तथा निगायड प्रजाति कहा जाता है। सरल शब्दों में इन्हें हम सफेद, पीले तथा काले रंग के मानव समूहों के नाम से संबोधित कर सकते हैं। भारतीय समाज की विशेषता यह है कि यहां आरंभ से ही द्रविड़ तथा आर्य समूह की विशेषताएं एक दूसरे से भिन्न न थीं।

भाषाई विभिन्नताएं

देश की सांस्कृतिक विविधता का एक मुख्य आधार देश में बोले जाने वाले विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न भाषाओं का प्रचलन होना है। भारतीय संविधान में आज 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है। इनमें से सभी भाषाओं के अपने उप भाग हैं जैसे हिंदी के लिए हिंदी भाषा में खड़ी बोली, ब्रज, भोजपुरी, अंगिका, अवधी, मगधी, बुंदेली, मालवी इत्यादि कुछ प्रमुख उप भाषाएं हैं। भारत में हिंदी भाषा का प्रचलन सबसे अधिक होने के कारण स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही इसे राष्ट्रभाषा के रूप में देखा जाता आ रहा है वर्तमान में भारत के संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाओं में अंग्रेजी शामिल नहीं है लेकिन विभिन्न सरकारी विभागों, उच्च शिक्षा एवं न्यायालयों में अंग्रेजी का प्रभाव वर्तमान समय में बना हुआ है।

जनसंख्या संबंधित विभिन्नताएं

भारत की जनसंख्या वर्तमान में लगभग सवा सौ करोड़ है जिसका लगभग आधा हिस्सा पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का है जिन्हें तुलनात्मक रूप से बहुत कम सुविधाएं मिली हुई हैं फिर भी वर्तमान में इन्हें सामान्य स्तर पर लाने के लिए सरकार अग्रसर है। अलग–अलग क्षेत्रों में पुरुष–स्त्री के अनुपात में भी काफी भिन्नता पाई जा रही है। जिस प्रकार हरियाणा में पुरुष महिला अनुपात भिन्न है।

धार्मिक विभिन्नताएं

भारतीय समाज की जीवन शैली पर धर्म का बड़ा ही व्यापक प्रभाव रहा है। भारतीय समाज में वैदिक काल से लेकर आज तक एक दूसरे के विभिन्न धर्मों और धार्मिक विश्वासों को मानने वाले समूहों को अपने आचरण के नियम निर्धारित करने की पूरी स्वतंत्रता मिलती रही है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है जहां सभी धर्मों को एक समान देखा जाता है वहीं दूसरी ओर भारत धर्म के लिए पूर्ण रुप से स्वतंत्र है जिसमें सभी धर्मों के अनुयायियों को धर्म मानने का अधिकार है।

2.4.3 आधुनिक भारतीय समाजः संवैधानिक नियामक ढांचा

आधुनिक भारतीय समाज के संवैधानिक नियामक ढांचे को निम्न बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

टिप्पणी

1. **जनतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था**– भारत में जनतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था है। इस व्यवस्था में दो तत्व निहित हैं, एक जनतंत्र और दूसरा समाजवाद। जनतंत्र के अनुसार भारत की जनता के हाथ में शासन की सर्वोच्च सत्ता है और समाजवाद के अनुसार व्यक्ति और समाज दोनों के उत्थान पर बल देकर ही समाज स्थापित करने की कल्पना की गई है। भारत में समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व के सिद्धांत को स्वीकार किया गया है।

2. **सामाजिक न्याय** – सामाजिक न्याय के लिए भारतीय संविधान में अनेक प्रावधान किए गए हैं। संविधान में कहा गया है कि सबको समानता की दृष्टि से सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए और समाज के उन वर्गों को विशेष सुविधाएं दी जानी चाहिए जिनका लंबे समय से शोषण और दमन हुआ है। जिससे वे उठकर समाज के दूसरे वर्गों के बराबर आ सके सामाजिक न्याय का अर्थ है– समाज में सब को यथोचित सम्मान तथा उन्नति करने के अवसर उपलब्ध हो।

3. **धर्मनिरपेक्षता** – आधुनिक भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता धर्मनिरपेक्षता है। यहां पर सभी व्यक्तियों को समान धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है। धार्मिक स्वतंत्रता के परिणाम स्वरुप प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म को स्वीकार करने और उसका प्रचार व प्रसार करने के लिए स्वतंत्र होता है। राज्य किसी भी धार्मिक कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। राज्य किसी भी धर्म विशेष को ना संरक्षण देता है और ना ही कोई सुविधा देता है।

4. **आर्थिक असमानता** – आधुनिक भारतीय समाज में आर्थिक आधार पर तीन वर्गों में सारी जनता बैठी हुई है धनी वर्ग, मध्यम वर्ग और निर्धन वर्ग। धनी अधिक धनी होता जा रहा है और निर्धन अधिक निर्धन हो रहा है। समाज में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। मध्यम वर्ग व्यापक रूप से उभर रहा है और अपनी स्थिति से असंतुष्ट है।

5. **बेरोजगारी** – स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सही अनुपात में लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं हो पाए हैं जिससे नवयुवकों में निराशा हताशा पैदा होती है। कोई कार्य न मिलने पर भी अनुचित और अनैतिक कार्यों को करने लगते हैं जिससे उनका नैतिक पतन होता है।

6. **संतुलित परिवारों का विघटन** – व्यक्तिवाद की फैलती हुई भावना में संयुक्त परिवारों को विघटित करके एकल परिवार को जन्म दिया है जिसमें माता–पिता अपनी संतान के साथ में रहते हैं। इन एकांकी परिवारों में भी भावात्मक संबंधों का अभाव पाया जाता है।

7. **दहेज प्रथा और बाल विवाह** – दहेज प्रथा आधुनिक भारतीय समाज की गंभीर समस्या है जिसके कारण ना जाने कितनी नवयुवतियों को अपने जीवन का बलिदान करना पड़ता है। कानून बनने के बाद भी बाल विवाह की कुरीति खूब प्रचलित है। विधवाओं पर अत्याचार और अनमेल विवाह आज भी कम नहीं हुए हैं।

टिप्पणी

8. **निम्न जीवन स्तर** – निर्धनता और बेरोजगारी के कारण लोगों के रहन–सहन का स्तर गिरता जा रहा है। यद्यपि लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए सरकार द्वारा अनेकानेक प्रयत्न किए जा रहे हैं।

9. **जनसंख्या की वृद्धि** – आज की सबसे बड़ी समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या है। इस समस्या ने भारतीय समाज के आधुनिक स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित किया है। इस समस्या के परिणामस्वरूप खाद्य सामग्री का अभाव हो रहा है, महंगाई बढ़ रही है, बेरोजगारी बढ़ रही है, जीवन स्तर गिर रहा है, प्रदूषण की समस्या पैदा हो रही है और सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है।

10. **स्त्रियों की दशा में परिवर्तन** – भारतीय संविधान ने सबको समान अधिकार प्रदान करके स्त्रियों को पुरुषों के बराबर बना लिया है। आज भारत की स्त्रियां सभी व्यवसाय में कार्य कर रही हैं।

11. **विघटनकारी शक्तियों को प्रोत्साहन** – आधुनिक भारतीय समाज में विघटनकारी प्रवृत्तियों का बाहुल्य होता जा रहा है। जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, प्रांतवाद आदि ने अलगाववाद को प्रोत्साहन दिया है। लोगों के चिंतन में अंतर आया है। वे संपूर्ण समाज के हित की दृष्टि से न सोच कर अपनी जाति, अपने समुदाय, अपनी भाषा, अपने क्षेत्र और अपने प्रांत के हित की दृष्टि से सोचते हैं।

12. **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन** – आधुनिक भारतीय समाज में नवीन विचारों के कारण क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं जिसके कारण प्राचीन सामाजिक मूल्य विलुप्त हो रहे हैं। उनका स्थान नए मूल्य ले रहे हैं, इसलिए भारतीय आध्यात्मिकता को छोड़कर बौद्धिकता की ओर तेजी से दौड़ रहे हैं।

13. **नैतिक व धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन** – आधुनिक भारतीय समाज धर्म प्रधान रहा है। वहां व्यक्तियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण आध्यात्मिक रहा है, प्रेम, सत्य, अहिंसा, सहयोग, सहिष्णुता, पर्व आदि भारतीय समाज के शाश्वत मूल्य रहे हैं परंतु असत्य के स्थान पर सत्य, अहिंसा के स्थान पर हिंसा, प्रेम के स्थान पर घृणा, सहयोग के स्थान पर असहयोग, ईर्ष्या और परोपकार के स्थान पर स्वार्थ भावना बढ़ रही है।

14. **उच्च आकांक्षाएं** – वर्तमान समय में इच्छाएं और आकांक्षाएं बढ़ती जा रही हैं। एक दूसरे का अनुकरण करने की इच्छा बढ़ रही है। इन इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति अनैतिक और अवैधानिक कार्य कर रहा है। चोरी, डकैती, रिश्वत, भ्रष्टाचार आदि के बढ़ने से मनुष्य का चारित्रिक पतन हो रहा है।

इसी प्रकार वर्तमान भारतीय समाज का स्वरूप अधिक आशाजनक नहीं है। इस में परिवर्तन लाना और सुधार करना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा का विशेष दायित्व है अतः ईमानदारी और निष्ठा से एक सुव्यवस्थित और उपयोगी शिक्षा योजना के निर्माण और उसके क्रियान्वयन की आवश्यकता है। सन 1947 में जब भारत आजाद हुआ तो हम कह सकते हैं कि भारत का समाज भी स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के बाद आधुनिक भारतीय समाज में कुछ संवैधानिक मापदंड अपनाए गए जो इस प्रकार से हैं–

टिप्पणी

वैयक्तिक स्वतंत्रता : जीवन का कोई मोल नहीं जब तक उसके अंदर स्वतंत्रता का समावेश ना हो, अर्थात स्वतंत्रता का दूसरा नाम ही जीवन है। पशु पक्षी से लेकर मानव जाति तक को स्वतंत्रता पसंद है। स्वतंत्रता के अभाव में मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता है इसीलिए वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए भारतीय समाज में संविधान के अनुच्छेद 19 में निम्नलिखित 7 स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार हैं:

- वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- सभा करने की स्वतंत्रता
- आवास की स्वतंत्रता
- संघ बनाने की स्वतंत्रता
- भ्रमण करने की स्वतंत्रता
- संपत्ति अर्जन धारण और बेचने की स्वतंत्रता
- पेशा, व्यवसाय, वाणिज्य एवं व्यापार की स्वतंत्रता

वैयक्तिक समानता : वह समाज जहां धर्म, वर्ण, लिंग, वंश, जाति के आधार पर वर्गीकरण एवं विवेक ना हो ऐसे समाज में वैयक्तिक समानता संभव है। आधुनिक भारतीय समाज व्यवस्था में ना केवल वैयक्तिक समानता की आकांक्षा की गई बल्कि यह भी अपेक्षा की गई कि विगत सैकड़ों वर्षो में हमने व्यक्ति व्यक्ति के मध्य अनेक भेदभाव बनाकर जो वर्ग बनाए हैं वह समाप्त हो और किसी भी दृष्टि से व्यक्ति–व्यक्ति में कोई अंतर नहीं किया जाए। वैयक्तिक समानता निम्नलिखित हैं:

- सार्वजनिक स्थानों के उपयोग में धर्म जाति आदि आधारों पर विविध ना हो।
- अस्पृश्यता समाप्त कर दी जाए।
- धार्मिक दृष्टि से सभी धर्म समान हो। लोक सेवाओं में सबको समान अवसर मिले।
- राज्य, धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, जन्म स्थान, वंशानुक्रम के आधार पर नागरिकों के बीच भेदभाव नहीं होना चाहिए।
- जो अब तक पिछड़े रह गए हैं उन्हें समान स्तर पर लाने के लिए आरक्षण जैसी सुविधाएं दी जानी चाहिए जैसे पिछड़े वर्गों, जातियों, आदिवासियों आदि तथा स्त्रियों को।

आर्थिक न्याय पर आधारित संवैधानिक मानदंड– समाज में आर्थिक न्याय के आधार पर कुछ संवैधानिक मापदंड अपनाए गए हैं जिसकी चर्चा निम्नलिखित है:

(1). सभी को जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त साधन हो।

(2). पुरुष, स्त्री, वर्ग, वंश आदि का भेद आर्थिक क्षेत्र में ना किया जाए।

(3). समुदाय की भौतिक संपत्ति का स्वामित्व एवं नियंत्रण सामूहिक हित के लिए हो।

(4). धन और उत्पादन के साधनों का केंद्रीकरण ना हो ।

टिप्पणी

(5). प्रत्येक व्यक्ति को पेशा, व्यवसाय, वाणिज्य, व्यापार की स्वतंत्रता एवं समानता प्रदान की जाए।

(6). संपत्ति धारण एवं बेचने की स्वतंत्रता, कमजोर वर्गों का शोषण ना हो।

(7). राजनीति पर आधारित संवैधानिक मानदंड, जनता का जनता द्वारा जनता के लिए शासन हो।

(8). व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अंतिम लक्ष्य हो।

(9). राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से व्यक्तियों के लिंग, जाति, वर्ण, धर्म, वंशानुक्रम के आधार पर भेद नहीं किया जाए।

(10). सभी नागरिकों को सभी नागरिक स्वतंत्रता प्रदान की जाए।

(11). सभी नागरिकों को राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक न्याय प्रदान किया जाए।

(12). सत्ता का विकेंद्रीकरण हो।

धर्म पर आधारित संवैधानिक मानदंड– भारतीय समाज में नाना प्रकार के धर्म पाए जाते हैं, जैसे कि हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई इत्यादि। इसमें अनेक प्रकार के संप्रदाय व समुदाय के लोग रहते हैं जिनके विश्वास एवं उपासना की पद्धतियां भिन्न भिन्न हैं। धर्म आधारित संवैधानिक मानदंडों को निम्नलिखित तरीके से समझा जा सकता है।

- सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार होगा।
- सभी धर्मों को समान संरक्षण मिलेगा।
- सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता, धर्म को अवैध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार का अधिकार होगा।
- धार्मिक कार्यों में प्रबंध की स्वतंत्रता होगी।
- पुलिस और राज्य की तथा राज्य पोषित संस्थाओं में धर्म विशेष की शिक्षा व्यवस्था नहीं होगी।
- किसी भी बालक को धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

शिक्षा आधारित संवैधानिक मानदंड– आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा एक ऐसा संसाधन है जिसमें लोगों का एवं देश का विकास निहित है। भारतीय समाज के कुछ शिक्षा आधारित संवैधानिक मानदंड हैं जो निम्नलिखित हैं:

- धर्म, जाति, वर्ग, वर्ण, वंश आदि के भेद बिना सभी को शिक्षा के समान अवसर दिए जाएं।
- 6 साल से 14 साल के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा व्यवस्था की जाए।
- अनुसूचित जाति एवं जनजातियों, स्त्रियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक उन्नति का प्रयास किया जाए।

टिप्पणी

- शिक्षण संस्थानों में इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था मुहैया कराई जाए जिसमें–
  - – लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास हो सके,
  - – सर्वधर्म सद्भाव का विकास हो सके,
  - – सामाजिक आर्थिक न्याय की भावना का विकास हो सके।

भारतीय संविधान में भारतीय समाज की उन्नति और विकास के लिए अनेक प्रावधान लागू किए गए जिसमें से कुछ प्रावधान यहां पर वर्णित किए गए हैं।

धारा (section) 15 (1) में घोषणा की गई कि राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, कुल, वंश, जाति, जन्म स्थान या इनसे किसी के आधार पर अंतर अथवा भेद स्थापित नहीं करेगा।

धारा (section)–18 में कहा गया है कि अस्पृश्यता समाप्त की जाती है और इसमें किसी भी रूप में व्यवहार निषिद्ध है। अस्पृश्यता के कारण किसी प्रकार की अयोग्यता का प्रचलन कानून के अनुसार दंडनीय अपराध है।

इस तरह से आदमी भारतीय समाज में संवैधानिक मानदंडों जैसे वैयक्तिक स्वतंत्रता, वैयक्तिक समानता, आर्थिक न्याय पर आधारित समाज, राजनीति आधारित संवैधानिक मानदंड, धर्म आधारित संवैधानिक मानदंड, शिक्षा आधारित संवैधानिक मानदंड के बारे में हम समझ सके।

अपनी प्रगति जांचिए

5. मानव को एक सामाजिक प्राणी अर्थात सोशल एनिमल किसने कहा था?

(क) सुकरात (ख) अरस्तू

(ग) महात्मा गांधी (घ) आचार्य रजनीश

6. भारतीय संविधान में कितनी भाषाओं को मान्यता दी गई है?

(क) 18 (ख) 21

(ग) 22 (घ) 25

2.5 शिक्षा में बदलाव : महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, दादाभाई नौरोजी और गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान

मानव जीवन में शिक्षा से बड़ी कोई भी कुंजी नहीं है। भारत सदियों से शिक्षा का केंद्र रहा है। नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय मुख्यतः प्राचीन काल से ही विश्व शिक्षा का केंद्र रहे हैं। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में शिक्षा और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाया गया है। भारत की प्राचीन शिक्षा मुख्यतः अध्यात्म पर आधारित थी। शिक्षा, मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रूप में भी छात्र और शिक्षकों का आपसी संबंध प्रेम और सम्मान था। सादगी, सदाचार, विद्या, प्रेम और धर्म आचरण पर जोर दिया

टिप्पणी

जाता था। कंठस्थ करने की परंपरा थी। भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्म प्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहा है। वहीं मातृभाषा में की जाने वाली शिक्षा आलोचनापूर्ण रही है। शिक्षा संस्थाओं और शिक्षकों की संख्या बढ़ी परंतु शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता चला गया। देश की उन्नति चाहने वाले भारतीयों में व्यापक और स्वतंत्र राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता का बोध धीरे–धीरे होने लगा। स्वतंत्रता प्रेमी भारतीयों और भारतप्रेमियों ने सुधार के काम का बीड़ा उठा लिया। गोपाल कृष्ण गोखले जी ने प्राथमिक शिक्षा को निशुल्क और अनिवार्य करने का प्रयास 1911 ईस्वी में किया। उनका मानना था कि वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा भारत की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इसीलिए इन्होंने सबसे पहले प्राथमिक शिक्षा लागू करने के लिए सदन में विधेयक भी प्रस्तुत किया था। वर्ष 1913 में भारत सरकार ने शिक्षा नीति में अनेक परिवर्तनों की कल्पना की परंतु प्रथम विश्व युद्ध के कारण कुछ भी बदलाव संभव नहीं हो पाया। प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने पर कोलकाता विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया गया। बाद में गांधी गोखले से मिले और अनुभवों और अपनी समझ को शामिल करते हुए नई तालीम के माध्यम से आत्मनिर्भर बनने और आसपास के परिवेश में जीने का कौशल विकसित करने में सक्षम शिक्षा देने की बात कही। बालक बालिकाओं की शिक्षा अनिवार्य हो जिनकी उम्र सीमा 7 से 11 वर्ष की हो, शिक्षा मातृभाषा में और शिक्षक भारतीय मूल के हो। चरखा, कृषि, करघा, लकड़ी का काम शिक्षा का केंद्र हो। जिसकी बुनियाद पर साहित्य, भूगोल, इतिहास, गणित आदि की पढ़ाई हो। गांधी जी के द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा का महत्वपूर्ण लक्ष्य शिल्प आधारित शिक्षा द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे आत्मनिर्भर, आदर्श नागरिक बनाना था। वहीं ज्योतिबा फुले ने महाराष्ट्र को एक नए ढंग का नेतृत्व दिया। उन्होंने महाराष्ट्र के नारी तथा शूद्रों दोनों को सामाजिक गुलामी से मुक्त कराने की प्रतिज्ञा की। वर्ष 1948 में उन्होंने महिलाओं तथा शूद्रों दोनों के लिए पुणे में एक विद्यालय खोला। देश में इस प्रकार का यह प्रथम विद्यालय था। स्त्रियों और दलितों के लिए शिक्षा व्यवस्था ज्योतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले के अथक प्रयासों का परिणाम था। दादा भाई नौरोजी ने भी समाज सेवा हेतु एवं लोगों के जीर्णोद्धार के लिए कई कार्य किए जिसमें शिक्षा को उन्होंने प्राथमिकता दी। उन्होंने शिक्षा के विकास, सामाजिक उत्थान और परोपकार के लिए बहुत सी संस्थाओं को प्रोत्साहित करने में योगदान दिया। लोकतंत्र के सभी नागरिकों के लिए शिक्षा मुहैया करना सरकार का मुख्य कर्तव्य है और वर्तमान में सरकार उसका निर्वहन कर रही है। शिक्षा के स्तर में बेहतरी के लिए नित्य नए प्रयास किए जा रहे हैं। सर्व शिक्षा अभियान व राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान इसी दिशा में एक कदम है जिसके अंतर्गत सभी को शिक्षित एवं योग्य बनाने का संकल्प निहित है। सभी के लिए स्त्री शिक्षा को सुनिश्चित किया जाना भी इनका मूल उद्देश्य है।

2.5.1 महात्मा गांधी

महात्मा गांधी ने न केवल भारत के राजनीतिक क्षेत्र में विलक्षण कार्य किया अपितु विश्व के राजनीतिक चिन्तन में बड़ी क्रांतिकारी मौलिक देन दी। गांधी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को 'गांधीवाद' का नाम दिया जाता है। महात्मा गांधी प्लेटो आदि की भांति कोरे दार्शनिक नहीं, किन्तु धार्मिक भावना से अनुप्राणित होकर जनकल्याण के लिए

टिप्पणी

अनवरत कार्य करने वाले कर्मयोगी थे। उन्होंने प्लेटो, अरस्तू या मार्क्स की भांति क्रमबद्ध या व्यवस्थित रूप से अपने सिद्धांतों की विवेचना नहीं की, अपितु अपने सामने आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए ही तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार चिन्तन किया, अपने विचार प्रकट किये और लेख लिखे। इसलिए विभिन्न अवसरों पर व्यक्त किये गए उनके विचारों में कुछ विरोध या असंगतियां भी मिलती हैं।

गांधी जी का जीवन, व्यक्तित्व और प्रमुख विचार

महात्मा गांधी का जीवन ही उनके विचारों और आदर्शों की अभिव्यक्ति है। उनके विचारों और उनके द्वारा किये गये संदेशों को उनके जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि उनके विचारों का अध्ययन उनके जीवन चरित्र के अध्ययन से ही प्रारंभ किया जाये।

2 अक्टूबर 1869 को राजकोट में मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म हुआ। इनके पिता राजकोट के दीवान थे। माता धार्मिक विचारों से ओत–प्रोत सुशील महिला थी। अपने परिवार में आपको विशुद्ध भारतीय संस्कार विरासत में मिले। 12 वर्ष की आयु में ही आपका विवाह कर दिया गया।

सन् 1887 में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद उन्हें वकालत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत भेज दिया गया। विलायत जाने के पूर्व उन्होंने अपनी माता के सम्मुख यह प्रतिज्ञा ली कि मैं मांस, मदिरा और नारी का स्पर्श नहीं करूंगा। सन् 1891 में गांधी जी बैरिस्टर बनकर लन्दन से भारत लौटे। अभी उन्होंने काठियावाड़ में वकालत प्रारंभ ही की थी कि उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। दक्षिण अफ्रीका के काले व्यक्तियों पर गौरांग महाप्रभुओं द्वारा भयंकर अत्याचार किये जा रहे थे। गांधी जी ने संपूर्ण शक्ति के साथ इन अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठायी, वह शक्ति, आत्मा और सच्चाई की शक्ति थी। दक्षिण अफ्रीका की अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा। यहीं पर सर्वप्रथम गांधी जी ने सत्याग्रह आंदोलन का सफलतापूर्वक परीक्षण किया। बाद में यही आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक बन गया।

सन् 1914 में गांधी जी सफल आंदोलनकारी और राजनीतिज्ञ के रूप में भारत पहुंचे, परंतु तत्काल ही राजनीति में छलांग लगाने की अपेक्षा उन्होंने परिस्थितियों का दूर से अध्ययन करना अधिक उचित समझा। अहमदाबाद के पास उन्होंने साबरमती सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। इन दिनों गांधी जी अंग्रेज की शराफत और उदारवादिता से बहुत प्रभावित थे। इसलिए प्रथम विश्वयुद्ध में उन्होंने भारत में घूम–घूमकर भारतीयों को युद्ध में अंग्रेजों का साथ देने को कहा, परंतु विश्वयुद्ध के पश्चात् कुछ घटनाओं ने अंग्रेजों के प्रति उनकी सारी आस्था को समाप्त कर दिया।

रोलट एक्ट, जिसके अनुसार किसी भी भारतीय पर शांति भंग का आरोप लगाकर बिना मुकदमा चलाये जेल में डाला जा सकता था, ने पहले विस्फोटक के रूप में कार्य किया। सामान्य प्रदर्शनों का नेतृत्व करके गांधी जी ने इस एक्ट का घोर विरोध किया। ऐसा ही एक प्रदर्शन जालियांवाला बाग में हुआ जहां अंग्रेज सरकार के 'वीर सिपाहियों' ने ऐसा नृशंस कृत्य किया कि वीरता सदा के लिए लज्जित हो गयी। निहत्थे और निर्दोष भारतीय बालकों, युवकों और वृद्धों पर बिना पूर्व सूचना के गोली वर्षा, अंग्रेजों के गोरे चेहरों पर एक बदनुमा दाग बन गयी। संपूर्ण देश में विरोध की

टिप्पणी

अग्नि फैल गयी। अप्रैल 1921 में खिलाफत आंदोलन के साथ ही असहयोग आंदोलन का बिगुल बजा दिया गया। गांधी द्वारा फूंके हुए इस शंखनाद ने देश के नगर–नगर में, गांव–गांव में राष्ट्रीय जागरण की लहर दौड़ा दी। प्रारंभ में अंग्रेजों ने इस सत्याग्रह आंदोलन को 'मूर्खतापूर्ण कार्य' (The most foolish of all foolish Schemes) कहा। शीघ्र ही उन्हें ज्ञात हो गया कि अहिंसा का अस्त्र बन्दूकों और तलवारों से अधिक प्रभावशाली होता है, परंतु चौरी–चौरा की एक घटना के कारण असहयोग आंदोलन को उस स्थिति में गांधी जी ने बंद करने की घोषणा कर दी जब वह अपने चर्मोत्कर्ष पर था। जब सफलता भारतीय जनता के चरण चूमने को तत्पर थी तब गांधी जी ने जनता के पांव पीछे हटा दिये। गांधी जी के व्यक्तिगत सिद्धांतों की दृष्टि ये यह कदम चाहे ठीक हो, उनके इस कदम को उचित कहना कठिन है। आंदोलन की असफलता से संपूर्ण देश में साम्प्रदायिकता की अग्नि भड़क उठी। स्थान–स्थान पर आपसी दंगे हुए पारस्परिक वैमनस्य बढ़ गया।

सन् 1931 में गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया। जनता की उनके प्रति असीम श्रद्धा और अटूट विश्वास ने आंदोलन को बहुत व्यापक स्वरूप दिया। उनकी एक आवाज पर लाखों नर–नारी जेल जाने को तैयार हो जाते। अभी यह आंदोलन सफलतापूर्वक चल ही रहा था कि उनका लार्ड इरविन से समझौता हो गया। समझौते के फलस्वरूप गांधी जी ने आंदोलन बंद करके दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेना स्वीकार लिया।

गोलमेज कान्फ्रेंस की असफलता के बाद गांधी जी 1934 में वर्धा आश्रम में समाज के कार्य में फिर जुट गये। सन् 1939 में, दूसरा विश्वयुद्ध होने तक वे शांत ही रहे, परंतु युद्ध के प्रारंभ होने पर बिना भारतीयों की इच्छा जाने 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आंदोलन चलाया। वे गिरफ्तार कर लिये गये। युद्ध समाप्ति पर उन्हें रिहा कर दिया गया।

सन् 1947 में भारत का विभाजन और स्वतंत्रता दोनों घटनाएं एक साथ हुईं। प्रारंभ में गांधी जी ने विभाजन का विरोध किया। उन्होंने घोषणा की कि ''भारत का विभाजन मेरी लाश पर होगा'' परंतु परिस्थितियों के आगे उनकी एक न चली। अपने जीवन में अपने सिद्धांतों और आदर्शों की यथार्थ द्वारा होने वाली हत्या से वे दुखी हुए। 15 अगस्त को स्वाधीनता दिवस पर उनसे खुशियों में शामिल नहीं हुआ जा सका। स्वाधीनता के पश्चात् दोनों देशों में सांप्रदायिकता का दावानल भड़क उठा तथा इंसान पशु बन गया। धर्म, द्वेष और घृणा के आधार बन गये। इसके नाम पर खून की होली खेली गयी। आजादी के बाद गांधी जी का सारा जीवन सांप्रदायिकता की इस भयंकर आग को शांत करने में लग गया। एक बार फिर उन्हें असफलता हाथ लगी। उनकी प्रार्थनाओं का असर इंसानों पर हो सकता था, हिन्दुओं और मुसलमानों पर नहीं। 30 जनवरी 1948 को एक 'वज्रमूर्ख' द्वारा उनकी हत्या का दर्दनाक दुस्साहस किया गया। 'राम–राम' कहते–कहते भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अमर सेनानी चल बसा।

वास्तव में देखा जाये तो गांधी जी का सारा जीवन त्याग और तपस्या की कहानी है। भारत का वह कृशकाय, अर्धनग्न संत, सत्य और अहिंसा के परम अस्त्र लेकर मृत्यु पर्यन्त, 'ब्रिटिश साम्राज्य' की जड़ों पर प्रहार करता रहा। उसने भौतिकवाद की ओर अग्रसर संसार को एक नवीन संदेश दिया। अहिंसा की विलक्षण शक्ति

गांधी जी के हाथ में आकर एक बार फिर चमक उठी। सारा भारत उनके चरणों पर न्यौछावर था। उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहकर संबोधित किया गया।

टिप्पणी

शताब्दियों तक पराधीनता के पाश में जकड़े हुए भारत को महात्मा गांधी ने स्वाधीनता का उज्ज्वल प्रकाश प्रदान किया। वह महात्मा गांधी ही थे जिन्होंने जनमानस में ज्वार उत्पन्न करने का दायित्व अपने कन्धों पर लिया था। इससे भी बड़ी विशेषता गांधी जी के जीवन की सादगी और सरलता है। स्वतंत्रता के पश्चात् और पहले भी गांधी जी को पदलिप्सा ने कभी नहीं सताया और राजसी ठाट–बाट ने कभी नहीं लुभाया। राष्ट्रपिता आधुनिक शासकों की भांति गगनचुम्बी अट्टालिकाओं और 'एअर कण्डीशण्ड' बिल्डिंगों में नहीं रहे, किन्तु जनता के बीच ही जनता का अंश बनकर रहे। कोरी भाषणबाजी में उनका विश्वास नहीं था। स्वतंत्रता के लिए प्रयास के साथ उन्होंने रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान दिया। हरिजन उद्धार, स्त्री शिक्षा, बुनियादी शिक्षा, मद्यपान निषेध, खादी एवं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, कुटीर उद्योगों का विकास आदि क्षेत्रों में उन्होंने विशेष कार्य किया।

पता नहीं उनमें क्या जादू था कि परस्पर विरोधी विचारधारा के लोग भी उनके चरणों में खिंचे चले आते थे। एक ओर सेठ बिड़ला और जमनालाल बजाज उनके भक्त थे तो दूसरी ओर आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश नारायण जैसे उनके अनुयायी। सरदार पटेल जैसे कर्मयोगी, पंडित नेहरू जैसे क्रांतिकारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे साधु पुरुष, राजाजी जैसे कूटनीतिज्ञ, मौलाना आजाद जैसे विद्वान और बिनोबा जैसे धार्मिक धुरन्धर तथा मोतीलाल नेहरू जैसे नास्तिक सभी बिना तर्क–वितर्क के उनकी आज्ञा के सम्मुख सिर झुका देते थे। पंडित मोतीलाल नेहरू ने एक बार उनसे कहा था–'' मुझे आपके आध्यात्मिक सिद्धांत में कोई विश्वास नहीं है। न ही मुझे इस जन्म में भगवान पर विश्वास हो सकता है। मैं पक्का नास्तिक हूं। फिर भी कठिनाई यह है कि आप हमारे ही शस्त्रों से हमें पराजित कर देते हैं। आखिर–क्यों? इसलिए कि उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन को अपने आदर्श के अनुसार ढाला था। मरते दम तक उन्होंने राजनीति को पवित्रता के वस्त्र पहनाने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि उनके देहावसान पर सोवियत रूस को छोड़कर संसार के सभी देशों ने अपने ध्वज झुकाकर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

महात्मा गांधी जी का शिक्षा–दर्शन

वर्तमान समय में हम सभी शिक्षा के महत्त्व से भली भांति परिचित हो चुके हैं। देश के चहुंमुखी विकास में शिक्षा का योगदान महत्वपूर्ण होता है। जिस देश की जनता जितनी ही अधिक शिक्षित होती है उस देश का विकास भी निरन्तर होता रहता है क्योंकि उस देश की जनता भली भांति अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का प्रयोग करती है। साथ ही शिक्षित व्यक्ति स्वयं ही अपना रोजगार शुरू कर अपनी आजीविका का निर्वहन भी करते हैं। इसके ठीक विपरीत जिस देश की जनता अशिक्षित होती है उस देश का विकास भी अवरुद्ध होता जाता है।

गांधी जी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन–दर्शन पर आधारित है। उनकी सत्य, अहिंसा, त्याग, निष्ठा एवं सहानुभूति आदि मानवीय गुणों में श्रद्धा थी और जीवनपर्यन्त रही। इन मानवीय गुणों को शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गांधी जी के जीवन में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों को स्थान मिला।

टिप्पणी

गांधी जी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन–दर्शन का गतिशील पक्ष है। गांधी जी के शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद का अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। इनका दृष्टिकोण भौतिकवादी भी दिखाई पड़ता है। गांधी जी ने उत्पाद क्रिया को माध्यम बनाने की संस्तुति की है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक बालक अपने बचपन से ही अपनी रोटी कमाने के लिए आदत बनाए तथा शिक्षा में श्रम तथा वैज्ञानिक ज्ञान को साथ जोड़ने की क्षमता होनी चाहिए। यह संकेत भौतिकवादी भावना प्रकट करता है।

शिक्षा का आधारभूत सिद्धांत

गांधी जी की शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत निम्नांकित हैं–

- शिक्षा द्वारा बालक में शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक क्षमताओं को विकसित करना।
- शिक्षा द्वारा बालक–बालिकाओं में निहित समस्त मानवीय गुणों का विकास करना।
- 7 से 14 वर्ष के बालकों की शिक्षा निःशुल्क करना।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना ताकि छात्र में उसके प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो।
- शिक्षा का व्यवसायकेन्द्रित होना।
- किसी उद्योग के द्वारा शिक्षा को स्वावलंबी बनाना।
- बालक की शिक्षा किसी लाभकारी हस्तकला व दस्तकारी से प्रारम्भ करना जिससे वह अपने भावी जीवन में अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके।
- विद्यालय ऐसा होना चाहिए जहां बालक अनेक प्रकार के प्रयोगों द्वारा नई–नई खोजें करता रहे।
- शिक्षा के द्वारा बालकों में बंधुत्व, सहयोग और समाज सेवा की भावना उत्पन्न करना।
- शिक्षा द्वारा बालक के व्यक्तित्व, शरीर, हृदय, मस्तिष्क और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास करना।

शिक्षा का अर्थ

गांधी जी ने शिक्षा का अर्थ समझाते हुए हरिजन में लिखा था कि 'शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के उत्कृष्ट एवं सर्वांगीण विकास से है।' By education, I mean an all round drawing out of the best instincts in child's body, mind and spirit. 'साक्षरता शिक्षा की न तो अंतिम सीढ़ी है और न ही प्रथम सोपान। यह तो स्त्री–पुरुष को शिक्षित करने को एक साधन है, साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं कहला सकती है। उनका विश्वास था कि शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों को विकास करना चाहिए, जिससे वह पूर्ण मानव बन जाए। पूर्ण मानव का अर्थ बालक के व्यक्तित्व के चारों तत्वों–शरीर, हृदय, मस्तिष्क तथा आत्मा के समुचित विकास से है।

गांधी जी के अनुसार, शिक्षा के द्वारा बालकों में सत्यम्, शिवम् सुन्दरम और विश्व बंधुत्व आदि की भावनाओं का विकास करना तथा ऐसे नागरिक उत्पन्न करना है, जो स्वावलम्बी आत्मविश्वासी, आत्मअभिमानी और संयमी हों।

टिप्पणी

गांधी जी ने लिखा है कि उस मनुष्य को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसका शरीर इतना सधा हुआ है वह उसे काबू में रह सके और आराम व आसानी के साथ बताया हुआ कार्य करे, उस व्यक्ति को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत व न्यायदर्शी है, उस व्यक्ति ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध है, जिसका मन प्रकृति के नियमों से भरा है, जिसकी इन्द्रियां अपने वश में हैं और आदमी नीच आचरण को धिक्कारता है और दूसरों को अपने जैसा समझता है। ऐसा व्यक्ति सचमुच में शिक्षा पाया हुआ माना जाता है।

गांधी जी के शिक्षा–दर्शन की प्रमुख विशेषताएं

महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं–

(1) **शिक्षा–दर्शन में आदर्शवाद** (Idealism in Educational Philosophy)– महात्मा गांधी जी का संपूर्ण शिक्षा–दर्शन आदर्शवाद की प्राप्ति के लिए है। वे स्वयं आध्यात्मिकता में विश्वास रखते थे। उनका कहना है–'जीवन का अंतिम लक्ष्य ईश्वरोपलब्धि है। मानव की समस्त क्रियाएं–सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक ईश्वर–दर्शन से निर्देशित होती हैं।'

(2) **व्यावहारिक शिक्षा–दार्शनिक** (Practical Educational Philosophy)– महात्मा गांधी जी की यह विशेषता थी कि वे आचार तथा विचार में सदैव संतुलन रखते थे। वह पहले प्रयोग करते थे। उसी के आधार पर अपने विचारों को व्यक्त करते थे।

(3) **गतिशील शिक्षा–दर्शन** (Dynamic Educational Philosophy)– महात्मा गांधी जी का शिक्षा–दर्शन उनके संपूर्ण जीवन–दर्शन का गतिशील पहलू था। उन्होंने अपने शिक्षा–दर्शन में जीवन के सभी पहलुओं को सम्मिलित किया है। उद्देश्य से लेकर परिणाम तक उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

(4) **बालक महत्वपूर्ण** (Child is Important)– बापू के शिक्षा–दर्शन में बालक को साधन से महत्वपूर्ण माना गया है। सारी शिक्षा ही बालक को प्रदान की जाती है। इसी कारण बालक को संपूर्ण शिक्षा–प्रणाली में अति–महत्वपूर्ण माना गया है।

(5) **सच्ची शिक्षा** (True Education)– महात्मा गांधी जी ने बालक को सच्ची शिक्षा देने का प्रस्ताव रखा है। उसके विचार में शिक्षा से मेरा तात्पर्य, बालक तथा मनुष्य के सर्वांगीण विकास शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा से है।

(6) **उद्योग–केन्द्रित** (Craft Centred)– गांधी जी ने कर के सीखने की विधि (Learning by doing) का अनुकरण करते हुए शिक्षा को उद्योग–केन्द्रित किया है। बालक जो भी सीखे, वह उद्योग केन्द्रित हो। उद्योग–केन्द्रित प्रशिक्षण का आर्थिक तथा शैक्षिक–दोनों प्रकार का महत्व होता है। शिक्षा का मूल्य (Value) मानव के संपूर्ण विकास में निहित होता है। यह उद्योग के द्वारा आत्म–निर्भरता की ओर ले जाने का संकेत है।

टिप्पणी

(7) क्रिया तथा अनुभव (Activity And Experiance)– गांधी जी के शिक्षा दर्शन में क्रिया तथा अनुभव का स्थान बहुत है। विद्यालय कार्य, प्रयोग तथा खोज का केन्द्र स्थल होता है। इसका पाठ्यक्रम क्रिया–प्रधान होता है।

(8) आत्म–निर्भरता (Self-Supporting Aspect)– गांधी जी चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे शिक्षक, विद्यालय तथा छात्र सभी अपना अपना खर्च निकाल सकें।

(9) यथार्थ परिस्थिति (Concrete Life Situation)– महात्मा गांधी जी जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के मध्य शिक्षा देना चाहते थे। उनका ऐसा विचार था कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का प्रमुख दोष यही है कि वह जीवन के यथार्थ से परे है। उनके विचार में 'प्रत्येक शिक्षा शास्त्री एवं वह व्यक्ति जो छात्रों के हित हेतु कुछ भी करता है, उसने यह महसूस किया कि हमारी शिक्षा–प्रणाली दोषपूर्ण है। यह विधि भारत की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करती। ग्राम एवं गृह के मध्य यह शिक्षा सम्पर्क स्थापित नहीं करती।

गांधी जी का शिक्षा–दर्शन मुख्य रूप से बुनियादी शिक्षा (वर्धा योजना) से प्रोत्साहित है। बुनियादी शिक्षा की रूपरेखा, शिक्षण विधि, सिद्धांत, उद्देश्य, गुण व दोष निम्नांकित हैं–

बुनियादी शिक्षा–योजना की रूपरेखा

बुनियादी शिक्षा–योजना (बेसिक शिक्षा–योजना) की रूपरेखा इस प्रकार है–

(1) बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की अवधि 7 वर्ष की है।

(2) यह शिक्षा 7 से 14 वर्ष तक के बालकों और बालिकाओं के लिए निःशुल्क और अनिवार्य है।

(3) सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प (Basic Craft) से होता है।

(4) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है।

(5) चुने हुए शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि वह बालकों को अच्छा शिल्पी बनाकर, उनको स्वावलम्बी बना देती है।

(6) शारीरिक श्रम पर बल दिया जाता है, ताकि बालक सीखे हुए शिल्प के द्वारा जीविका का उपार्जन कर सके।

(7) बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुएं ऐसी होती हैं, जिनका प्रयोग किया जा सकता है या जिनको बेचकर विद्यालय का कुछ व्यय चलाया जा सकता है।

(8) पाठ्यक्रम में अंग्रेजी का कोई स्थान नहीं है।

(9) शिल्प को बालकों की योग्यता और स्थान की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर चुना जाता है।

(10) उक्त शिल्प की शिक्षा इस प्रकार प्रदान की जाती है कि बालक उसके सामाजिक और वैज्ञानिक महत्त्व से भली–भांति परिचित हो जाते हैं।

(11) शिक्षा का बालक के जीवन, गृह एवं ग्राम से और उसके ग्राम के उद्योगों, हस्तशिल्पों और व्यवसायों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

टिप्पणी

बुनियादी शिक्षा नाम क्यों?

अंग्रेजी के "Basic" शब्द का हिन्दी अर्थ है–''आधारभूत'' और उर्दू अर्थ है–''बुनियादी''। क्योंकि यह शिक्षा निम्नलिखित कारणों के फलस्वरूप 'आधारभूत' या ''बुनियादी'' मानी गई है, इसलिए इसका नाम बेसिक शिक्षा पड़ा है–

(1) यह शिक्षा प्रत्येक भारतीय बच्चे के लिए अनिवार्य आधारभूत शिक्षा स्वीकार की गई है।

(2) यह शिक्षा बच्चों की आधारभूत आवश्यकताओं और अभिरुचियों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करती है।

(3) यह शिक्षा भारत की राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा–संगठन का आधार मानी गई है।

(4) यह शिक्षा सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों से सम्बन्धित है।

(5) यह शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प के द्वारा दी जाती है, जिसका प्रयोग व्यक्ति अपने भावी जीवन के निर्वाह के लिए कर सकता है।

(6) यह शिक्षा प्रत्येक भारतीय की आधारभूत सामान्य सम्पत्ति है।

(7) यह शिक्षा सभी भारतीयों को ऐसा आधारभूत प्रदान करती है, जो उनको अपने पर्यावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने और प्रयोग करने में सहायता देता है।

इस प्रकार, जैसा कि स्वयं गांधी जी ने लिखा है–''बुनियादी शिक्षा बच्चों को, चाहे व नगरों के हों या ग्रामों के, भारत की समस्त सर्वोत्तम और स्थायी बातों से सम्बन्धित करती है।''

बुनियादी शिक्षण–विधि

रायबर्न के अनुसार–''बेसिक शिक्षा, शिक्षण की विधि नहीं है। यह पाठ्यक्रम को निश्चित करने की विधि है। अध्यापक उन विधियों का प्रयोग करता है, जो सबसे अधिक रोचक और प्रभावपूर्ण सिद्ध हुई है। सब प्रगतिशील विधियों का बुनियादी शिक्षा में स्थान हो सकता है और प्रयोग किया जा सकता है।''

बुनियादी शिक्षा में चाहे जिस विधि का प्रयोग किया जाये, पर शिक्षण का वास्तविक कार्य–क्रियाओं और अनुभवों पर अनिवार्य रूप से आधारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में शिक्षण–विधि, इतनी व्यावहारिक होती है कि बालक विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में प्राप्त करता है। साथ ही उसे यह ज्ञान थोड़े समय में प्राप्त हो जाता है।

छात्रों को विभिन्न विषयों की शिक्षा स्वतन्त्र रूप में न दी जाकर, किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से प्रदान की जाती है। गणित, सामान्य विज्ञान, सामाजिक विषयों आदि के शिक्षण में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी विषय के किसी भाग की आधारभूत शिल्प के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जा सकती है, जो उसकी शिक्षा किसी अन्य विधि से दी जाती है।

पाठ्यक्रम के सब विषय परस्पर सम्बन्धित ज्ञान–क्षेत्रों के रूप में छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। प्राकृतिक परिस्थिति, सामाजिक परिस्थिति और हस्तकला के

माध्यम से अनेक विषयों पर परस्पर संबंध स्थापित किया जा सकता है। बालक को अपनी रुचि के अनुसार हस्तशिल्प का चुनाव करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

गांधी जी का शिक्षा–दर्शन प्रमुख रूप से बुनियादी शिक्षा पर आधारित है। बुनियादी शिक्षा के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

(1) निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा (Free & Compulsary Education)– गांधी जी ने भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की।

(2) जन साधारण की शिक्षा (Education of the Masses)– भारत की अधिकांश साधारण जनता अज्ञानता के अंधकार से आवृत्त है। यही कारण है कि बुनियादी शिक्षा का सर्वप्रथम सिद्धांत जनसाधारण को शिक्षित करना निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, गांधी जी के निम्नांकित कथन के अनुसार कार्य किया जा रहा है–'जनसाधारण की अशिक्षा भारत का पाप और कलंक है। अतः उसका अंत किया जाना अनिवार्य है।

(3) स्वावलम्बी शिक्षा (Self Supporting Education)– गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत की ओर संकेत करते हुए कहा है–'सच्ची शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा से पूंजी के अतिरिक्त वह सब धन मिल जाना चाहिए, जो उसे प्राप्त करने में व्यय किया जाये।

डॉ. एम.एस. पटेल के अनुसार, बुनियादी शिक्षा दो प्रकार से स्वावलम्बी है–(i) बुनियादी सेवा प्राप्त करने वाला बालक किसी हस्तशिल्प को सीखकर, उसे अपने भावी जीवन के निर्वाह का साधन बनाए और (ii) विद्यालय के बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचकर, अध्यापकों को वेतन दिया जाये। इस प्रकार, बालक अपने विद्यालय–जीवन और भावी–जीवन दोनों में आत्मनिर्भर होकर, स्वावलम्बी बन सकता है।

(4) शिक्षा का माध्यम (Mother-Tongue as Medium of Instruction)– बुनियादी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है। इतिहास हमें बताता है कि किसी देश की संस्कृति का विनाश करने के लिए, सर्वप्रथम उसके साहित्य का विनाश किया जाता है। इसी सिद्धांत का अनुगमन करके, अंग्रेजों ने हमारे देश में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया। बुनियादी शिक्षा में अंग्रेजी को कोई स्थान नहीं दिया जाता है और केवल मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है।

(5) शारीरिक श्रम (Manual Labour)– बुनियादी शिक्षा में हस्तशिल्प के माध्यम से शारीरिक श्रम को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इससे अग्रांकित चार लाभ होते हैं–

- इससे बालकों की शिक्षा का व्यय निकल आता है।
- इससे उनको किसी व्यवसाय का प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है।
- इससे उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है और उनमें शारीरिक श्रम के प्रति घृणा नहीं रह जाती है और
- गांधी जी के शब्दों में– 'बालक के शरीर के अंगों का विवेकपूर्ण प्रयोग उसके मस्तिष्क को विकसित करने की सर्वोत्तम और शीघ्रतम विधि है।'

टिप्पणी

(6) हस्तशिल्प की शिक्षा (Training in Handicraft)– बुनियादी शिक्षा में हस्तशिल्प का केन्द्रीय स्थान है और समस्त विषयों की जानकारी शिक्षा उसी के माध्यम से दी जाती है। हस्तशिल्प को केन्द्रीय स्थान प्रदान करने का कारण गांधी जी के निम्नलिखित शब्दों में विदित हो जाता है–''साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अतः मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है, उसी समय से उत्पादन करने के योग्य बनाकर आरम्भ करना चाहता हूं।''

बुनियादी शिक्षा (योजना) के उद्देश्य

बुनियादी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं–

(1) आर्थिक उद्देश्य (Economic Aim)– इस उद्देश्य से दो अभिप्राय–(i) बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचकर विद्यालय के व्यय की आंशिक पूर्ति करना और (ii) बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् बालकों का किसी उद्योग के द्वारा धन का अर्जन करना। इस सम्बन्ध में स्वयं गांधी जी ने लिखा है–''प्रत्येक बालक और बालिका को विद्यालय छोड़ने के पश्चात् किसी व्यवसाय में लगाकर स्वावलम्बी बनना चाहिए।''

(2) नैतिक लक्ष्य (Moral Aim)– आधुनिक भारतीय समाज का अविराम गति से नैतिक पतन हो रहा है। अतः बुनियादी शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है–बालक का नैतिक विकास करना। नैतिक शिक्षा में अपना विश्वास प्रकट करते हुए गांधी जी ने लिखा है–''मैंने हृदय की संस्कृति या चारित्रिक निर्माण को सर्वोच्च स्थान दिया है। मुझे विश्वास है कि नैतिक प्रशिक्षण सबको समान रूप से दिया जा सकता है। इस बात से कोई प्रयोजन नहीं है कि उनकी आयु और पालन–पोषण में कितना अन्तर है।''

(3) नागरिकता का उद्देश्य (Aim of Citizenship)– जनतन्त्रीय शासन प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति शासन के प्रति उत्तरदायी होता है और राज्य के प्रति उसके कर्तव्यों में वृद्धि हो जाती है। किन्तु इसके साथ–साथ उसे अनेक अधिकार भी प्राप्त हो जाते हैं। वह इन कर्तव्यों का पालन और अधिकारों का उपयोग तभी कर सकता है, जब वह उनके प्रति सजग हो। इसके लिए ऐसी शिक्षा आवश्यक है, जो उसमें नागरिकता के सब गुणों का विकास करे। बुनियादी शिक्षा इन गुणों के विकास में योग देती है।

(4) सर्वोदय समाज की स्थापना का उद्देश्य (Aim of Establishing Sarvodaya Samaj)– आज का सम्पूर्ण समाज स्वार्थ–सिद्धि की नीति का अनुसरण कर रहा है। यह समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभक्त है–धनवान और धनहीन। ये दोनों वर्ग विकृत हैं–पहला, धन की प्रचुरता के कारण और दूसरा, धन के अभाव के कारण। बुनियादी शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है–इस ''विकृत समाज'' के स्थान पर ''सर्वोदय समाज'' की स्थापना करना।

सर्वोदय समाज में श्रम का महत्त्व होगा, धन का नहीं, स्नेह और सहयोग की भावनाएं होंगी, घृणा और पृथकता का नहीं। इस समाज में शोषण का स्थान सेवा; निज–हित के स्थान पर हित और संचय की प्रवृत्ति का स्थान त्याग की

टिप्पणी

प्रवृत्ति लेगी। बच्चों को इसी सर्वोदय समाज के लिए तैयार करने के विचार से बुनियादी शिक्षा द्वारा उनमें प्रेम, सहयोग, आत्म–बलिदान, आत्म–विश्वास आदि भावनाओं को समाविष्ट करने की चेष्टा की जाती है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर डॉ. एम.एस. पटेल (M.S. Patel) ने लिखा है–''बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह है–गांधी जी की सर्वोदय समाज की धारणा के अनुसार भारतीय समाज का पुनः संगठन करना।''

(5) सांस्कृतिक उद्देश्य (Cultural Aim)– हमारी शिक्षा–प्रणाली का एक प्रत्यक्ष दोष यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति का ज्ञान न कराया जाकर बालकों को पाश्चात्य आदर्शों और विचारों का भक्त बनाया जाता है। फलस्वरूप, वे अपनी परम्परागत संस्कृति से पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हैं। इसके दूषित परिणाम को बताते हुए, गांधी जी ने लिखा है–''यदि किसी स्थिति में पहुंचकर एक पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयासों से पूर्णतया अनभिज्ञ हो जाती है या उसे अपनी संस्कृति पर लज्जा आने लगती है तो वह नष्ट हो जाती है।''

अपने इस विचार से दृढ़ विश्वास रखने के कारण गांधी जी ने शिक्षा की अपेक्षा शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया है। इसी उद्देश्य से बुनियादी शिक्षा में भारतीय उद्योगों या शिल्पों को आधारभूत स्थान दिया गया है और शिक्षा को भारतीय संस्कृति के अनुरूप बनाया गया है।

(6) त्रिविध विकास का उद्देश्य (Aim of Three fold Development)– भारत की वर्तमान शिक्षा–पद्धति में केवल बालक के मानसिक विकास पर बल दिया जाता है। उसमें बालक के शारीरिक और आध्यात्मिक विकास के प्रति रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार, बालक का केवल एकांगी विकास होता है। इसके विपरीत, बुनियादी शिक्षा में बालक के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के प्रति पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पाठ्यक्रम में इस प्रकार के विषयों का समावेश किया गया है, जिनसे बालक का तीनों प्रकार का अर्थात् त्रिविध विकास होना निश्चित हो जाता है। इस विकास पर बल देते हुए गांधी जी ने कहा है–''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालक और मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास।''

बुनियादी शिक्षा योजना के गुण–दोष

(A) बुनियादी शिक्षा के गुण (Merits of Wardha Education)

बुनियादी शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास पर बल देती है, जिसके द्वारा मानव का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास संभव है। महात्मा गांधी का शिक्षा में मुख्य योगदान देश में बुनियादी शिक्षा का निर्माण, प्रचार व प्रसार करना है। अविनाशलिंगम् ने बुनियादी शिक्षा को महात्मा गांधी जी का 'महानतम उपहार' बताया। इसका कारण यह है कि बुनियादी शिक्षा में अनेक अद्वितीय गुण या विशेषताएं हैं, यथा–

(1) क्रिया–प्रधान शिक्षा (Activity Centred Education)– बुनियादी शिक्षा क्रिया प्रधान है क्योंकि इसमें संपूर्ण ज्ञान व आधार अनुभव माना जाता है। रायबर्न के

टिप्पणी

अनुसार 'बालक हस्तशिल्प के क्षेत्र में सक्रिय रहकर मानसिक अनुभवों के साथ–साथ अन्य प्रकार के अनुभवों का भी अभ्यास करता है।

(2) बालक–प्रधान शिक्षा (Child Centred Education)– बुनियादी शिक्षा बालक प्रधान है। इसमें बालक को शिक्षा का 'ग्राहक' समझा जाता है। अतः उसकी आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है और उनको पूर्ण करने का प्रयास किया जाता है। डा. एस.एन. मुखर्जी के अनुसार 'नई तालीम बाल–केन्द्रित शिक्षा है और बालक क्रिया द्वारा ज्ञान का अर्जन करता है।'

(3) आर्थिक आधार (Economic Basis)– बुनियादी शिक्षा का आधार आर्थिक है। इसके समर्थन में दो तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है–यथा (i) बुनियादी विद्यालयों में बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचने से विद्यालय का कुछ व्यय निकल आता है। (ii) बालक किसी हस्तशिल्प को सीखकर अपने भावी जीवन में धन का अर्जन कर सकता है। एक अन्य तर्क डॉ. एस.एन. मुखर्जी के अनुसार यह है कि 'बुनियादी शिक्षा का प्रयोजन बेरोजगारी समस्या का समाधान करता है।'

(4) मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Basis)– बुनियादी शिक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक है, क्योंकि इसमें बालक को प्रधानता दी जाती है न कि उसके द्वारा अध्ययन किये जाने वाले पाठ्य विषयों को। बालक का स्वाभाविक विकास किसी कार्य में संलग्न होकर ही हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखकर, बुनियादी शिक्षा में हस्तशिल्प द्वारा उत्पादक कार्य को प्रधान स्थान दिया गया है।

(5) समवायी शिक्षण–विधि (Correlated Method of Teaching)– बुनियादी शिक्षा में 'समवायी शिक्षण–विधि' का प्रयोग किया जाता है। बालक को समस्त विषयों की शिक्षा किसी कार्य के हस्तशिल्प के माध्यम से दी जाती है। दूसरे शब्दों में, उसे क्रिया के द्वारा ज्ञान प्रदान किया जाता है। वह कृषि, कताई–बुनाई, काष्ठ कला आदि में से किसी भी हस्तशिल्प का चयन करता है। उसके पश्चात् वह उस कार्य को करके, उसका और उससे सम्बन्धित कार्यों का ज्ञान प्राप्त करता है।

(6) गृह–स्कूल समाज में सामन्जस्य (Harmony between Home, School and Society)– बुनियादी शिक्षा गृह, स्कूल और समाज के जीवन में पूर्ण सामंजस्य स्थापित करती है। इसका कारण बताते हुए, रायबर्न ने लिखा है–'बालक हस्तशिल्प की शिक्षा प्राप्त करके, स्वयं को गृह, विद्यालय और समाज में प्रायः समान वातावरण में पाता है।'

(7) सामाजिक आधार (Social Basis)– बुनियादी शिक्षा का आधार सामाजिक है, क्योंकि इसमें बालक के अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करने की चेष्टा की जाती है। बालक में हस्तशिल्प के माध्यम से सेवा और स्नेह, सहयोग और सहिष्णुता, आत्म संयम और आत्म विश्वास के गुणों को सुविकसित करने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया जाता है।

(8) शारीरिक श्रम का सम्मान (Dignity of Labour)– बुनियादी शिक्षा बालक में शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान की भावना का निर्माण करती है। बालक स्वयं

हस्तशिल्प के माध्यम से किसी उत्पादक कार्य को करता है। अतः वह शारीरिक श्रम को महत्व देने लगता है और इस प्रकार का श्रम करने वाले व्यक्तियों को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखने लगता है।

टिप्पणी

(9) शिल्प द्वारा शिक्षा (Education through Craft)– बुनियादी शिक्षा का माध्यम आधारभूत शिल्प (Basic Craft) है। सब विषयों की शिक्षा इसी शिल्प के माध्यम से की जाती है। आधुनिक युग के सभी शिक्षा शास्त्रियों द्वारा इस बात को स्वीकार किया जाता है कि बालक की शिक्षा का माध्यम कोई उत्पदक कार्य होना चाहिए। उनका मत है कि केवल इसी प्रकार की शिक्षा बालक का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर सकती है। अंत में, हम टी.एन. सिक्चेरा के शब्दों में कह सकते हैं–'वर्धा योजना को भारत की निरक्षरता की गंभीर समस्या का समाधान करने के लिए अब तक किये जाने वाले प्रयासों में सबसे साहसी और संपूर्ण माना जा सकता है।

(10) ज्ञान की अखण्डता (Unification of Knowledge)– बुनियादी शिक्षा में ज्ञान को एक अभिन्न और अखण्ड इकाई माना जाता है। अतः शिक्षा के सब विषयों को अलग–अलग विभाजित नहीं किया जाता है और न उनका ज्ञान ही अलग–अलग किया जाता है। इसके विपरीत सब विषयों का ज्ञान किसी उपयोगी शिल्प के द्वारा परस्पर सम्बन्धित करके दिया जाता है। हंसराज भाटिया के शब्दों में–'बुनियादी शिक्षा में ज्ञान एक अभिन्न अखण्ड समष्टि (One Unified Whole) है और उसका अनेक असम्बद्ध और अनेक बार, परस्पर अभिवर्जित विषयों (Exclusive Subjects) में विभाजन निषिद्ध हैं।

(B) बुनियादी शिक्षा के दोष (Demerit of Wardha Basic Education)

बुनियादी शिक्षा (वर्धा शिक्षा) के निम्नलिखित दोष हैं–

(1) बुनियादी शिक्षा उत्पादकता पर अधिक बल देती है जिससे शिक्षण संस्थाएं शिक्षा का केन्द्र न होकर, उद्योग के केन्द्र बन जाते हैं।

(2) बुनियादी शिक्षा समय एवं श्रम का अपव्यय करती है क्योंकि प्राथमिक स्तर पर बच्चों को हस्त–शिल्प कौशलों में दक्षता प्रदान करना संभव नहीं है।

(3) बुनियादी शिक्षा में किसी हस्त–शिल्प के माध्यम से सभी विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता है जो पूर्णतया असंभव है। इस सन्दर्भ में डॉ. श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय का विचार है–''केन्द्रीय दस्तकारी के द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा नहीं दी जा सकती है।''

(4) बुनियादी शिक्षा की समय–सारणी में हस्त–शिल्प कौशल पर 3 घण्टा 20 मिनट का समय निर्धारित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्धा शिक्षा का निर्माता भारत को हस्त–शिल्प कौशलों का देश बनाना चाहते हैं। समय–सारणी में हस्त–शिल्प पर आवश्यकता से अधिक समय तथा अन्य विषयों को कम समय देकर बालक के सर्वांगीण विकास के मार्ग को अवरुद्ध किया है।

(5) बुनियादी शिक्षा में कच्चे माल की बर्बादी होती है क्योंकि छोटे बच्चों से उत्पादन की आशा करना अव्यावहारिक है, कोरी कल्पना है। छोटे बच्चों द्वारा स्कूलों में जो उत्पाद बनाये जाते थे वे उपयोग करने के नहीं होते थे।

टिप्पणी

(6) बुनियादी शिक्षा नगरों की अपेक्षा गांवों के लिए अधिक उपयोगी तथा उपयुक्त है।

(7) बुनियादी शिक्षा में बालक के सर्वांगीण विकास की बात सोचना अव्यावहारिक है क्योंकि यह शिक्षा अत्यधिक बल उत्पादकता पर देती है।

(8) बुनियादी शिक्षा में जिस प्रकार से शिक्षण विधि प्रयोग करने की बात कही गयी है वह स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों विधि है, किन्तु जबरन समवाय करने से इसकी स्वाभाविकता और प्रभाविता दोनों समाप्त हो जाती है।

(9) बुनियादी शिक्षा का उच्च शिक्षा से सम्बन्ध का अभाव है। इसका निर्माण करते समय माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या से सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है जिससे इस शिक्षा द्वारा उच्च शिक्षा को सही आधार नहीं मिल पाता है।

(10) बुनियादी शिक्षा में बालक के भावनात्मक पक्ष के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

उत्तर बुनियादी शिक्षा

इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को निश्चित व्यवसाय के लिए तैयार करना है ताकि जिस व्यवसाय को विद्यार्थी चुनेगा वहीं उसकी आजीविका का साधन बन जायेगा। चूंकि व्यवसाय भिन्न–भिन्न होते हैं। तो इनकी अवधि भी अलग–अलग होगी। यह शिक्षा दो वर्ष से लेकर पांच वर्ष तक की भी हो सकती है।

उत्तर बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत हैं–

(1) शिक्षा का आधार उद्योग केन्द्रित होगा।

(2) शिक्षा समवाय पद्धति द्वारा दी जायेगी।

(3) शिक्षा को पूर्णतया स्वावलम्बी बनाया जायेगा।

(4) संबंधित विषयों की जानकारी प्रशिक्षण के द्वारा ही दी जाएगी।

उत्तर बुनियादी शिक्षा यद्यपि उद्योगों, व्यवसायों पर आधारित है, फिर भी इसके अन्तर्गत अन्य विषयों को भी शामिल किया गया है, जैसे–मातृ भाषा की जानकारी के साथ–साथ गणित, ललित कला, सामान्य विज्ञान, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, गृहविज्ञान, यन्त्र शास्त्र आदि।

प्रौढ़ शिक्षा

गांधी जी के अनुसार बेसिक शिक्षा के द्वारा यदि सम्पूर्ण भारत में बच्चे शिक्षित हो जायें, तो इसका एक निश्चित सीमा तक लाभ होगा, किन्तु फिर भी भारत के प्रौढ़ युवकों का भाग जो विभिन्न प्रकार के कार्यों में लगे हुए हैं, जो अज्ञानी है इनको भी शिक्षित करना अनिवार्य है। गांधी जी का कहना था कि प्रौढ़ व्यक्तियों को ऐसा ज्ञान या शिक्षा दी जानी चाहिए जो उनके कार्य से सम्बन्धित हों। इसके दो लाभ होंगे, एक तो व्यक्ति शिक्षित हो जायेगा, दूसरे अपने कार्यों को और कुशलता के साथ कर पायेगा। हरिजन में गांधी जी ने अपने विचारों को व्यक्त किया है–''जन साधारण में फैली व्यापक निरक्षरता भारत का कलंक है, यह कलंक मिटना ही चाहिए। बेशक साक्षरता की मुहिम का आरम्भ और अन्त वर्ण माला के ज्ञान के साथ ही नहीं हो जाना चाहिए। वह उपयोगी ज्ञान के प्रचार के साथ–साथ चलनी चाहिए। लिखने पढ़ने और अंक गणित

टिप्पणी

का शुष्क ज्ञान देहातियों के जीवन का स्थायी अंग न है और न कभी हो सकता है। उन्हें ऐसा ज्ञान देना चाहिए, जिसका उन्हें रोज उपयोग करना पड़े। वह उन पर थोपा नहीं जाना चाहिए। उसकी उन्हें भूख होनी चाहिए। आजकल उन्हें जो कुछ मिलता है वह ऐसा है, जिसकी न तो उन्हें आवश्यकता है और न कदर है। ग्रामवासियों को गांव का गणित, गांव का भूगोल, गांव का इतिहास और साहित्य का वह ज्ञान सिखाइये जिसे उन्हें रोज काम में लाना पड़े। उन्हें चिट्ठी पत्री लिखना और पढ़ना सिखाइये। वे इस ज्ञान को जुटा कर रखेंगे और आगे की मंजिलों की तरफ बढ़ेंगे। जिन पुस्तकों से उन्हें दैनिक उपयोग की कोई सामग्री नहीं मिलती वे उनके लिए किसी काम की नहीं।

स्त्री शिक्षा

गांधी जी महिलाओं को भी पुरुषों के समान शिक्षा दिए जाने के हिमायती थे। उनका कहना था कि जितनी सुविधा पुरुषों को मिलती है उतनी ही सुविधा स्त्री को भी मिलनी चाहिए और जहां विशेष सुविधा की जरूरत पड़े वहां विशेष सुविधा अवश्य देनी चाहिए। गांधी जी यह भी मानते थे कि स्त्री एवं पुरुषों के कार्य क्षेत्रों में अन्तर होता है। इसलिए शिक्षा–पद्धति में भी अन्तर होना चाहिए अर्थात् स्त्रियों के लिए शिक्षा विशेष रूप से गृह प्रबन्ध, बाल विज्ञान, कला तथा संगीत आदि के विषय में दी जानी चाहिए।

अंत में गांधी जी के बेसिक शिक्षा योजना के बारे में हम कह सकते हैं कि आज जब हमारे देश में करोड़ों व्यक्ति बेरोजगार हैं, तो ऐसे में गांधी जी की बेसिक शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है क्योंकि गांधी जी की बेसिक शिक्षा पद्धति व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाती है। व्यक्ति को रोजगार मिले या न मिले किन्तु वह स्वयं अपना छोटा–मोटा कार्य प्रारम्भ कर सकता है और अपना तथा अपने परिवार का लालन–पालन कर सकता है। कार्य शुरू करने के लिए सरकार की ओर से नवयुवकों को ऋण की सुविधा प्रदान की गई है। जवाहर रोजगार योजना तथा प्रधानमंत्री कोष से नवयुवकों को एक लाख रु. स्वरोजगार के लिए दिया जा रहा है। इससे लोगों में आत्म–निर्भरता की भावना के साथ–साथ आत्मसम्मान की भावना जगी है, लोगों ने श्रम के महत्व को समझा है। अतः हम कह सकते हैं कि गांधी जी की शिक्षा योजना के माध्यम से बेरोजगारी दूर करने का प्रयास जारी है।

गांधी जी के शिक्षा–दर्शन का मूल्यांकन

गांधी जी के संपूर्ण शिक्षा–दर्शन का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि–

(1) गांधी जी का शिक्षा–दर्शन मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय एवं जीवशास्त्रीय दृष्टि से पूर्ण एवं स्वस्थ है।

(2) उद्देश्यपूर्ण उपयोगी क्रियाओं के माध्यम से बौद्धिक विकास में विश्वास रखती है।

(3) शारीरिक विकास पर पर्याप्त बल देती है।

(4) कल्पना के विकास में सहायक होती है।

(5) भाषा एवं विषयों की दृष्टि से स्वस्थ है।

टिप्पणी

(6) समाजशास्त्रीय रूप से यह शिक्षा दर्शन अहिंसक व्यवस्था का लाभदायक सूत्र है, अनुशासन की कला, स्वायत्त सरकार, विस्तृत दृष्टिकोण, सहनशीलता और अच्छे पड़ोसीपन का विकास करती है। स्वयं गांधी जी के अनुसार 'यह ग्राम तथा नगर के मध्य अच्छे सम्बन्ध प्रदान करती है और इस प्रकार यह विद्यमान सामाजिक असुरक्षा को दूर करने के प्रयत्न करती है एवं जनता में विषमतापूर्ण सम्बन्धों को परिष्कृत करती हैं।

(7) गांधी जी के शिक्षा–दर्शन में सभी दार्शनिक प्रवृत्तियां पाई जाती हैं।

आदर्शवाद–मानव की श्रेष्ठता, आध्यात्मिक मूल्यों का महत्व, धार्मिक शिक्षा का महत्व, मानवीय मूल्यों का संरक्षण, सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास।

प्रकृतिवाद–स्वतंत्र वातावरण में बालक की क्रियाशीलता में विकास।

प्रयोगवाद–निरन्तर प्रयोगों से ही पूर्ण सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

गांधी जी का संपूर्ण जीवन–दर्शन प्रगतिशील रहा है। आदर्शवाद के साथ प्रवृत्ति और प्रयोजन को मिलाकर दर्शन को पूर्णत्व प्राप्त होता है। इसलिए एम.एस. पटेल ने ठीक ही कहा है कि उनका शिक्षा दर्शन अपनी योजना में प्रकृतिवादी, अपने उद्देश्य में, आदर्शवादी और अपने कार्यक्रम और कार्य–विधि में प्रयोजनवादी है। शिक्षा दार्शनिक के रूप में गांधी जी की वास्तविक महानता इस बात में है कि उनके दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद और प्रयोजनवाद की मुख्य प्रवृत्तियां स्वतंत्र नहीं हैं, वरन् मिलकर एक हो गई हैं। इस प्रकार के ऐसे सिद्धांत को जन्म दिया है जो आज की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त होगा और मानव आत्मा की सर्वोच्च आकांक्षाओं को संतुष्ट करेगा।

इस प्रकार गांधी जी का शिक्षा दर्शन युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण दर्शन रहा है।

2.5.2 ज्योतिबा फुले

देश से छुआछूत खत्म करने और समाज को सशक्त बनाने में अहम किरदार निभाने वाले महात्मा ज्योतिबा फुले का जन्म 11 अप्रैल 1827 को पुणे में हुआ था। उनकी माता का नाम चिमणाबाई तथा पिता का नाम गोविंदराव था। उनका परिवार कई पीढ़ी पहले माली का काम करता था। वे सातारा से पुणे फूल लाकर फूलों के गजरे आदि बनाने का काम करते थे इसलिए उनकी पीढ़ी 'फुले' के नाम से जानी जाती थी।ज्योतिबा बहुत बुद्धिमान थे। उन्होंने मराठी में अध्ययन किया। वे महान क्रांतिकारी, भारतीय विचारक, समाजसेवी, लेखक एवं दार्शनिक थे। 1840 में ज्योतिबा का विवाह सावित्रीबाई से हुआ था। महाराष्ट्र में धार्मिक सुधार आंदोलन जोरों पर था। जाति–प्रथा का विरोध करने और एकेश्वरवाद को अमल में लाने के लिए 'प्रार्थना समाज' की स्थापना की गई थी जिसके प्रमुख गोविंद रानाडे और आरजी भंडारकर थे। उस समय महाराष्ट्र में जाति–प्रथा बड़े ही बीभत्स रूप में फैली हुई थी। स्त्रियों की शिक्षा को लेकर लोग उदासीन थे, ऐसे में ज्योतिबा फुले ने समाज को इन कुरीतियों से मुक्त करने के लिए बड़े पैमाने पर आंदोलन चलाए। उन्होंने महाराष्ट्र में सर्वप्रथम महिला शिक्षा तथा अछूतोद्धार का काम आरंभ किया था। उन्होंने पुणे में लड़कियों के लिए भारत की पहला विद्यालय खोला। लड़कियों और दलितों के लिए पहली पाठशाला खोलने का श्रेय ज्योतिबा को दिया जाता है।

टिप्पणी

इन प्रमुख सुधार आंदोलनों के अतिरिक्त हर क्षेत्र में छोटे–छोटे आंदोलन जारी थे जिसने सामाजिक और बौद्धिक स्तर पर लोगों को परतंत्रता से मुक्त किया था। लोगों में नए विचार, नए चिंतन की शुरुआत हुई, जो आजादी की लड़ाई में उनके संबल बने। उन्होंने किसानों और मजदूरों के हकों के लिए भी संगठित प्रयास किया था। जाति प्रथा, पुरोहितवाद, स्त्री–पुरुष असमानता और अंधविश्वास के साथ समाज में व्याप्त आर्थिक–सामाजिक एवं सांस्कृतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध सामाजिक परिवर्तन की जरूरत भारत में शताब्दियों से रही है. इस लक्ष्य को लेकर आधुनिक युग में सार्थक, सशक्त और काफी हद तक सफल आंदोलन चलाने का श्रेय प्रथमतः ज्योतिराव फुले को ही जाता है। उन्हें ज्योतिबा फुले नाम से भी जाना जाता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता के लिए उनके चलाए आंदोलन के कारण उन्हें आधुनिक भारत की परिकल्पना का पहला रचनाकार भी माना जाता है। ये बात महत्वपूर्ण है कि बाबा साहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने बुद्ध और कबीर के साथ ज्योतिबा फुले को अपना गुरु माना था।

सत्यशोधक समाज की ऐतिहासिक भूमिका

ज्योतिबा फुले के इस आंदोलन में उनके द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज की बड़ी भूमिका थी। ज्योतिबा फुले के मरने के बाद उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने सत्यशोधक समाज के काम को आगे बढ़ाया। वर्तमान समय में समाजशास्त्री गेल ऑम्वेट और रोजालिंड ओ हैनलॉन ने इस बारे में काफी विस्तार से लिखा है, जिसकी वजह से अकादमिक जगत में भी इसकी काफी चर्चा है। यह मानकर कि जाति व्यवस्था को धार्मिक और आध्यात्मिक आधार देने वाले हिंदू धर्म से टकराए बगैर समाज में व्याप्त तरह–तरह की कुरीतियों का समाधान असंभव है, ज्योतिबा फुले ने हिंदू धर्म को सीधी चुनौती पेश की। हजारों वर्षों से मिथक एवं पुराकथाएं जनसाधारण के लिए शास्त्र का काम करती आई हैं। इसे देखते हुए फुले ने 'गुलामगिरी' पुस्तक के माध्यम से, लोक प्रचलित मिथकों की पड़ताल की। इसके फलस्वरूप एक ऐसी चेतना का विस्तार हुआ हुआ, जो आगे चलकर देश के विभिन्न भागों में जातिवाद विरोधी आंदोलनों की प्रेरणा बना। लोगों को अशिक्षा, पुरोहितशाही, जातीय भेदभाव, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध जागरूक करने हेतु जो पुस्तकें उन्होंने रची हैं, इस प्रकार हैं 1– तृतीय रत्न (नाटक, 1855), 2– छत्रपति राजा शिवाजी का पंवड़ा (1869), 3– ब्राह्मणों की चालाकी (1869), 4– गुलामगिरी (1873), 5– किसान का कोड़ा (1883), 6– सतसार अंक–1 और 2 (1885), 7– इशारा (1885), 8–अछूतों की कैफियत (1885), 9– सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक (1889), 10– सत्यशोधक समाज के लिए उपयुक्त मंगलगाथाएं तथा पूजा विधि (1887), 11–अंखडादि काव्य रचनाएं (रचनाकाल ज्ञात नहीं)।

सत्यशोधक समाज की स्थापना

समाज परिवर्तन के आंदोलन को संगठित रूप से आगे बढ़ाने हेतु उन्होंने 24 सितंबर, 1873 को 'सत्य शोधक समाज' की नींव रखी। उन दिनों समाज सुधार का दावा करने वाले कई संगठन काम कर रहे थे। उनमें 'ब्रह्म समाज' (राजा राममोहन राय), 'प्रार्थना समाज' (केशवचंद्र सेन), पुणे सार्वजनिक सभा (महादेव गोविंद रानाडे) आदि प्रमुख थे लेकिन वे सभी द्विजों द्वारा, द्विजों की हित–सिद्धि के बनाए गए थे। उनकी कल्पना में पूरा भारतीय समाज नहीं था। वे चाहते थे कि समाज में जाति रहे, लेकिन उसका चेहरा

टिप्पणी

उतना क्रूर और अमानवीय न हो। इसी क्रम में 1875 में बने आर्य समाज का नाम भी आता है, जो वेदों की ओर लौटने की बात कर रहा था। शूद्रों–अतिशूद्रों की शिक्षा को लेकर राजा राममोहन राय और केशवचंद सेन दोनों के विचार थे कि पहले समाज के उच्च वर्गों में शिक्षा के न्यूनतम स्तर को प्राप्त कर लिया जाए। ऊपर के स्तर पर शिक्षा अनुपात बढ़ेगा तो उसका अनुकूल प्रभाव निचले स्तर पर भी देखने को मिलेगा। अर्थशास्त्र की भाषा में इसे 'रिसाव का सिद्धांत' या ट्रिकल डाउन थ्योरी कहते हैं। इसके अनुसार, ऊपर के वर्गों की समृद्धि धीरे–धीरे रिसकर समाज के निचले वर्गों तक पहुंचती रहती है। ऐसा सोचने वाले ये भूल जाते थे कि प्राचीन काल में जब हर द्विज बच्चे को अनिवार्यतः गुरुकुल जाना पड़ता था, तब ब्राह्मणों का शिक्षानुपात लगभग शत–प्रतिशत होता था वहीं, निचली जातियों का शिक्षानुपात शून्य पर टिका रहता था यानी शिक्षा के क्षेत्र में ट्रिकल डाउन थ्योरी भारत जैसे देश में सफल नहीं हो सकती क्योंकि ये जन्म से ही निर्धारित हो जाता था कि कौन पढ़ेगा और कौन श्रम करेगा और कौन शिक्षा प्राप्त करने वालों की सेवा करेगा।

सत्यशोधक समाज के उद्देश्य

सत्यशोधक समाज के प्रमुख उद्देश्य थे–

1. शूद्रों–अतिशूद्रों को पुजारी, पुरोहित, सूदखोर आदि की सामाजिक–सांस्कृतिक दासता से मुक्ति दिलाना।
2. धार्मिक–सांस्कृतिक कार्यों में पुरोहितों की अनिवार्यता को खत्म करना।
3. शूद्रों–अतिशूद्रों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना, ताकि वे उन धर्मग्रंथों को स्वयं पढ़–समझ सकें, जिन्हें उनके शोषण के लिए ही रचा गया है।
4. सामूहिक हितों की प्राप्ति के लिए उनमें एकजुटता का भाव पैदा करना।
5. धार्मिक एवं जाति–आधारित उत्पीड़न से मुक्ति दिलाना।
6. पढ़े–लिखे शूद्रातिशूद्र युवाओं के लिए प्रशासनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना आदि।
7. कुल मिलाकर ये सामाजिक परिवर्तन के घोषणापत्र को लागू करने का कार्यक्रम था।

सत्यशोधक समाज का फैलाव

शूद्रों और अतिशूद्रों का ज्योतिबा फुले पर भरोसा था। इसकी सबसे बड़ी वजह शिक्षा के क्षेत्र में किए गए उनके काम थे। इसलिए सत्यशोधक समाज को उन्होंने हाथों–हाथ लिया। कुछ ही वर्षों में उसकी शाखाएं मुंबई और पुणे के शहरी, कस्बाई एवं ग्रामीण क्षेत्रों में खुलने लगीं। एक दशक के भीतर वह संपूर्ण महाराष्ट्र में पैठ जमा चुका था। समाज की सदस्यता सभी के लिए खुली थी, फिर भी मांग, महार, मातंग, माली जैसी अस्पृश्य एवं अतिपिछड़ी जातियां तेजी से उससे जुड़ने लगीं। लोगों ने शादी–विवाह, नामकरण आदि अवसरों पर पुरोहितों को बुलाना छोड़ दिया। इससे ब्राह्मण पुजारियों ने निचली जातियों को यह कहकर भड़काना शुरू कर दिया कि बिना पुरोहित के उनकी प्रार्थनाएं ईश्वर तक नहीं पहुंच पाएंगी। घबराए हुए लोग फुले के पास गए। फुले ने उन्हें समझाया कि तमिल, बंगाली, कन्नड़ आदि गैर–संस्कृत भाषी लोगों की प्रार्थनाएं

ईश्वर तक पहुंच सकती हैं, तो उनकी अपनी भाषा में की गई प्रार्थना को ईश्वर भला कैसे अनसुना कर सकता है! उन्होंने कहा कि जहां बहुत जरूरी हो, वहां अपनी ही जाति के अनुभवी व्यक्ति को पुरोहित की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। स्वयं फुले ने कई अवसरों पर पुरोहिताई की।

टिप्पणी

बिना पुरोहित के विवाह–संस्कार

इस संदर्भ में एक प्रसंग बेहद दिलचस्प है। एक परिवार में शादी होने वाली थी। पुरोहितों ने घर आकर डराया कि बिना ब्राह्मण एवं संस्कृत मंत्रों के हुआ विवाह ईश्वर की दृष्टि में अशुभ माना जाएगा। उसके अत्यंत बुरे परिणाम होंगे। गृहिणी सावित्रीबाई फुले को जानती थी। फुले को पता चला तो उन्होंने सत्यशोधक समाज के बैनर तले विवाह संपन्न कराने का ऐलान कर दिया। सैकड़ों सदस्यों की उपस्थिति में वह विवाह खुशी–खुशी संपन्न हुआ।

ज्योतिराव गोविंदराव फुले की मृत्यु 28 नवंबर, 1890 को पुणे में हुई। इस महान समाजसेवी ने अछूतोद्धार के लिए सत्यशोधक समाज स्थापित किया था। उनका यह भाव देखकर 1888 में उन्हें 'महात्मा' की उपाधि दी गई थी।

2.5.3 दादाभाई नौरोजी

गोपाल कृष्ण गोखले और मोहनदास कर्मचंद गांधी के परामर्शदाता दादाभाई नौरोजी न सिर्फ भारत के ग्रैंड ओल्ड मैन के तौर पर जाने जाते हैं, बल्कि वह पहले ऐसे एशियाई व्यक्ति भी थे जिन्हें ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन में सांसद चुना गया था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापकों में से एक दादाभाई नौरोजी का जन्म 4 सितंबर, 1825 को ब्रिटिश राज अधीन तत्कालीन बंबई में हुआ था। पर्सिया में मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा जब गैर–मुसलमानों को जबरन मुसलिम बनाने का कार्य शुरू किया गया, तब किसी तरह वहां से भागकर पारसी लोग बंबई में आकर एक कॉलोनी में रहने लगे थे। यहां आकर वे ब्रिटिश और पुर्तगालियों के साथ व्यापार करते थे। मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में दादाभाई नौरोजी का विवाह गुलबाई से हो गया था।। दादाभाई नौरोजी ने स्कॉटलैंड यूनिवर्सिटी से संबद्ध एल्फिस्टन कॉलेज से गणित और प्राकृतिक विज्ञान की पढ़ाई पूरी की। 1850 में जब दादाभाई नौरोजी मात्र 25 वर्ष के थे तब उन्हें इसी संस्थान में अध्यापक के तौर पर नियुक्त किया गया।। वह पहले ऐसे भारतीय बने जिन्हें ब्रिटेन में महत्वपूर्ण अकादमिक पद प्रदान किया गया। दादाभाई नौरोजी कपास के व्यवसायी और प्रतिष्ठित निर्यातक भी थे।

दादाभाई नौरोजी का योगदान

पारसी धर्म की सादगी, अवधारणा और पवित्रता से अन्य लोगों को अवगत कराने के उदेश्य से दादाभाई नौरोजी ने वर्ष 1851 में रहनुमा मजदायसन सभा और 1854 में पाक्षिक पत्रिका रास्त गोफ्तार (सच बताने वाला) का प्रकाशन किया था। वर्ष 1855 तक दादाभाई नौरोजी बंबई में गणित और प्राकृतिक विज्ञान के अध्यापक के रूप में कार्यरत रहे। 1855 में कामा एंड कंपनी के हिस्सेदार के रूप में दादाभाई नौरोजी वापस इंग्लैंड चले गए। कामा एंड कंपनी की शाखा इंग्लैंड में खोलने के साथ ही दादाभाई नौरोजी पहले ऐसे व्यक्ति भी बने जिन्होंने ब्रिटेन में किसी भारतीय कंपनी को स्थापित किया था। लेकिन तीन वर्ष के अंदर ही नैतिक कारणों का हवाला देते हुए दादाभाई नौरोजी ने

कंपनी से इस्तीफा दे दिया। वहां उन्होंने नौरोजी एंड कंपनी नाम से कपास निर्यात करने वाली कंपनी की स्थापना की। कुछ समय बाद वह यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन में गुजराती भाषा के अध्यापक नियुक्त हुए।

टिप्पणी

दादाभाई नौरोजी ने भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना के पूर्व के दिनों में एलफिंस्टन इंस्टीटयूट में शिक्षा पाई जहां के ये मेधावी छात्र थे। उसी संस्थान में अध्यापक के रूप में जीवन आरंभ कर आगे चलकर वहीं वे गणित के प्रोफेसर हुए, जो उन दिनों भारतीयों के लिए शैक्षणिक संस्थाओं में सर्वोच्च पद था। साथ में उन्होंने समाजसुधार कार्यों में अग्रगामी और कई धार्मिक तथा साहित्य संघटनों के, यथा "स्टूडेंट्स लिटरेरी एंड सांइटिफिक सोसाइटी के, प्रतिष्ठाता के रूप में अपना विशेष स्थान बनाया। उसकी दो शाखाएं थीं, एक मराठी ज्ञानप्रसारक मंडली और दूसरी गुजराती ज्ञानप्रसारक मंडली। रहनुमाई सभा की भी स्थापना इन्होंने की थी।' "रास्त गफ्तार' नामक अपने समय के समाज सुधारकों के प्रमुख पत्र का संपादन तथा संचालन भी इन्होंने किया।

पारसियों के इतिहास में अपनी दानशीलता और प्रबुद्धता के लिए प्रसिद्ध 'कैमास' बंधुओं ने दादाभाई को अपने व्यापार में भागीदार बनाने के लिए आमंत्रित किया। तदनुसार दादाभाई लंदन और लिवरपूल में उनका कार्यालय स्थापित करने के लिए इंग्लैंड गए। विद्यालय के वातावरण को छोड़कर एकाएक व्यापारी धन जाना एक प्रकार की अवनति या अपवतन समझा जा सकता है, परंतु दादा भाई ने इस अवसर को इंग्लैंड में उच्च शिक्षा के लिए जानेवाले विद्यार्थियों की भलाई के लिए उपयुक्त समझा। इसके साथ ही साथ उनका दूसरा उद्देश्य सरकारी प्रशासकीय संस्थाओं का अधिक से अधिक भारतीयकरण करने के लिए आंदोलन चलाने का भी था। जो विद्यार्थी उन दिनों उनके संपर्क में आए और उनसे प्रभावित हुए उनमें सुप्रसिद्ध फीरोजशाह मेहता, मोहनदास कर्मचंद गांधी और मुहम्मद अली जिना का नाम उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त दादाभाई का एक और उद्देश्य ब्रिटिश जनता को ब्रिटिश शासन से उत्पीड़ित भारतीयों के दुःखों की जानकारी कराना और उन्हें दूर करने के उनके उत्तरदायित्व की ओर ध्यान आकर्षित कराना भी था। उन दिनों भारतीय सिविल सेवाओं में सम्मिलित होने के इच्छुक अभ्यर्थियों के लिए सबसे कठिनाई की बात यह थी कि उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में ब्रिटिश अभ्यर्थियों से स्पर्धा करनी पड़ती थी। इस असुविधा को दूर करने के लिए दादा भाई का सुझाव इंग्लैंड और भारत में एक साथ सिविल सर्विस परीक्षा करने का था। इसके लिए उन्होंने 1893 तक आंदोलन चलाया जब कि उन्होंने वहां लोकसभा (हाउस ऑफ कामन्स) में उस सदन के एक सदस्य की हैसियत से अधिक संघर्ष किया और सभा ने भारत तथा इंग्लैंड में एक साथ परीक्षा चलाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन दिनों दूसरी उससे भी बड़ी परिवेदना भारतीयों की भयानक दरिद्रता थी। हालांकि दादाभाई ही पहले व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने इसके लिए दुःख की अभिव्यक्ति की हो किंतु वे पहले व्यक्ति अवश्य थे जिन्होंने उसके उन्मूलन के लिए आंदोलन चलाया। उन्होंने तथ्यों और आंकड़ों से यह सिद्ध कर दिया कि जहां भारतीय दरिद्रता में आकंठ डूबे थे, वहीं भारत की प्रशासकीय सेवा दुनियां में सबसे महंगी थी। सरकारी आंकड़े उन दिनों नहीं के समान थे और जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई गैर सरकारी साधन भी नहीं था। भारतीयों की आर्थिक स्थिति के

टिप्पणी

संबंध में प्रारंभिक सर्वेक्षण के बाद यही निष्कर्ष निकला कि देश में एक व्यक्ति की औसत वार्षिक आय कुल बीस रुपए थी। इन्हीं सब आंकड़ों के आधार पर ईस्ट इंडिया एसोसिएशन के सामने उन्होंने "वांट्स एंड मीन्स आव इंडिया' नामक निबंध 27 जुलाई 1870 को पढ़ा। ब्रिटिशों के समक्ष भारतीयों का दृष्टिकोण रखने के लिए दादाभाई नौरोजी ने वर्ष 1867 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्ववर्ती संगठन ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की स्थापना की। जल्द ही इसे अंग्रेजों का समर्थन मिलने लगा और यह ब्रिटिश संसद में भी प्रभावी रूप से अपनी पहचान बनाने में सफल हुई। 1874 में दादाभाई नौरोजी बड़ौदा के राजा के प्रधानमंत्री बने। इतना ही नहीं 1885–1888 तक वह बंबई विधानपरिषद के सदस्य भी रहे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से कुछ समय पहले ही सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने समान उद्देश्य वाले संगठन इंडियन नेशनल एसोसिएशन की स्थापना की जब कांग्रेस और इंडियन नेशनल एसोसिएशन का विलय किया गया तब 1886 में दादाभाई नौरोजी को उसका अध्यक्ष चयनित किया गया।

दादाभाई नौरोजी भारतीय इतिहास में एक ऐसे नाम हैं जिसने परंपरागत सोच से अलग भारतीयों को प्रयोगवादी बनने के लिए प्रेरित किया। जिस समय लोग ब्रिटिशों से दूर भागने का प्रयत्न कर रहे थे उस समय दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिशों के देश में जाकर एक भारतीय होने के बावजूद अपना एक अलग स्थान बनाया। अध्यापन कार्य हो या फिर कोई राजनैतिक योगदान, दादाभाई के सभी कार्य दूरगामी प्रभाव छोड़ते थे। आज भी मुंबई, पाकिस्तान और यहां तक कि लंदन में भी विरासत के रूप में दादाभाई नौरोजी के नाम पर सड़कों का निर्माण किया गया है।

2.5.4 गोपाल कृष्ण गोखले

गोपाल कृष्ण गोखले (9 मई, 1866 – 19 फरवरी, 1915) भारत के एक स्वतंत्रता सेनानी, समाजसेवी, विचारक एवं सुधारक थे। महादेव गोविंद रानाडे के शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले को वित्तीय मामलों की अद्वितीय समझ और उस पर अधिकारपूर्वक बहस करने की क्षमता से उन्हें भारत का 'ग्लेडस्टोन' कहा जाता है। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सबसे प्रसिद्ध नरमपंथी थे। चरित्र निर्माण की आवश्यकता से पूर्णतः सहमत होकर उन्होंने 1905 में 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी' की स्थापना की ताकि नौजवानों को सार्वजनिक जीवन के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। उनका मानना था कि वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा भारत की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। स्व–सरकार व्यक्ति की औसत चारित्रिक दृढ़ता और व्यक्तियों की क्षमता पर निर्भर करती है। महात्मा गांधी उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। स्वयं गोपाल कृष्ण गोखले का यह विचार था कि भारत जितनी तरक्की अंग्रेजी साम्राज्य में रहकर कर सकता है उतनी उसके बिना सम्भव नहीं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं था कि गोखले भारत से प्रेम नहीं करते थे। गोखले का मानना था कि भारतीयों को पहले शिक्षित होने की आवश्यकता है, तभी वह नागरिक के तौर पर अपना हक यानी आजादी हासिल कर पाएंगे। गोखले किसी भी राष्ट्र की तरक्की के लिए शिक्षा के महत्व को बखूबी समझते थे। गोखले ने शिक्षा और भारत के वैचारिक जागरण के लिए ऐसे कई प्रयास किए थे, जिनमें से प्रारंभिक शिक्षा को मूलभूत अधिकार बनाने का विचार सबसे प्रमुख है। उनकी 'सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी' ने शिक्षा के प्रसार के लिए स्कूल बनवाए। रात में पढ़ाई के लिए फ्री–क्लासें लीं और एक मोबाइल लाइब्रेरी की भी व्यवस्था की। गोखले ने भारत के

लिए 'काउंसिल ऑफ़ द सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट' और 'नाइटहुड' की उपाधि ग्रहण करने से भी मना कर दिया था। कहा जाता है कि उन्होंने ऐसा निम्न जाति के हिन्दुओं की शिक्षा और रोजगार में सुधार की मांग के लिए किया था।

टिप्पणी

शिक्षा का अधिकार कानून

गोखले का मानना था कि भारतीयों को पहले शिक्षित होने की आवश्यकता है तभी वह नागरिक के तौर पर अपना हक यानी आजादी हासिल कर पाएंगे। गोखले किसी भी राष्ट्र की तरक्की के लिए शिक्षा के महत्व को बखूबी समझते थे। गोखले ने अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा का अपना फॉर्मूला साल 1910 में 'प्राथमिक शिक्षा बिल' के रूप में रखा। उस समय गोखले ने इसके पक्ष में ढेरों तर्क दिए पर जब अंग्रेजों को इससे कोई फायदा ही नहीं हो रहा था तो अंग्रेज ऐसा क्यों करते? इसलिए उस वक्त तो ये बिल पास नहीं हो सका पर एक शताब्दी बाद यही बिल देश की जनता के सामने शिक्षा का अधिकार के रूप में आया। माना जा सकता है कि गोखले का वो कदम भारत में शिक्षा के अधिकार की नींव थी।

2.5.5 एसएसए और आरएमएसए के अंतर और स्कूल के अवसरों पर उनका प्रभाव

एसएसए (सर्व शिक्षा अभियान) का कार्यान्वयन वर्ष 2000–2001 से किया जा रहा है जिसका उद्देश्य सार्वभौमिक सुलभता एवं प्रतिधारण, प्रारंभिक शिक्षा में बालक–बालिका एवं सामाजिक श्रेणी के अंतरों को दूर करने तथा अधिगम की गुणवत्ता में सुधार हेतु विविध अंतःक्षेपों में अन्ध्य बातों के साथ–साथ नए स्कूल खोला जाना तथा वैकल्पिक स्कूली सुविधाएं प्रदान करना, स्कूलों एवं अतिरिक्त कक्षा–कक्षों का निर्माण किया जाना, प्रसाधन–कक्ष एवं पेयजल सुविधा प्रदान करना, अध्यापकों का प्रावधान करना, नियमित अध्यापकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा अकादमिक संसाधन सहायता, निःशुल्क पाठ्य–पुस्तकें एवं वर्दियां तथा अधिगम स्तरों/परिणामों में सुधार हेतु सहायता प्रदान करना शामिल हैं। सभी व्यक्तियों को अपने जीवन की बेहतरी का अधिकार है। लेकिन दुनियाभर के बहुत सारे बच्चे इस अवसर के अभाव में ही जी रहे हैं क्योंकि उन्हें प्राथमिक शिक्षा जैसे अनिवार्य मूलभूत अधिकार भी मुहैया नहीं कराए जा रहे हैं। भारत में बच्चों को साक्षर करने की दिशा में चलाये जा रहे कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप वर्ष 2000 के अन्त तक भारत में 94 प्रतिशत ग्रामीण बच्चों को उनके आवास से 1 किमी की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय एवं 3 किमी की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय की सुविधाएं उपलब्ध थीं। अनुसूचित जाति व जनजाति वर्गों के बच्चों तथा बालिकाओं का अधिक से अधिक संख्या में स्कूलों में नामांकन कराने के उद्देश्य से विशेष प्रयास किये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर अब तक प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन लेने वाले बच्चों की संख्या एवं स्कूलों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। 1950–51 में जहां प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए 3.1 मिलियन बच्चों ने नामांकन लिया था वहीं 1997–98 में इसकी संख्या बढ़कर 39.5 मिलियन हो गई। उसी प्रकार 1950–51 में प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 0.223 मिलियन थी जिसकी संख्या 1996–97 में बढ़कर 0.775 मिलियन हो गई। एक अनुमान के मुताबिक वर्ष 2002–03 में 6–14 आयु वर्ग के 82 प्रतिशत बच्चों ने विभिन्न विद्यालयों में नामांकन

लिया था। भारत सरकार का लक्ष्य इस संख्या को इस दशक के अंत तक 100 प्रतिशत तक पहुंचाना है।

टिप्पणी

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि विश्व से स्थायी रूप से गरीबी को दूर करने और शांति एवं सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त करने के लिए जरूरी है कि दुनिया के सभी देशों के नागरिकों एवं उसके परिवारों को अपनी पसंद के जीवन जीने का विकल्प चुनने में सक्षम बनाया जाए। इस लक्ष्य को पाना तभी संभव है जब दुनियाभर के बच्चों को कम से कम प्राथमिक विद्यालय के माध्यम से उच्च स्तरीय स्कूली सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं।

एसएसए का लक्ष्य

सर्व शिक्षा अभियान, एक निश्चित समयावधि के भीतर प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। 86 वें संविधान संशोधन द्वारा 6–14 आयु वर्ष वाले बच्चों के लिए, प्राथमिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में, निःशुल्क और अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराना अनिवार्य बना दिया गया है। सर्व शिक्षा अभियान पूरे देश में राज्य सरकार की सहभागिता से चलाया जा रहा है ताकि देश के 11 लाख गांवों के 19.2 लाख बच्चों की जरूरतों को पूरा किया जा सके। इस कार्यक्रम के अंतर्गत वैसे गांवों में, जहां अभी स्कूली सुविधा नहीं है, वहां नये स्कूल खोलना और विद्यमान स्कूलों में अतिरिक्त क्लास रूम (अध्ययन कक्ष), शौचालय, पीने का पानी, मरम्मत निधि, स्कूल सुधार निधि प्रदान कर उसे सशक्त बनाये जाने की भी योजना है। वर्तमान में कार्यरत वैसे स्कूल जहां शिक्षकों की संख्या अपर्याप्त है वहां अतिरिक्त शिक्षकों की व्यवस्था की जाएगी जबकि वर्तमान में कार्यरत शिक्षकों को गहन प्रशिक्षण प्रदान कर, शिक्षण–प्रवीणता सामग्री के विकास के लिए निधि प्रदान कर एवं टोला, प्रखंड, जिला स्तर पर अकादमिक सहायता संरचना को मजबूत किया जाएगा। सर्व शिक्षा अभियान जीवन–कौशल के साथ गुणवत्तायुक्त प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने की इच्छा रखता है। सर्व शिक्षा अभियान का बालिका शिक्षा और जरूरतमंद बच्चों पर खास जोर है। साथ ही, सर्व शिक्षा अभियान की देश में व्याप्त डिजिटल दूरी को समाप्त करने के लिए कंप्यूटर शिक्षा प्रदान करने की भी योजना है।

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य

- सभी बच्चों के लिए वर्ष 2005 तक प्रारंभिक विद्यालय, शिक्षा गारंटी केन्द्र, वैकल्पिक विद्यालय, "बैक टू स्कूल" शिविर की उपलब्धता।
- सभी बच्चे 2007 तक 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूरी कर लें।
- सभी बच्चे 2010 तक 8 वर्षों की स्कूली शिक्षा पूरी कर लें।
- संतोषजनक कोटि की प्रारंभिक शिक्षा, जिसमें जीवनोपयोगी शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया हो, पर बल देना।
- स्त्री–पुरुष असमानता तथा सामाजिक वर्ग–भेद को 2007 तक प्राथमिक स्तर तथा 2010 तक प्रारंभिक स्तर पर समाप्त करना।
- वर्ष 2010 तक सभी बच्चों को विद्यालय में बनाए रखना।

टिप्पणी

केन्द्रित क्षेत्र

- वैकल्पिक स्कूली व्यवस्था
- विशेष जरूरतमंद बच्चे
- सामुदायिक एकजुटता या संघटन
- बालिका शिक्षा
- प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता

आरएमएसए (राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान)

आरएमएसए का लक्ष्य प्रत्येक घर से उचित दूरी पर एक माध्यमिक स्कूल उपलब्ध कराकर पांच वर्ष में नामांकन दर माध्यमिक स्तर पर 90 प्रतिशत तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 75 प्रतिशत तक बढ़ाने का है। इसका लक्ष्य सभी माध्यमिक स्कूलों को निर्धारित मानकों के अनुरूप बनाते हुए महिला–पुरूष भेदभाव, सामाजिक–आर्थिक और निःशक्तता–बाधाओं को मिटाते हुए और 2017 तक माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा की व्यापक सुलभता की व्यवस्था कराते हुए माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना भी है।

लाखों बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) काफी हद तक सफल रहा है एवं इसने पूरे देश में माध्यमिक शिक्षा के आधारभूत ढांचे को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता उत्पन्न की।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार– "सर्व शिक्षा अभियान सफलतापूर्वक लागू होने से बड़ी संख्या में छात्र उच्च प्राथमिक कक्षाओं में उत्तीर्ण हो रहे हैं तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए ज़बरदस्त मांग उत्पन्न कर रहे हैं।"

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण की चुनौती का सामना करने के लिए माध्यमिक शिक्षा की परिकल्पना में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में मार्गदर्शक तत्व हैंः कहीं से भी पहुंच, सामाजिक न्याय के लिए बराबरी, प्रासंगिकता, विकास, पाठ्यक्रम एवं ढांचागत पहलू। माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण अभियान बराबरी की ओर बढ़ने का मौका देता है। आम स्कूल की परिकल्पना प्रोत्साहित की जाएगी। यदि प्रणाली में ये मूल्य स्थापित किए जाते हैं, तो अनुदान रहित निजी विद्यालयों सहित सभी प्रकार के विद्यालय भी समाज के निचले वर्ग के बच्चों एवं गरीबी रेखा से नीचे (BPL) के परिवारों के बच्चों को उचित अवसर देना सुनिश्चित कर माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण (USE) के लिए योगदान देंगे।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के मुख्य उद्देश्य

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- यह सुनिश्चित करना कि सभी माध्यमिक विद्यालयों में भौतिक सुविधाएं, कर्मचारी हों तथा स्थानीय सरकार/निकायों एवं शासकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों के मामले में कम से कम सुझाए गए मानकों के अनुसार, एवं अन्य विद्यालयों के मामले में उचित नियामक तंत्र के अनुसार कार्य हों।

टिप्पणी

- नियमों के अनुसार सभी युवाओं को माध्यमिक विद्यालय स्तर की शिक्षा सुगम बनाना– नजदीक (जैसे कि माध्यमिक विद्यालय 5 किलोमीटर के भीतर एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय 7–10 किलोमीटर के भीतर) दक्ष एवं सुरक्षित परिवहन की व्यवस्था/ आवासीय सुविधाएं, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार, मुक्त स्कूलिंग सहित। लेकिन पहाड़ी तथा दुर्गम क्षेत्रों में, इन नियमों में कुछ ढील दी जा सकती है। ऐसे क्षेत्रों में आवासीय विद्यालय स्थापित किए जाने को तरजीह दी जा सकती है।
- यह सुनिश्चित करना कि कोई भी बालक लिंग, सामाजिक–आर्थिक, असमर्थता या अन्य रुकावटों की वज़ह से गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा से वंचित न रहे।
- माध्यमिक शिक्षा का स्तर सुधारना, जिसके परिणामस्वरूप बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सीख बढ़े।
- यह सुनिश्चित करना कि माध्यमिक शिक्षा ले रहे सभी छात्रों को अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा मिले।
- उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति, अन्य बातों के साथ–साथ, साझा विद्यालय प्रणाली (कॉमन स्कूल सिस्टम) की दिशा में महती प्रगति को भी दर्शाएगी।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की गुणवत्ता

1. आवश्यक ढांचागत सुविधाएं, जैसे श्यामपट्ट, कुर्सियां, पुस्तकालय, विज्ञान एवं गणित की प्रयोगशालाएं, कम्प्यूटर प्रयोगशालाएं, शौचालय आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराना।
2. अतिरिक्त शिक्षकों की नियुक्ति तथा शिक्षकों का कार्य के दौरान प्रशिक्षण।
3. कक्षा 8 उत्तीर्ण कर रहे छात्रों की सीखने की क्षमता में वृद्धि के लिए सेतु–पाठ्यक्रम।
4. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना के मानकों की अपेक्षा के अनुसार पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन।
5. ग्रामीण तथा दुर्गम पहाड़ी इलाकों में शिक्षकों के लिए आवासीय सुविधा।
6. महिला शिक्षकों को आवासीय सुविधा के लिए प्राथमिकता दी जाएगी।

अपनी प्रगति जांचिए

7. महात्मा गांधी अपना राजनीतिक गुरु किसे मानते थे?

   (क) मदनमोहन मालवीय (ख) गोपाल कृष्ण गोखले

   (ग) दादाभाई नौरोजी (घ) ज्योतिबा फुले

8. सर्व शिक्षा अभियान का कार्यान्वयन कब से किया जा रहा है?

   (क) 1997–98 (ख) 1998–99

   (ग) 1999–2000 (घ) 2000–2001

टिप्पणी

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (ग)
7. (ख)
8. (घ)

2.7 सारांश

भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय अर्थव्यवस्था ब्रिटिश शासन से पूर्व आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि 'अतिरेक सृजक अर्थव्यवस्था' (Surplus creating Economy) थी। उस समय की अर्थव्यवस्था ग्रामीण थी तथा ग्रामीण समुदाय श्रम-विभाजन को आधार मानकर आर्थिक क्रियाओं का संपादन किया करते थे। उस समय औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन कुटीर उद्योगों के द्वारा होता था परंतु ब्रिटिश शासन काल में शोषणकारी नीतियों, बेरोजगारी एवं गरीबी के कारण अर्थचक्र ऐसा बदला कि जब 1947 में देश आजाद हुआ तब तक आर्थिक ढांचा पूरी तरह चरमरा चुका था।

विकास और विस्थापन की बहस से कई मर्तबा गुजरने के बाद हम सबके सामने यह सवाल आया कि बिजली, सड़क, कारखाने या किसी तानाशाह की मनोवृत्ति को संतृप्त करने के लिये जब विकास की परिभाषा गढ़ी जाती है, तब क्या–क्या घटता है? अक्सर बहस इस बात पर आकर टिक जाती है कि विकास के लिये विस्थापन जरूरी है और जब किसी का विस्थापन होता है तो उसका अच्छे से पुनर्वास होना चाहिए।

औद्योगिक उत्पादन में प्राकृतिक संसाधनों और कच्चे पदार्थों जैसे कि जल, इमारती लकड़ी और खनिजों का प्रयोग किया जाता है और इसी के चलते औद्योगिक वृद्धि पर्यावरण के नुकसान का कारण बन जाती है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के एजेंडे की स्थिरता के लिए अच्छा संतुलन कायम करना बहुत जरूरी है। पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में सतत विकास के लिए सभी आयामों का संतुलित तरीके से इस्तेमाल करना होगा। विकास तभी टिकाऊ रह सकता है, जब वह प्राकृतिक संतुलन की रक्षा करता हो। पर्यावरण को सामान्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला भौगोलिक और प्राकृतिक पर्यावरण तथा दूसरा कृत्रिम एवं सामाजिक पर्यावरण। प्राकृतिक एवं भौगोलिक पर्यावरण में जल, वनस्पति, पशुधन, खनिज सम्पदा आदि शामिल हैं।

पर्यावरणीय ह्रास अर्थात पर्यावरणीय विघटन का आशय पर्यावरण के गुणों में गिरावट आ जाने से है क्योंकि मानव के प्रकृति–विरोधी कृत्यों के कारण प्रकृति के

टिप्पणी

मौलिक घटकों की गुणवत्ता घट चुकी है। मानवों की अमानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण इस आधुनिक काल में अत्यधिक प्रतिकूलता से प्रभावित हो रहा है। इन मानव–जन्य परिवर्तनों के दुष्प्रभावों की परिधि में अन्य जीव–समुदायों सहित मानवप्रजाति स्वयं भी सम्मिलित है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे–वैसे उनकी आवश्यकता भी बढ़ती चली गई। उन आवश्यकताओं की पूर्ति का मूल आधार उनका परिवार, समाज और राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था है। आर्थिक व्यवस्था युवा कारक है जो व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का अवसर प्रदान करती है। आज के समय में आर्थिक विकास ही एक राष्ट्र की प्राथमिक एवं मौलिक समस्या है।

भारत में कृषि शिक्षा के इतिहास का पता मध्यकाल से लगाया जा सकता है जब कृषि के अध्ययन को नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में शामिल किया गया था। हालांकि, कृषि शिक्षा में औपचारिक पाठ्यक्रम केवल 20वीं शताब्दी की शुरुआत में शुरू हुए, जब 1905 में कानपुर, लायलपुर (अब पाकिस्तान में), कोयंबटूर और नागपुर में, 1907 में पुणे में और 1908 में सबौर में सामान्य विश्वविद्यालयों के तहत छह कृषि महाविद्यालय स्थापित किए गए।

औद्योगिक व्यवस्था राष्ट्र की सबसे बड़ी व्यवस्था होती है जिसके अंतर्गत अधिक से अधिक लोगों को रोजगार एवं लघु एवं बड़े उद्योगों से उनके जीवन का निर्वहन होता है। औद्योगीकरण एवं उसके विकास के लिए वहां के युवाओं एवं कुशल योग्य लोगों के बीच तकनीकी ज्ञान का होना अति आवश्यक है जिससे हम यह आकलन कर पाते हैं कि उस देश की विकास गति किस तरह से रोजगार एवं उत्पादन में बढ़ोतरी कर सकती है।

वैश्वीकरण या ग्लोबलाइजेशन एक ऐसा प्लेटफार्म है जहां विश्व के सभी देश आपस में सामंजस्य बिठाकर एक दूसरे की मदद करके विश्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। संसार के सभी देश एक दूसरे के विकास एवं समस्याओं के समाधान के लिए एकजुट होकर एक दूसरे के पूरक बनते हैं। विभिन्न तरह के शिखर सम्मेलन एवं अंतरराष्ट्रीय संगठन जैसे यूनेस्को, यूनिसेफ, डब्ल्यूएचओ, डब्ल्यूटीओ इत्यादि वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के उदाहरण है। आर्थिक विकास उदारीकरण एवं निजीकरण के सामंजस्य की विश्व स्तरीय प्रक्रिया को वैश्वीकरण अर्थात ग्लोबलाइजेशन कहते हैं।

भारतीय समाज की जीवन शैली पर धर्म का बड़ा ही व्यापक प्रभाव रहा है। भारतीय समाज में वैदिक काल से लेकर आज तक एक दूसरे के विभिन्न धर्मों और धार्मिक विश्वासों को मानने वाले समूहों को अपने आचरण के नियम निर्धारित करने की पूरी स्वतंत्रता मिलती रही है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है जहां सभी धर्मों को एक समान देखा जाता है वहीं दूसरी ओर भारत धर्म के लिए पूर्ण रुप से स्वतंत्र है जिसमें सभी धर्मों के अनुयायियों को धर्म मानने का अधिकार है।

टिप्पणी

मानव जीवन में शिक्षा से बड़ी कोई भी कुंजी नहीं है। भारत सदियों से शिक्षा का केंद्र रहा है। नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय मुख्यतः प्राचीन काल से ही विश्व शिक्षा का केंद्र रहे हैं। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में शिक्षा और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाया गया है। भारत की प्राचीन शिक्षा मुख्यतः अध्यात्म पर आधारित थी। शिक्षा, मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रूप में भी छात्र और शिक्षकों का आपसी संबंध प्रेम और सम्मान था। सादगी, सदाचार, विद्या, प्रेम और धर्म आचरण पर जोर दिया जाता था। कंठस्थ करने की परंपरा थी

गांधी जी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन–दर्शन पर आधारित है। उनकी सत्य, अहिंसा, त्याग, निष्ठा एवं सहानुभूति आदि मानवीय गुणों में श्रद्धा थी और जीवनपर्यन्त रही। इन मानवीय गुणों को शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गांधी जी के जीवन में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों को स्थान मिला। गांधी जी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन–दर्शन का गतिशील पक्ष है। गांधी जी के शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद का अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। इनका दृष्टिकोण भौतिकवादी भी दिखाई पड़ता है। गांधी जी ने उत्पाद क्रिया को माध्यम बनाने की संस्तुति की है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक बालक अपने बचपन से ही अपनी रोटी कमाने के लिए आदत बनाए तथा शिक्षा में श्रम तथा वैज्ञानिक ज्ञान को साथ जोड़ने की क्षमता होनी चाहिए। यह संकेत भौतिकवादी भावना प्रकट करता है।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **विद्यमान** – उपस्थित, मौजूद
- **विस्थापन** – एक स्थान से उजड़कर दूसरे स्थान पर स्थापित होना
- **पर्यावरणीय ह्रास** – पर्यावरण की हानि
- **मृदा** – भूमि, जमीन, मिट्‌टी
- **निर्वनीकरण** – भूमि को वनहीन कर देना
- **जीर्णोद्धार** – दोबारा मरम्मत करना
- **अंततोगत्वा** – आखिरकार, अंत में
- **वैश्वीकरण** – आर्थिक विकास उदारीकरण एवं निजीकरण के सामंजस्य की विश्व स्तरीय प्रक्रिया
- **समन्वय** – तालमेल

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं कौन–सी हैं? उल्लेख कीजिए।

2. विकास और विस्थापन से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
3. वैश्वीकरण क्या है? परिभाषित कीजिए।
4. शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गांधी का क्या योगदान रहा? स्पष्ट कीजिए।
5. सर्व शिक्षा अभियान से आप क्या समझते है? उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. विकासशील अर्थव्यवस्था में भारत की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था में शिक्षा का क्या महत्व है? विस्तार से समझाइए।
3. आधुनिक भारतीय समाज की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
4. शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गांधी एवं ज्योतिबा फुले का क्या योगदान है? टिप्पणी कीजिए।
5. सर्व शिक्षा अभियान एवं राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Allen, L.A. 1995 Management and Organization, Mc Graw Hill, Auckland
- Anand, C.L. et.al. 1983 Teacher and Education in Emerging in Indian Society, NCERT, New Delhi.
- Coombs, Philip H. 1985 The World Crisis in Education, Oxford University Press New York.
- Govt. of India 1986 National Policy on Education, Min. of HRD, New Delhi.
- Govt. of India 1992 Programme of Action (NPE). Min of HRD.
- Koontz, Harold et al : 1981 Management, Mc Graw Hill, Auchland.
- Mohanty, J., 1986 School Education in Emerging Society, Sterling Publishers, New Delhi.
- Mukherjee, S.N. 1963 Secondary School Administration, Acharya Book Depot, Baroda.
- Mukherji, S.M., 1966 History of Education in India, Acharya Book Depot, Baroda.

इकाई 3 आधुनिक भारत और शिक्षा का आदर्श दृष्टिकोण : भारत का संविधान

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 भारत के संविधान का निर्माण
  3.2.1 संविधान : अर्थ और कार्य
  3.2.2 संविधान सभा का गठन : प्रकृति और कार्य
  3.2.3 भाषा और शिक्षा पर संविधान सभा की बहस
3.3 भारत का संविधान : बुनियादी दर्शन और विशेषताएं
  3.3.1 प्रस्तावना
  3.3.2 मौलिक अधिकार और कर्तव्य
  3.3.3 राज्य के नीति निदेशक तत्व
  3.3.4 भाषा नीति संबंधित अनुसूची
  3.3.5 भारत का संविधान और शैक्षिक प्रावधान
3.4 भारत में शिक्षा : अधिकार का विशेषाधिकार
  3.4.1 विशेषाधिकार के रूप में शिक्षा
  3.4.2 शैक्षिक अवसर : भारतीय शैक्षिक अतीत पर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी
  3.4.3 शिक्षा के अधिकार के रूप में मांग और प्रयास : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक जांच
  3.4.4 शिक्षा के अधिकार की संवैधानिक यात्रा : राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों के माध्यम से संविधान सभा में आरटीई (RTE) एक्ट 2009 पर वाद विवाद
  3.4.5 आरटीई (RTE) ACT 2009 : मुख्य विशेषताएं
  3.4.6 शिक्षा का अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009–एक बहस
3.5 बाल अधिकार : शिक्षा
  3.5.1 अंतर्राष्ट्रीय बाल अधिकार सम्मेलन–1989
  3.5.2 बाल अधिकारों पर संवैधानिक प्रावधान
  3.5.3 वंचित बच्चों का अधिकार– बालिकाएं और अलग–अलग विकलांग बच्चे
  3.5.4 वंचित बचपन और बाल श्रम और स्कूली शिक्षा : वैकल्पिक स्कूल– प्रकृति
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

भारत के संवैधानिक विकास को कालक्रमानुसार हम पांच चरणों में विभाजित कर सकते हैं। पहले चरण में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना, दूसरे चरण में कम्पनी भारत की वास्तविक प्रशासक बन गई थी, तीसरे चरण में भारत में कम्पनी प्रशासन का अन्त तथा इंग्लैण्ड के साम्राज्य की राजकीय घोषणा, चौथे चरण में भारत में स्वशासन का आरम्भ तथा पांचवें चरण में भारतीय संविधान की रचना हुई।

टिप्पणी

भारतीय संवैधानिक विकास में 26 जनवरी, 1950 भारत के इतिहास का वह दिन है जिसने इतिहास में एक खास जगह पाई है। नव स्वाधीन राष्ट्र के सुदृढ़ ढांचे के लिए एक ऐसे संविधान की आवश्यकता थी जिससे कि आने वाले समय में सरकार और प्रशासन को सुचारू रूप से चलाया जा सके। संविधान निर्माण कोई आसान कार्य नहीं था। कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार नवम्बर, 1946 में संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव किया गया। संविधान सभा ने 2 वर्ष 11 महीने और 18 दिन के अथक प्रयासों से संविधान का निर्माण कार्य पूर्ण किया। संविधान के कुछ उपबंध 26 नवम्बर, 1946 को तथा शेष 26 जनवरी, 1950 को लागू कर दिये गए। संविधान निर्माण मात्र 3 वर्षों का फल नहीं है, इसके लिए पूरे 350 वर्षों के काल का अवलोकन आवश्यक है। सन् 1600 से अंग्रेजों ने भारत भूमि में व्यापारिक उद्देश्यों को लेकर पदार्पण किया था और कालान्तर में वे शासक बन गए। भारतीय संविधान के इस विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को हम पांच भागों में बांट सकते हैं– (i) सन् 1600 से 1765 तक, (ii) सन् 1765 से 1858 तक, (iii) सन् 1858 से 1919 तक, (iv) सन् 1919 से 1947 तक तथा (v) सन् 1947 से 1950 तक।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं और मूलभूत ढांचे या आधारभूत सिद्धांतों की अवधारणा स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से विश्लेषित की गई है। इसके साथ ही संविधान में वर्णित नागरिकों के मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों का, भारत में शिक्षा के अधिकारों और बाल अधिकारों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संविधान के निर्माण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- संविधान के कार्यों से अवगत हो पाएंगे;
- मौलिक अधिकार और कर्तव्यों को भलीभांति समझ पाएंगे;
- राज्य के नीति निदेशक तत्वों के महत्व को जान पाएंगे।

3.2 भारत के संविधान का निर्माण

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सबसे महत्वपूर्ण कार्य था, भारत जैसे विशाल, बहुभाषी, विभिन्न धर्मों वाले देश के लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण करना जिससे वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। कैबिनेट मिशन के प्रावधानों के अनुसार नवम्बर, 1946 को संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव किया गया। कुल 296 सदस्यों में से 211 कांग्रेस के और 73 मुस्लिम लीग के चुने गए, शेष स्थान रिक्त रहे।

जिस समय संविधान सभा का गठन हुआ था इसे कैबिनेट मिशन की योजना के प्रावधानों के अनुसार गठित किया गया था। मुस्लिम लीग ने संविधान सभा में शामिल होने से इंकार कर दिया था। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को आयोजित की गई। इस पहली बैठक की अध्यक्षता श्री सच्चिदानन्द सिन्हा ने की थी।

टिप्पणी

11 दिसम्बर, 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। 13 दिसम्बर, 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने अत्यन्त महत्वपूर्ण 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया।

3 जून, 1947 की घोषणा से विभाजन का होना तय हो गया था इसलिए मुस्लिम लीग द्वारा किये जा रहे असहयोग का कोई अर्थ नहीं रह गया था। 1947 के स्वतंत्रता अधिनियम के पारित होते ही संविधान सभा एक सम्प्रभु निकाय बन गयी थी और वह कैबिनेट मिशन द्वारा निर्धारित सीमाओं से बाहर भारत के लिए इसकी आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान बना सकती थी।

29 अगस्त, 1947 को संविधान की 'प्रारूप समिति' नियुक्त की गयी। डॉ. भीमराव अम्बेडकर को प्रारूप समिति का अध्यक्ष चुना गया। प्रारूप समिति का कार्य संविधान सभा की परामर्श शाखा द्वारा बनाये गये संविधान का परीक्षण करके पुनः संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करना था। प्रारूप समिति ने फरवरी, 1948 को संविधान का प्रारूप संविधान के अध्यक्ष को सौंप दिया। संविधान के तीसरे वाचन के साथ ही 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान अंतिम रूप से पास कर दिया गया। 24 जनवरी, 1949 को संविधान सभा ने अपने अंतिम दिन संविधान की तीन प्रतियां सभा पटल पर रखीं। संविधान सभा के सभी सदस्यों ने संविधान की तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर किये। हस्ताक्षर करने के पश्चात् जन, गण, मन तथा वन्देमातरम् के गायन के साथ सभा का समापन किया गया। 26 जनवरी, 1950 को इसका भारतीय गणराज्य की संसद के रूप में आविर्भाव हुआ।

सम्पूर्ण संविधान के निर्माण में 2 वर्ष 11 मास और 18 दिन का समय लगा। मूल संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि "अमरीका, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया की संविधान सभाओं को अपने संविधानों की रचना में जितना समय लगा था, उसे देखते हुए भारतीय संविधान सभा ने देश के लिए बहुत शीघ्र संविधान बना लिया है और इसे बधाई दी जा सकती है।"

3.2.1 संविधान : अर्थ और कार्य

भारतीय संविधान एक लिखित और निर्मित संविधान है। कोई भी संविधान चाहे वह लिखित हो या अलिखित राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है। संविधान एकाएक अस्तित्व में नहीं आता है, संविधान ऐतिहासिक विकास का परिणाम होता है। भारतीय संविधान पर भी ऐसे ऐतिहासिक प्रभाव साफ–साफ परिलक्षित होते हैं। यही विशेषताएं भारतीय संविधान को विशेष महत्व प्रदान करती हैं। हमारे संविधान निर्माताओं का उद्देश्य ऐसा व्यावहारिक संविधान बनाना था जिसे भारत जैसे विविधताओं वाले देश में तथा संकटकाल में भी चलाया जा सके। विश्व भर के संविधानों का अध्ययन करने के पश्चात् भारत का संविधान बनकर तैयार हुआ, यह अत्यन्त व्यापक था। डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा है कि "उधार लेने में किसी की साहित्यिक चोरी नहीं है। शासन और विधान के बुनियादी

टिप्पणी

सिद्धान्तों के बारे में किसी का कोई एकाधिकार नहीं होता।" संविधान निर्माता इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि उन पर भारत जैसे विशाल आकार वाले विविधता से भरे देश के संविधान के निर्माण का उत्तरदायित्व है। अतः संविधान ऐसा होना चाहिए जो न केवल शान्तिकाल में बल्कि संकटकाल में भी दिशासूचक कार्य करे। इसी प्रयास में संविधान अत्यन्त व्यापक बन गया। श्री हरिविष्णु कामथ ने संविधान सभा में कहा था कि, "हमें इस बात पर गर्व है कि हमारा संविधान विश्व का सबसे विशालकाय संविधान है।" भारत का संविधान केवल विस्तृत ही नहीं है इसमें विचारों और आदर्शों को भी पर्याप्त स्थान और महत्व दिया गया है। भारतीय संविधान के उच्च आदर्श व सिद्धान्तों में देश की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार करने की क्षमता है, यह सिद्धान्त पचास के दशक में भी प्रासंगिक थे और आज इक्कीसवीं सदी में भी प्रासंगिक हैं। यह आधारभूत सिद्धान्त शासन प्रणाली को आधार प्रदान करते हैं।

1. **सर्वाधिक विस्तृत संविधान**–भारतीय उपमहाद्वीप के लिए एक ऐसे संविधान की आवश्यकता अनुभव की गई जो विभिन्न प्रान्तों, धर्मों, जातियों, भौगोलिक परिस्थितियों तथा नई चुनौतियों का मुकाबला करने में सक्षम हो। 2 वर्ष 11 महीने और 18 दिनों के अथक परिश्रम के उपरान्त संविधान सभा ने जो मूल संविधान भारतवर्ष के समक्ष प्रस्तुत किया वह निःसन्देह विश्व का सबसे विस्तृत संविधान था। उसमें कुल 395 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियां शामिल थीं और यह 22 भागों में विभाजित था। संविधान की इस विशालता के पीछे निम्नलिखित कारण रहे हैं–

   (i) विश्व के भिन्न–भिन्न संविधानों से महत्वपूर्ण तथ्यों और प्रावधानों को सम्मिलित करना–भारतवर्ष से पहले लोकतान्त्रिक व्यवस्था विश्व के अन्य देशों में सफलतापूर्वक संचालित हो रही थी। अतः संविधान निर्माताओं ने इस बात का लाभ उठाते हुए उनकी विशेषताओं को संविधान में स्थान दिया, जैसे– अमेरिकी संविधान से मूल अधिकार, ब्रिटेन से संसदीय लोकतंत्र, आयरलैण्ड से नीति–निदेशक तत्व, कनाडा से संघवाद, आस्ट्रेलिया से समवर्ती सूची, फ्रांस से प्रेरित होते हुए प्रयुक्त शब्दावली, 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' जापानी संविधान से प्रेरित है संविधान में मनोनयन का प्रावधान भी आयरलैण्ड से प्रेरित है।

   (ii) भारतवर्ष की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियां, यहां की भौगोलिक परिस्थितियां, अनेक धर्म, जातियां, भाषायें, नस्लें आदि सभी का संविधान की अति विशालता के पीछे एक कारण के रूप में योगदान है।

2. **लोकप्रिय प्रभुसत्ता, लोकतन्त्रात्मक, पंथ–निरपेक्ष, समाजवादी गणराज्य की अवधारणा पर आधारित संविधान**–भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुसार अन्तिम शक्ति जनता में निहित है। संविधान का उद्देश्य भारत में प्रभु–सत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना करना है। प्रस्तावना में

कहा गया है, "हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक, पंथ निरपेक्ष, समाजवादी गणराज्य बनाने के लिए दृढ़संकल्प होकर इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

उपर्युक्त शब्दावली की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं–

(i) प्रभुत्वसम्पन्न राज्य उसे कहते हैं जो आन्तरिक और बाह्य नियन्त्रण से सर्वथा मुक्त हो, जिसकी विदेश नीतियां स्वयं से निर्धारित हों।

(ii) लोकतन्त्रात्मक शब्द का तात्पर्य ऐसे शासन से है जिसमें सम्पूर्ण शक्ति जनता में निहित होती है, सरकार जनता के लिए उत्तरदायी होती है तथा जनता द्वारा ही सत्ता में आती है।

(iii) 'पंथ निरपेक्ष' यह शब्दावली मूल संविधान में नहीं थी। इसे 42वें संविधान संशोधन के द्वारा प्रस्तावना में सम्मिलित किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा राष्ट्र जिसमें किसी भी विशेष धर्म को राजधर्म के रूप में मान्यता न दी गई हो बल्कि सभी धर्म समान हों।

(iv) समाजवादी व्यवस्था की अवधारणा आर्थिक न्याय पर आधारित है। साधारणतः इस शब्द का प्रयोग ऐसी व्यवस्था के लिए किया जाता है जहां उत्पादन और वितरण के साधनों पर शासन का नियन्त्रण हो। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह आंशिक रूप से ही पाया जाता है क्योंकि यहां मिश्रित अर्थव्यवस्था है। गणराज्य शब्द का आशय इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत का सर्वोच्च अधिकारी अर्थात राष्ट्रपति भारतीय जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाने के उपरान्त ही पद ग्रहण करता है।

3. **निर्मित तथा लिखित संविधान**–भारत में संविधान के निर्माण के लिए विशेष रूप से संविधान सभा की व्यवस्था की गई थी, जिसने भारत के लिए संविधान का निर्माण किया है, यह संविधान लिखित है। इसके समस्त प्रावधान लिखित रूप में हमारे सामने हैं।

4. **कठोरता और लचीलेपन का समन्वय**–संविधान की कठोरता और लचीलापन संविधान की संशोधन प्रक्रिया पर निर्भर करता है। कठोर संविधान उसे माना जाता है जिसमें संविधान में संशोधन के लिए एक जटिल प्रक्रिया को अपनाया जाता है जो साधारण कानून निर्माण की प्रक्रिया की अपेक्षाकृत कठिन होती है। इस प्रकार भारतीय संविधान कठोर संविधान की श्रेणी में आता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 368 के अनुसार कुछ विषयों में संशोधन के लिए संसद के समस्त सदस्यों के बहुमत और उपस्थित सदस्यों के दो–तिहाई के अतिरिक्त विधानमण्डलों में से कम से कम आधों का समर्थन होना आवश्यक है। इस प्रकार यह संशोधन प्रणाली निश्चित रूप से कठोर है। इसके विपरीत लचीला संविधान वह संविधान होता है जिसमें संसद द्वारा साधारण विधि से पारित करके संशोधन किया जा सकता है।

5. **संसदात्मक शासन प्रणाली**–एक नव स्वतंत्र राष्ट्र के लिए यह एक ज्वलन्त प्रश्न था कि इसके लिए अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था लागू की जाये या संसदात्मक शासन व्यवस्था। भारत सरकार अधिनियम 1919 और 1935 के द्वारा संसदीय शासन व्यवस्था की नींव पड़ चुकी थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले प्रावधानों से भारतीय जनता परिचित हो चुकी थी इसलिए संविधान सभा ने भारतीय शासन व्यवस्था के लिए संसदीय प्रतिमान को ही प्राथमिकता दी। इसमें राष्ट्रपति इंग्लैण्ड के सम्राट की भांति नाममात्र का प्रधान होता है। वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद और उसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। ये सामूहिक रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सैद्धान्तिक रूप से तो समस्त कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होती हैं परन्तु व्यवहारिक तौर पर वह इनका प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह के अभाव में नहीं कर सकता है।

6. **एकात्मक तथा संघात्मक तत्वों का सम्मिश्रण**–भारतीय संविधान में एकात्मक तथा संघात्मक दोनों ही व्यवस्थाओं की विशेषताएं पाई जाती हैं। भारतीय संविधान का मूल ढांचा संघात्मक है किन्तु उसमें एकात्मक होने की क्षमता अविश्वसनीय है। आपातकालीन परिस्थितियों में संविधान पूर्ण रूप से एकात्मक हो जाता है। इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता, इकहरी न्यायपालिका, गवर्नरों की नियुक्ति, अखिल भारतीय सेवायें, राज्यों का पुनर्गठन, नाम व क्षेत्रों में परिवर्तन इत्यादि। हालांकि भारतवर्ष राज्यों का संघ है। प्रत्येक राज्य की अपनी सरकार है, शासन व्यवस्था है, विधि निर्माण के अलग–अलग विषय हैं, इससे स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति का स्पष्ट विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच पाया जाता है। जिन देशों से भारतीय संविधान निर्माताओं ने प्रेरणा लेकर भारत में संघात्मक व्यवस्था को लागू करने का निर्णय लिया था उन देशों में जो व्यवहारिक कठिनाइयां उत्पन्न हुई उन्हीं के फलस्वरूप संविधान में ऐसे उपबन्धों को भी सम्मिलित किया गया जिससे केन्द्र अधिक शक्तिशाली हो जाता है। यदि केन्द्र और राज्य के बीच कभी कोई संवैधानिक गतिरोधों की स्थिति उत्पन्न होती है तो ऐसी स्थिति में उच्चतम न्यायालय न्यायिक व्यवस्था और गतिरोधों को दूर करने के लिए मध्यस्थ व फैसला सुनाने का कार्य करता है।

7. **स्वतंत्र न्यायपालिका**–भारतीय संविधान ने न्यायपालिका की सर्वोच्चता को अमेरिकी संविधान से प्रेरित होकर सम्मिलित किया है। यद्यपि संघात्मक व्यवस्थाओं में दोहरी न्याय व्यवस्था होती है, एक पूरे संघ की और दूसरी राज्यों की। भारतीय संविधान में न्यायपालिका का मुख्य कार्य केन्द्र और राज्यों के बीच के गतिरोधों का निपटारा करना होता है। राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा निर्मित विधि को असंवैधानिक घोषित करना होता है। न्यायपालिका का अन्य कार्य मूल अधिकारों की रक्षा करना भी है क्योंकि यदि मूल अधिकारों का संरक्षण नहीं होगा तो यह अपना महत्व खो देंगे। स्वतंत्र न्यायपालिका प्रजातंत्र का एक

टिप्पणी

मजबूत आधार होती है। इसकी स्वतंत्रता इसलिए भी आवश्यक है जिससे यह निष्पक्ष और निर्भयतापूर्वक न्याय प्रदान कर सके।

8. **एकल नागरिकता**–न्यायपालिका की ही भांति संघात्मक व्यवस्था में दोहरी नागरिकता का भी प्रावधान होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसी प्रकार की व्यवस्था है। वहां का नागरिक एक साथ संघ और राज्य दोनों का नागरिक माना जाता है तथा दोनों के द्वारा प्रदत्त अधिकारों का उपभोग करता है। इसके विपरीत भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था है, भारत में नागरिक किसी राज्य या प्रान्त का नहीं होता वह केवल भारत का नागरिक होता है। भारतीय संविधान निर्माताओं का विचार था कि राज्य या प्रान्त की नागरिकता देश एकता और अखण्डता के लिए बाधक सिद्ध हो सकती है।

9. **मूल अधिकार और कर्तव्य**–व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास के लिए जिन परिस्थितियों का होना अनिवार्य माना जाता है, उन्हें मूल अधिकार कहते हैं। मौलिक अधिकारों की घोषणा संविधान के भाग 3 में की गई है। मौलिक अधिकारों का तात्पर्य उन अधिकारों और स्वतंत्रताओं से है जिन्हें राज्य की विधायी और कार्यपालिका शक्तियों पर निर्बन्धन स्वरूप देखा जा सकता है। संविधान राज्य द्वारा ऐसे कानूनों के निर्माण का निषेध करता है, जिनसे नागरिकों के मूल अधिकारों का हनन होता है। यदि राज्य ऐसी विधि बना देता है तो न्यायपालिका उसे असंवैधानिक घोषित कर सकती है। संविधान न केवल मूल अधिकार प्रदत्त करता है उनके संरक्षण की भी व्यवस्था करता है। भारतीय संविधान मूल अधिकारों की घोषणा के साथ–साथ संकटकालीन परिस्थितियों में मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए जाने की भी व्यवस्था करता है, जिससे देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने में बाधा उत्पन्न न हो।

   मूल अधिकारों के साथ–साथ भारतीय संविधान में मूल कर्तव्यों की भी व्यवस्था की गई है। हालांकि मूल दस्तावेज में मूल कर्तव्यों का कोई प्रावधान नहीं है परन्तु 42वें संविधान संशोधन के द्वारा 1976 में संविधान में एक नया भाग चौथा 'क' जोड़ा गया। नए अनुच्छेद 51(क) में नागरिकों के लिए 10 मूल कर्तव्यों की व्यवस्था की गई।

10. **राज्य के नीति निदेशक तत्व**–राज्य के नीति निदेशक तत्वों में हमारे संविधान का सामाजिक न्याय पर आधारित दर्शन दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संविधान के चौथे भाग में इन निदेशक तत्वों का उल्लेख मिलता है। राज्य के नीति निदेशक तत्वों की प्रेरणा आयरलैण्ड के संविधान से मिली है। ये सिद्धान्त निर्देशों के रूप में हैं जो व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के लिए पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाते हैं। ये निदेशक तत्व नीतियों के निर्माण के लिए कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को वे निर्देश हैं जिनसे राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करे जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर बल दिया

टिप्पणी

जाये। राज्य इन्हीं नीति निदेशक तत्वों का पालन करके संविधान में उल्लिखित एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना कर सकता है। यह तत्व मूल अधिकारों की तुलना में कम प्रभावशाली है क्योंकि यह वादयोग्य नहीं है परन्तु इनके आदर्श स्वरूप के कारण ही ग्लेविल ऑस्टिन ने इन्हें 'राज्य की आत्मा' कहा है।

11. **वयस्क मताधिकार**—भारतीय संविधान लोकतंत्रात्मक शासन को अंगीकार करता है। लोकतंत्रात्मक शासन में जनता सर्वोपरि होती है। सरकार का निर्माण जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। ऐसे में वयस्क मताधिकार देश की आवश्यकता बन जाती है। 1909 के अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश शासन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को लागू किया था। इस प्रणाली से भारतीय जनमानस की विचारधारा में विकृतियां आ गई थीं। भारतीय संविधान ने लोकतंत्रात्मक शासन को मजबूत आधारशिला प्रदान करने की दिशा में देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक को मत देने का अधिकार प्रदान किया है। आरम्भ में प्रत्येक 21 वर्ष की आयु के स्त्री–पुरुष चुनाव में मत देने के अधिकारी थे। वर्तमान में यह आयु 18 वर्ष कर दी गई है। इससे न केवल लोक को मजबूत आधार मिलता है बल्कि जनता की राजनीतिक चेतना में भी अभिवृद्धि होती है। इसी के आधार पर भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहलाता है।

12. **कल्याणकारी राज्य की स्थापना**—संविधान को मूलभूत रूप में एक राजनीतिक और विधिक दस्तावेज माना जा सकता है। इसमें सबसे अधिक बल भी कानूनी और राजनीतिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं तथा समानताओं पर दिया जाता है। भारतीय संविधान में सामाजिक क्षेत्र की आवश्यकता को समझते हुए सामाजिक समानता के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है। भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर किए बिना कल्याणकारी राज्य के आदर्श को स्थापित नहीं किया जा सकता था। भारतीय संविधान में स्पष्ट प्रावधान है कि केन्द्र और राज्य सरकारें अधिक से अधिक संभव सीमा तक सामाजिक व आर्थिक समानता के लिए नीतियां निर्धारित करके उनका क्रियान्वयन करें जिससे कल्याणकारी राज्य के आदर्श को प्राप्त किया जा सके।

3.2.2 संविधान सभा का गठन : प्रकृति और कार्य

संविधान सभा का गठन कैबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत हुआ था। जुलाई 1946 में इसका निर्वाचन किया गया। इसके सदस्यों में से 208 सदस्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के और 73 मुस्लिम लीग के थे। संविधान सभा को नवंबर 1946 में देश के लिए संविधान निर्माण का दायित्व सौंपा गया। इस सभा में सिवाय महात्मा गांधी तथा मोहम्मद अली जिन्ना के देश के लगभग सभी शीर्षस्थ नेता सम्मिलित थे, जैसे– पं. जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खां, पं. गोविंद बल्लभ पंत, डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य जे.वी. कृपलानी, के.टी. शाह, हृदय नाथ कुंजरू, सर एच.एस. गौड़, कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी, श्री कृष्ण सिंह, अलादी कृष्ण स्वामी अय्यर, डॉ. जयकर, ख्वाजा नजिमुद्दीन,

लियाकत अली खां, सर जग्रूल्ला खां, सुहरावर्दी, सर फिरोज खातून तथा डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा आदि। परंतु इसी दौरान देश का विभाजन हो गया और संविधान सभा में सम्मिलित वे नेता जो मुस्लिम लीग के सदस्य थे, पाकिस्तान चले गए। संविधान सभा के शेष सदस्यों ने संविधान के निर्माण के कार्य को पूरा किया। 2 वर्ष 11 माह 18 दिन में अनवरत परिश्रम के पश्चात संविधान निर्माण का कार्य पूरा हुआ।

संविधान सभा की कुल संख्या 389 निश्चित की गई थी। इनमें से 93 सदस्य देशी रियासतों एवं 4 चीफ कमिश्नरों के प्रांतों और 292 सदस्य ब्रिटिश प्रांतों के होने चाहिए। संविधान सभा में 10 लाख व्यक्तियों पर एक सदस्य के निर्वाचन की व्यवस्था थी। प्रांतों को दी गईं सीटें उनकी विभिन्न जातियों में जनसंख्या के आधार पर बंटनी थीं। देशी रियासतों को प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर दिया गया था। उनके प्रतिनिधियों के बारे में निर्णय करने का अधिकार संविधान सभा के निर्वाचित प्रतिनिधियों की समझौता समिति एवं देशी रियासतों के शासकों द्वारा नियुक्त समिति को था, जो परस्पर विचार–विमर्श कर निर्णय करेंगे। कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के लिए चुनाव जुलाई 1946 में संपन्न हुए। ब्रिटिश प्रांतों के इन चुनावों में 208 कांग्रेस, 73 मुस्लिम लीग एवं 15 स्थान स्वतंत्र एवं अन्य दलों को मिले।

संविधान सभा के सदस्यों ने अपने चुनाव के पश्चात भारत की आंतरिक सरकार का चुनाव किया, जिसे नये संविधान के लागू होने के समय तक भारत का शासन संचालित करने का कार्य सौंपा गया था। नवीन संविधान के लागू होने के पश्चात तथा सन् 1952 में आम चुनावों के संपन्न होने से पूर्व इस संविधान सभा ने ही संसद के रूप में कार्य किया।

पहला सत्र– संविधान का पहला सत्र 9 दिसम्बर 1946 ई. को डॉ. सच्चिदानन्द की अध्यक्षता में प्रारंभ हुआ। उनमें केवल 209 सदस्य ही उपस्थित हुए थे। 11 दिसम्बर 1946 ई. को इस सभा का स्थायी अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को चुना गया।

संविधान का उद्देश्य प्रस्ताव

पं. जवाहर लाल नेहरू ने 13 दिसम्बर, 1946 को भारत के भावी संविधान के लिए संविधान सभा में उद्देश्यों का एक प्रस्ताव या संकल्प प्रस्तुत किया, यह संकल्प इस प्रकार है–

1. "संविधान सभा अपना पक्का और सत्यनिष्ठ इरादा भारत को एक स्वतंत्र प्रभुत्व संपन्न गणराज्य घोषित करने का करती है और उसके भावी प्रशासन के लिए एक संविधान तैयार करना चाहती है।"
2. "जिसमें वे क्षेत्र जो कि आजकल भारत में हैं, वे क्षेत्र जो कि देशी रियासतों में हैं और वे क्षेत्र जो कि भारत के बाहर हैं और अपनी स्वतंत्र इच्छा से भारत संघ में शामिल होना चाहते हैं, उन सबका एक स्वतंत्र प्रभुत्वसंपन्न संघ होगा, जिसे भारत कहा जाएगा।''
3. ''जिसमें कुछ क्षेत्र अपनी वर्तमान सीमाओं के साथ अथवा जैसा कि संविधान सभा निर्धारित करे और उसके पश्चात संविधान के कानून के अनुसार स्वायत्त इकाइयों का दर्जा रखेंगे। उसमें अवशिष्ट शक्तियां इकाइयों के पास होंगी और वे सरकार की सब शक्तियों और कार्यों का प्रयोग करेंगी जो कि संघ को नहीं दी जाती हैं।"

टिप्पणी

4. "जिसमें प्रभुत्वसंपन्न स्वतंत्र भारत, उसके संवैधानिक भागों और इकाइयों की शक्तियां जनता के द्वारा ग्रहण की जाएंगी।
5. ''जिसमें भारत के सब लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त होगा और जिसमें कानून के सामने सबको समानता प्राप्त होगी, जिसमें सबका दर्जा समान होगा और जिसमें अवसर की समानता होगी। जिसमें विचारों, अभिव्यक्तियों, विश्वास, धर्म, व्यवसाय और कार्य की सार्वजनिक नैतिकता और कानून के अंतर्गत स्वतंत्रता प्राप्त होगी।''
6. ''जिसमें काफी संरक्षण अल्पसंख्यक वर्गों, पिछड़ी हुई जातियों, क्षेत्रों तथा कबाइली क्षेत्रों के लिए रखे जाएंगे।''
7. ''जिसमें गणराज्य की अखंडता को सुरक्षित रखा जाएगा और उसके भूमि, समुद्र तथा वायु सीमा के न्याय और सभ्य राष्ट्रों के कानून के अनुसार प्रभुत्वसंपन्न अधिकार सुरक्षित रखे जाऐंगे।''
8. "वह प्राचीन भूमि अपना अधिकारपूर्ण तथा सम्मानजनक स्थान संसार में प्राप्त कर लें और सारी मानव जाति विश्व शांति के लिए अपना ऐच्छिक तथा पूर्ण योगदान दें।''

संविधान सभा में 22 जनवरी, 1947 को भारी बहुमत से यह संकल्प स्वीकार कर लिया गया। इस महत्वाकांक्षी उद्देश्य प्रस्ताव के संबंध में पं. नेहरू ने कहा था, ''इस प्रस्ताव में हमारी वे आकांक्षाएं व्यक्त की गई हैं, जिनके लिए हमने इतने कठोर संघर्ष किए हैं। संविधान सभा इन्हीं उद्देश्यों के आधार पर हमारे संविधान का निर्माण करेंगी।'' उद्देश्य प्रस्ताव के संबंध में के.एम. मुंशी ने कहा कि, ''नेहरू का उद्देश्य प्रस्ताव हमारे स्वतंत्र गणराज्य की जन्म कुंडली है।''[1]

उपरोक्त संकल्प में संविधान का मूलोद्देश्य भारत को एक पूर्ण प्रभुत्व संपन्न गणराज्य के रूप में गठित किया जाना था, जिसमें सभी भारतीय रियासतों को भी शामिल किया जाना था। संघ की समस्त इकाइयों को संविधान के अंतर्गत स्वायत्तता दी गई। इकाई को इस स्वायत्तता का उपभोग संविधान के द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर करना था।

उपरोक्त संकल्प उद्देश्य के गहन अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें राज्य की संपूर्ण सत्ता एवं प्राधिकार को जनसाधारण से उद्धृत माना गया है। इसका मूल उद्देश्य संवैधानिक व्यवस्था में देश के सभी लोगों को सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक न्याय की सुरक्षा अथवा उसकी प्राप्ति की व्यवस्था करना माना गया है। समस्त व्यक्तियों के लिए राज्य एवं कानून के समक्ष प्रतिष्ठा का अवसर तथा समानता का प्रावधान भी स्वीकार किया गया है। यह भी स्वीकार किया गया है कि जन साधारण को विचार अभिव्यक्ति, श्रद्धा, उपासना, विश्वास, व्यवसाय सम्बद्ध होने तथा कर्म करने के लिए विधि और लोकाचार के अधीन स्वतंत्रता भी दी जानी आवश्यक है।

देश की कुछ पिछड़ी हुई तथा आदिम जातियों, अल्पसंख्यकों के हेतु उचित रूप से संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।

दूसरा सत्र– संविधान सभा का दूसरा सत्र 20 जनवरी से लेकर 25 जनवरी, 1947 ई. तक चला। इस सत्र में संविधान सभा ने अपनी एक विशिष्ट समिति, संघीय

टिप्पणी

शक्ति से संबंधित– समिति, मंत्रिमण्डल मिशन योजना समिति, एक कार्यक्रम समिति तथा एक अल्पसंख्यक वर्गों के लिए मंत्रणा समिति गठित की।

तीसरा सत्र– संविधान सभा का तीसरा सत्र 22 अप्रैल से लेकर 22 मई, 1947 तक चलता रहा। इस समय तक संविधान सभा कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सकी थी। इससे संविधान सभा के बहुसंख्यक सदस्यों को यह आभास हो गया था कि मुस्लिम लीग के सदस्य किसी भी दशा में संविधान सभा में सम्मलित नहीं होंगे। तदुपरान्त संविधान सभा ने सुचारू रूप से संविधान निर्माण करने का कार्य प्रारंभ किया। संघीय शक्ति समिति की रिपोर्ट 28 अप्रैल, 1947 ई. को जवाहर लाल नेहरू के द्वारा संविधान सभा में प्रस्तुत की गई। दूसरे ही दिन 29 अप्रैल, 1947 ई. को सरदार पटेल के द्वारा सभा में मूलाधिकार एवं अल्पसंख्यक वर्ग की मंत्रणा समिति की अंतिम रिपोर्ट भी प्रस्तुत कर दी गई। तत्पश्चात संविधान सभा ने नागरिक मूलाधिकारों के विषय में विस्तृत रूप से विचार करना प्रारंभ कर दिया। सभा ने 2 मई, 1947 ई. को कुछ समय के लिए अपना कार्य स्थगित करने का निश्चय किया।

इसी दौरान संघीय संविधान पर विचार करना प्रारंभ किया गया। अंत में वित्तीय संबंधों की एक विशेषज्ञ समिति तथा एक मुख्यायुक्त समिति भी गठित की गई।

चौथा सत्र– संविधान सभा के आगामी एवं चौथे सत्र का प्रारंभ 14 जुलाई, 1947 ई. को प्रारंभ हुआ। संघ संविधान समिति तथा प्रांतीय संविधान समिति ने अपनी–अपनी रिपोर्ट संविधान सभा के सामने पेश की। तत्पश्चात संविधान सभा के सामने मूल अधिकार आदिम जाति तथा अन्य क्षेत्रों के संबंध में भी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय की तदर्थ समिति ने भी इसके सामने अपनी रिपोर्ट रखी। तत्पश्चात सभा ने प्रांतीय संविधानों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों के विषय में विचार करना प्रारंभ किया। 22 जुलाई, 1947 ई. को संविधान सभा ने भारत के राष्ट्रीय ध्वज को अंगीकृत किया।

पांचवां सत्र– 14 जुलाई, 1947 ई. से संविधान सभा का पांचवां अधिवेशन प्रारंभ हुआ। इसके साथ ही संविधान सभा ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ई. की शर्तों के अधीन स्वयं एक पूर्ण संपन्न निकाय का स्वरूप रख दिया। अब यह सभा कैबिनेट मिशन द्वारा नियत की हुई सीमाओं के अंतर्गत समिति न रहकर देशवासियों की आवश्यकतानुसार संविधान निर्मित कर सकने को स्वतंत्र हो गई। लॉर्ड माउंटबेटन को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया तथा जवाहरलाल नेहरू को उनके साथ स्वतंत्र भरत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। संविधान सभा ने संविधान बनाने के अतिरिक्त देश के लिए सामान्य कानूनों का निर्माण करने का उत्तरदायित्व भी संभाल लिया।

29 अगस्त, 1947 ई. को 7 सदस्यों की एक प्रारूप समिति का गठन किया गया। इसके अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर तथा अन्य प्रमुख सदस्य– श्री के.एम. मुंशी, टी.टी. कृष्णाकुमारी, गोपाल स्वामी आयंगर तथा अलादी कृष्णा स्वामी अय्यर आदि थे। इस प्रारूप समिति ने श्री बी.एन. राव द्वारा प्रस्तुत प्रारूप के आधार पर कार्य करना प्रारंभ किया था। एस.एन. मुखर्जी ने इस प्रारूप को अंतिम रूप प्रदान किया।

जनवरी 1948 में भारत के वर्तमान संविधान का प्रारूप प्रकाशित किया गया। संविधान के प्रारूप पर विचार करने के लिए 8 मास का समय निश्चित हुआ। इस पर

टिप्पणी

संविधान सभा ने 4 नवंबर, 1948 को सामान्य वाद–विवाद प्रारंभ कर दिया। यह वाद–विवाद 9 नवंबर, 1948 तक चला। 19 नवंबर, 1948 ई. से 17 अक्टूबर, 1949 ई. के दौरान संविधान के प्रारूप पर सभा ने भली प्रकार विचार किया। संविधान के प्रारूप का तृतीय पाठन 14 नवंबर से लेकर 26 नवंबर, 1949 ई. तक चलता रहा। तत्पश्चात इसे अंगीकृत करके उसको स्थायी अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के हस्ताक्षरों के लिए प्रस्तुत किया गया। 26 जनवरी, 1950 से संविधान लागू कर दिया गया।

भारतीय संविधान सभा की प्रकृति एवं कार्य

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय जनता एवं राष्ट्रवादी नेताओं की एक प्रमुख मांग थी कि भारत का संविधान भारतीयों के द्वारा निर्मित किया जाए। इसी मांग के अनुरूप संविधान सभा का गठन किया गया और उसे स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गई परंतु कतिपय विद्वानों ने संविधान सभा की प्रकृति पर गंभीर आक्षेप किए। इन विद्वानों का मानना था कि जिस प्रक्रिया एवं पद्धति से संविधान सभा का गठन किया गया है, उसके परिणामस्वरूप संविधान सभा न तो एक संप्रभु संस्था है और न ही यह भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों एवं उनकी आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। अतः इन आक्षेपों का तार्किक परीक्षण करने की महती आवश्यकता है, जिससे संविधान सभा की वास्तविक प्रकृति उद्घाटित हो सके। ये परीक्षण इस प्रकार हैं–

1. **क्या संविधान सभा को संप्रभु संस्था माना जाए**– कुछ विद्वानों का कथन है कि संविधान सभा का निर्माण कैबिनेट योजना के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार द्वारा किया गया है। इसलिए ब्रिटिश सरकार को इसके नियमन का अधिकार दिया था। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर संविधान सभा कानून नहीं बना सकती थी तथा तीसरा संविधान लागू करने में ब्रिटिश सरकार की अनुमति आवश्यक थी। इन्हीं कारणों से विंस्टन चर्चिल ने संविधान सभा की वैधता को चुनौती दे डाली और कहा कि यह संप्रभु संस्था नहीं है। संविधान सभा के एक सदस्य एम.आर. जयकर ने कहा कि, ''संविधान सभा एक संप्रभु संस्था नहीं है और उसकी शक्तियां मूलभूत सिद्धांतों एवं प्रक्रिया दोनों की दृष्टि से मर्यादित हैं।'' जयकर के कहने का आधार यह था कि संविधान सभा कैबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत अस्तित्व में आई है जो ब्रिटिश संसद की सत्ता के अधीन थी। साथ ही संविधान सभा कैबिनेट मिशन योजना में वर्णित संविधान की मूल रूपरेखा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी। इस आलोचना का उत्तर देते हुए पं. नेहरू ने कहा था, ''संविधान एक संप्रभुत्व संपन्न संस्था है। वह देश के स्वतंत्र नागरिकों का प्रतिनिधित्व करती है।'' एन.जी. आयंगर ने सभा की पूर्ण प्रभुता का विचार प्रकट करते हुए कहा कि, ''इस संविधान सभा का स्रोत यह नहीं है कि इसके निर्माता सम्राट की सरकार के तीन सदस्य थे, वरन् यह है कि उनके प्रस्तावों को जनता ने स्वीकार कर लिया है।'' संविधान सभा ने अपनी प्रभुसत्ता प्रदर्शित करते हुए यह नियम बनाया कि संविधान सभा को उसी समय भंग किया जाएगा जब सभा स्वयं इस आशय का प्रस्ताव पारित कर दे किसी अन्य सत्ता के आदेश से नहीं। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने 15 अगस्त, 1947 को संविधान सभा को सत्ता सौंपने की व्यवस्था की

टिप्पणी

और संविधान सभा को अपनी इच्छानुसार संविधान निर्माण की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर दी। अतः संविधान सभा पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न थी।

2. **क्या संविधान सभा का स्वरूप प्रतिनिधिक है?**– आलोचकों ने संविधान सभा को एक प्रतिनिधि संस्था नहीं माना है। उनका मानना है कि संविधान सभा में जनता के प्रतिनिधि नहीं थे क्योंकि इसका चुनाव देश के सभी बालिग स्त्री–पुरुषों ने नहीं किया है। विंस्टन चर्चिल ने इसे हिंदुओं की एक वर्गीय संस्था माना है। जयप्रकाश नारायण ने संविधान सभा की आलोचना करते हुए कहा कि, ''यह संविधान सभा अपने गठन में उस संविधान सभा से बहुत भिन्न है जिसकी रूपरेखा पं. नेहरू ने हमारे सामने रखी थी। इसकी रचना ब्रिटिश सरकार ने की है, अतः हम इसके द्वारा उस स्वतंत्रता को पाने की आशा कदापि नहीं कर सकते, जिसके लिए संघर्ष करते रहे हैं।''

   सैद्धांतिक आधार पर ये आलोचनाएं सही हैं। परंतु व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो जिन परिस्थितियों में संविधान सभा की रचना हुई थी उनको देखते हुए प्रत्यक्ष निर्वाचन असंभव था, क्योंकि तब सांप्रदायिक उपद्रव हो रहे थे। दूसरे यदि संविधान सभा के सदस्यों का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता तो भी उसके स्वरूप में अधिक अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि सन् 1952 के प्रथम आम चुनाव में संविधान सभा के अनेक सदस्य चुनाव में खड़े हुए और बहुत अच्छी तरह से चुनाव जीते। प्रारूप समिति के सदस्य सारे देश व वर्गों के प्रतिनिधि थे। के. संथानम के शब्दों में, ''शायद सार्वजनिक जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं था, जिसे संविधान सभा में प्रतिनिधित्व न मिला हो। वह पूरी तरह से प्रतिनिधि निकाय था।'' ग्रेनविल ऑस्टिन ने विशद् अध्ययन तथा संविधान सभा के अनेक सदस्यों से साक्षात्कार करने के बाद कहा कि, ''अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होने पर भी संविधान सभा अत्यधिक प्रतिनिध्यात्मक संस्था थी। यह भारत की एक लघु झांकी प्रस्तुत करती थी।''

3. **क्या संविधान एक लोकप्रिय प्रालेख था?** – आलोचकों का मत है कि यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों में संविधान सभा का प्रत्यक्ष निर्वाचन संभव नहीं था तो निर्मित संविधान को जनमत संग्रह के उपरांत पारित किया जाना चाहिए था किंतु ऐसा नहीं हुआ, अतः यह लोकप्रिय प्रालेख नहीं था। परंतु यह आक्षेप उचित नहीं है क्योंकि संविधान का निर्माण करने वाले नेतागण जनता में अत्यंत लोकप्रिय थे तथा संविधान सभा के विभिन्न नेताओं को समाज के विभिन्न वर्गों में खासी लोकप्रियता प्राप्त थी। जवाहर लाल नेहरू की समाजवाद एवं मजदूर वर्गों पर विशेष आस्था थी। राजेंद्र प्रसाद ने बिहार में किसान सत्याग्रह का नेतृत्व किया। के.पी. शाह जैसे वामपंथी संविधान सभा के सक्रिय सदस्य थे। अतः यह आक्षेप उचित नहीं है कि संविधान सभा में विभिन्न वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था एवं संविधान एक लोकप्रिय प्रालेख नहीं था।

4. **क्या संविधान सभा में कांग्रेस एवं वकीलों का वर्चस्व था?** – यह सत्य है कि संविधान सभा में कांग्रेस पार्टी की प्रधानता थी एवं साम्यवादी दल, हिंदू महासभा एवं समाजवादी पार्टी को औपचारिक प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था परंतु

टिप्पणी

दक्षिण की जस्टिस पार्टी, बंगाल की कृषक प्रजापार्टी एवं पंजाब की यूनियानिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि उसमें थे। इसके अलावा कांग्रेस का स्वरूप दल मात्र न होकर एक छातेनुमा था। इसमें देश एवं समाज के सभी वर्गों, जातियों, धर्मों, क्षेत्रों, विचारधाराओं का एक सुंदर प्रतिनिधित्व एवं स्वस्थ समागम था।

संविधान सभा में अधिवक्ताओं–वकीलों का विशेष प्रभाव था। संविधान सभा की कार्य–शैली विधिक दृष्टिकोण से प्रभावित थी। संविधान के प्रारूप पर एक सदस्य ने टिप्पणी करते हुए कहा था कि, ''यह प्रारूप लोगों को अधिक विवादी बनाकर न्यायालयों की ओर आकर्षित करेगा। असत्यवादी बनाकर सत्य व अहिंसा के मार्ग से विमुख कर देगा। यदि इजाजत हो तो मैं कहूंगा कि यह संविधान तो निश्चय ही वकीलों का स्वर्ग है। यह तो परस्पर विवाद में बहुत से नए मार्ग खोलकर हमारे योग्य वकीलों को पर्याप्त कार्य प्रदान करेगा।'' यह सर्वविदित है कि संविधान सभा में देश के प्रतिष्ठित कानून के विद्वान विद्यमान थे। जैसे– कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी। संविधान के निर्माण में जिन दो व्यक्तियों का प्रभाव सबसे अधिक महसूस किया गया वे नेहरू और पटेल थे और ये दोनों पेशे से वकील थे। इतना होते हुए भी संविधान को वकीलों का स्वर्ग नहीं कहा जा सकता क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय में संविधान संबंधी मुकदमों की संख्या अन्य क्षेत्रों से संबंधित मुकदमों से कम है।

अन्य महत्वपूर्ण आक्षेप– उपरोक्त बातों के अलावा संविधान निर्माण के संदर्भ में कुछ अन्य आक्षेप भी हैं –

1. कुछ विद्वानों का मत है कि संविधान निर्माण का कार्य अतिशीघ्रता से संपादित किया गया। महत्वपूर्ण विषयों एवं संशोधनों पर गम्भीरता से विचार–विमर्श नहीं किया गया।
2. एक अन्य आक्षेप यह है कि संविधान के क्रमबद्ध स्वरूप का ज्ञान संविधान सभा के सभी सदस्यों को नहीं था क्योंकि जिस समिति का प्रतिवेदन समाप्त हो जाता था, संविधान उसे विचार विमर्श करके पारित कर देता था।
3. संविधान निर्माण में कुछ राजनीतिक एवं वैधानिक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों, जैसे– नेहरू, पटेल एवं अंबेडकर को ज्यादा महत्व दिया गया।

वास्तव में जहां तक प्रथम आक्षेप का प्रश्न है, वहां यह कहा जा सकता है कि ऐसा कहना संविधान सभा में उपस्थित विद्वानों की विद्वता एवं कार्यों की अंदेखी करना है। संविधान सभा में नेहरू और पटेल का प्रभाव असंदिग्ध है परंतु विचार–विमर्श में के.एम. मुंशी, कृष्णास्वामी अय्यर, बी.एन. राव तथा अन्य विद्वानों के प्रभाव को कम नहीं आंका जा सकता है।

3.2.3 भाषा और शिक्षा पर संविधान सभा की बहस

संविधान सभा के सदस्यों द्वारा राष्ट्रभाषा का मुद्दा सबसे विवादास्पद और भावुकता से बहस करने वालों में से एक था। इस बहस का महत्व इस बात में निहित है कि सदस्यों ने एक राष्ट्र के रूप में भारत की कल्पना की, क्षेत्रीय और भाषाई पहचान को व्यक्त

किया और आधुनिक भारत की नींव रखने के उद्देश्य की एकता का निर्माण करने की मांग की। इन बहसों ने उत्तर और दक्षिण भारत के बीच विभाजन का खुलासा किया और सांप्रदायिक रंग भी लिया। भारतीय समाज में वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों ने अब तक प्रमुख चिंताओं के रूप में धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिकता, राष्ट्रवाद और जातिवाद पर ध्यान केंद्रित किया है। उसमें उदारवाद, धार्मिक उग्रवाद और समाजवाद (इसके सभी रूपों में) प्रमुख वैचारिक फ्रेम रहे हैं जिसके माध्यम से इन मुद्दों पर पिछले 50 वर्षों से बहस और चर्चा की गई है। भारत में एक मुद्दे के रूप में भाषा ने कभी भी बौद्धिक और सामाजिक विज्ञान के प्रवचनों में उस तरह के स्थान पर कब्जा नहीं किया है, जिसकी वह हकदार थी। भारत में भाषा के मुद्दे को समझने के लिए, सबसे अच्छा रास्ता संविधान सभा की बहसों (1999) पर वापस जाना है। 19वीं शताब्दी में प्रशासनिक, न्यायिक और शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए पूरे देश में अंग्रेजी एक आम भाषा के रूप में विकसित हुई। स्वतंत्र देश के नेताओं के लिए राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया शुरू करने के लिए अंग्रेजी को उसके विशेषाधिकार प्राप्त स्थान से हटाना आवश्यक था। हालांकि, अंग्रेजी के स्थान पर एक वैकल्पिक भारतीय भाषा की पहचान और स्वीकृति, जबरदस्त चुनौतियों से भरा मामला था। संविधान सभा की बैठकों के दौरान तीन मुद्दे गूंजते रहे और अपने अंत तक विवादास्पद रहे– राष्ट्र राज्य या देश का नाम, राष्ट्रगान और राष्ट्रभाषा। दिलचस्प बात यह है कि संविधान सभा द्वारा केवल राष्ट्रभाषा के मुद्दे पर ही पूरी तरह और जोश के साथ बहस की गई थी। इस बहस का महत्व इस बात में निहित है कि इसके सदस्यों ने एक राष्ट्र के रूप में भारत की कल्पना की, क्षेत्रीय और भाषाई पहचान को व्यक्त किया और आधुनिक भारत की नींव रखने के उद्देश्य की एकता का निर्माण करने की मांग की। लगभग 70 साल पहले, 12 और 14 सितंबर, 1949 के बीच, भारत की संविधान सभा ने भारत की भाषाओं की स्थिति पर बहस की थी। जिन मुद्दों पर चर्चा की गई उनमें 'आधिकारिक' भाषा के बजाय 'राष्ट्रीय भाषा' शब्द का इस्तेमाल शामिल था। हिंदी बनाम भाषाएं जैसे– बंगाली, तेलुगु, संस्कृत, या हिंदुस्तानी; देवनागरी लिपि बनाम रोमन लिपि; उच्च न्यायपालिका और संसद में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा।

राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने शुरुआत में बहस की आलोचना को रेखांकित किया– "पूरे संविधान में कोई अन्य वस्तु नहीं है जिसे दिन–प्रतिदिन, घंटे–घंटे, मिनट से मिनट तक लागू करने की आवश्यकता होगी, बहुमत से पारित एक विशेष प्रस्ताव, अगर यह लोगों के किसी भी महत्वपूर्ण वर्ग के अनुमोदन से पूरा नहीं होता है, तो संविधान का कार्यान्वयन सबसे कठिन समस्या बन जाएगा।" ये संविधान सभा के कुछ सदस्यों द्वारा कही गई बातों के संपादित अंश हैं। कई तर्क आज भी प्रतिध्वनित होते हैं।

मसौदा समिति के सदस्य एन गोपालस्वामी आयंगर ने प्रारंभिक मसौदा और पहला संशोधन प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया था कि देवनागरी लिपि में हिंदी आधिकारिक भाषा होनी चाहिए, लेकिन अंग्रेजी का उपयोग कम से कम 15 वर्षों तक किया जाना चाहिए। "योजना बहुत चर्चा और समझौते का परिणाम थी। अगर मैं इस पर जोर दे सकता हूं, तो यह एक एकीकृत संपूर्ण है। यदि आप इसके एक हिस्से को छूते हैं तो बाकी चीजें टूट जाती हैं।"

सेठ गोविंद दास ने 'एक भाषा और एक लिपि' के लिए तर्क दिया और कहा कि हिंदी को जल्द से जल्द अंग्रेजी की जगह लेनी चाहिए। लोकतंत्र तभी काम कर सकता

टिप्पणी

है जब बहुमत की राय का सम्मान किया जाए। अगर हम किसी मुद्दे पर मतभेद रखते हैं, तो इसका फैसला वोटों से ही हो सकता है। बहुसंख्यकों द्वारा जो भी निर्णय लिया जाता है, अल्पसंख्यक द्वारा सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाना चाहिए । हमने अपने देश को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्वीकार किया है, लेकिन हमने कभी नहीं सोचा था कि उस स्वीकृति का अर्थ विषम संस्कृतियों के निरंतर अस्तित्व की स्वीकृति है। भारत एक प्राचीन इतिहास वाला देश है। हजारों वर्षों से यहां एक ही संस्कृति प्राप्त होती रही है। इस परंपरा को बनाए रखने के लिए हम पूरे देश के लिए एक भाषा और एक लिपि चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि यह कहा जाए कि यहां दो संस्कृतियां हैं।

इसके विपरीत, नजीरुद्दीन अहमद ने जोर देकर कहा, "हमें एक ही बार में अखिल भारतीय भाषा की घोषणा नहीं करनी चाहिए। अंग्रेजी को उन सभी उद्देश्यों के लिए राजभाषा के रूप में जारी रखना चाहिए जिनके लिए इसका उपयोग किया जा रहा था, जब तक कि एक अखिल भारतीय भाषा विकसित नहीं हो जाती, जो विभिन्न विषयों पर विचारों को व्यक्त करने में सक्षम होगी, जैसे– वैज्ञानिक, गणितीय, साहित्यिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, राजनीतिक।"

एस.वी. कृष्णमूर्ति राव ने भी कहा, अंग्रेजी बनी रहनी चाहिए और भविष्य की संसद को इस मामले पर फैसला करना चाहिए। उन्होंने कहा, हिंदी कई दक्षिण भारतीय भाषाओं से नीच थी– "यह हिंदी और हिंदुस्तानी प्रश्न विशुद्ध रूप से उत्तर के लिए है। लेकिन हम हिंदी को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। देश के बड़े हित में इस सवाल का फैसला एक निष्पक्ष माहौल में किया जाना चाहिए जब भावनाएं शांत हो गई हों। मोहम्मद हिफ्जुर रहमान ने हिंदी को हिंदुस्तानी से बदलने के लिए तर्क दिया, "जिस भाषा को महात्मा गांधी पसंद करते थे, और जिस पर कांग्रेस सहमत थी, वह बिहार से फ्रंटियर तक बोली जाती थी।" उन्होंने कहा, हिंदी के लिए शोर, "विभाजन की प्रतिक्रिया" थी – "दुख और क्रोध की इस स्थिति में वे एक विशेष समुदाय के खिलाफ अपनी संकीर्णता दिखा रहे हैं। वे राजनीतिक कट्टरता के माहौल में भाषा के सवाल को सुलझाना चाहते हैं और इस समस्या को किसी देश की भाषा की समस्या के रूप में हल नहीं करना चाहते हैं।" आर. वी. धुलेकर ने कहा है कि रामदास से लेकर तुलसीदास तक सभी ने हिंदी में लिखा, और जोरदार तर्क दिया– "आप दूसरे राष्ट्र के हो सकते हैं, लेकिन मैं भारतीय हूं, हिंदी राष्ट्र, हिंदू राष्ट्र, से संबंधित हूं। मुझे नहीं पता कि आप क्यों कहते हैं कि यह राष्ट्रभाषा नहीं है। मैं इस विचार से ही कांपता हूं कि हमारे विश्वविद्यालय, हमारे स्कूल, हमारे कॉलेज और हमारे वैज्ञानिकों को स्वराज प्राप्त करने के बाद भी, उन सभी को अंग्रेजी भाषा में काम करना जारी रखना चाहिए। दूसरे लोग क्या कहेंगे? लॉर्ड मैकाले का भूत क्या कहेगा? वह निश्चित रूप से हम पर हंसेंगे और कहेंगे, 'ओल्ड जॉनी वॉकर अभी भी मजबूत हो रहा है'। फ्रैंक एंथनी ने स्वीकार किया कि "कई कारणों से, अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रीय भाषा नहीं हो सकती है", लेकिन आगाह किया कि जो हिंदी थोपी जा रही थी वह आम लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी से बहुत अलग थी। शुद्धिकरण की एक प्रक्रिया है जो वर्तमान हो गई है , इस वर्तमान कट्टर आंदोलन में एक नई तरह की हिंदी जो गली में हिंदी भाषी हिंदू के लिए समझ में नहीं आती है , एक अत्यधिक संस्कृतकृत हिंदी लगाई जाएगी। आप एक तरफ अवसरों की समानता की बात करते हैं और दूसरी तरफ आप अवक्षेपित नीतियों को लागू करते हैं जो अवसर की समानता के सिद्धांत की उपेक्षा है। काजी सैयद करीमुद्दीन

ने हिन्दुस्तानी की पैरवी की– "आप पहले ही मान चुके हैं कि अगले 10 या 15 वर्षों तक अंग्रेजी यहां रहेगी, फिर आप उर्दू लिपि पर प्रतिबंध लगाकर मुसलमानों को उनके अधिकारों से वंचित क्यों कर रहे हैं? आपको बहुमत मिल गया है इसलिए आप इसे पूरी तरह से प्रतिबंधित करने की कोशिश कर रहे हैं – इसे खत्म करने के लिए केवल वही भाषा जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों आसानी से खुद को अभिव्यक्त करते हैं और जो आम संभोग के माध्यम से विकसित हुई है, यानी हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए।" लक्ष्मीनारायण साहू ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने का तर्क दिया– "मैं भी उड़िया के लिए उसी स्थिति का दावा कर सकता हूं, जो बंगाली से कहीं अधिक प्राचीन है । दक्षिण के मेरे मित्र दावा करेंगे कि उनकी भाषा बहुत प्राचीन है। (लेकिन) प्राचीन या मध्ययुगीन का कोई सवाल ही नहीं है। कुछ लोगों को अंग्रेजी से इतना लगाव है कि वे सोचते हैं कि अगर अंग्रेजी को आधिकारिक भाषा के रूप में इस्तेमाल नहीं किया गया तो वे अपना अस्तित्व ही खो देंगे। हमें पूरे देश और देश के हित में आगे बढ़ना है, और अगर कुछ लोग असुविधाजनक हैं तो सोचा कि उन्हें इसके साथ रहना चाहिए।" एन.वी. गाडगिल चाहते थे कि संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाया जाए और अंग्रेजी को "कम से कम एक सदी और" बनाए रखा जाए। उन्होंने कहा कि हिंदी एक प्रांतीय भाषा है; "ऐसी भाषाएं हैं जिनमें साहित्य कहीं अधिक समृद्ध है, और फिर भी हमने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया है।" टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार ने कहा कि यह "बहुत कठिन सवाल है शायद दक्षिण के लिए जीवन और मृत्यु का मतलब है।" चेट्टियार ने कहा कि उन्हें "हिंदी लोगों के लिए बहुत प्रशंसा" है, लेकिन "उन्हें यह महसूस करना होगा कि हमारी भाषा, हमारे साहित्य और इस तरह की चीजों के लिए हमारी भी देशभक्ति और प्रेम हो सकता है।" वह हिंदी को "राष्ट्रीय भाषा" कहे जाने से असहमत थे क्योंकि "हिंदी हमारे लिए अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा से अधिक राष्ट्रीय नहीं है।" दक्षिण, उन्होंने कहा, "निराश महसूस कर रहा था", और "आवास" के लिए कहा। "जब तक दक्षिण में लोगों को यह महसूस कराने के लिए कदम नहीं उठाए जाते कि उनका देश से कुछ लेना–देना है, मुझे नहीं लगता कि दक्षिण बिल्कुल संतुष्ट होने वाला है। यह किस ओर ले जा सकता है, फिलहाल यह कहना आसान नहीं है।" सतीश चंद्र सामंत ने कहा कि राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी पर बंगाली को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि यह एक समृद्ध भाषा थी, जिसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पढ़ाया जाता था, और क्योंकि स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित करने वाली कविता वंदे मातरम बंगाली में थी। अलगू राय शास्त्री ने कहा, "इसमें कोई संदेह नहीं है कि संस्कृत भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की जननी है, और इसकी सबसे बड़ी बेटी (हिंदी) ही आज राष्ट्रभाषा हो सकती है।" श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा कि वह उन लोगों के विचारों को साझा नहीं करते हैं जो उस दिन की बात करते हैं जब भारत में केवल एक भाषा होगी। "अनेकता में एकता भारत की मुख्य बात है और इसे समझ और सहमति की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए, और इसके लिए एक उचित वातावरण बनाना होगा।" अधिकांश लोग हिंदी को स्वीकार कर रहे थे क्योंकि इसे "आज इस देश में सबसे बड़े एकल बहुमत से समझा गया।" हालांकि, अगर मुखर्जी ने कहा, "हिंदी के नायक अपनी मांगों और हिंदी को लागू करने में शायद इतने आक्रामक नहीं थे, वे जो कुछ भी चाहते थे, शायद उससे कहीं अधिक, जो वे चाहते थे, सहज और स्वेच्छा के सहयोग से।"

टिप्पणी

उन्होंने कहा कि संविधान सभा का एक प्रस्ताव किसी भाषा की सर्वोच्चता तय नहीं कर सकता– "यदि आप चाहते हैं कि हिंदी वास्तव में एक अखिल भारतीय स्थिति पर कब्जा कर ले और केवल कुछ आधिकारिक उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी को प्रतिस्थापित न करे, तो आप हिंदी को उस स्थिति के योग्य बनाते हैं और इसे प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा न केवल संस्कृत के शब्दों और मुहावरों को आत्मसात करने की अनुमति देते हैं। भारत की अन्य बहन भाषाएं हैं जैसे– मैं अपने बंगाली तरीके से हिंदी बोल सकता हूं। महात्मा गांधी अपने तरीके से हिंदी बोलते थे। सरदार पटेल अपने गुजराती तरीके से हिंदी बोलते थे। अगर यूपी या बिहार के मेरे दोस्त कहते हैं कि उनकी मानक हिंदी है तो यह न केवल हिंदी के लिए, बल्कि देश के लिए भी बुरी बात होगी।" पी.टी. चाको ने कहा है कि "एक राष्ट्रीय भाषा को खुद को विकसित करना है और कृत्रिम रूप से नहीं बनाया जाना है।

भारत जैसे महान देश की राष्ट्रभाषा आधुनिक सभ्यता की सभी जरूरतों को व्यक्त करने में सक्षम होनी चाहिए; ... इसमें वैज्ञानिक साहित्य का ज्ञान होना चाहिए।" वह इसके बजाय अन्य बहुत जरूरी समस्याओं पर ध्यान देना चाहते थे – स्वतंत्रता सेनानियों के "भोजन और आश्रय के लिए मर रहे", "व्यापार और वाणिज्य दिन–ब–दिन सुस्त होते जा रहे", "बड़े पैमाने पर बेरोजगारी" और "कश्मीर समस्या", उत्तर में और दक्षिण में "कम्युनिस्ट गुंडागर्दी का खतरा"। डॉ. पी. सुब्बारायण ने रोमन लिपि में हिंदुस्तानी को अपनाने का सुझाव दिया। उन्होंने सोचा कि अंग्रेजी भाषा के प्रति घृणा क्यों है जब अमेरिकी, जिनमें से केवल 20 ब्रिटिश द्वीपों के थे, इसे अपना सकते थे। असम के कुलधर चालिहा ने कहा कि संस्कृत राष्ट्रभाषा होनी चाहिए क्योंकि "संस्कृत और भारत सह–विस्तृत हैं।" हिंदी एक "समझौता समाधान था, और क्योंकि यह भारत के लिए अच्छा है, इसलिए नहीं कि हिंदी एक बेहतर भाषा है।" हालांकि, हिंदुस्तानी और भी बेहतर विकल्प होगा। रेव जेरोम डिसूजा ने कहा कि उन्होंने आयंगर के प्रस्ताव की व्यापक रूपरेखा को स्वीकार किया "क्योंकि यह समझौते के व्यापक सामान्य उपाय का प्रतीक है"। लेकिन उन्होंने याद किया कि फ्रांसीसी कहते हैं, "टाउट होमे ए डेक्स, लैंग्स, ला सिएन एट पुइस ले फ़्रैंकैस सभी पुरुषों की दो भाषाएं होती हैं, वे कहते हैं, उनकी अपनी और फिर मीठी फ्रेंच जीभ", और आशा व्यक्त की कि "शायद, एक दिन हो सकता है जब पूरी सभ्य दुनिया कह सके, 'सभी पुरुषों की दो भाषाएं होती हैं, उनकी अपनी और फिर भारत की मीठी भाषा।" जवाहरलाल नेहरू ने इस मामले में गांधी के विचारों को याद किया। एक, "जबकि अंग्रेजी एक महान भाषा है हमारा बहुत अच्छा किया है, कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के आधार पर महान नहीं बन सकता।" दो, चुनी गई भाषा "कमोबेश लोगों की भाषा होनी चाहिए, न कि किसी विद्वान मंडली की भाषा।" और तीसरा, "यह भाषा भारत की मिश्रित संस्कृति का प्रतिनिधित्व करे।" इसलिए, नेहरू जी ने कहा, गांधी ने 'हिंदुस्तानी' शब्द का इस्तेमाल उस व्यापक अर्थ में किया जो उस मिश्रित भाषा का प्रतिनिधित्व करता है।

हालांकि, नेहरू जी ने भारत के सभी लोगों पर हिंदी थोपने के खिलाफ आगाह किया– "क्या आपका दृष्टिकोण लोकतांत्रिक दृष्टिकोण या सत्तावादी होने जा रहा है?" उन्होंने "हिंदी के प्रति उत्साही" से पूछा, जिनके कुछ भाषणों में, उन्होंने कहा, "अधिनायकवाद का एक स्वर, हिंदी भाषी क्षेत्र का भारत में चीजों का केंद्र, गुरुत्वाकर्षण

का केंद्र होने का एक स्वर पाया था, और अन्य सिर्फ भारत के किनारे हैं।" नेहरू ने कहा, "न केवल एक गलत दृष्टिकोण था, बल्कि एक खतरनाक दृष्टिकोण" – "आप किसी भी भाषा के लिए उन लोगों या समूहों को मजबूर नहीं कर सकते जो इसका विरोध करते हैं।" मध्य प्रांतों के पंडित रवि शंकर शुक्ला और बरार ने तर्क दिया कि केशुब चंद्र सेन ने 1874 में कहा था कि एक स्थानीय भाषा के बिना, भारत के लिए एकता संभव नहीं थी। शुक्ल ने कहा कि भारत में अब उपयोग में आने वाली कई भाषाओं में हिंदी है; हिंदी "लगभग हर जगह" प्रचलित है; इसलिए, हिंदी को "पूरे भारत में आम भाषा बना दिया जाना चाहिए।" उन्होंने "दक्षिण के दोस्तों" को सलाह दी कि "जितनी जल्दी हो सके हिंदी सीखें, क्योंकि अगर वे जल्दी से हिंदी नहीं सीखते हैं, तो वे पीछे रह सकते हैं।"

मद्रास के जी दुर्गाबाई ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदुस्तानी के लिए तर्क दिया, और जिस तरह से देवनागरी लिपि में हिंदी को धकेला जा रहा था, उस पर "हैरानी" व्यक्त की– "जो विशुद्ध रूप से एक प्रांतीय भाषा है उसे एक राष्ट्रीय चरित्र देने के लिए आपकी ओर से रवैया गैर–हिंदी भाषी लोगों की भावनाओं को कड़वा करने के लिए जिम्मेदार है।" उन्होंने कहा कि हिंदी अंकों को अपनाने की मांग "भाषा के अत्याचार और असहिष्णुता की पराकाष्ठा" थी। बंबई के शंकरराव देव ने चेतावनी दी कि "रोना, अर्थात् 'एक संस्कृति' के खतरनाक निहितार्थ हैं", और 'संस्कृति' शब्द ही खतरनाक था। "आरएसएस संगठन के प्रमुख संस्कृति के नाम पर अपील करते हैं। कुछ कांग्रेसी संस्कृति के नाम पर अपील भी करते हैं। हमें कोई नहीं बताता कि वास्तव में इस शब्द 'संस्कृति' का क्या अर्थ है। आज, जैसा कि इसकी व्याख्या से और समझ में आता है, इसका मतलब केवल कुछ लोगों का इस पर प्रभुत्व है यदि आप एक संस्कृति होने पर जोर देते हैं, तो मेरे लिए इसका मतलब भारत की आत्मा की हत्या है।" भारत "विविधता" के लिए खड़ा था, देव ने कहा– "यह हमारी समृद्धि है यदि आपका मतलब पूरे देश के लिए राष्ट्रीय भाषा एक भाषा से है, तो मैं इसके खिलाफ हूं।"

सरदार हुकम सिंह ने कहा कि उन्होंने "हमारे देश की भाषा या राष्ट्रभाषा" के रूप में हमेशा "देवनागरी लिपि में हिंदी के लिए अनारक्षित समर्थन" दिया था, लेकिन "केवल कट्टरता और इसका समर्थन करने वालों की असहिष्णुता के कारण" अपना विचार बदल दिया था। अब उन्होंने "रोमन लिपि में हिंदुस्तानी" को प्राथमिकता दी, जो "इस सदन में विरोध को दूर करेगा और हमारे दक्षिणी दोस्तों को ... और अधिक आसानी से भाषा सीखने में सक्षम करेगा"। बिहार के जयपाल सिंह ने संविधान में मुंडारी, गोंडी और उरांव की आदिवासी भाषाओं को मान्यता देने पर जोर दिया। संयुक्त प्रांत के पुरुषोत्तम दास टंडन ने कहा कि अयंगर के मसौदे में प्रावधान "अंग्रेजी के अलावा पांच साल या उससे अधिक समय तक हिंदी का उपयोग नहीं किया जा रहा है, जब तक कि कोई आयोग एक सिफारिश नहीं करता है और उस सिफारिश को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है", था "बल्कि एक कठिन प्रावधान"। इसके अलावा, देवनागरी अंकों को उनके अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप के लिए छोड़ना एक "राक्षसी" था। "मैं कहता हूं कि अंतर्राष्ट्रीयवाद कोई तर्क नहीं है और यह उचित नहीं है कि हमारे लोगों को अचानक इस तरह से अपने स्वयं के अंक छोड़ने के लिए कहा जाए।" मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा कि एक आम भाषा का अभाव अंग्रेजी का विकल्प

खोजने में एक प्रमुख बाधा थी। उन्होंने निराशा व्यक्त की कि कांग्रेस ने हिंदुस्तानी पर अपनी सहमति छोड़ दी थीः " एक छोर से दूसरे छोर तक, संकीर्णता ने सर्वोच्च शासन किया। संकीर्णता का अर्थ है मन की क्षुद्रता और घनत्व और उच्च, श्रेष्ठ और शुद्ध विचारों को स्वीकार करने से इनकार करना। यह संकीर्णता थी जिसने प्राचीन भारत की महिमा और उन्नति को अंधकार के अंधेरे में दबा दिया था। हिंदुस्तानी के खिलाफ लगाए गए सभी तर्कों में से, इस बात पर सबसे अधिक जोर दिया गया है कि अगर हिंदुस्तानी को स्वीकार किया जाता है तो उर्दू भी होगी समायोजित किया जाना है। लेकिन उर्दू भारतीय भाषाओं में से एक है। इसका जन्म, पालन–पोषण और पालन–पोषण भारत में हुआ और यह इस देश के लाखों हिंदुओं और मुसलमानों की मातृभाषा है।

शिक्षा पर संविधान सभा की बहस

बहुत नागरिक मुफ्त प्राथमिक शिक्षा का हकदार है और राज्य इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। बहस की शुरुआत विधानसभा सदस्य लक्ष्मीकांत मैत्रा द्वारा एक संशोधन पेश करने के साथ हुई। वह डीपीएसपी के अन्य अनुच्छेदों के साथ मसौदे के अनुच्छेद 36 के वाक्यांश को लाना चाहते थे। जबकि अन्य प्रावधान "राज्य के लिए प्रयास करेंगे" टाइप वाक्यांश के साथ शुरू हुए, ड्राफ्ट अनुच्छेद 45 'हर नागरिक का हकदार है' के साथ शुरू हुआ। पूर्व वाक्यांश डीपीएसपी प्रावधानों में सबसे अधिक प्रचलित था और समिति के चरणों के सचेत निर्णय का परिणाम था कि यह संवाद करने के लिए कि ये सिद्धांत थे जिन्हें राज्य को अपनाना था और कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार नहीं थे। मसौदे अनुच्छेद 36 का वाक्यांश हालांकि, एक डीपीएसपी के बजाय एक मौलिक अधिकार की तरह लग रहा था। नज़ीरुद्दीन अहमद ने 'शिक्षा' को 'प्राथमिक शिक्षा' में बदलने के लिए एक संशोधन पेश किया। उन्होंने तर्क दिया कि मसौदा समिति और विधानसभा का इरादा 'प्राथमिक शिक्षा' रहा होगा। चूंकि प्राथमिक शिक्षा ही एक मात्र ऐसी शिक्षा थी जो 0–14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को प्रदान की जा सकती थी, मसौदा अनुच्छेद में केवल 'प्राथमिक शिक्षा' कहना चाहिए। साथ ही, राज्य के प्रयासों को केवल 'प्राथमिक शिक्षा' तक ही सीमित रखना बेहतर था। बी दास को अनुच्छेद 36 के मसौदे के बारे में संदेह था – एक ऐसी स्थिति जिसे समग्र रूप से डीपीएसपी पर उनके विचार से सूचित किया गया था। उन्होंने डीपीएसपी को 'पवित्र आशाएं और पवित्र इच्छाएं' करार दिया। यहां, दास इस तथ्य की ओर इशारा कर रहे हैं कि डीपीएसपी महत्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक उपायों को शामिल करते हुए दांतहीन थे क्योंकि वे कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं थे।

संविधान निर्माण की प्रक्रिया में इस तरह की आलोचना अक्सर विभिन्न अवसरों पर की जाती थी। उन्होंने यह भी कहा कि मसौदा अनुच्छेद 36 वास्तव में भारत में प्राथमिक शिक्षा के स्वरूप को स्पष्ट नहीं करता है। विशेष रूप से, वह जानना चाहता था कि 'क्या यह एक भाषा में होगा, या यह दो या तीन भाषाओं में होगा यदि किसी प्रांत में दो या तीन प्रकार के लोग प्रांत बनाते हैं?'। वह चिंतित थे कि एक राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक – जैसे कि तमिलनाडु में बंगाली – को राज्य की भाषा में शिक्षा प्राप्त करने के लिए मजबूर किया जाएगा। अम्बेडकर जी ने बहस में उठाए गए मुद्दों

पर प्रतिक्रिया दी। उन्होंने मैत्रा से सहमति जताई और राज्य के नीति निदेशक तत्व (डीपीएसपी) के अन्य प्रावधानों के अनुरूप लाने के लिए ड्राफ्ट अनुच्छेद 36 के वाक्यांश को बदलने के लिए संशोधन को स्वीकार कर लिया। हालांकि, उन्होंने नज़ीरुद्दीन के संशोधन और अंतर्निहित तर्क को खारिज कर दिया।

अम्बेडकर जी ने स्पष्ट किया कि मसौदा अनुच्छेद 36 प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित नहीं था और केवल 'शिक्षा' का उपयोग एक सचेत निर्णय था। उन्होंने तर्क दिया कि मसौदा अनुच्छेद 36 को मसौदा अनुच्छेद 18 से अटूट रूप से जोड़ा गया था जो 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर रोक लगाता था। 'यदि बच्चे को 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को नियोजित नहीं किया जाना है', तो अम्बेडकर ने जारी रखा 'बच्चे को कब्जे में रखा जाना चाहिए' किसी शिक्षण संस्थान में। यही अनुच्छेद 36 का उद्देश्य है और इसलिए मैं कहता हूं कि "प्राथमिक" शब्द उस विशेष खंड में बिल्कुल अनुपयुक्त है। यहां, अम्बेडकर ने ड्राफ्ट अनुच्छेद 18 की गलत व्याख्या कीः यह प्रावधान केवल 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को 'किसी भी कारखाने या खदान में काम करने या किसी अन्य खतरनाक रोजगार में लगे रहने' से रोकता है। लेख ने वास्तव में कार्य के अन्य क्षेत्रों के बारे में कुछ नहीं कहा। बहरहाल, जब मसौदा अनुच्छेद 36 मतदान के लिए आया, तो विधानसभा ने मैत्रा के संशोधन को अपनाया और नजीरुद्दीन के संशोधन को खारिज कर दिया। इसने संशोधन के साथ मसौदा अनुच्छेद को अपनाया। जैसा कि भारत के संविधान, 1950 के अधिकांश अनुच्छेदों की उत्पत्ति के साथ है, शिक्षा प्रावधानों का पता संविधान सभा के समिति चरणों से लगाया जा सकता है। फरवरी 1947 में, अपनी पहली बैठक में, मौलिक अधिकारों पर उप–समिति ने अपने सदस्यों को मसौदा लेख प्रस्तुत करने के लिए कहा, जिसे वे संविधान के मौलिक अधिकार अनुभाग में शामिल देखना चाहते हैं।

उप–समिति की कार्यवाही में शिक्षा के उद्भव से संकेत मिलता है कि ऐतिहासिक संविधानों में प्रचलित 'अधिकार' के रूप में शिक्षा की अभिव्यक्ति औपचारिक संविधान–निर्माण प्रक्रिया में जारी रही। अम्बेडकर के प्रावधान पूना पैक्ट 1933 और अनुसूचित जातियों की राजनीतिक मांगों 1944 की याद दिलाते थे – उन्होंने इन दोनों दस्तावेजों का मसौदा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रस्ताव में शिक्षा के प्रकार के प्रावधान का कोई सार्वभौमिक अधिकार नहीं था, हालांकि, इसमें 'उच्च शिक्षा के प्रावधान' शीर्षक वाला एक खंड और एक उपशीर्षक शामिल था 'कि संयुक्त राज्य भारत अनुसूचित जातियों की बेहतरी के लिए निम्नलिखित विशेष जिम्मेदारियां निभाएगाः जैसा कि शीर्षक और उप–शीर्षक से पता चलता है, अम्बेडकर के प्रस्ताव में शिक्षा अनुसूचित जातियों के संरक्षण और सशक्तिकरण से संबंधित थी। इस खंड में ऐसे प्रावधान थे जो अनुसूचित जातियों की प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए धन जुटाने और आवंटित करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को अनिवार्य बनाते थे।

दूसरी ओर, सिंह और मुंशी के प्रस्तावों में शिक्षा के सार्वभौमिक अधिकार के प्रावधान शामिल थे। सिंह का प्रावधान पढ़ाः भारत गणराज्य में विज्ञान और कला और उनके शिक्षण अप्रतिबंधित हैं। प्राथमिक विद्यालयों में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क है। धार्मिक अल्पसंख्यकों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा की गारंटी है। यहां यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि सिंह का शिक्षा प्रावधान विज्ञान और कला के मुक्त

टिप्पणी

संचालन के एक बड़े विचार के भीतर निहित है। साथ ही, ध्यान दें कि इसमें अल्पसंख्यक हितों का भी उल्लेख है, नेहरू रिपोर्ट 1928 के शिक्षा प्रावधान की याद ताजा करती है।

मुंशी जी के प्रस्ताव में निम्नलिखित खंड थेः

1. प्रत्येक नागरिक को मुफ्त प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, और यह संघ की प्रत्येक इकाई पर 14 वर्ष की आयु तक और वयस्कों के मामले में साक्षरता के स्तर तक मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा शुरू करने के लिए कानूनी रूप से अनिवार्य होगा।
2. प्राथमिक शिक्षा की अवधि, सीमा और पद्धति कानून द्वारा तय की जाएगी।
3. प्रत्येक नागरिक को अपनी पसंद के रूप और लिपि में राष्ट्रभाषा सीखने के लिए प्रदान की जाने वाली सुविधाएं प्राप्त करने का अधिकार है।
4. शिक्षा के अवसर सभी नागरिकों के लिए उनकी प्राकृतिक क्षमताओं और उपलब्ध सुविधाओं का लाभ लेने की उनकी इच्छा के अनुसार समान शर्तों पर खुले होने चाहिए।

ऐसा लगता है कि उप–समिति को प्राथमिकता दी गई और मुंशी ड्राफ्ट आर्टिकल, विशेष रूप से पहले क्लॉज से प्रभावित थी। अपनी मूल समिति को अपनी रिपोर्ट में – मौलिक अधिकारों और अल्पसंख्यकों आदि पर सलाहकार समिति ने निम्नलिखित प्रपत्र पर समझौता कियाः

- प्रत्येक नागरिक प्राथमिक शिक्षा के अधिकार के रूप में हकदार है और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करे।
- अप्रैल 1947 में, सलाहकार समिति उप–समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए बैठी। जब शिक्षा का प्रावधान किया गया, तो समिति के एक सदस्य, एम रूथनास्वामी चौंक गए और पूछा, 'क्या यह एक न्यायसंगत अधिकार है? मान लीजिए सरकार के पास पैसा नहीं है ?' अल्लादी कृष्णास्वामी, जो संयोग से इस प्रावधान का मसौदा तैयार करने वाली उप–समिति का हिस्सा थे, ने मांग कीः 'मैं इस खंड को हटाना चाहता हूं।' समिति ने तब प्रावधान को राज्य के नीति के गैर–कानूनी रूप से लागू करने योग्य निदेशक सिद्धांतों को भेज दिया।
- जबकि संविधान निर्माण के प्रारंभिक चरणों में शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में देखा गया था, व्यावहारिकता पर चिंता – संसाधनों की उपलब्धता – कार्यान्वयन की, अंततः शिक्षा के न्यायसंगत अधिकार के भाग्य का फैसला किया – कम से कम समिति चरणों में। लेकिन कहानी अभी खत्म नहीं हुई थी। इस प्रावधान को अभी भी संविधान सभा की पूर्ण बहस में उठाया जाना था और इस पर चर्चा की गई थी।

अपनी प्रगति जांचिए

1. संविधान सभा की पहली बैठक कब आयोजित की गई थी?
   (क) 9 दिसंबर 1946 को (ख) 11 दिसंबर 1946 को
   (ग) 15 दिसंबर 1971 को (घ) 20 दिसंबर 1947 को
2. संविधान का पहला सत्र किसकी अध्यक्षता में प्रारंभ हुआ था?
   (क) डॉ. राधाकृष्णन (ख) डॉ. पुरुषोत्तम दास टण्डन
   (ग) डॉ. जयकर (घ) डॉ. सच्चिदानन्द

3.3 भारत का संविधान : बुनियादी दर्शन और विशेषताएं

प्रत्येक संविधान के प्रारंभ में संविधान की प्रस्तावना होती है। प्रस्तावना में उन आधार तत्वों या उद्देश्यों का उल्लेख होता है जिससे संविधान अभिप्रेरित हुआ है तथा जिन पर शासन प्रणाली आधारित हो। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में न्याय, समानता, लोकतंत्र, गणतंत्र, व्यक्ति की गरिमा, एकता और अखण्डता आदि का उल्लेख संविधान की प्रस्तावना में किया गया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के आदर्श की प्राप्ति भी संविधान का उद्देश्य है। संविधान के प्रावधानों को संविधान की प्रस्तावना से प्रेरणा मिलती है। यद्यपि वैधानिक दृष्टि से प्रस्तावना को संविधान का अंग नहीं माना जाता है तथापि यही प्रस्तावना कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का मार्ग निर्देशन करती है कि 'हमें क्या करना चाहिए, हमारे उद्देश्य क्या होने चाहिए तथा हमारी दिशा क्या होनी चाहिए?'

देश के नव–निर्माण में तथा उसकी शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक संविधान के नियम–कानून की अति आवश्यकता होती है। इस संविधान का पालन करना देश के नागरिकों का परम कर्तव्य होता है। एक अच्छे नागरिक को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व देश के शासन तथा न्याय प्रणाली के हाथ में है। भारतीय संविधान के अनुसार भाग 3 में धारा 12 से लेकर 35 तक नागरिकों के मौलिक या मूल अधिकारों की व्यवस्था की गई थी। प्रारंभ में इन मौलिक अधिकारों की संख्या 7 थी परंतु 44वें संविधान संशोधन विधेयक (1979) के बाद इनकी संख्या 6 रह गई है। संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार की बजाय एक वैधानिक अधिकार मात्र बना दिया गया है। संविधान में 42वें संशोधन के द्वारा एक नई धारा 51(1) जोड़ी गई है। जिसके अंतर्गत नागरिकों के कुछ मौलिक कर्तव्यों को भी निर्धारित किया गया है। इन कर्तव्यों की संख्या दस है और ये भी मौलिक अधिकारों के समान ही महत्वपूर्ण हैं।

राज्य के नीति–निदेशक तत्व भारतीय संविधान की अनूठी विशेषताएं हैं। इन सिद्धांतों का वर्णन संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक विस्तार से किया गया है। इन सिद्धांतों में हमारे संविधान के सामाजिक न्याय के दर्शन के वास्तविक तत्व निहित हैं। इन सिद्धांतों का मूल लक्ष्य आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना है। निदेशक तत्वों में वे आदर्श निहित हैं जिनका प्रत्येक सरकार अपनी नीतियों

टिप्पणी

का निर्धारण करते समय ध्यान रखेगी। इन सिद्धांतों का प्रयोजन शांतिपूर्ण तरीके से सामाजिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त करके सामाजिक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए सामाजिक संरचना में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करना है।

3.3.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जिन भावनाओं, मूल्यों, आदर्शों स्वप्नों की परिकल्पना की थी, उसी के अनुरूप उन्होंने संविधान का निर्माण किया तथा इन सभी उद्देश्यों एवं मूल्यों को बीज मंत्र के रूप में संविधान की प्रस्तावना में समाहित कर दिया। यही कारण है कि उच्चतम न्यायालय में प्रस्तावना को ''संविधान–निर्माताओं की मंशा प्रकट करने वाली कुंजी'' बतलाया है।

संविधान का प्रारंभ प्रस्तावना से होता है। प्रस्तावना के द्वारा संविधान के आदर्शों, मूल्यों और आकांक्षाओं को स्पष्ट किया जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है– ''हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिती मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत 2006 विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

संविधान की प्रस्तावना का गहन विश्लेषण करने से निम्न तथ्य उद्घाटित होते हैं–

1. संविधान के स्रोत,
2. भारत की शासन व्यवस्था का स्वरूप और
3. संविधान के लक्ष्य एवं आदर्श।

1. **संविधान के स्रोत**– प्रस्तावना द्वारा संविधान के स्रोत को स्पष्ट किया गया है और इसके प्रारंभ में ही कहा गया है कि इसका निर्माण करने वाले 'हम भारत के लोग' हैं। इसमें तीन बातों को स्पष्ट कर दिया गया है– प्रथम, अंततः प्रभुसत्ता लोगों में निहित है, द्वितीय, संविधान निर्माता जनता के प्रतिनिधि हैं तथा तृतीय, भारतीय संविधान भारतीय जनता की इच्छा का परिणाम हैं अर्थात इसे भारत से बाहर की किसी सत्ता ने निर्मित नहीं किया, अपितु भारतीय जनता ने बनाया है। इसका निर्माण उस संविधान सभा द्वारा हुआ जिसमें जनता के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। भारत की जनता ने यद्यपि संविधान के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया, फिर भी परोक्ष रूप से इसके निर्माण में जनता का हाथ रहा है। संविधान सभा में जनता के ही प्रतिनिधि थे जिनका परोक्ष रूप से चुनाव किया गया था। यद्यपि यह ठीक है कि संविधान सभा के प्रतिनिधियों को केवल 13 प्रतिशत जनता ने ही चुना था, परंतु इस कमी की पूर्ति के लिए जनता को नये संविधान में वयस्क मताधिकार प्रदान कर दिया गया है और जनता की प्रतिनिधि सभा भारतीय संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार न केवल जनता ने इस संविधान को बनाया है वरन् उसे इस संविधान में संशोधन

करने का अधिकार भी प्राप्त है। इसके साथ–साथ 'हम भारत के लोग' से भारत के शासन–व्यवस्था के स्वरूप का भी ज्ञान होता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शक्ति जनता में निहित है और जनता की शक्ति प्राप्त करके ही प्रतिनिधि शासन करते हैं। इसके व्यापकता की चर्चा अगले बिन्दु में है।

2. **भारत की शासन व्यवस्था का स्वरूप**– प्रस्तावना में भारत को 'एक प्रभुसत्तासंपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य' घोषित किया गया है जिसकी व्याख्या इस प्रकार है –

   (i) **संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न**– भारत में 26 जनवरी, 1950 से अधिराज्य की स्थिति' समाप्त हो गई है अब भारत स्वतंत्र है। अपने आन्तरिक और बाह्य मामलों में भारत पूर्णतया स्वतंत्र है। यद्यपि भारत आज भी राष्ट्रमंडल तथा संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है, परंतु इसमें भारत की संप्रभुता पर कोई आंच नहीं आती है। राष्ट्रमंडल की सदस्यता भारत ने स्वेच्छा से ग्रहण की है और वह इसे कभी भी त्याग सकता है। राष्ट्रमंडल की सदस्यता का कोई संवैधानिक महत्व नहीं है।

   (ii) **लोकतंत्रात्मक**– प्रस्तावना में भारत को एक लोकतंत्रात्मक शासन घोषित किया गया है। भारतीय संविधान भारत में अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र की स्थापना करता है। यह जनता को बिना किसी भेद–भाव के वयस्क मताधिकार प्रदान करता है। श्री एन. बैनर्जी के अनुसार, ''लोकतंत्र शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से गणतंत्र शब्द के पूर्व लोकतांत्रिक विशेषण का प्रयोग करके किसी विशेष लाभ की प्राप्ति नहीं हो सकती थी।'' परंतु इसके विपरीत श्री के.एम. मुंशी का विचार है कि, 'प्रजातंत्र' विशेषण के अभाव में 'गणतंत्र' भी अपना महत्व खो देता है। अतः गणतंत्र से पूर्व 'प्रजातंत्र' शब्द का प्रयोग प्रस्तावना में किया गया है। जहां एक ओर, संविधान वयस्क मताधिकार प्रदान करता है। वहां समय–समय पर चुनाव की व्यवस्था भी करता है और केंद्र सरकार व राज्य सरकारों में संसदीय प्रणाली की स्थापना करके कार्यपालिका को जनता के प्रतिनिधियों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी बनाता है। लोकतंत्रवाद की दृष्टि से भारत, अमेरिका, ब्रिटेन व फ्रांस के समकक्ष है। रूस व चीन से भारत का शासन भिन्न है क्योंकि इन देशों में साम्यवादी व्यवस्था होने के कारण केवल एक राजनीतिक दल का प्रभाव है। यद्यपि रूस व चीन भी अपने को लोकतंत्र कहते हैं परंतु लोकतंत्र का वह स्वरूप भारत के लोकतंत्र से भिन्न है।

   (iii) **गणतंत्र**– गणतंत्र शब्द के प्रयोग द्वारा संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि देश में किसी वंशानुगत राजा का शासन नहीं होगा। देश का अध्यक्ष राष्ट्रपति होगा और वह जनता (या उसके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों) द्वारा निश्चित अवधि के लिए चुना जाएगा। राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग उन मंत्रियों के परामर्श के अनुसार करेगा जो जनता के प्रतिनिधियों (लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होंगे। राजकीय पदों पर नियुक्ति का अवसर प्रत्येक नागरिक को होगा। राजकीय कर्मचारियों

टिप्पणी

की नियुक्ति योग्यता के आधार पर खुली परीक्षाओं द्वारा होगी। न राज्य प्रधान वंशानुगत होगा और न सैनिक व अन्य कर्मचारी।

इस प्रकार प्रस्तावना द्वारा भारत को एक प्रभुत्वसंपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है।

3. **संविधान के लक्ष्य एवं आदर्श**– संविधान की प्रस्तावना के द्वारा, संविधान के पांच उद्देश्यों और आदर्शों का उल्लेख किया गया है– न्याय, स्वतंत्रता, समता, बन्धुत्व और राष्ट्रीय एकता। कुछ का उल्लेख हम यहां कर रहे हैं–

- **न्याय**– न्याय का अर्थ है कि राज्य का उद्देश्य या कुछ लोगों की भलाई न होकर समस्त जनता की भलाई करना होगा। संविधान में सार्वजनिक पदों पर सभी नागरिकों को बिना भेद–भाव के नियुक्ति का प्रावधान रखा गया है। अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया है। राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। द्वितीय, व्यक्ति को उसके विकास के लिए स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है तृतीय, 'समानता' का अर्थ सभी नागरिकों को उनकी उन्नति के लिए प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करना हैं चतुर्थ, 'बंधुता' की वृद्धि का अर्थ सभी लोगों में भाई–चारे की भावना में वृद्धि करना है। भारत जैसे विशाल देश में जहां विभिन्न जातियां, धर्म व भाषा के लोग रहते हैं, वहां 'बंधुता' की भावना के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ किया जा सकता है।
- **स्वतंत्रता**– संविधान की प्रस्तावना के अंतर्गत स्वतंत्रता के सिद्धांत को भी सम्मिलित किया गया है। संविधान यह संकल्प करता है कि सभी भारतीय नागरिकों को, ''विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता'' प्रदान करेगा। स्वतंत्रता की व्यवस्था मौलिक अधिकारों के विभिन्न अनुच्छेदों के अंतर्गत की गई है। अनुच्छेद 19 के द्वारा नागरिकों को भाषण, अभिव्यक्ति, शांतिपूर्ण संगठन, संघ या समुदाय का गठन, भारतीय सीमा के भीतर मुक्त विचरण, देश के किसी भाग में निवास, कोई भी पेशा या धंधा अपनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 20 के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को बिना विधि के अनुसार अपराधी सिद्ध किए हुए दंडित नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 21 के अंतर्गत किसी को उसके जीवन और स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के आधार पर ही वंचित किया जा सकता है। अनुच्छेद 25 से 28 तक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन संविधान प्रदान करता है। इसी प्रकार नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत संविधान अनुच्छेद 50 के द्वारा सरकार को उचित न्यायिक वातावरण स्थापित करने के उद्देश्य से न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने का निर्देश देता है। अनुच्छेद 44 के अंतर्गत राज्य द्वारा संपूर्ण देश में समान विधि संहिता स्थापित करने की बात कही गई है। इस प्रकार स्वतंत्रता संबंधी विभिन्न उपबंधों के माध्यम से जहां एक ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की गई है वहीं दूसरी ओर इनके माध्यम से संविधान ने भारत में राजनीतिक न्याय की स्थापना का प्रयत्न भी किया है।

- **समानता**– संविधान की प्रस्तावना में प्रस्तुत तीसरा महत्वपूर्ण आदर्श समानता का है। प्रस्तावना द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय राज्य का ध्येय व्यक्ति को ''प्रतिष्ठा और अवसर की समानता'' प्रदान करना है। समानता के अधिकार को मूल अधिकारों की सूची में प्रथम स्थान पर दिया गया है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 14 में सभी व्यक्तियों को कानून के सम्मुख समानता और समान कानूनी संरक्षण देने की बात कही गई है। अनुच्छेद 15 यह आश्वासन देता है कि राज्य धर्म, वंश, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 16 सभी भारतीयों को सरकार के अंतर्गत नौकरियों में समान अवसर प्रदान करता है। अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त कर दिया है और इसे एक अपराध घोषित किया है। अनुच्छेद 18 ने शिक्षा और सेना को छोड़कर अन्य सभी उपाधियों को समाप्त कर दिया है। इसी प्रकार नीति–निदेशक तत्वों के अंतर्गत भी समानता से संबंधित अनेक व्यवस्थायें संविधान ने की हैं।

भारतीय संविधान ने देश में प्रजातंत्रीय व्यवस्था की स्थापना की है। प्रजातंत्र प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को उचित महत्व देता है और उसकी रक्षा की व्यवस्था करता है। यह तभी संभव है जब व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उचित न्याय मिले और स्वतंत्रता तथा समानता के द्वारा व्यक्ति को विकास के उचित अवसर प्राप्त हो। प्रजातंत्रीय व्यवस्था अपनाने के पश्चात यह उचित और स्वाभाविक था कि भारत अपने संविधान में न्याय, स्वतंत्रता तथा समानता के सिद्धांतों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता।

प्रस्तावना का उद्देश्य भारत में एक ऐसी शासन व्यवस्था लागू करना है जिसका आधार ''लोकतंत्रीय समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा कल्याणकारी भावना'' है। इसके अलावा संविधान संशोधन द्वारा जोड़े गए दो नवीन आदर्श– समाजवाद एवं धर्मनिरपेक्षता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मूल संविधान में ये भावनाएं नहीं थीं। बल्कि यह है कि संविधान में इनको समाहित करके इन भावनाओं को और दृढ़ का किया गया है। धर्मनिरपेक्षता से तात्पर्य धार्मिक स्वतंत्रता के साथ राज्य द्वारा सर्वधर्म समभाव के आदर्श का पालन करना है। 42वें संविधान संशोधन के बाद समाजवादी मूल्यों की स्थापना के लिए राज्य में नीति–निदेशक तत्वों को ज्यादा महत्व दिया गया है।

इन सभी आदर्शों में 'न्याय' एक ऐसा आदर्श है जिसे प्रस्तावना में व्यापक महत्व दिया एवं इसके विभिन्न आयामों को विशेष रूप से उद्घाटित किया गया है। जैसे–

(i) **राजनीतिक न्याय**– इनका तात्पर्य है कि सभी नागरिकों को राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से भाग लेने का अधिकार हो और राजनीतिक दृष्टि से अमीर–गरीब, स्त्री–पुरुष, सवर्ण–दलित, विद्वान–अनपढ़ को समान अधिकार प्राप्त हों।

(ii) **आर्थिक न्याय**– इसका तात्पर्य है कि समाज में धन का केंद्रीकरण न हो और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के संसाधन उपलब्ध हों।

टिप्पणी

(iii) **सामाजिक न्याय**– इसका तात्पर्य है कि सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार प्राप्त हों और समाज में ऊंच–नीच, छुआछूत की भावना न हो।

यदि व्यक्ति को राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक न्याय प्राप्त होता है तो निःसंदेह आपस में भाईचारा स्थापित होगा तथा मानव की गरिमा को उचित प्रतिष्ठा मिलेगी। इस प्रकार संविधान की प्रस्तावना इन सभी आदर्शों एवं मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है।

(iv) **धर्मनिरपेक्षता**– संविधान की प्रस्तावना भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में प्रकट करती है। प्रस्तावना में नागरिकों को विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता दी गई है। भारत का कोई भी नागरिक किसी भी धर्म का पालन व प्रचार कर सकता है।

(v) **पृथकता वर्जित**– संविधान की प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि यह संविधान भारतीय जनता ने अधिनियमित और अंगीकृत किया है, इसलिए कोई भी एक राज्य या समूह न तो संविधान को समाप्त कर सकता है और न संघ से पृथक ही हो सकता है।

संविधान की प्रस्तावना के शब्दों, उनके अर्थों व उद्देश्यों से प्रस्तावना का महत्व स्वयं स्पष्ट हो जाता है। निःसन्देह, "प्रस्तावना संविधान का अमूल अंग है और संविधान की कुंजी है" जहां संविधान की किसी अस्पष्ट धारा की व्याख्या करने की आवश्यकता हो, वहां यह प्रस्तावना सहायता करती है यद्यपि सामान्य रूप में प्रस्तावना को संविधान का अंग नहीं माना जाता है परंतु केशवानन्द भारती केस में उच्चतम न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि 'प्रस्तावना' संविधान का अभिन्न अंग है। डॉ. सुभाष कश्यप ने भारतीय संविधान की प्रस्तावना के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''इसमें भारत के जन गण मन को प्रेरित करने की अदृश्य शक्ति है यह कहना अनुचित न होगा कि यदि प्रस्तावना बीज है तो संविधान उस बीज से विकसित वृक्ष।''

प्रस्तावना की संरचना

प्रस्तावना में संविधान का सारतत्व होता है। इसमें संविधान के प्रमुख दार्शनिक आधार तत्वों का निचोड़ होता है। संविधान की प्रस्तावना मात्र से संविधान के स्वरूप का आकलन किया जा सकता है। पं. ठाकुरदास भार्गव के अनुसार, ''प्रस्तावना संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। यह विधान की आत्मा है। यह विधान की कुंजी है।'' डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार, ''संविधान राष्ट्र का मूलभूत अधिनियम है। वह राज्य के विभिन्न अंगों का गठन कर उन्हें शरीर देता है, शक्ति देता है। उसके शरीर के गठन के पीछे, अंगों की व्यवस्था के पीछे एक प्रेरणा होती है, एक आत्मा होती है जिसको शब्द रूप मिलता है, प्रस्तावना में। प्रस्तावना अधिकांशतः लिखित संविधानों का प्रारंभिक भाग होता है। जिससे संविधान के स्वरूप, कार्यप्रणाली तथा राजनीतिक व्यवस्था को प्रकट करती है।'' उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान के प्रस्तावना संविधान का एक छोटा–सा भाग मात्र नहीं है वरन् यह पर्याप्त महत्व रखती है। इसका महत्व अनेक दृष्टिकोणों से सिद्ध किया जा सकता है–

टिप्पणी

1. प्रस्तावना के द्वारा शासन व्यवस्था का स्वरूप स्पष्ट होता है, प्रस्तावना के प्रमुख शब्दावली से आभास हो जाता है कि शासन प्रणाली लोकतंत्रात्मक होगी या निरंकुश तंत्र के रूप में सरकार कार्य करेगी।
2. प्रस्तावना के द्वारा शासन के आधारभूत सिद्धान्तों की झलक मिलती है कि शासन जनकल्याणकारी नीतियों पर कार्य करेगा या शासक वर्ग की इच्छापूर्ति के तंत्र के रूप में कार्य करेगा।
3. प्रस्तावना से शासक वर्ग के दायित्वों का भी बोध होता है, यह शासक वर्ग के लिए दिशा–निर्देश का भी कार्य करती है।
4. संविधान के उद्देश्यों की झांकी प्रस्तुत करती है, विषम् परिस्थितियों में संविधान के उद्देश्य क्या होने चाहिए यह भी स्पष्ट होता है।
5. संविधान के सिद्धान्तों के आधार पर शासन का संचालन किस प्रकार होगा इसके लिए यह प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती है।
6. प्रस्तावना संविधान का सारतत्व होती है तथा इसे संविधान का संक्षिप्त रूप माना जा सकता है।
7. यह संविधान को प्रेरणा देने का कार्य भी करती है। भूतपूर्व न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला के शब्दों में, ''भारतीय संविधान की प्रस्तावना समूचे संविधान की आत्मा है, शाश्वत और अपरिवर्तनीय। प्रस्तावना में संवैधानिक जीवन की विविधता का भी उल्लेख मिलता है और भविष्य का दर्शन भी होता है।''

भारतीय संविधान की प्रस्तावना : प्रमुख बिंदु संरचना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना का उद्‌गम स्थल पंडित जवाहर लाल नेहरू का 'उद्देश्य प्रस्ताव' है जिसे उन्होंने 13 दिसम्बर, 1946 को संविधान निर्मात्री सभा में प्रस्तुत किया था। यह 'उद्देश्य प्रस्ताव' स्वयं जवाहरलाल नेहरू की सूझबूझ का परिणाम था। इस 'उद्देश्य प्रस्ताव' के माध्यम से पंडित नेहरू ने संविधान सभा के समक्ष स्वतंत्र भारत के भावी संविधान की आधारभूत रूपरेखा, सिद्धान्तों और उद्देश्यों का प्रभावशाली ढंग से निरुपण किया। इस 'उद्देश्य प्रस्ताव' को सही मायने में भारतीय संविधान की प्रस्तावना का स्रोत या आधारशिला माना जा सकता है। उद्देश्य प्रस्ताव के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं–

(i) यह संविधान सभा अपने इस दृढ़ और गंभीर संकल्प की घोषणा करती है कि भारत को एक स्वतंत्र प्रभुत्वसम्पन्न गणराज्य घोषित करेगी और उसके भावी शासन के लिए एक संविधान की रचना करेगी।

(ii) जो भाग या देशी राज्य स्वतंत्र प्रभुत्वसम्पन्न भारत में सम्मिलित होने के लिए तत्पर है उन्हें आपस में मिलाकर एक संघ की भांति गठित किया जायेगा।

(iii) स्वतंत्र प्रभुत्वसम्पन्न भारत के समस्त भागों और शासन के सभी अंगों को शक्ति जनता से प्राप्त होगी।

(iv) भारत की समस्त जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, स्थिति और अवसर की तथा विधि के समक्ष समानता की, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना, व्यवसाय और कार्य की गारण्टी दी जायेगी।

टिप्पणी

(v) न्याय तथा सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार गणराज्य के राज्य क्षेत्र की एकता और अखण्डता और जल, थल और आकाश पर इसकी प्रभुता की रक्षा की जायेगी। अन्त में यह देश विश्वशान्ति तथा मानव जाति के कल्याण हेतु अपना पूर्ण और सहर्ष योगदान देगा।

'उद्देश्य प्रस्ताव' पर पंडित नेहरू ने संविधान सभा के समक्ष जो भाषण दिया उसका अभूतपूर्व प्रभाव देखने को मिला। संविधान सभा के अधिकांशतः सभी सदस्य पंडित नेहरू से सहमत थे। संविधान सभा ने कुल आठ दिनों तक 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर विचार किया। हृदयनाथ कुंजरू, जयकर और डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि प्रस्ताव पर विचार–विमर्श स्थगित कर दिया जाये। 22 जनवरी, 1947 को जवाहरलाल नेहरू ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर वाद–विवाद का उत्तर दिया और संविधान सभा ने इसे स्वीकार कर लिया। संघ संविधान के प्रारंभिक प्रारूपों में प्रस्तावना को केवल औपचारिक रूप में रखा गया था। 30 मई, 1947 को संघ संविधान के संबंध में बी.एन. राव द्वारा दिये गये ज्ञापन में प्रस्तावना का स्वरूप बदल दिया गया था, जैसे–'हम भारत के लोग, जो समाज के हित के लिए प्रयत्नशील है, एतत् द्वारा, हम अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से यह संविधान अधिनियमित, अंगीकृत और आत्मर्पित करते हैं।'

जब कैबिनेट मिशन द्वारा देश के विभाजन का सुझाव दिया गया तो संविधान सभा का दृष्टिकोण बदलने लगा, वह इस बात पर दृढ़ होने लगी कि विघटनकारी शक्तियों का सामना करने के लिए केन्द्र का शक्तिशाली होना अनिवार्य है। 18 जुलाई, 1947 को पंडित नेहरू ने स्वीकार किया कि एक प्रकार से प्रस्तावना, 'उद्देश्य प्रस्ताव' में आ गई है किन्तु बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उसमें कुछ परिवर्तन करने होंगे। संविधान सभा की प्रारूप समिति ने उद्देश्य प्रस्ताव पर पर्याप्त विचार विमर्श किया तथा उद्देश्य प्रस्ताव में भारतीय संघ को लेकर जो धारणा प्रस्तुत की गई थी उसे बदलते हुए राजनीतिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए बदल दिया गया। प्रारुप समिति के विचार से प्रस्तावना में नये राष्ट्र के मूल स्वरूप, इसके मूलभूत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों का उल्लेख होना चाहिए। फरवरी 1948 में प्रारूप समिति ने प्रस्तावना को स्वीकार कर लिया।

संविधान की प्रस्तावना : स्वरूप एवं लक्षण

भारतीय संविधान की विशालता को देखते हुए इसकी प्रस्तावना अत्यन्न संक्षिप्त, ध्यानाकार्षित करने वाली, सटीक शब्दावली तथा प्रभावशाली है। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार, 'प्रस्तावना का एक–एक शब्द एक चित्र है, चित्र जो कि बोलता है, एक कहानी कहता है– तपस्या, त्याग और बलिदान की कहानी।' भारत के संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है–

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुत्व बढ़ाने के लिए, दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिती मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, सवंत् दो

टिप्पणी

हजार छः विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं।

42वें संविधान संशोधन के पश्चात् प्रस्तावना का स्वरूप

1976 में 42वें संविधान संशोधन के द्वारा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कुछ शब्दों को प्रस्तावना में सम्मिलित किया गया है। संशोधन के पश्चात प्रस्तावना का स्वरूप इस प्रकार का हो गया है :

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुत्व बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिती मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

संविधान की प्रस्तावना के प्रमुख लक्षण

संविधान की प्रस्तावना के लक्षणों के संबंध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के शब्दों में, "हमारे संविधान की आत्मा अर्थात प्रस्तावना में मनुष्य की सभ्यता के आधुनिक विकास क्रम का हृदय स्पंदन है, उसकी अन्तर्रात्मा, न्याय और समता, अधिकार एवं बंधुत्व के जल से सिंचित है।" डॉ. जे. आर. लिवाच के अनुसार प्रस्तावना के चार भाग हो सकते हैं–

(i) सत्ता का स्रोत

(ii) शासन प्रणाली

(iii) शासन प्रणाली के ध्येय

(iv) संविधान की स्वीकृति एवं क्रियान्वयन की तिथि

संविधान की प्रस्तावना उपर्युक्त के अतिरिक्त भी बहुत कुछ लक्षण अपने में समाहित किये रहती है। अतः संविधान की प्रस्तावना के लक्षणों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

1. **संविधान का स्रोत जनता है**– भारतीय संविधान की प्रस्तावना का आरम्भ होता है–'हम भारत के लोग' से। यह शब्द स्पष्ट करते हैं कि संविधान का स्रोत जनता है। सत्ता की सर्वोच्च और अन्तिम शक्ति जनता में निहित है, जनता ही संविधान के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है कि सम्प्रभुता का अधिवास जनता में है। संविधान के सभी प्रावधान जनता से ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। अन्यत्र कोई भी स्रोत संविधान को न तो प्रभावित करता है न ही उसे शक्ति प्रदान करते हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, "प्रस्तावना यह स्पष्ट कर देती है कि इस संविधान का आधार जनता है एवं इसमें निहित अधिकार और प्रभुसत्ता सभी जनता से प्राप्त हुई है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि

टिप्पणी

संविधान सभा ने संविधान का निर्माण जनता की ओर से ही किया है तथा जनता ने ही इसे स्वीकार किया है।

2. **शासन के उद्देश्यों की घोषणा करना**– प्रस्तावना के द्वारा भारतीय संविधान शासन के तीनों अंगों– कार्यपालिका व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के उद्देश्यों की घोषणा करता है। प्रस्तावना के अनुसार, हमारे लोकतांत्रिक गणराज्य के चार प्रमुख उद्देश्य हैं– न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व। संविधान के निर्माता इस सत्य से भलीभांति परिचित थे कि राजनीतिक स्वाधीनता तो मात्र प्रथम चरण होता हैं इसके बाद ही आर्थिक, सामाजिक और अन्य स्वतंत्रताएं प्राप्त की जा सकती हैं।

3. **सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न**– सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न का तात्पर्य है कि भारत के आन्तरिक और बाहरी मामलों में फैसले लेना तथा नीति निर्माण में भारत सरकार पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। वैधानिक दृष्टि से भारत के ऊपर किसी प्रकार का कोई आन्तरिक नियन्त्रण नहीं है। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 के पारित होते ही भारत ब्रिटिश शासन से मुक्त हो गया था तथा उस पर किसी बाहरी शक्ति का कोई नियन्त्रण नहीं रह गया था। प्रस्तावना में सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न शब्द का प्रयोग संविधान निर्माताओं की इस मंशा को स्पष्ट करता है कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्य बने।

4. **लोकतंत्रात्मक संविधान**– भारतीय संविधान की प्रस्तावना में लोकतंत्रात्मक शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रस्तावना के माध्यम से संविधान निर्माताओं ने यह घोषणा की है कि भारत एक लोकतांत्रिक राज्य होगा। देश में शासन जनता की इच्छा के अनुरूप होगा। राजसत्ता पर किसी एक वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं होगा, शासन का संचालन बहुमत के सिद्धान्त के आधार पर होगा। यहां सभी प्रकार की समानताएं होंगी। भारत में निवास करने वाले सभी निवासियों, स्त्री–पुरुषों, अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्राप्त होगी। समाज में सामाजिक न्याय को प्रतिस्थापित करना तथा आर्थिक न्याय को समानतापूर्वक वितरित करना भी संविधान का उद्देश्य होगा, जिससे किसी भी वर्ग का शोषण न हो। वस्तुतः संविधान की प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्द जैसे– 'न्याय', 'स्वतंत्रता', 'समता', 'व्यक्ति की गरिमा 'राष्ट्र की एकता', 'बन्धुता' आदि प्रस्तावना में निहित संविधान के दर्शन को मुखर रूप में बताते है कि भारत केवल एक राजनीतिक लोकतंत्र नहीं है अपितु सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र भी है।

5. **गणराज्य**– भारत लगभग दो सौ वर्षों तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहा है। भारतीय संविधान में इंग्लैण्ड की व्यवस्था से मिलते–जुलते बहुत से प्रावधान इसलिये रखे गए क्योंकि संविधान निर्माताओं का यह मानना था कि भारतीय जनता उन व्यवस्थाओं का पालन करने की अभ्यस्त हो गई है। लोकतांत्रिक व्यवस्था, संसदात्मक व्यवस्था को अपनाने के साथ संविधान की प्रस्तावना में गणराज्य शब्द का उल्लेख होते ही यह स्पष्ट हो गया कि भारत के संविधान निर्माता अमेरिकी और फ्रांसीसी व्यवस्थाओं से प्रेरित होकर भारत में वंशानुगत लोकतंत्र के स्थान पर लोकतंत्रात्मक गणराज्य को अपनाना चाहते हैं।

इंग्लैण्ड में संवैधानिक राजतंत्र है वहां का राष्ट्राध्यक्ष वंशानुगत आधार पर अपना पद ग्रहण करता है। यह व्यवस्था भारतीय परिवेश के लिये उपयुक्त नहीं थी, भारत की विविधता को ध्यान में रखते हुए लोकतंत्रात्मक गणराज्य की अवधारणा अधिक उपयुक्त लगी। इसमें राष्ट्राध्यक्ष को पद जनता द्वारा निर्वाचन के फलस्वरूप प्राप्त होता है। यह निर्वाचन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कैसे भी हो सकता है। राष्ट्रपति के पद तक कोई भी साधारण नागरिक पहुंच सकता है, भारतीय गणराज्य में सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित है जिसे जनता सार्वभौम वयस्क मताधिकार के द्वारा व्यक्त करती है।

6. **न्याय**– संविधान निर्माता इस तथ्य से भलीभांति अवगत संभव थे कि सही मायने में लोकतंत्र की स्थापना तभी संभव है जबकि न्याय को संविधान में प्रतिष्ठित किया जाये। लोकतंत्र जिन आयामों–स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर निर्भर होता है उनको बिना न्याय के स्थापित नहीं किया जा सकता है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना करने से ही लोक कल्याणकारी राज्य के आदर्श को प्राप्त किया जा सकता है। सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समान और समुचित अवसर सुलभ हो सकें, उनके बीच किसी भी आधार पर कोई भेद न माना जाये। आर्थिक न्याय से तात्पर्य है कि अर्थ का केन्द्रीयकरण न हो, उत्पादन और वितरण के साधनों का न्यायोचित रीति से वितरण हो जिससे अधिक से अधिक सामूहिक हितों का साधन हो सके। राजनीतिक न्याय का अर्थ यह है कि समस्त नागरिकों को नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों। वयस्क मताधिकार सिद्धान्त के आधार पर नागरिक मताधिकार का प्रयोग करें। इस प्रकार न्याय की स्थापना के उपरान्त ही लोककल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को सिद्ध किया जा सकता है।

7. **स्वतंत्रता**– प्रस्तावना में 'स्वतंत्रता' शब्द का भी उल्लेख किया गया है साथ ही साथ विचार अभिव्यक्ति, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का उल्लेख मिलता है। स्वतंत्रता का तात्पर्य इतनी ही स्वतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता का तात्पर्य नागरिक और राजनीतिक दोनों प्रकार की स्वतंत्रता से है। विचार, अभिव्यक्ति, भाषण, संघ निर्माण, सम्पत्ति संग्रह आदि नागरिक स्वतंत्रताएं हैं। मतदान में भाग लेना, चुनाव में खड़ा होना, प्रतिनिधियों का चयन करना, सार्वजनिक पद पर नियुक्ति का अधिकार, सरकार के कार्यों की आलोचना करना आदि राजनीतिक स्वतंत्रताएं हैं। संविधान की प्रस्तावना नागरिकों के व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास के लिए स्वतंत्रता प्रदान करने का आश्वासन देती है जिससे संविधान इस उद्देश्य की प्राप्ति कर सके।

8. **पंथनिरपेक्षता**– भारत में कोई भी राज्य धर्म नहीं है। भारतीय संविधान न तो किसी धर्म को प्रोत्साहन देता है और न ही किसी धर्म के प्रति भेदभाव पूर्ण या उपेक्षापूर्ण रवैया अपनाता है। पंथनिरपेक्ष राज्य में धर्म अन्तःकरण की वस्तु है या यह कहें कि यह नितान्त व्यक्तिगत मामला है, इससे राज्य के हस्तक्षेप का कहीं कोई स्थान नहीं है। भारत में धार्मिक विविधता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तावना में ही धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का उल्लेख कर दिया गया, इससे बहुसंख्यकों को पूर्ण स्वतंत्रता का आश्वासन मिला तथा

टिप्पणी

अल्पसंख्यकों का स्वतंत्रता के साथ–साथ संरक्षण भी प्राप्त हुआ। इसके साथ ही साथ भारत को एवं पंथनिरपेक्ष राज्य बनाना संभव हो पाया।

9. **समानता**– संविधान की प्रस्तावना में समता शब्द का प्रयोग इस अभिप्राय से किया गया है कि भारत का संविधान प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के आधार पर व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध कराये। लिंग, जाति, नस्ल, धर्म अथवा सम्पत्ति के आधार पर राजनीतिक, वैधानिक और नागरिक अधिकारों का निषेध नहीं होना चाहिए। समान योग्यता और समान श्रम के लिए समान पारितोषिक होना चाहिए। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का किसी भी आधार पर शोषण न कर पाये। भारतीय संविधान में नागरिकों को विधि के समक्ष और अवसर की समानता का उल्लेख है।

10. **राष्ट्रीय एकता और अखण्डता**– भारतीय संविधान में राष्ट्र की एकता और अखण्डता का उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है। भारत एक विविधताओं से परिपूर्ण देश है, यहां भौगोलिक विविधताओं के अतिरिक्त भाषायी, धार्मिक, सांस्कृतिक, नस्ल आदि के आधार पर भी पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। ऐसे परिदृश्य में राष्ट्रीय एकता और अखण्डता लोकतंत्र की आवश्यकता है। व्यक्ति लोकतंत्र की इकाई होता है। भारत का लोकतंत्र लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने का प्रयास करता है। लोक कल्याणकारी राज्य में व्यक्ति का हित सर्वोपरि होता है किन्तु यह लोकहित राष्ट्रहित के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहिए अतः राष्ट्रीय एकता संविधान का लक्ष्य होना चाहिए।

प्रस्तावना को संविधान की आत्मा क्यों कहा जा सकता है?

प्रस्तावना में लगभग उन सभी बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है जिनका संविधान में विस्तृत विवेचन है और जो संविधान को उसका दृढ़ स्वरूप प्रदान करने में योगदान देते हैं। अतः कहा जा सकता है कि प्रस्तावना संविधान की आत्मा है। निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तावना को संविधान की आत्मा क्यों कहा जा सकता है–

1. **प्रस्तावना में भारत के भावी स्वरूप का चित्रण मिलता है**– भारत ने लगभग दो सौ वर्षों की दासता झेली है। हमारे स्वाधीनता संग्राम में जो आकांक्षाएं, मूल्य, विश्वास भावी भारत के लिए निश्चित किये गये उनका चित्रण प्रस्तावना में पूरी तरह परिलक्षित होता है कि नवीन भारत किस प्रकार का होगा।

2. **विश्व में घटित हुई क्रान्तियों का प्रभाव प्रस्तावना पर दृष्टिगोचर होता है**– विश्व में चार प्रमुख क्रान्तियां घटित हुई हैं। इन चारों क्रान्तियों ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों की नींव डाली है। इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति से संसदीय लोकतंत्र आया, फ्रांस की क्रान्ति से लोकतंत्र के तीन आयाम स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर बल दिया गया, अमेरिकी क्रान्ति के द्वारा वैयक्तिक स्वतंत्रता पर बल दिया गया, सोवियत रुस की क्रान्ति में आर्थिक समानता पर बल दिया। प्रस्ताव में इन चारों के सारतत्व का समावेश मिलता है।

3. **संविधान की प्रस्तावना से नवीन संकल्पनाओं का बोध होता है**– संविधान की प्रस्तावना से संविधान निर्माताओं के आशय स्पष्ट होते हैं कि

भारतीय संविधान किन संकल्पनाओं पर आधारित है तथा इसके उद्देश्य क्या है। संविधान की प्रस्तावना में नवीन संकल्पनाओं जैसे समानता, स्वतंत्रता न्याय आदि का जो उल्लेख किया गया है वे संविधान की दिशा निर्धारित करते हैं तथा संविधान के उद्देश्य स्पष्ट करते हैं। इससे संविधान को उत्कृष्ट रूप मिलता है।

4. **प्रस्तावना संविधान की कुंजी है**– प्रस्तावना को संविधान की कुंजी या आत्मा इसलिए माना गया है क्योंकि संविधान के मूल सिद्धान्तों और आधारभूत मूल्यों की स्पष्ट झलक हमें प्रस्तावना में मिलती है। सर्वोच्च न्यायालय ने बेरुबारी विवाद में अपना निर्णय देते हुए स्पष्ट कहा था कि प्रस्तावना संविधान अथवा अधिनियम निर्माताओं का आशय स्पष्ट करने वाली कुंजी है।
5. **प्रस्तावना संविधान की प्रेरणा है**– यद्यपि वैधानिक दृष्टि से प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है तथापि यह संविधान का प्रेरणा स्रोत है। चूंकि प्रस्तावना में संविधान के मूल सिद्धान्तों और आधारभूत मूल्यों को समाहित किया गया है इसलिये यह संविधान का प्रेरणास्रोत मानी जाती है। संवैधानिक और संसदीय अधिनियमों की व्याख्या इसी में की जा सकती है।
6. **प्रस्तावना किसी विचारधारा से प्रभावित नहीं है**– राजनीति विज्ञान का इतिहास विभिन्न विचारधाराओं से भरा हुआ है। इन विचारधाराओं का पर्याप्त प्रभाव हमें विभिन्न देशों के संविधानों पर मिलता है। अमेरिकी संविधान व्यक्तिवादी और पूंजीवादी दर्शन पर आधारित है जबकि चीन का संविधान साम्यवादी दर्शन पर आधारित है। पूर्व सोवियत संघ का संविधान साम्यवादी और समाजवादी विचारधारा से ओतप्रोत था परन्तु भारतीय संविधान पर किसी विशेष विचारधारा का प्रभाव नहीं मिलता है। अपितु कई विचारधाराओं के श्रेष्ठ तत्वों का समावेश मिलता है। भारतीय संविधान में न्याय के सिद्धान्त, समाजवादी, पूंजीवाद आदि को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप समाहित करने का प्रयास किया गया है।

यद्यपि प्रस्तावना को संविधान का अंग नहीं माना जाता है। न्यायिक दृष्टिकोण से कानून की संज्ञा नहीं दी जा सकती है किन्तु यह पर्याप्त वैधानिक महत्व रखती है। प्रस्तावना का उद्देश्य राजनीति व्यवस्था का लक्ष्य निर्धारित करना एवं उसकी नीति सुनिश्चित करना, किसी भी संवैधानिक या संसदीय अधिनियम की व्याख्या इसके बिना नहीं की जा सकती है। एक वाद के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने 1969 में निर्णय सुनाते हुए कहा था कि, "यदि विधानमण्डल द्वारा प्रयुक्त किसी शब्दावली पर कोई सन्देह उत्पन्न हो जाए तो उसे दूर करने का सबसे विश्वसनीय माध्यम यही है कि उसके मूल में निहित भावनाओं, उसके आधार और कानून निर्माण के कारण पर विचार किया जाए तथा संविधान की प्रस्तावना का आश्रय लिया जाये।" इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संविधान के दार्शनिक तत्व जिनकी अभिव्यक्ति प्रस्तावना में होती है यह मात्र एक संविधान का दर्शन नहीं है। यह एक देश, एक विशाल समाज का दर्शन है और विचारधाराओं का मन्थन है। जिन्हें शब्द रूप में प्रस्तावना में अभिव्यक्ति करने का एक सुन्दर और सफल प्रयास किया गया है।

3.3.2 मौलिक अधिकार और कर्तव्य

वे अधिकार या व्यवस्थाएं जो व्यक्ति के जीवन के लिए मौलिक और अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किये जाते हैं, मौलिक अधिकार कहलाते हैं। निम्न चार आधारों पर व्यक्ति के इन अधिकारों को मौलिक अधिकार कहा जाता है–

1. यह अधिकार व्यक्ति के मानसिक, भौतिक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक हैं। इनके अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास नहीं हो सकता है इसलिए यह प्रत्येक नागरिक को बिना भेदभाव के प्रदान किये जाते हैं।
2. इन्हें देश के संविधान में स्थान दिया जाता है तथा इनमें संविधान संशोधन के अतिरिक्त किसी भी प्रकार से परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
3. मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका या शासक वर्ग इनका अतिक्रमण नहीं कर सकता है।
4. मौलिक अधिकार वादयोग्य हैं। न्यायपालिका इनकी रक्षा हेतु सभी आवश्यक उपाय कर सकती है।

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की विशेषताएं

संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान में अमेरिका के संविधान से प्रेरणा लेकर मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान के अधिकार पत्र की विशेषताएं निम्न हैं–

1. **विश्व का सबसे विस्तृत अधिकार पत्र है**– संविधान के भाग 36 में कुल 23 अनुच्छेद मौलिक अधिकारों से सम्बद्ध हैं। मौलिक अधिकारों की पूर्ण और स्पष्ट व्याख्या करने के प्रयास में यह अधिकार पत्र इतना विस्तृत हो गया है। अधिकार पत्र में जीवन के हर क्षेत्र को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। इसमें इन पर लगाये जाने वाले प्रतिबन्धों का भी वर्णन है।
2. **प्राकृतिक अधिकारों को कोई मान्यता नहीं दी गई है**– भारत में मौलिक अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त किये जाते हैं अर्थात् संविधान मूल अधिकारों का स्रोत है। संविधान अन्य किसी स्रोत से प्रदत्त नियमों को मान्यता प्रदान नहीं करता है। भारत के संविधान में प्राकृतिक या अगणित अधिकारों का कोई स्थान नहीं है। संविधान केवल भाग 3 में वर्णित अधिकारों को ही मान्यता देता है। सर्वोच्च न्यायालय भी संविधान के भाग 3 में वर्णित अधिकारों के सम्बन्ध में कार्यवाही कर सकता है। जबकि अमेरिका में वहां का सर्वोच्च न्यायालय मानव विकास के लिए आवश्यक समझे जाने वाले अधिकारों को लागू करा सकता है।
3. **मौलिक अधिकार निरंकुश नहीं हैं**– अमेरिकी संविधान में किसी प्रकार का कोई अंकुश नहीं है। इससे कभी–कभी राज्य के लिए वैधानिक संकट खड़ा हो जाता है। ऐसी स्थिति से बचाव के लिए संविधान निर्माताओं ने

संविधान के द्वारा ही मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा दिये। अमेरिकी संविधान में राज्य के हित को ध्यान में रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों पर उचित नियन्त्रण लगाने की शक्ति प्रदान कर दी गई है। इस प्रकार भारतीय संविधान और अमेरिकी संविधान में मूल अधिकारों पर प्रतिबन्धों की स्थिति एक जैसी है। भारत में प्रतिबन्ध प्रत्यक्ष हैं जबकि अमेरिका में अप्रत्यक्ष हैं।

4. **मौलिक अधिकार व्यावहारिक**– भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को मात्र सैद्धान्तिक दृष्टि से भारत के संविधान में सम्मिलित नहीं किया गया है, यह पूर्णतः व्यावहारिक हैं। यह समाज के सभी वर्गों के लिये उपयोगी हैं। बालकों, स्त्रियों, पिछड़ा वर्ग, दलित वर्ग, अल्पसंख्यकों सभी के लिये विशेष प्रावधानों की व्यवस्था की गई है जिससे उनके हितों की रक्षा की जा सके।
5. **मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये भी प्रावधान हैं**– भारत के संविधान में मूल अधिकारों की व्यवस्था को यदि निरंकुश नहीं होने दिया गया है तो उनकी रक्षा के लिये भी पर्याप्त उपाय किये गये हैं। इनका स्तर पूर्णतः कानूनी है तथा न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह यह सुनिश्चित करे कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन न होने पाए। अनुच्छेद 32 में यह व्यवस्था है कि नागरिक अपने मूल अधिकार की रक्षा हेतु न्यायालय की शरण ले सकता है। न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धांत के अनुसार कार्यपालिका, और व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधि को न्यायपालिका अमान्य घोषित कर सकती है, यदि वह विधि मूल अधिकारों का अतिक्रमण कर रही हो।

संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार

मूलतः संविधान में 7 मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया था परन्तु 44वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा (1979) सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया। यह अब एक विधिक अधिकार है। इस प्रकार वर्तमान में संविधान भारतीय नागरिकों को 6 मूल अधिकार प्रदान करता है–

I. समानता का अधिकार (अनु. 14 से 18)
II. स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 19 से 22)
III. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनु. 23 और 24)
IV. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 25 से 28)
V. संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनु. 29 और 30)
VI. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु. 32)

I. समानता का अधिकार (अनु. 14 से 18)

समानता प्रजातंत्र के तीन आयामों में से एक है, किसी भी सफल प्रजातंत्र की समानता के अधिकार के अभाव में कल्पना नहीं की जा सकती है। भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों को कई प्रकार से समानता प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

(i) कानून के समक्ष समानता (अनु. 14)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में स्पष्ट उल्लेख है कि, ''भारत, राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता से या विधायों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा।'' उपर्युक्त वाक्य में दो वाक्यांशों का प्रयोग किया गया है– प्रथम– 'विधि के समक्ष समानता' और दूसरा–'विधियों के समान संरक्षण।' प्रथम वाक्यांश 'विधि के समक्ष समानता' ब्रिटिश संविधान से प्रेरित है, इसका स्पष्ट अर्थ है–विधि का शासन जबकि दूसरा वाक्यांश 'विधियों के समान संरक्षण' अमेरिकी संविधान से प्रेरित है। यह नागरिकों को आश्वासन देता है कि सभी के साथ समान परिस्थितियों में समान व्यवहार किया जायेगा। इसका तात्पर्य है कि अपने अधिकारों की रक्षा हेतु कोई भी नागरिक न्यायालय की शरण ले सकता है। सैद्धांतिक रूप से दोनों में कोई अन्तर भेद हो सकता है परन्तु व्यवहारिक रूप से दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अनु. 14 में वर्णित विधि का शासन संविधान के आधारभूत ढांचे का अत्यावश्यक तत्व है। इसे अनु. 368 के द्वारा संविधान में संशोधन करके न तो परिवर्तित किया जा सकता है और न समाप्त किया जा सकता है।

(ii) धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म–स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनु. 15)

अनु. 15 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि, ''धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर यह अधिकार केवल भारत के नागरिकों को प्रदान किया जाता है। किसी भी विदेशी को यह अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता है। इसके अनुसार सभी नागरिकों को दुकानों, भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश का अधिकार होगा। ऐसे कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों और सार्वजनिक स्थानों के उपयोग का अधिकार होगा जिनकी पूर्ण या आंशिक व्यवस्था राज्य की निधियों से की जाती है। यह अनु. देश में सामाजिक न्याय की स्थापना करने की दिशा में एक ठोस पहल करता है।

(iii) राज्य के अधीन नौकरियों के समान अवसर (अनु. 16)

यह अनु. 5 भागों में विभक्त है। अनुच्छेद 16(1) में वर्णित है कि ''राज्याधीन नौकरियां या पदों पर नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।" अनुच्छेद 16(2) में लिखा है कि ''धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी एक आधार पर किसी एक नागरिक के लिये राज्य के अधीन नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जाएगा।''

अनुच्छेद 16 के आगे के तीन भागों में इसके अपवादों पर वर्णन किया गया है। अतः यह माना जा सकता है कि नागरिक को केवल राज्य के अधीन ही नौकरियों के अवसरों में समानता का अधिकार प्राप्त है।

(iv) अस्पृश्यता का निषेध

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाज को पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित करने के लिए अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 17 के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि ''अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी अयोग्यता को लागू करना एक एक दण्डनीय अपराध है।'' इसी अनुच्छेद के उद्देश्य की पूर्ति हेतु संसद ने 1955 में 'अस्पृश्यता निवारक अधिनियम' पारित किया। इस कानून के अनुसार अस्पृश्यता एक दण्डनीय अपराध है।

(v) उपाधियों का निषेध (अनु. 18)

इस अनुच्छेद की व्यवस्था संविधान में सामाजिक जीवन में जो भेदभाव व्याप्त था इसी निर्मूलन करने के लिए की गई थी। ब्रिटिश शासनकाल में तुष्टीकरण की नीति अपनाते हुए ब्रिटिश शासकों ने सम्पत्ति और प्रभाव से समाज में भेदभाव व्याप्त हो गया था अतः भारत के संविधान में इनका निषेध कर दिया गया। अनुच्छेद 18 में व्यवस्था की गई कि ''सेना या विद्या सम्बन्धी उपाधियों के अलावा राज्य अन्य कोई उपाधियां प्रदान नहीं कर सकता है।'' कोई भारतीय नागरिक राष्ट्रपति की अनुमति के बिना किसी दूसरे राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता।

भारत सरकार विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान देने के लिये भारतीय नागरिकों को भारत रत्न, पद्मविभूषण, पद्मभूषण और पद्मश्री जैसी उपाधियों से विभूषित करती है। 1977 में जनता पार्टी सरकार के गठन के उपरान्त भारत के महान्यायवादी ने परामर्श दिया कि ये उपाधियां अनुच्छेद 18 के अनुरूप नहीं हैं अतः इन्हें समाप्त कर दिया जाना चाहिये। जुलाई 1977 में संसद के द्वारा एक विधेयक पारित करके इन उपाधियों को समाप्त कर दिया गया। सन् 1980 में सत्ता परिवर्तन के उपरान्त संसद द्वारा पुनः एक विधेयक पारित करके उपाधियां प्रदान करने की व्यवस्था को पुनः आरंभ कर दिया गया।

II. स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 19 से 22)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता शब्द का प्रयोग किया है। स्वतंत्रता को एक उद्देश्य की भांति प्राप्त करना संविधान का लक्ष्य है बिना स्वतंत्रता के लोकतंत्र स्थापित नहीं किया जा सकता है। भारतीय संविधान नागरिकों को विविध स्वतंत्रताएं प्रदान करता है। जैसे–विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना इत्यादि। 1950 में जब संविधान लागू हुआ तब अनु. 19(1) में स्वतंत्रताएं प्रदान की गई थीं परंतु 44 वें संशोधन के द्वारा 'सम्पत्ति की स्वतंत्रता' को समाप्त कर दिया गया और इसके साथ ही नागरिकों के लिये स्वतंत्रताएं 6 रह गईं।

(i) विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनु. 19(1))– भारत के सभी नागरिकों को विचारों की, भाषण देने की तथा विचार अभिव्यक्ति करने की स्वतंत्रता है। प्रेस, की स्वतंत्रता भी इसी स्वतंत्रता में शामिल है। मूल संविधान में विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का क्षेत्र बहुत व्यापक था। इसके

टिप्पणी

दुष्परिणामों के कारण इसे सीमित कर दिया गया जैसे–अपमानित करने वाले लेख और वचन, न्यायालय की अवमानना, व्यक्ति की गरिमा पर आघात तथा राष्ट्रीय सुरक्षा और हित पर दुष्प्रभाव के कारण इसे सीमित किया गया। संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 द्वारा निम्न आधारों पर विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाये गये थे–राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टाचार, न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के लिये उत्तेजित करना। 1963 में विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर एक और प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि यदि कोई व्यक्ति भारत के किसी भाग को अलग करवाने का प्रचार करे, तो राज्य के द्वारा इसकी विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित या प्रतिबन्धित किया जा सकता है। निम्न आधारों पर विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं–

- राज्य की सुरक्षा
- विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के आधार पर
- लोक व्यवस्था
- शिष्टाचार या सदाचार के हित में
- न्यायालय की अवमानना
- मानहानि
- अपराध करने के लिए उत्तेजित करने पर
- भारत की सम्प्रभुता और अखण्डता के मुद्दे पर

प्रेस विचार और अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। 1975 के आपातकाल में प्रेस पर राज्य और विधानमण्डलों की गतिविधियों को प्रकाशित करने पर पाबन्दी लगा दी थी परन्तु 44वें संविधान संशोधन के द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई कि प्रेस संसद और विधानसभाओं की कार्यवाहियों का प्रकाशन पूर्ण स्वतंत्रता के साथ कर सकती है। यह प्रावधान दूरदर्शन पर भी लागू होता है।

अनुच्छेद 19(1) (क) के अन्तर्गत हड़ताल करने का अधिकार कोई मूल अधिकार नहीं है अतः हड़ताल करने वालों को रोका जा सकता है। प्रदर्शन और हड़ताल में व्यापक अन्तर है। जब प्रदर्शन हड़ताल का रूप ले लेता है तब वह मात्र विचार अभिव्यक्ति का साधन न रहकर दूसरा रूप धारण कर लेता है।

(i) **अस्त्र–शस्त्र रहित तथा शान्तिपूर्वक सम्मेलन करने की स्वतंत्रता–** अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने तथा उनका प्रचार करने के उद्देश्य से कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह बिना अस्त्र–शस्त्र के शान्तिपूर्वक रूप से सभा या सम्मेलन कर सकता है अथवा जुलूस या प्रदर्शन के माध्यम से अपने विचार व्यक्त कर सकता है। यह स्वतंत्रता भी असीमित नहीं है, सार्वजनिक सुरक्षा के हित को ध्यान में रखते हुए राज्य इस स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।

(ii) **संघ और समुदाय निर्माण करने की स्वतंत्रता**– संविधान सभी नागरिकों को संघ अथवा समुदाय निर्माण करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इस स्वतंत्रता को भी सीमित किया जा सकता है, राज्य सामान्य जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए इस स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा सकता है। इस स्वतंत्रता का लाभ उठाते हुए कोई व्यक्ति ऐसे संगठन का निर्माण नहीं कर सकता जिससे शान्ति और व्यवस्था भंग हो।

(iii) **भारत राज्य क्षेत्र में अबाध रूप से भ्रमण करने की स्वतंत्रता**– सभी भारतीय नागरिक भारत के क्षेत्र में बिना किसी विशेष अनुमति के निर्बाध रूप से भ्रमण कर सकते हैं। इस अधिकार को राज्य सामान्य जनता के हित, राष्ट्रीय सुरक्षा और जनजातियों के मुद्दों को ध्यान में रखते हुए सीमित कर सकता है।

(iv) **भारत राज्य क्षेत्र में अबाध रूप से निवास करने की स्वतंत्रता**– भारत का संविधान अपने नागरिकों को इकहरी नागरिकता प्रदान करता है। इस प्रकार भारत राज्य क्षेत्र में नागरिक अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी स्थाई या अस्थाई रूप से निवास करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस स्वतंत्रता को भी राष्ट्रीय हित, जनता के हित और जन जातियों के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

(v) **आजीविका या व्यापार करने की स्वतंत्रता**– संविधान सभी नागरिकों को अपनी आजीविका, व्यापार या व्यवसाय के संबंध में स्वतंत्रता प्रदान करता है। किन्तु जनता और राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए इन स्वतंत्रताओं पर प्रतिबन्ध लगा सकता है। राज्य किन्हीं व्यवसायों के लिये योग्यताएं निर्धारित कर सकता है, किसी उद्योग या कारोबार को पूर्ण या आंशिक रूप से अपने नियंत्रण में ले सकता है।

संविधान द्वारा प्रदत्त की गई उपर्युक्त स्वतंत्रताएं असीमित नहीं हैं। बुद्धिजीवी वर्ग स्वतंत्रताओं पर लगाये प्रतिबन्धों की जितनी चाहे आलोचना करे किन्तु सभ्य समाज में निरंकुश स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। संविधान द्वारा प्रदत्त इन स्वतंत्रताओं पर केवल मुक्तिसंगत प्रतिबन्ध ही लगाये जा सकते हैं तथा प्रतिबन्धों के औचित्य का निर्णय न्यायालय करेगा। 'मद्रास राज्य बनाम बी. जी. राव' तथा 'रशीद अहमद बनाम केन्द्र सरकार' तथा और भी कोई विवादों से स्पष्ट होता है कि न्यायालय के द्वारा व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के अनुचित नियंत्रणों से नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा की गई है।

42वें संविधान संशोधन (1976) में संसद को राष्ट्र विरोधी समुदाय और गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति दे दी गयी थी परन्तु इस आशंका से कि शासक दल इसका दुरुपयोग कर सकता है, 43वें संशोधन में संसद की इस शक्ति को समाप्त कर दिया गया।

(i) अपराध की दोषसिद्धि के विषय में संरक्षण (अनुच्छेद 20)

संविधान के अनुच्छेद 20 में उल्लेख किया गया है कि, ''किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता जब तक कि उसने अपराध के समय में लागू किसी कानून का उल्लंघन न किया हो।'' एक व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक बार ही दण्डित किया जा सकता है तथा किसी अपराध की सिद्धि के मामले में आरोपी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

(ii) व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा जीवन की सुरक्षा (अनुच्छेद 21)

इस अनुच्छेद को 'जीवन का अधिकार' के रूप में भी जाना जाता है। इसमें उल्लिखित है कि ''किसी व्यक्ति को उसके प्राण तथा दैहिक स्वतंत्रता विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता।'' 44वें संविधान संशोधन (1979) में इस अधिकार को और अधिक महत्व प्रदान किया गया है। अब आपातकाल में भी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को न तो समाप्त किया जा सकता है और न ही सीमित किया जा सकता है।

(iii) शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21(क))

86वें संविधान संशोधन के द्वारा सन् 2002 में 6 से 14 वर्ष के बालकों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का अधिकार प्रदान किया गया।

(iv) बन्दीकरण की अवस्था में संरक्षण (अनुच्छेद 22)

अनुच्छेद 22 के अन्तर्गत बन्दी बनाये जाने वाले व्यक्ति को भी कुछ अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसके अनुसार बिना कारण बताये बन्दी बनाये जाने वाले व्यक्ति को अधिक समय तक बन्दीगृह में नहीं रखा जा सकता है। उसे वकील से परामर्श करने तथा अपने लिए बचाव करने का अधिकार होगा। बन्दी बनाये जाने के 24 घण्टे के अन्दर–अन्दर (इसमें न्यायालय तक जाने का समय शामिल होगा) उसे निकटतम न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। अनुच्छेद 22 के अन्तर्गत ही बन्दी बनाये गए व्यक्ति को जो अधिकार प्रदान किए गए हैं वे दो प्रकार के अभियुक्तों पर लागू नहीं होंगे– (1) शत्रु देश के निवासियों पर और, (2) निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत बन्दी बनाये गये अभियुक्त पर।

निवारक निरोध

अनुच्छेद 22 के खण्ड 4 में निवारक निरोध की चर्चा की गई है। यह चर्चा खण्ड 4 से 7 तक विस्तार से की गई है। यह भारतीय संविधान की सबसे अधिक विवादास्पद धाराओं में से है। यद्यपि संविधान में निवारक निरोध की कोई परिभाषा तय नहीं की गई है किन्तु यह कहा जा सकता है कि निवारक निरोध किसी अपराध के किये जाने से पहले तथा बिना किसी न्यायिक कार्यवाही के ही नजरबन्दी है।

निवारक निरोध सामान्यकाल और संकटकाल दोनों में लागू होता है। भारत के अतिरिक्त किसी अन्य प्रजातंत्र में यह व्यवस्था नहीं है। ब्रिटेन और अमेरिका में

युद्धकाल में निवारक निरोध की व्यवस्था को अपनाया जाता है। भारत में यह व्यवस्था दोनों समय के लिये है। निवारक के लिये अंग्रेजी भाषा के शब्द (Preventive) का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ होता है, 'रोकना'। अर्थात् निवारक निरोध का उद्देश्य दण्ड देने के उद्देश्य से गिरफ्तार करना है वरन् उसे अपराध करने से रोकना है अर्थात् निरुद्ध व्यक्ति को किसी निश्चित उद्देश्य को पूरा करने से रोकना है। इसमें निरुद्ध व्यक्ति पर कोई आरोप नहीं लगाया जाता है। यह कार्यवाही अपराध को रोकने के लिये की जाती है, इसमें केवल एक आधार पर व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है। अनुच्छेद 22 के (4 से 7) के अन्तर्गत निवारक निरोध के अन्तर्गत बन्दी बनाये गये व्यक्ति जो संरक्षण प्रदान किये गये हैं, वे निम्नलिखित हैं–

1. परामर्शदाता मण्डल द्वारा पुनरावलोकन,
2. बन्दी बनाये जाने का कारण जानने एवं अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अधिकार और
3. परामर्शदाता मण्डल की प्रक्रिया।

निवारक निरोध अधिनियम

अनुच्छेद 22 के भाग 4, 5 और 6 के अन्तर्गत निवारक निरोध का जो उल्लेख किया गया है उसी के आधार पर संसद द्वारा सन् 1950 में इस अधिनियम की समयावधि बढ़ाई गई और यह अधिनियम 31 दिसंबर, 1969 तक चला।

आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम, (1971)

इसे साधारण बोलचाल की भाषा में 'मीसा' भी कहते हैं। 7 मई, 1971 को राष्ट्रपति ने अध्यादेश के रूप में जारी किया तथा जून 1971 में इसने कानून का रूप ले लिया था। इसके प्रावधान निवारक निरोध अधिनियम से भी कठोर थे। मीसा (MISA) के अंतर्गत परामर्शदाता मण्डल के परामर्श के बिना निरुद्ध व्यक्ति को कम से कम 2 माह तक नजरबंद किया जा सकता था तथा अधिक से अधिक अवधि एक वर्ष थी। समय–समय पर राष्ट्रपति द्वारा जारी आदेशों से यह और अधिक कठोर होता गया। बाद में जनता पार्टी की सरकार ने इस कानून को समाप्त कर दिया था।

निवारक निरोध की वर्तमान स्थिति

1975 में देश में आपातकाल की घोषणा होने के साथ ही निवारक निरोध और मीसा को व्यापक विस्तार मिल गया था। जिस प्रकार इनका दुरुपयोग हुआ उससे यह मांग उठने लगी कि शान्तिकाल में निवारक निरोध को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। दिसम्बर, 1978 को इस संबंध में दिल्ली में राज्यों के मुख्यमंत्रियों की जो बैठक हुई उसमें सर्वसम्मति से यह विचार व्यक्त किया गया कि, ''राज्य सरकारों के द्वारा कानून और व्यवस्था बनाये रखने का कार्य निवारक निरोध कानून के अभाव में नहीं किया जा सकता।''

टिप्पणी

44वें संविधान संशोधन 1978 के द्वारा अनुच्छेद 22(4) में महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। अनुच्छेद 22 का खण्ड (4) (ब) यह उपबन्धित करता है कि निरोध किसी भी दशा में उस अधिकतम अवधि से अधिक नहीं हो सकता है जो संसद विधि द्वारा इस प्रकार के मामलों में निरुद्ध व्यक्तियों के वर्गों के लिए विहित करेगी। 44वें संशोधन द्वारा यह भी सुनिश्चित कर दिया गया है कि 'निवारक नजरबन्दी' संबंधी कानून किसी भी दशा में 2 महीने से अधिक की अवधि के लिए नजरबन्द रखने का अधिकार नहीं दे सकता जब तक कि एक परामर्शदाता मण्डल नजरबन्दी के पर्याप्त कारण बताते हुए उसकी स्वीकृति न दे दे। अनुच्छेद 22 (5) के अनुसार यह आवश्यक है कि निरुद्ध व्यक्ति को यथाशीघ्र बन्दी बनाये जाने के कारणों की जानकारी दी जानी चाहिए तथा यह अवसर दिया जाना चाहिए कि वह उन कारणों को न्यायालय में चुनौती दे सके। अनुच्छेद 22 (6) के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि जनहित के आधार पर निरोध के कारण बताने से इंकार किया जा सकता है।

III. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 और 24)

अनुच्छेद 23 में मानव का दुर्व्यापार और बेगार या इसी प्रकार के अन्य बलात किये जाने वाले श्रम को निषिद्ध ठहराता है। इस अनुच्छेद का उल्लंघन करना दण्डनीय अपराध है। इसके अनुसार न केवल 'बेगार' बल्कि जबरदस्ती किये जाने वाले कार्य वर्जित हैं क्योंकि ये मानव की गरिमा व प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाते हैं। अनुच्छेद 23 प्रत्येक, प्रकार के बलात श्रम को वर्जित ठहराता है। यह इन दोनों स्थितियों में कोई भेद नहीं करता कि बलात श्रम के लिए पारिश्रमिक दिया गया है या नहीं। यदि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा के विरुद्ध या दबाव में कार्य करता है, चाहे वह पारिश्रमिक पर कार्य कर रहा हो वह भी बलात श्रम की विधिक, सामाजिक कैसा भी हो सकता है।

अनुच्छेद 23 के अन्तर्गत 'मानव दुर्व्यापार' एक बहुत ही विस्तृत शब्दावली है। भारतवर्ष में दासप्रथा का इतिहास बहुत प्राचीन है। यह कई रूपों में विद्यमान रही है। हरिजन, खेतिहर, श्रमिक स्त्रियां इससे सबसे अधिक प्रभावित रहे हैं। अतः संविधान में शोषण के विभिन्न रूपों का समाज से उन्मूलन करने के उद्देश्य से मानवीय शोषण के इन रूपों को दण्डनीय घोषित कर दिया गया। 'मानव दुर्व्यापार' के अन्तर्गत मुख्य तौर पर न केवल मनुष्यों या स्त्रियों का वस्तुओं की भांति क्रय–विक्रय करना बल्कि स्त्रियों और बालकों के अनैतिक व्यापार का भी निषेध किया गया है, किसी भी ऐसे अन्य प्रयोजनों में उन्हें शामिल नहीं किया जा सकता है। इस अनुच्छेद में यद्यपि दास प्रथा का उल्लेख नहीं है किन्तु दास प्रथा मानव दुर्व्यापार का ही एक रूप है इसलिए इसके प्रावधान निश्चित रूप से उस पर लागू होंगे।

अनुच्छेद 23 का एक अपवाद भी है कि राज्य किसी सार्वजनिक उद्देश्य से अनिवार्य श्रम योजना लागू कर सकता है, ऐसा करते समय व राज्य के नागरिकों के धर्म, जाति, मूलवंश, जन्म स्थान, वर्ण या सामाजिक स्तर का भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद 24 के अन्तर्गत 14 वर्ष से कम की आयु वाले किसी भी बालक को कारखानों, खानों या अन्य जोखिम भरे कामों में संलग्न नहीं किया जा सकता है। यह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से बाल श्रम का निषेध करता है। यह प्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेद 45 से संबंध रखता है जिसमें 14 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का कर्तव्य है।

IV. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)

भारत एक ऐसा देश है जहां विभिन्नताएं लगभग हर क्षेत्र में व्याप्त हैं। यही स्थिति धर्म की भी है। भारतवर्ष में अनेक धर्मावलम्बियों, मत–मतांतरों को मानने वालों का निवास है। ऐसी स्थिति में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार गतिरोधों की स्थति उत्पन्न होने से बचाव करता है। धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का अपना विशेष महत्व है। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता संबंधी आदर्श स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता संबंधी चार आदर्श दृष्टिगत होते हैं–

1. राज्य न तो अपने आपको किसी धर्म से संबद्ध करेगा और न ही किसी धर्म विशेष के अधीन रहेगा।
2. राज्य किसी भी व्यक्ति को धर्म के संबंध में उन्मुक्ति प्रदान नहीं करेगा।
3. किसी भी व्यक्ति के साथ राज्य, धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा।
4. राज्य के अधीन पद प्राप्त करने के लिए सभी धर्मों के अनुयायी समान रूप से अर्ह होंगे।

अन्तःकरण की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)

अनुच्छेद 25 के अनुसार सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता तथा अपने विश्वास के अनुरूप किसी भी धर्म को अंगीकृत करने, उसका अनुसरण करने तथा उसका प्रचार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)

अनुच्छेद 26 सभी धर्मों के अनुयायियों को लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए निम्न अधिकार प्रदान करता है।

1. धार्मिक संस्थाओं तथा दान से स्थापित सार्वजनिक सेवा संस्थानों तथा दान से स्थापित सार्वजनिक सेवा संस्थानों की स्थापना तथा उनके पोषण का अधिकार।
2. धर्म संबंधी निजी मामलों में स्वयं प्रबंधन का अधिकार।
3. चल और अचल सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार।
4. उक्त सम्पत्ति का विधि के अनुसार संचालन करने का अधिकार।

धार्मिक व्यय के लिये निश्चित राशि पर कर आदायगी में छूट (अनुच्छेद 27)

अनुच्छेद 27 में उल्लिखित है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को ऐसे कर देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है जिसकी आय किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय की उन्नति या संचालन में खर्च करने के लिए विशेष रूप से निश्चित की गयी है।

राजकीय शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा निषिद्ध (अनुच्छेद 28)

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। यहां न तो कोई धर्म राज्य से सम्बद्ध है न ही राज्य किसी धर्म के अधीन है। अतः अनुच्छेद 28 में व्यवस्था की गई है कि–

1. राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
2. खण्ड (1) की यह व्यवस्था ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु वह किसी ऐसे न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसका उद्देश्य ही धार्मिक शिक्षा प्रदान करना है।
3. राज्य से मान्यता प्राप्त या सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में उपस्थित होने वाले किसी भी व्यक्ति को संस्था द्वारा प्रदान की जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने या उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जा सकता है जब तक कि वह स्वयं अपनी सहमति न दे दे और यदि वह अवयस्क है तो इसके संरक्षक सहमति न दे दे।

V. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 और 30)

भारत एक विविधताओं से भरा हुआ देश है यहां निम्न संस्कृतियों को मानने वाले रहते हैं अतः ऐसे अलपसंख्यक समूहों की सांस्कृतिक धरोहर को बचाये रखने के लिए अनुच्छेद 29 और 30 में भारत के सभी नागरिकों को संस्कृति और शिक्षा का अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 29–नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है। किसी राज्य द्वारा पोषित अथवा राजकीय संस्था में शिक्षा हेतु प्रवेश के संबंध में मूलवंश, जाति, धर्म, भाषा या किसी और आधार भेदभाव नहीं किया जायेगा।

शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार अल्पसंख्यकों को होगा (अनुच्छेद 30)– धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा उसके प्रशासन का अधिकार होगा। शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देने में राज्य इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा कि यह धर्म और भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के अधीन है।

VI. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

संविधान के अनुच्छेद 32 से 35 तक के अंतर्गत नागरिकों को संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार के द्वारा नागरिक अन्य मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने की स्थिति में उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय की शरण में जा सकता है। इन अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए संबंधित न्यायालय निम्न प्रकार के आदेश देने का अधिकारी है–

(i) प्रथम प्रकार का निदेशक बंदी प्रत्यक्षीकरण है जिसके अंतर्गत न्यायालय कैदी को सशरीर अपने सम्मुख उपस्थित करवाकर उसकी नजरबंदी के संबंध में निर्णय ले सकता है।

(ii) परमादेश के अंतर्गत न्यायालय किसी को यह आदेश दे सकता है कि वह अपना कार्य कानून के अनुसार करें।

(iii) प्रतिषेध लेख द्वारा न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाने से रोक सकता है।

(iv) उत्प्रेषण लेख के द्वारा निचले न्यायालय के रिकॉर्ड मंगाकर उच्च न्यायालय यह निश्चित कर सकता है कि निचला न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर तो नहीं गया।

(v) अधिकार पृच्छा लेख के द्वारा न्यायालय किसी भी व्यक्ति को अवैध रूप से अपने पद अथवा शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोक सकता है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार वास्तव में वह साधन है जिसके द्वारा नागरिक अपने अन्य मूल अधिकारों का उल्लंघन रोक सकता है तथा उन्हें क्रियान्वित करवा सकता है। इस संदर्भ में डॉ. अंबेडकर ने ठीक ही कहा है– ''यदि कोई मुझसे यह पूछे कि संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसके बिना संविधान महत्वहीन हो जाएगा तो इस अनुच्छेद को छोड़कर मैं किसी अन्य अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं कर सकता। यह तो संविधान का हृदय तथा आत्मा है।''

मूल अधिकारों पर प्रतिबंध की अवस्थाएं

संविधान में इन परिस्थितियों का भी स्पष्ट उल्लेख है जिनमें राष्ट्रहित में मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। ये अवस्थाएं निम्नलिखित हैं–

1. **प्रतिरक्षा सेना के सदस्यों के संबंध में (अनुच्छेद 33)**– अनुच्छेद 33 के अनुसार संसद को यह अधिकार है कि वह विधि बनाकर प्रतिरक्षा सेना के सदस्यों के मूल अधिकारों इस सीमा तक प्रतिबन्धित कर दे या समाप्त कर दे ताकि वह अपने कर्तव्यों का उचित प्रकार से पालन कर सके और उनमें अनुशासन बना रहे। अनुच्छेद 33 के प्रयोग से संसद ने अनेक अधिनियम पारित किये हैं जैसे– सेना अधिनियम 1950, वायु सेना अधिनियम 1950, नौ सेना अधिनियम 1950।

2. **जब मार्शल लॉ लागू हो (अनुच्छेद 34)**– अनुच्छेद 34 में यह व्यवस्था की गई है कि संसद विधि द्वारा मार्शल लॉ (सैनिक विधि) के दौरान मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। सैनिक विधि के दौरान साधारण न्यायालय कार्य करने लगते हैं। इसलिए साधरण विधिक कार्य का कहीं कोई स्थान नहीं बचता है। संसद क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित करके इस दौरान अधिकारियों द्वारा किये गये कार्यों के दायित्वों से उन्हें विमुक्ति प्रदान कर सकती है।

3. **संविधान में संशोधन द्वारा (अनुच्छेद 368)**– अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन के द्वारा संसद मौलिक अधिकारों का निलम्ब कर सकती है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत पारित विधि अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त 'विधि' शब्द के अन्तर्गत आते हैं और यदि वे भाग 3 में दिये गये मूल अधिकारों के उपबन्धों से असंगत हैं तो असंवैधानिक घोषित किये जा सकते हैं। 24वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 ने इस निर्णय के प्रभाव को समाप्त कर दिया। 24वें संशोधन का उद्देश्य संसद की मूल अधिकारों में संशोधन की शक्ति को पुनः स्थापित करना था। उपखण्ड 4 उपबन्धित करता है कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत किये गये संवैधानिक संशोधन अनुच्छेद 13 के 'विधि' शब्द के अन्तर्गत नहीं आएंगे। उच्चतम न्यायालय ने 24 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम को संवैधानिक घोषत कर दिया परन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया कि संसद संविधान संशोधन की शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं कर सकती है कि संविधान का मूल ढांचा ही क्षतिग्रस्त हो जाये।

4. **आपातकालीन घोषणा के समय में (अनुच्छेद 352)**– अनुच्छेद 352 के अनुसार आपातकालीन स्थितियों में मूल अधिकारों के निलम्बन की व्यवस्था है। आपातकाल की घोषणा के दौरान राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया है कि वह मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए न्यायालयों की शरण में जाने के अधिकार को निलम्बित कर सकता है। 1962 में चीन के आक्रमण के अवसर पर, 1971 के पाकिस्तान के आक्रमण के अवसर पर तथा 1975 में आन्तरिक आपात स्थिति के समय में राष्ट्रपति ने आपातकाल की घोषणा की थी।

   संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 के द्वारा अब यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अनुच्छेद 19(क) में प्रदत्त अधिकारों को केवल देश पर 'बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह' के कारण देश की सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न होने की दशा में ही निलम्बित किया जा सकता है, 'आन्तरिक अशान्ति' के आधार पर नहीं। दूसरे, अनुच्छेद 358 केवल उन कानूनों को संरक्षण प्रदान करेगा जो आपात स्थिति में संबंधित है, अन्य कानूनों को आपातकाल के दौरान भी न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती है। इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 359 में संशोधन करके यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति को अब अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को निलम्बित करने की शक्ति नहीं होगी।

मूल अधिकारों का मूल्यांकन

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का यथोचित वर्णन किया गया है फिर भी यह अधिकार आलोचना से नहीं बच पाये हैं। मूल अधिकारों की आलोचना निम्नलिखित तीन आधारों पर की जाती है–

1. **प्रथम**– मूल अधिकारों की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि कुछ ऐसी बातों को छोड़ दिया गया है जिन्हें मूल अधिकारों की भांति घोषित किया जाना चाहिए था। इस श्रेणी में काम पाने का अधिकार राज्य से सहायता प्राप्त करने का अधिकार, विश्राम और अवकाश का अधिकार, सुरक्षा पाने का अधिकार इत्यादि।

   आलोचना– इस प्रकार की आलोचना करने वाले व्यक्ति विशेष यह ध्यान नहीं रख पाते हैं कि देश में विद्यमान संसाधनों के आधार पर ही मूल अधिकार प्रदान किये जा सकते हैं।

2. **द्वितीय**– कुछ आलोचकों का मानना है कि भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के साथ इतने अपाद और प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि यह समझना कठिन हो जाता है कि व्यक्ति को मूल अधिकारों के नाम पर मिला क्या है? आलोचकों का मानना है कि संविधान एक हाथ से कुछ देता है तो दूसरे हाथ से उन्हें ले लेता है।

   आलोचना– इस श्रेणी के आलोचकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि असीमित स्वतंत्रता या अधिकार प्रदान करना न तो सम्भव है और न श्रेयस्कर हैं। मूल अधिकार तभी फलीभूत होंगे जबकि वह औचित्यपूर्ण होंगे। इसके लिए उन पर प्रतिबन्ध होने आवश्यक हैं।

3. **तृतीय**– भारतीय संविधान में संकटकालीन परिस्थितियों में राष्ट्रपति मूल अधिकारों के स्थगन की घोषणा सकता है तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को सीमित कर देती है।

   आलोचना– राष्ट्र की सुरक्षा व्यक्ति को समझना अत्यावश्यक है कि राष्ट्र की सुरक्षा व्यक्ति की स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्र की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति के अधिकारों को सीमित करना नागरिकों के हितों के लिए ही है क्योंकि यह व्यवस्था अल्पकालिक होती है। व्यक्ति की स्वयं की निष्ठा भी उसे राष्ट्रहित के लिए अपनी स्वतंत्रता के स्थगन की प्रेरणा दे, यही नागरिकों का कर्तव्य होना चाहिए।

मौलिक कर्तव्य

1950 में लागू किए गए संविधान में केवल मौलिक अधिकारों का वर्णन था। लेकिन 1976 में यह महसूस किया गया कि नागरिकों के लिए मूल कर्तव्यों का भी उल्लेख होना चाहिए। अतः संविधान में 42वें संशोधन के माध्यम से संविधान के चतुर्थ भाग 'अ' जोड़ा गया एवं 10 मूल या मौलिक कर्तव्यों की व्यवस्था की गई जो इस प्रकार है–

टिप्पणी

1. भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह संविधान का पालन करे और आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज एवं राष्ट्रगान का आदर करे।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे बनाए रखे।
4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्रसेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में एकरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का विकास करे, जो धर्म, भाषा, प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो और ऐसी प्रथाओं का त्याग करे, जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो।
6. हमारी समन्वित संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका संरक्षण करे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव भी हैं, रक्षा करे, उनका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे व हिंसा से दूर रहें।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नवीन ऊंचाइयों को छू सके।

संविधान में दिए गए नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का महत्व

मूलरूप से भारतीय संविधान में केवल मूल अधिकारों का ही समावेश किया गया है लेकिन संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा संविधान में एक नई धारा 51 (एफ) का समावेश किया गया है जिसके अंतर्गत नागरिकों के कुछ मौलिक कर्तव्य भी निर्धारित किए गए हैं। इन कर्तव्यों की संख्या दस है और इनके महत्व की विवेचना हम नीचे पृथक–पृथक रूप से करेंगे।

1. **संविधान का सम्मान तथा पालन**– प्रथम मौलिक कर्तव्य के अंतर्गत नागरिकों से यह आशा की जाती है कि वे संविधान का पालन करेंगे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करेंगे। संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक नागरिक उसका पालन करे तथा उसके प्रति आदर की भावना रखे। संविधान की उपेक्षा करने का अर्थ होगा भारत के प्रजातंत्रीय आधार को ही चोट पहुंचाना। इसके साथ ही नागरिकों से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह संविधान के आदर्शों यथा लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता आदि और संविधान द्वारा स्थापित संस्थाओं जैसे संसद, उच्चतम न्यायालय आदि के प्रति भी आदर की भावना

टिप्पणी

रखे। राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करना तो सभी देशों की एक मान्य परंपरा है और भारत इसका अपवाद नहीं हो सकता।

2. **भारत की संप्रभुता की रक्षा**– भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करना तथा उसे अक्षुण्ण बनाए रखना नागरिकों का दूसरा मौलिक कर्तव्य है। तात्पर्य यह है कि नागरिक स्वयं कोई ऐसा कार्य न करे जिससे भारत की स्वतंत्रता को किसी प्रकार का आघात पहुंचे और यदि भारत की स्वतंत्रता को कोई खतरा उत्पन्न होता है तो वह उसकी रक्षा के लिए प्रत्येक प्रकार का त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार रहे।

3. **राष्ट्र की रक्षा**– देश की रक्षा करना तथा आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करना संविधान ने नागरिकों का तीसरा मौलिक कर्तव्य माना है। यह उचित भी है क्योंकि यदि देश ही सुरक्षित नहीं रहेगा तो नागरिक भी सुरक्षित नहीं रह सकता। देश यदि खतरे में पड़े तो प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह तन–मन और धन से अपने सभी मतभेदों को भुलाकर देश की रक्षा के लिए आगे आए।

4. **स्वतंत्रता आंदोलन के आदर्शों को स्वीकार करना**– संविधान द्वारा निर्धारित नागरिकों के चौथे मौलिक कर्तव्य के अंतर्गत नागरिक अपने स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोये रखे और उनका पालन करे। राष्ट्रीय आंदोलन के हमारे आदर्श थे–स्वतंत्रता की आकांक्षा, समानता की भावना, भ्रातृत्व और धार्मिक सहिष्णुता आदि। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज भी राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए इसी प्रकार के आदर्शों की आवश्यकता है।

5. **भ्रातृत्व का विकास**– संविधान का पांचवां मौलिक कर्तव्य नागारिकों से यह आशा करता है कि वह सभी व्यक्तियों के मध्य अनुरूपता का विकास करे तथा पारस्परिक भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न करे। न्याय और स्वतंत्रता के आदर्शों के साथ भ्रातृत्व को भी सम्मिलित करने से प्रजातंत्रीय व्यवस्था को शक्ति प्राप्त होगी।

6. **मिश्रित सांस्कृतिक परंपरा की रक्षा**– भारत की सामाजिक संस्कृति, मिश्रित संस्कृति पर आधारित है। न्याय, स्वतंत्रता, बन्धुत्व की भावना और धार्मिक सहिष्णुता आदि भारत की इस मिश्रित संस्कृति का आधार है। संविधान का छठा मौलिक कर्तव्य नागरिकों से यह आशा करता है कि वह अपनी मिश्रित सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझेंगे और उसको बनाए रखेंगे।

7. **पर्यावरण की रक्षा**– वैज्ञानिक सभ्यता की अनियंत्रित प्रगति ने आज पर्यावरण की रक्षा की समस्या प्रत्येक देश के सामने खड़ी कर दी है। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि संविधान ने सातवें कर्तव्य के अंतर्गत नागरिकों को यह निर्देश दिया है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें और उसके

टिप्पणी

संवर्द्धन में सहयोग प्रदान करें। इसके बिना एक स्वस्थ तथा आर्थिक रूप से सशक्त राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है।

8. **सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा**– सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य होता है और इसीलिए संविधान में इसे आठवें कर्तव्य के रूप में सम्मिलित किया गया है। सार्वजनिक हिंसा सार्वजनिक सम्पत्ति की सबसे बड़ी शत्रु है और इसलिए यह कर्तव्य नागरिकों को हिंसा से विरत रहने का भी निर्देश देता है।

9. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास**– भारत की त्रासदी यह है कि यहां वैज्ञानिक विकास तो हो रहा है पर लोगों का दृष्टिकोण अभी भी रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास से भरा हुआ है। इसीलिए संविधान का नौवां मौलिक अधिकार नागरिकों से यह अपेक्षा करता है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करेंगे। बिना वैज्ञानिक दृष्टिकोण के भारत की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है।

10. **व्यक्तिगत तथा सामूहिक क्षेत्रों में श्रेष्ठता की प्राप्ति**– राष्ट्र की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें रहने वाले व्यक्ति किस प्रकार के हैं। व्यक्तियों से ही राष्ट्र का निर्माण होता है इसीलिए संविधान ने दसवें मौलिक कर्तव्य के अंतर्गत नागरिकों को यह निर्देश दिया है कि वह व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही क्षेत्रों में श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

संविधान में सम्मिलित किए गए मौलिक कर्तव्यों में अनेक कमियां स्पष्टतः प्रतीत होती हैं। प्रथम, मौलिक कर्तव्य इतने अस्पष्ट हैं कि साधारण नागरिक द्वारा उनका पालन करना तो दूर की बात है, उसके लिए तो उन्हें समझ पाना भी कठिन है, उदाहरणस्वरूप– स्वतंत्रता संग्राम के हमारे क्या आदर्श थे? या हमारी मिश्रित संस्कृति की क्या परंपराएं हैं? इन्हें संविधान ने स्पष्ट नहीं किया है। द्वितीय, मौलिक कर्तव्यों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इन्हें संविधान के चतुर्थ भाग में लिपिबद्ध किया गया है और इन्हें मूल अधिकारों की भांति न्यायपालिका से लागू नहीं करवाया जा सकता। परिणामस्वरूप इनका नैतिक महत्व भले ही हो पर यदि नागरिक इनका पालन नहीं करते तो राज्य उनके विरुद्ध कुछ भी करने में असमर्थ है। तृतीय, मौलिक कर्तव्यों में व्यावहारिकता का प्रभाव है और परिणामस्वरूप यह आवश्यकता से अधिक आदर्शवादी हो गए हैं। आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हुए राष्ट्र के नागरिकों से इतने उच्च आदर्शों का अनुसरण करने की आशा करना निरर्थक है। अतः यह आवश्यक है कि मौलिक कर्तव्यों को उपयोगी बनाने के लिए इन्हें सरल बनाया जाए और इन्हें न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत रखा जाए।

3.3.3 राज्य के नीति निदेशक तत्व

संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक नीति–निदेशक तत्वों का उल्लेख मिलता है। राज्य की नीति के निदेशक तत्व देश की विभिन्न सरकारों और सरकारी अभिकरणों के नाम जारी किये गये वे निर्देश हैं जो देश की शासन व्यवस्था के मूलतत्व

हैं। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि नीति–निदेशक तत्व कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को दिये गये ऐसे निर्देश हैं जिनके अनुसार उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि इन सिद्धांतों का उचित रूप से पूरी तरह पालन होता रहे। ये सिद्धांत संविधान के उच्च आदर्शों की घोषणाएं हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों का उद्देश्य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है।'' प्रो. पायली के अनुसार, ''निदेशक तत्व भारतीय प्रशासकों के आचरण के सिद्धांत है।'' जी.एन. जोशी के शब्दों में, ''इन निदेशक तत्वों का विधानमण्डलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन तत्वों को लागू करते समय ध्यान रखना चाहिये। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं जिसका अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।''

इन तत्वों का उल्लेख सर्वप्रथम आयरलैण्ड के संविधान में किया गया था, आयरलैण्ड के संविधान की भांति हमारे संविधान में भी यह स्पष्ट व्यवस्था है कि इन सिद्धांतों का प्रवर्तन न्यायालय के माध्यम से नहीं कराया जा सकता है। इन सिद्धांतों की प्रकृति ही ऐसी है कि इन्हें विधानमण्डल की इच्छा पर छोड़ना पड़ता है। इन सिद्धांतों की प्रकृति के संबंध में अनुच्छेद 37 स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संविधान के भाग 4 में दिए गए उपलब्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होंगे, किंतु इनमें दिए गए तत्व देश के शासन में मूलभूत है और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा। ये निदेशक सिद्धांत अपनी रूपरेखा में बहुत लचीले हैं तथा इन्हें देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ढाला जा सकता है। ये सिद्धांत कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के लिए निर्देश हैं कि उन्हें किस प्रकार से शासन का संचालन करना है। इन निदेशक सिद्धांतों का उद्देश्य लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। ये सिद्धांत भारत में आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की रचना करने में सहायक हैं। संविधान की प्रस्तावना में जिन उद्देश्यों और आदर्शों की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है ये सिद्धांत उनकी प्राप्ति के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करते हैं। एक दूसरा महत्वपूर्ण दृष्टिकोण यह है कि ये सिद्धांत नागरिकों के प्रति राज्य के दायित्व का बोध कराते हैं।

नीति–निदेशक सिद्धांतों और मूल अधिकारों में अंतर

राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों और मूल अधिकारों में नितांत भिन्नता पाई जाती है। ग्लेडहिल के अनुसार, ''मूल अधिकार राज्य के लिए कुछ निषेध आज्ञाएं हैं। इनके द्वारा राज्य को आदेश दिया जाता है कि उसे नागरिकों के इन अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत यह बताते हैं कि राज्य को क्या करना चाहिए।'' इन दोनों के अंतर इस प्रकार हैं–

1. मूल अधिकारों की प्रकृति नकारात्मक है क्योंकि ये राज्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाते हैं जबकि निदेशक सिद्धांतों की प्रकृति सकारात्मक है क्योंकि ये राज्य का अर्थ प्रदर्शन करते हैं।

टिप्पणी

2. मूल अधिकार वादयोग्य हैं और इन्हें न्यायालय द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है जबकि निदेशक सिद्धांत वादयोग्य नहीं है।
3. मूल अधिकारों का विषय व्यक्ति है जबकि निदेशक सिद्धांतों का विषय राज्य है।
4. मूल अधिकार नागरिकों को संविधान द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रदत्त किये जाते हैं जबकि निदेशक सिद्धांतों से नागरिक तभी लाभान्वित हो सकता है जब राज्य उन्हें लागू करे।
5. मूल अधिकार सार्वभौम नहीं हैं, इनकी कुछ सीमाएं हैं जबकि निदेशक सिद्धांतों पर न तो कोई प्रतिबन्ध है और न इनकी सीमाएं हैं।
6. मूल अधिकारों का क्षेत्र भारत की सीमाओं तक सीमित है जबकि निदेशक सिद्धांत अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के सन्देश को भी अपने में समाहित किये हुए हैं। अतः ये अधिक व्यापक हैं।

राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों का वर्गीकरण

राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों में विभिन्न क्षेत्रों में राज्य के कार्य–क्षेत्र पर विचार किया गया है जैसे– आर्थिक, सामाजिक, वैधानिक, शिक्षा संबंधी तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र। इनको अध्ययन की दृष्टि से हम तीन विभिन्न भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. लोककल्याणकारी तथा समाजवादी राज्य की स्थापना करने वाले सिद्धांत

भारतीय संविधान के निर्माता भारत को एक लोककल्याणकारी राष्ट्र बनाना चाहते थे, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए निदेशक सिद्धांतों द्वारा आर्थिक और सामाजिक न्याय के संबंध में व्यवस्था की गई। इसका सार तत्व अनुच्छेद 38 में दिया गया है। राज्य ऐसी व्यवस्था करे जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, पूरे–पूरे सार्थक प्रयासों से लोककल्याणकारी व उन्नति के मार्ग प्रशस्त करे।

2. गांधीवादी विचारधारा से संबंधित सिद्धांत

इस प्रकार नीति–निदेशक सिद्धांतों में कहा गया है कि गांधी जी सामाजिक उत्तरदायी की शिक्षा प्रदान करते हैं। इस विचारधारा का प्रभाव निदेशक सिद्धांतों पर व्यापक रूप से देखने के लिए मिलता है। अनुच्छेद 40, 43, 46, 47, 50, 44 महात्मा गांधी की विचारधारा से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

3. अन्तर्राष्ट्रीयता की विचारधारा पर आधारित सिद्धांत

संविधान के 51वें अनुच्छेद के अनुसार राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा तथा झगड़ों का निपटान पंच फैसलों के अनुसार करेगा।

नए नीति–निदेशक सिद्धांत

42वें संविधान संशोधन द्वारा कुछ नए निदेशक सिद्धांत संविधान में जोड़े गए हैं। अनुच्छेद 39 की की धारा (एफ) को बदल दिया गया है तथा एक नई धारा (ए) को

टिप्पणी

जोड़ दिया गया है। अनुच्छेद 43 में एक नई धारा (बी) तथा 48 में भी एक नई धारा (बी) जोड़ दी गई है। इस प्रकार समय–समय पर कुछ नए निदेशक सिद्धांत अस्तित्व में आते रहते हैं।

राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांत (अनुच्छेद 36 से 51)

अनुच्छेद 36 में 'राज्य' की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार 'राज्य' के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्य में से प्रत्येक की सरकार और विधानमंडल तथा भारत राज्य के भीतर अथवा भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी भी हैं।

अनुच्छेद 37 के अनुसार निदेशक सिद्धांत न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होने पर भी देश के शासन में मूलभूत हैं।

अनुच्छेद 38 में यह व्यवस्था है कि लोककल्याण की उन्नति के लिए इसमें एक नया खण्ड (2) जोड़कर इसमें एक नया निदेशक सिद्धांत जोड़ा गया है जो यह उपबंधित करता है कि राज्य प्रयास करेगा कि विशेष रूप से व्यक्तियों की आय में असमानता कम हो। पद सुविधाओं और अवसरों के संबंध में केवल व्यक्तियों में नहीं वरन् विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले या विभिन्न व्यापार में लगे सभी वर्गों के लोगों में असमानता दूर हो।

अनुच्छेद 39 में वर्णित निदेशक सिद्धांत जो राज्य द्वारा अनुसरणीय है–

1. समान रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो,
2. समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार विभाजित हो ताकि सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से हित साधन हो,
3. आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत धन और उत्पादन के साधनों का सर्व–साधारण के लिए अहितकारी केंद्रीयकरण न हो,
4. पुरुषों और स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन हो,
5. श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति, बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा आर्थिक आवश्यकताओं से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो,
6. बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं तथा शैशव और किशोर अवस्था का शोषण से, नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो।

अनुच्छेद 39 (क) : समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता

राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तन्त्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि

टिप्पणी

आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद 40 : ग्राम पंचायतों का संगठन

राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हैं।

अनुच्छेद 41 : कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार

राज्य अपने संसाधनों, आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंगहीनता तथा अन्य अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का कार्य साधक उपलब्ध करेगा।

अनुच्छेद 42 : काम की न्याय तथा मानवोचित दशाओं का उपबंध

राज्य काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति सहायता के लिए उपलब्ध करेगा।

अनुच्छेद 43 : श्रमिकों के लिए निर्वाह मजदूरी कार्य

आर्थिक संगठन द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से राज्य कृषि, उद्योग या अन्य प्रकार के सब श्रमिकों को काम, निर्वाह–मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर तथा अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा तथा विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 43 (क) : उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना

राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करेगा तथा उपुयक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा।

अनुच्छेद 44 : नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार संहिता

भारत में समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए राज्य एक समान व्यवहार संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 45 : बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य

राज्य इस संविधान के अंतर्गत प्रारंभ से कक्षा 8 तक सभी बच्चों को आयु छह से लेकर चौदह वर्ष की समाप्ति तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने या उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा।

टिप्पणी

अनुच्छेद 46 : अनुसूचित जातियों, आदिम जातियों तथा अन्य दुर्लभ विभागों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की उन्नति

राज्य जनता के दुर्बलता वर्गों के विशेषतया अनुसूचित जातियों, जन–जातियों की शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति कर सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।

अनुच्छेद 47 : आहार–पुष्टि तल और जीवन–स्तर को ऊंचा करने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करना राज्य का कर्तव्य है

राज्य अपने लोगों के आहार पुष्टि तल और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में से मानेगा तथा विशेषतया मादक पेय पदार्थों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के औषधीय प्रयोजनों के अतिरिक्त उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 48 : कृषि और पशुपालन का संघटन

राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संघटित कर गायों, बछड़ों, अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्ल के परिरक्षण और सुधार के लिए, उनके वध के प्रतिषेध का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 48 (क) : पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा

राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 49 : राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण

संसद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक, स्थान या वस्तु का यथास्थिति, लुंठन, विरुपण, विनाश, व्यनयन या निर्यात से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य होगा।

अनुच्छेद 50 : कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण

राज्य लोकसेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए राज्य सरकार होगा।

अनुच्छेद 51 : अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति

इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य–

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का,
2. राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने,
3. संगठित बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का एवं
4. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।

टिप्पणी

नीति–निदेशक सिद्धांतों की आलोचना

नीति–निदेशक तत्व हमेशा से आलोचना के पात्र रहे हैं। संविधान निर्माण के समय भी और संविधान के लागू होने के बाद भी समय–समय पर इनकी आलोचना होती रही है। निदेशक सिद्धांतों की आलोचना निम्न आधारों पर की जा सकती है–

1. **वैधानिक शक्ति का अभाव**– राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांत शासन के लिए मूलभूत हैं। नीतियों का निर्माण करते समय शासन इन निदेशक सिद्धांतों की अनदेखी नहीं कर सकता है किंतु ये वैधानिक रूप से अशक्त है, ये न्याय योग्य नहीं हैं। इन्हें न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है। अतः आलोचक इन्हें 'शुभ इच्छाएं', 'नैतिक उपदेश' जैसे सम्बन्धों से सम्बोधित करते हैं। के.टी. शाह के अनुसार, ''यह एक ऐसा चैक है जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।"
2. **अस्पष्ट तथा तार्किकता का अभाव**– नीति–निदेशक सिद्धांतों की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है, कि न तो ये किसी निश्चित और तर्कसंगत दर्शन पर आधारित हैं और न ही इनमें क्रमबद्धता है, इनमें कमोबेश एक बात को बार–बार दोहराया जाता है तथा प्रत्येक अवधारणा को एक–दूसरे के साथ मिलाकर व्यक्त किया जाता है।
3. **एक सम्प्रभु राज्य की अवधारणा के विपरीत**– नीति के निदेशक सिद्धांत राज्य को आदेश है कि नीतियों के निर्माण के समय इनका पालन किया जाए। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में यह स्वाभाविक था कि गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुसार के आदेश के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता था परंतु एक प्रभुत्व संपन्न राज्य में नियम निर्माण के लिए आदेश की आवश्यकता पड़े यह औचित्यपूर्ण नहीं है।
4. **अव्यावहारिक एवं अनुचित**– कुछ निदेशक सिद्धान्त आर्थिक व्यवस्था और राजस्व की दृष्टि से नितांत अव्यावहारिक और अनुचित प्रतीत होते हैं। जैसे– मद्यनिषेध के संबंध में जो नीति–निदेशक सिद्धांत हैं उनकी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के समर्थकों द्वारा भारी आलोचना की जाती है क्योंकि यदि इसका पालन किया जायेगा तो राजकोष का भारी नुकसान होगा।
5. **संवैधानिक द्वन्द्व के कारण**– संवैधानिक विधिवेत्ताओं तथा संविधान सभा में भी यह आशंका व्यक्त की गई थी कि यह निदेशक सिद्धान्त राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तथा राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच गतिरोध उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार की स्थितियों से संसदात्मक प्रजातंत्र की गरिमा तथा कार्य प्रणाली को गंभीर आघात पहुंच सकता है।

राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों का महत्व

नीति–निदेशक सिद्धान्तों की उपर्युक्त आलोचना से यह बिल्कुल नहीं समझना चाहिए कि यह महत्वहीन हैं। यदि हम इन निदेशक तत्वों को संवैधानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखें तो ज्ञात होता है कि यह बहुत महत्व रखते हैं। डॉ. पायली के

टिप्पणी

अनुसार, ''इन निदेशक तत्वों का महत्व इस बात में है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के सकारात्मक दायित्व है।'' इन तत्वों के महत्व को हम अग्रलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

1. **नीति–निदेशक सिद्धांत असंगत तथा अतार्किक नहीं**– नीति–निदेशक सिद्धांतों पर यह आक्षेप बिल्कुल गलत है कि ये असंगत और अतार्किक हैं। इनके उद्‌गम का स्रोत भले ही विदेशी हो लेकिन ये सिद्धांत पूर्ण रूप से भारतीय हैं। यह सही है कि समय बीतने के साथ ये सिद्धांत पुराने और अप्रासंगिक हो सकते हैं किन्तु आवश्यकतानुसार संशोधन करके हम इन्हें अपनी आवश्यकतानुसार ढाल सकते हैं।
2. **नीति–निदेशक सिद्धांतों के पीछे जनमत की शक्ति**– इन सिद्धांतों को न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है लेकिन इनके पीछे जनमत की शक्ति निहित होती है। जनता के प्रति उत्तरदायी कोई भी सरकार आसानी से इनकी अवहेलना करने का साहस नहीं कर सकती है। भारत में संसद तथा कार्यपालिका दोनों ही निर्वाचित प्रतिनिधियों से बनती है अतः लम्बे समय तक इन निदेशक तत्वों की अपेक्षा निर्वाचकों और व्यवस्थापिका में विपक्ष का सरकार का विरोधी बना सकती है। श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि, ''कोई भी लोकप्रिय मंत्रिमण्डल संविधान के चतुर्थ भाग के उपबंधों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता है।''
3. **नैतिक आदर्शों के रूप में महत्व**– इन निदेशक सिद्धांतों को यदि नैतिक धारणाएं ही मान लिया जाता है तब भी इनका अत्यधिक महत्व है। जिस रूप में ये सिद्धांत भारतीय शासन और नीति निर्धारण को प्रभावित करते हैं तथा सरकार इनका उच्च आदर्श के रूप में अनुसरण करती है। इनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।
4. **संविधान की व्याख्या में सहायक**– शासन के मूलभूत आधार पर तथा मार्गदर्शक के रूप में इन सिद्धांतों का अत्यधिक महत्व है। इन सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान में सभी उत्तरदायी संस्थाओं के लिए निर्देशों की व्यवस्था इन सिद्धांतों के माध्यम से बहुत स्पष्ट रूप से की गई है।
5. **कार्यपालिका को निरंकुश होने से रोकते हैं**– यद्यपि संविधान विधि वेत्ताओं ने यह आशंका व्यक्त की थी कि यह सरकार के अंगों में गतिरोध उत्पन्न कर सकते हैं लेकिन इन सिद्धांतों की प्रकृति ऐसी है कि ये शासन के मार्गदर्शक के रूप में एक सीमा तय कर देते हैं। इस सीमा का उल्लंघन कर पाने में हर सरकार अपने आपको अक्षम पाती है। साथ ही भारत में प्रधान पद पर आसीन व्यक्ति नाममात्र की कार्यपालिका का द्योतक होता है अतः निरंकुश होने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

टिप्पणी

नीति–निदेशक सिद्धांतों का क्रियान्वयन

नीति–निदेशक सिद्धांतों के पीछे वैधानिक शक्ति का अभाव रहा है अतः इन्हें मूल अधिकारों के समकक्ष नहीं माना जाता है, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान के लागू होने के बाद राज्य ने इन सिद्धांतों के दिशा निर्देशों के अनुसार कार्य करना प्रारंभ कर दिया है। जो महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं उन्हें हम इस प्रकार समझ सकते हैं–

1. पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कृषि, उद्योगों, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार, नौकरियों व कार्य के साधनों में वृद्धि, राष्ट्रीय आय व लोगों के रहन–सहन के स्तर को ऊंचा उठाने के प्रयास किए गए।
2. युवा व बालक वर्ग की शोषण से रक्षा करने के लिए अनेक कानून पास किए गए, बीमारी व दुर्घटना के विरुद्ध सुरक्षा के लिए कुछ कानून पास किए गए, बीमारी व दुर्घटना के विरुद्ध सुरक्षा के लिए मजदूर वर्ग में बीमा योजना लागू की गई व बेरोजगारी बीमा योजना को लागू करने और रोजगार के अवसर बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं।
3. हिन्दू कोड बिल के कई अंशों जैसे– हिंदू विवाह अधिनियम, 1955; हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम; 1956 को पारित करके समान संहिता विधि के क्षेत्र में प्रयास किए गए।
4. अस्पृश्यता निवारण के लिए अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ी जातियों के बालकों के लिए छात्रवृत्तियों व अन्य शैक्षिक सुविधाओं का प्रसार किया गया।
5. निशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा तथा सबके लिए सेवा के लिए भी शासन के कदम आगे बढ़ रहे हैं।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ और महत्वपूर्ण कार्य शासन द्वारा किये गए हैं जैसे– बैंकों का राष्ट्रीयकरण, सम्पत्ति के अधिकार को कानूनी बनाना, स्त्री पुरुष के समान वेतन संबंधी सीमाकरण कानून का पारित होना आदि। भारतवर्ष की जनसंख्या और आकार के अनुपात में उपर्युक्त आंकड़े संतोषजनक नहीं हैं परंतु कार्य हो रहे हैं।

3.3.4 भाषा नीति संबंधित अनुसूची

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत गणराज्य की आधिकारिक भाषाओं को सूचीबद्ध किया गया है। उस समय जब संविधान लागू किया गया था, इस सूची में शामिल होने का मतलब था कि भाषा राजभाषा आयोग में प्रतिनिधित्व की हकदार थी, और यह कि भाषा उन आधारों में से एक होगी जो हिंदी और अंग्रेजी को समृद्ध करने के लिए तैयार की जाएगी जैसे– संघ की आधिकारिक भाषाएं। हालांकि, इस सूची ने और अधिक महत्व प्राप्त कर लिया है। भारत सरकार अब इन भाषाओं के विकास के लिए उपाय करने के लिए बाध्य है, जैसे कि "वे समृद्धि में तेजी से बढ़ते हैं और आधुनिक ज्ञान को संप्रेषित करने के प्रभावी साधन बन जाते हैं।" इसके अलावा, एक परीक्षा में शामिल होने वाले उम्मीदवार सार्वजनिक सेवा के लिए इनमें से किसी भी भाषा को माध्यम के रूप में उपयोग करने का हकदार है जिसमें वह पेपर का उत्तर देता है।

टिप्पणी

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची और उससे संबंधित तथ्य

अनुच्छेद 344 समिति और राजभाषा पर संसद का आयोग।

अनुच्छेद 344 (1) संविधान के प्रारंभ से 5 वर्ष की समाप्ति पर और उसके बाद ऐसे प्रारंभ से 10 वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति द्वारा एक आयोग की स्थापना।

इसमें भारत सरकार के आधिकारिक उद्देश्यों के लिए हिंदी के गतिशील उपयोग के लिए राष्ट्रपति को सिफारिशें करने के लिए 8वीं अनुसूची में निर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला एक अध्यक्ष और अन्य सदस्य शामिल होने चाहिए।

अनुच्छेद 351 संघ का कर्तव्य है कि वह हिंदी भाषा के प्रसार को प्रोत्साहित करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी घटकों के लिए संचार के माध्यम के रूप में काम कर सके और अपनी प्रतिभा के साथ हस्तक्षेप किए बिना एकीकृत करके इसकी वृद्धि की रक्षा कर सके। 8वीं अनुसूची में निर्दिष्ट हिंदुस्तानी और भारत की अन्य भाषाओं में इस्तेमाल की जाने वाली शैली और अभिव्यक्ति, और इसकी शब्दावली के लिए, मुख्य रूप से, संस्कृत पर और दूसरी भाषाओं में, कहीं भी आवश्यक या आवश्यक ड्राइंग द्वारा।

भारतीय राज्यों में बोली जाने वाली भाषा

क्रम संख्या	भाषा	भारतीय राज्यों में बोली जाने वाली भाषा	मान्यता वर्ष
1	असमिया	असम	1950
2	बंगाली	पश्चिम बंगाल	1950
3	गुजराती	गुजरात	1950
4	हिंदी	उत्तर भारत	1950
5	कश्मीरी	जम्मू और कश्मीर	1950
6	कन्नड़	कर्नाटक	1950
7	मलयालम	केरल	1950
8	मराठी	महाराष्ट्र	1950
9	उड़िया	उड़ीसा	1950
10	पंजाबी	पंजाब	1950
11	संस्कृत	कर्नाटक (शिवमोग्गा जिला)	1950
12	तमिलनाडु	तमिलनाडु	1950
13	तेलुगु	आंध्र प्रदेश, तेलंगाना	1950

14	उर्दू	जम्मू और कश्मीर, तेलंगाना और उत्तर प्रदेश	1950
15	सिंधी	राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश	1967
16	कोंकणी	गोवा	1992
17	मणिपुरी	मणिपुर	1992
18	नेपाली	सिक्किम, असम, अरुणाचल प्रदेश	1992
19	बोडो	असम और मेघालय	2004
20	डोगरी	जम्मू और हिमाचल प्रदेश	2004
21	मैथिली	बिहार और झारखंड	2004
22	संथाली	पश्चिम बंगाल, झारखंड और ओडिशा	2004

भारत में अनुसूचित भाषाओं के बारे में अधिक जानकारी के लिए, इच्छुक भारतीय गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग की वेबसाइट

(https://rajbhasha.gov.in//en/languages-included-eighth-schedule-indian-constitution) का संदर्भ ले सकते हैं ।

3.3.5 भारत का संविधान और शैक्षिक प्रावधान

स्वातंत्र्योत्तर भारत के संविधान में शिक्षा को नागरिकों के मूल अधिकार के रूप में शामिल किया गया है। साथ ही शिक्षा के महत्व को देखते हुए इसे समवर्ती सूची में भी सम्मिलित किया गया है। जिस कारण केंद्र और राज्य सरकारों दोनों को ही शिक्षा के विकास एवं उचित व्यवस्था करने हेतु संयुक्त उत्तरदायित्व सौंपा गया है। वर्तमान में केंद्र सरकार जहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण, संपूर्ण देश में शिक्षा का विकास, शोध संस्थानों, नवोदय एवं केंद्रीय विद्यालयों की व्यवस्था एवं राज्यों को शिक्षा की व्यवस्था के लिए आर्थिक सहायता देने का काम कर रही है वहीं राज्य सरकारें राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप स्थानीय क्षेत्रों में शिक्षा के प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं।

बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को पारित कर भारत सरकार ने 1 अप्रैल, 2010 से इसे कानून के रूप में लागू किया है, जिसके अंतर्गत 6 से 14 वर्ष तक की आयु के प्रत्येक बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है। इस अधिनियम के तहत केंद्र सरकार इस अधिनियम को लागू करने हेतु खर्चों का पूर्वानुमान तैयार करना एवं राज्य सरकारों को आवश्यक तकनीकी और शिक्षा संसाधनों को उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करेगी। राज्य सरकारों का कर्तव्य है कि वह विद्यालय भवन, शिक्षक, शिक्षण सामग्री सहित मूलभूत संरचना, उच्च किस्म की शिक्षा, शिक्षकों के लिए भी प्रशिक्षण सुविधा तथा विद्यालय में कमजोर और वंचित वर्गों के बच्चों के साथ कोई भेदभाव नहीं हो यह भी सुनिश्चित करेगी। माता–पिता और संरक्षक का भी यह कर्तव्य है कि वह 6 से 14 वर्ष के अपने बच्चों को विद्यालय में शिक्षा अध्ययन हेतु भर्ती कराएं।

टिप्पणी

संविधान में शिक्षा संबंधी प्रावधान

भारतीय संविधान में शिक्षा संबंधी विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों को शामिल किया गया है। जिनका विस्तृत विवरण यहां दिया जा रहा है।

भारतीय संविधान में शिक्षा को नागरिकों का मूल अधिकार माना गया है। भारतीय नागरिक अपने शिक्षा संबंधी मूल अधिकार का प्रयोग कर सकें, इसके लिए संविधान में अनेक व्यवस्थाएं की गई हैं। यहां कुछ मूल व्यवस्थाओं का उल्लेख संक्षेप में प्रस्तुत है–

- **शिक्षा समवर्ती सूची में**– 1976 में 42 वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची (Concurrent List) में सम्मिलित किया गया। तब से शिक्षा की व्यवस्था करना केन्द्र और प्रान्तीय सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व है। वर्तमान में केन्द्र सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण करने, संघीय क्षेत्रों में शिक्षा की व्यवस्था करने, पूरे देश में सामान्य शिक्षा सुविधाओं में समन्वय स्थापित करने, उच्च शिक्षा के स्तर को बनाए रखने, राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं का विकास करने और राष्ट्रीय महत्व की उच्च शिक्षा संस्थाओं और शोध संस्थानों की व्यवस्था करने के लिए उत्तरदायी है और प्रान्तीय सरकारें राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप अपने–अपने क्षेत्रों में शिक्षा के प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं। वर्तमान में केन्द्रीय सरकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में शिशु शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए भी अनेक योजनाएं चला रही है और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय विद्यालयों एवं नवोदय विद्यालयों की व्यवस्था कर रही है और कुछ उच्च स्तर की उच्च संस्थाओं को चला रही है। साथ ही प्रान्तों में किसी भी स्तर और किसी भी प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था के लिए आर्थिक सहायता देती है।
- **जन्म से 6 वर्ष तक के शिशुओं की देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था**– 2002 में संविधान में 86 वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 45 को इस प्रकार परिवर्तित किया गया–राज्य सभी बच्चों को जब तक कि वे 6 वर्ष की आयु प्राप्त न कर लें बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था करेगा।
- **6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था**– प्रारंभ में संविधान के अनुच्छेद 45 में यह घोषणा की गई थी – राज्य संविधान के प्रारंभ से 10 वर्ष की कालावधि के अंदर सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु समाप्ति तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रबंध करने का प्रयास करेगा।'' संविधान में राज्य से तात्पर्य केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकारों तथा प्रशासनतंत्र, तीनों से है। यह इस संवैधानिक निर्देश (Constitutional Directive) का ही प्रभाव है कि राज्य 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्य एवं निःशुल्क व्यवस्था करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। इस दिशा में एक बड़ा कदम 86 वां संविधान संशोधन अधिनियम 2002 है, जिसके अनुसार अनुच्छेद 21 (A) जोड़ा गया है, जो इस प्रकार है – ''राज्य 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उस प्रकार की नीति से जैसा

राज्य विधि द्वारा अवधारित करे, की व्यवस्था करेगा।'' इसी 86 वें संशोधन, 2002 में एक संशोधन यह किया गया कि ''प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह माता–पिता अथवा अभिभावक के रूप में 6 से 14 आयु वर्ग के अपने बच्चों अथवा आश्रितों को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।'' इस दिशा में सरकार का सबसे बड़ा कदम शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (Right to Education Act, 2009) पास करना था। इस अधिनियम के अनुसार – ''6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों को कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है।'' सरकार ने 2010 में इसे कानून का रूप दिया और 1 अप्रैल, 2010 से इसे कानून के रूप में लागू कर दिया।

- **शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के समान अधिकार**– संविधान के अनुच्छेद 29 (2) में यह व्यवस्था की गई है – ''राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी भी शिक्षा संस्था में किसी भी नागरिक को धर्म, मूल, वंश अथवा जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।'' वर्तमान में यह नियम वित्तविहीन (स्ववित्तपोषित) मान्यता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं पर भी लागू है और पब्लिक स्कूलों पर भी लागू है।
- **स्त्री शिक्षा की विशेष व्यवस्था**– स्त्री शिक्षा के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 15 (3) में यह व्यवस्था की गई है – इस अनुच्छेद की किसी भी बात से राज्य को स्त्रियों और बच्चों के लिए कोई उपबंध बनाने में कोई बाधा नहीं होगी।
- **समाज के कमजोर वर्ग–अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था**– संविधान में सर्वप्रथम अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता (छुआछूत) को समाप्त किया गया है और अनुच्छेद 46 में यह व्यवस्था की गई है – "राज्य जनता के कमजोर वर्गों, विशेषतः अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।" वर्तमान में प्राथमिक स्तर पर कमजोर वर्गों के सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा के साथ पुस्तकें भी निःशुल्क दी जाती हैं और साथ ही छात्रवृत्तियां भी दी जाती हैं। माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा स्तर पर इनके लिए छात्रवृत्तियों के साथ आरक्षण सुविधा भी है।
- **अल्पसंख्यकों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था**– अल्पसंख्यकों की शिक्षा के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 30 में दो प्रावधान किए गए हैं –
  - (क) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा। अनुच्छेद 30 (1)
  - (ख) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर भेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध में है। अनुच्छेद 30 (2)

- **मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा**– संविधान के अनुच्छेद 350(A) में यह घोषणा की गई है कि प्रत्येक राज्य (State) और प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी (Local Authority) का यह दायित्व है कि वह भाषायी दृष्टि से अल्पसंख्यकों के बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की समुचित सुविधाएं उपलब्ध कराएं।
- **धार्मिक शिक्षा के विषय में स्पष्ट निर्देश**– संविधान के अनुच्छेद 28 में यह घोषणा की गई है कि पूर्ण रूप से राज्य निधि द्वारा पोषित किसी भी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी और अनुच्छेद 22 में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में बच्चों को किसी धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।
- **राष्ट्रीय महत्व के उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्रों की व्यवस्था केन्द्र द्वारा**– संघ सूची एक की प्रविष्ट संख्या 62 में उल्लिखित राष्ट्रीय पुस्तकालय एवं संग्रहालय आदि प्रविष्टि संख्या 63 में उल्लिखित राष्ट्रीय पुस्तकालय एवं संग्रहालय आदि, प्रविष्टि संख्या 63 में उल्लिखित राष्ट्रीय महत्व की शिक्षण संस्थाएं– बनारस, अलीगढ़ व दिल्ली विश्वविद्यालय आदि, प्रविष्टि संख्या 64 में उल्लिखित केन्द्र द्वारा पोषित राष्ट्रीय महत्व की वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थाएं, प्रविष्टि संख्या 65 में उल्लिखित राष्ट्रीय महत्व की प्रोफेशनल, वोकेशनल, तकनीकी एवं विशिष्ट अध्ययन संस्थाएं और प्रविष्टि संख्या 66 में उल्लिखित उच्च शिक्षा संस्थान और अनुसंधान केन्द्रों की सम्पूर्ण वित्तीय व्यवस्था और संचालन का कार्य भार केन्द्र सरकार का है।
- **राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं की शिक्षा**– संविधान के अनुच्छेद 344 (1) में 15 भाषाओं को राष्ट्रीय महत्व की भाषा घोषित किया गया है। ये भाषाएं हैं– (क) असमिया, (ख) बंगाली, (ग) गुजराती, (घ) हिन्दी, (ङ) कन्नड़, (च) कश्मीरी, (छ) मलयालम, (ज) मराठी, (झ) उड़िया, (ञ) पंजाबी, (ट) संस्कृत, (ठ) सिंधी, (ड) तमिल, (ढ) तेलुगु और (ण) उर्दू।

  आगे चलकर संविधान संशोधन द्वारा कोंकणी, मणिपुरी, डोगरी, बोडो, मैथिली, संथाली और नेपाली को भी मान्यता प्रदान कर दी गई। इस प्रकार इस समय राष्ट्रीय महत्व की भाषाओं की संख्या (15 + 7) = 22 हो गई है। साथ ही संविधान में यह घोषणा की गई है कि राज्य इन भाषाओं के विकास के लिए आवश्यक प्रयास करेगा।
- **राष्ट्र भाषा हिन्दी का विकास**– संविधान के अनुच्छेद 343 में हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है और साथ ही अनुच्छेद 351 में इसके विकास के लिए विशेष प्रयत्न करने की व्यवस्था की गई है – ''हिन्दी भाषा का प्रसार एवं वृद्धि करना, उसका विकास करना जिससे वह भारत की संस्कृति में सब

टिप्पणी

तत्वों को अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके और उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी एवं अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए एवं जहां आवश्यक एवं वांछनीय हो वहां उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।''

अपनी प्रगति जांचिए

3. संविधान की प्रस्तावना का गहन विश्लेषण करने पर कौन सा तथ्य उद्घाटित होता है–

   (क) संविधान के स्रोत (ख) भारत की शासन व्यवस्था का स्वरूप

   (ग) संविधान के लक्ष्य एवं आदर्श (घ) उपर्युक्त सभी

4. वर्तमान में संविधान भारतीय नागरिकों को कितने मूल अधिकार प्रदान करता है?

   (क) 6 (ख) 7

   (ग) 8 (घ) 9

3.4 भारत में शिक्षा : अधिकार का विशेषाधिकार

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास व परिवर्तन की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। इसी वजह से शिक्षा के स्वरूप और उसकी संरचना में देश की सामाजिक व्यवस्था व आर्थिक स्थिति का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक हो जाता है। लेकिन हमारे देश भारत में शिक्षा व सामाजिक, आर्थिक लक्ष्यों के बीच स्वदृढ़ संबंध ना होने के कारण गंभीर स्थिति पैदा हो गई है। हमारी शिक्षा की जड़ें हमारी परंपरा व संस्कृति में नहीं हैं। और हमारी सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है। मानव संसाधन विकास में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण एवं सराहनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से अब तक शिक्षा की सुविधाओं में उल्लेखनीय वृद्धि तो हुई है परंतु सभी के लिए शिक्षा के अवसरों में समानता नहीं हो पाई है। विद्यार्थी सर्वप्रथम मूलभूत शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हैं उसके बाद शिक्षा को अपने आर्थिक क्षेत्रों से जोड़कर रोजगार प्रदान करने में सक्षम हो पाते है। किंतु प्रतिस्पर्धा छात्रों को एक दूसरे से अलग करती है और वे अपनी काबिलियत को साबित कर किसी भी अच्छे रोजगार को प्राप्त कर पाते हैं। रोजगार सबसे बड़ी आवश्यकता हो चुकी है क्योंकि बेरोजगारी विभिन्न कारणों से हमारे समाज में फैली हुई है। अतः शिक्षा सभी समस्याओं का एक समाधान तो नहीं कह सकते लेकिन कारण जरूर है।

3.4.1 विशेषाधिकार के रूप में शिक्षा

बच्चे किसी भी देश के सर्वोच्च संपत्ति हैं। वे संभावित मानव संसाधन हैं। शिक्षा एक आदमी के जीवन में विशेष महत्व रखती है।

शिक्षा का विशेषाधिकार अधिनियम 2009 भारतीय संसद द्वारा सन् 2009 में पारित शिक्षा सम्बन्धी एक विधेयक है। इस विधेयक के पास होने से विद्यार्थियों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है। संविधान के अनुच्छेद 21 में 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है तथा 86 वें संशोधन द्वारा 21 (क) में प्राथमिक शिक्षा को सब नागरिकों का मूलाधिकार बना दिया गया है। यह 1 अप्रैल, 2010 को जम्मू–कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ।

शिक्षा के विशेषाधिकार अधिनियम 2009 के अंतर्गत निम्न प्रावधान शामिल हैं–

- 6 से 14 साल के बच्चों को मुफ़्त शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी।
- निजी स्कूलों को 6 से 14 साल तक के 25 प्रतिशत गरीब बच्चे मुफ्त पढ़ाने होंगे। इन बच्चों से फीस वसूलने पर दस गुना जुर्माना होगा। शर्त नहीं मानने पर मान्यता रद्द हो सकती है। मान्यता निरस्त होने पर स्कूल चलाया तो एक लाख और इसके बाद रोजाना 10 हजार जुर्माना लगाया जाएगा।
- विकलांग बच्चों के लिए मुफ़्त शिक्षा के लिए उम्र बढ़ाकर 18 साल रखी गई है।
- बच्चों को मुफ़्त शिक्षा मुहैया कराना राज्य और केंद्र सरकार की ज़िम्मेदारी होगी।
- इस विधेयक में दस अहम लक्ष्यों को पूरा करने की बात कही गई है। इसमें मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने, शिक्षा मुहैया कराने का दायित्व राज्य सरकार पर होने, स्कूल पाठ्यक्रम देश के संविधान की दिशानिर्देशों के अनुरूप और सामाजिक जिम्मेदारी पर केंद्रित होने और एडमिशन प्रक्रिया में लालफीताशाही कम करना शामिल है।
- प्रवेश के समय कई स्कूल केपिटेशन फीस की मांग करते हैं और बच्चों और माता–पिता को इंटरव्यू की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। एडमिशन की इस प्रक्रिया को बदलने का वादा भी इस विधेयक में किया गया है। बच्चों की स्क्रीनिंग और अभिभावकों की परीक्षा लेने पर 25 हजार का जुर्माना। दोहराने पर जुर्माना 50 हजार।
- शिक्षक ट्यूशन नहीं पढ़ाएंगे।

आरटीई एक्ट में किया संशोधन

सरकारी स्कूलों में पांचवीं और आठवीं कक्षा के बच्चों को अब वार्षिक परीक्षा देनी होगी। सरकार ने इसकी अधिसूचना जारी कर दी है।

केंद्र सरकार ने निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम 2009 में संशोधित किया है।

सेक्शन 16 में संशोधन

राष्ट्रपति ने 10 जनवरी, 2019 को आरटीई के संशोधन को मंजूरी दे दी है। सेक्शन 16 में संशोधन किया गया है। इस सेक्शन में क्लॉज (1 व 2) एक जोड़कर कहा गया है कि प्रत्येक एकेडमिक वर्ष में पांचवीं और आठवीं कक्षा में नियमित रूप से परीक्षा ली जाएगी।

टिप्पणी

अतिरिक्त कक्षा

परीक्षा में फेल होने पर बच्चे को एक मौका और दिया जाएगा। दोबारा परीक्षा में बैठने से पहले अतिरिक्त कक्षा लगाकर पढ़ाया जाएगा। वार्षिक परीक्षा का परिणाम घोषित होने के दो माह बाद अनिवार्य रूप से दोबारा परीक्षा में बैठने का अवसर प्रदान किया जाएगा।

मौलिक शिक्षा से वंचित

आरटीई एक्ट 2009 के लागू होने से पहले देशभर में 6 से 14 वर्ष के 80 लाख बच्चे स्कूल शिक्षा से वंचित थे। इन बच्चों को वर्ष 2015 तक प्राथमिक शिक्षा दिलाने का लक्ष्य रखा गया था।

केंद्रीय सलाहकार कमेटी (कैब)

शिक्षा के सुधार के लिए केंद्रीय सलाहकार कमेटी (कैब) बनाई गई थी। कैब की सब कमेटी के चेयरपर्सन पंजाब के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. दलजीत सिंह चीमा थे। उन्होंने इसे लेकर अक्टूबर 2016 को केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री को 189 पन्नों की विस्तृत रिपोर्ट सौंपी थी। डॉ. दलजीत सिंह चीमा ने प्रस्ताव रखा था कि बच्चों को फेल न करने की नीति पर विचार बेहद जरूरी है।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2009

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2009 भारतीय संसद द्वारा वर्ष 2009 में पारित शिक्षा सम्बन्धी एक विधेयक है। इस विधेयक के पास होने से बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है।

संविधान के अनुच्छेद 45 में 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। 86वें संशोधन द्वारा 21 (क) में प्राथमिक शिक्षा को सब नागरिकों का मूलाधिकार बना दिया गया है।

3.4.2 शैक्षिक अवसर : भारतीय शैक्षिक अतीत पर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी

भारत को दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक माना जाता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पिछले उनहत्तर (69) वर्षों में, स्वतंत्रता के बाद, राज्य की भूमिका भी अपने नागरिकों के प्रति बदल गई है।

15 अगस्त, 1947 को जैसे ही देश को स्वतंत्रता मिली, राज्य की भूमिका बढ़ गई और इसने कुछ हद तक कल्याणकारी राज्य के विचारों को समझा। राज्य ने अपने नागरिकों की भलाई एवं देखभाल करने की जिम्मेदारी ली। राज्य द्वारा दी गई प्राथमिकताओं में से एक देश के सभी नागरिकों को कल्याण के विचार की मानक समझ के हिस्से के रूप में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना है।

भारत की शिक्षा नीति, मुख्य रूप से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 ए के तहत शिक्षा का अधिकार (मौलिक अधिकार) का विश्लेषण करती है जिसमें शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 और इससे जुड़ी विभिन्न नीतियां शामिल हैं। इस अधिनियम को एक औपचारिक स्कूल में शिक्षा की संतोषजनक और समान गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए

अपने सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य अधिकार के रूप में शिक्षा को अनिवार्य करने के लिए लागू किया गया था, जो कुछ आवश्यक मानदंडों और मानकों को पूरा करता है। एक देश के रूप में भारत ने विभिन्न सामाजिक–आर्थिक मुद्दों का सामना किया है। विकास में बाधा डालने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक निरक्षरता की अधिकता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन के साथ, सरकार ने उन छात्रों के नामांकन को बढ़ाने के लिए एक पहल की जो पहले शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम नहीं थे। शिक्षा को एक अधिकार के रूप में प्रदान करने का उद्देश्य उन वंचित वर्गों और समुदायों के बीच की खाई को कम करना था, जिन्हें अनादि काल से शिक्षा सहित उनके मूल अधिकारों से वंचित रखा गया था। अन्य उद्देश्य प्रारंभिक बचपन की देखभाल करना, शिक्षा की सार्वभौमिक अवधारणा की दिशा में प्रगति करना, युवा छात्रों के जीवन कौशल का विकास करना, लिंग अंतर को पाटना और बच्चों को उनके स्वस्थ और पर्याप्त विकास के लिए स्कूलों में पौष्टिक भोजन प्रदान करना था।

3.4.3 शिक्षा के अधिकार के रूप में मांग और प्रयास : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक जांच

2002 में 86वें संविधान संशोधन के जरिये शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया था। जिसमें 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा पाना मौलिक अधिकार बन गया। आलोचक उम्र के प्रावधानों को लेकर सवाल उठा रहे हैं। उनका कहना है कि 6 साल से कम और 14 साल से अधिक उम्र के बच्चों को इसमें शामिल किया जाना चाहिए। इसके अलावा सरकार ने शिक्षकों की कमी, शिक्षकों की क्षमता के निम्न स्तर और नये खुलने वाले स्कूलों की बात तो दूर, वर्तमान स्कूलों में शिक्षा के आधारभूत ढांचे की कमी की समस्या भी दूर नहीं की है। इस विधेयक को राज्यों के वित्तीय अंशदान के मुद्दे को लेकर पहले कानून और वित्त मंत्रालयों के विरोध का सामना करना पड़ा था। कानून मंत्रालय को उम्मीद थी कि 25 प्रतिशत आरक्षण को लेकर समस्या पैदा होंगी, जबकि मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इस पर हर साल 55 हजार करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान लगाया था।

योजना आयोग ने इस राशि की व्यवस्था करने में असमर्थता जतायी थी। राज्य सरकारों ने कहा था कि वे इस पर होनेवाले खर्च का हिस्सा भी देने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए केंद्र को पूरा खर्च स्वयं वहन करने के बारे में सोचने पर मजबूर होना पड़ा। विधेयक के प्रारूप में तीन साल के भीतर हर इलाके में प्रारंभिक स्कूल खोले जाने का लक्ष्य है, हालांकि स्कूल शब्द से सभी आधारभूत संरचनाओं से युक्त स्कूल की छवि ही बनती है। इसके लिए न्यूनतम आवश्यकताओं का एक सेट तैयार किया गया, क्योंकि सुदूरवर्ती ग्रामीण और गरीब शहरी क्षेत्र में कागजी काम की सामान्य बाधाएं हैं। राज्य को भी यह जिम्मेदारी दी गयी कि यदि कोई बच्चा आर्थिक कारणों से स्कूल नहीं जा रहा हो, तो वह उसकी समस्या को दूर करें।

विधेयक के प्रमुख प्रावधानों में शामिल हैंः प्रवेश के स्तर पर आसपास के बच्चों को निजी स्कूलों में नामांकन में 25 प्रतिशत आरक्षण। स्कूलों द्वारा किये गये खर्च की भरपाई सरकार करेगी। नामांकन के समय कोई डोनेशन या कैपिटेशन शुल्क नहीं लिया जाएगा और छंटनी प्रक्रिया के लिए बच्चे या उसके अभिभावकों का साक्षात्कार

टिप्पणी

नहीं होगा। विधेयक में शारीरिक दंड देने, बच्चों के निष्कासन को रोकने और जनगणना, चुनाव ड्यूटी तथा आपदा प्रबंधन के अलावा शिक्षकों को गैर–शिक्षण कार्य में तैनात करने पर रोक लगायी गयी है। गैर मान्यताप्राप्त स्कूल चलाने पर दंड लगाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि कुछ राज्यों में विधानसभा चुनाव के मद्देनजर मानव संसाधन मंत्रालय विधेयक का विवरण चुनाव आयोग से सलाह के बाद जारी करेगा।

विधेयक की जांच–पड़ताल के लिए नियुक्त मंत्रियों के समूह ने किसी फेरबदल के बिना ही विधेयक को मंजूरी दे दी थी, जिसमें आसपास के वंचित वर्गों के बच्चों को निजी स्कूलों में प्रवेश के स्तर पर 25 प्रतिशत का आरक्षण देने का प्रावधान है। कुछ लोग इसे सरकार की जिम्मेदारी के निर्वहन के लिए निजी क्षेत्र को मजबूर करने के दृष्टिकोण से भी देखते हैं। शिक्षा का अधिकार विधेयक 86वें संविधान संशोधन को कानूनी रूप से अधिसूचित कर सकता है, जिसमें 6 से 14 साल के प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है। शिक्षा को आर्थिक और सामाजिक विकास की आवश्यकता के रूप में विभिन्न सिद्धांतकारों द्वारा बल दिया गया है।

स्वतंत्रता के बाद से भारत शिक्षा की आवश्यकता को समझता था, और इसे प्रदान करने की जिम्मेदारी केंद्र सरकार द्वारा ली गई थी। यह महसूस किया गया कि, एक प्रबुद्ध नागरिक होने के लिए देश में एक शिक्षित जनसंख्या, विशेष रूप से युवाओं का होना आवश्यक है। वयस्कों की शिक्षा अनिवार्य हो गई क्योंकि नब्बे प्रतिशत नागरिक शिक्षित नहीं थे। यह मान लिया गया कि लोकतंत्र की जिम्मेदारी उस नागरिक पर है, जो शिक्षित नहीं था, इसलिए शिक्षा की तत्काल आवश्यकता थी। इसके परिणामस्वरूप "सामाजिक शिक्षा" की अवधारणा का विकास हुआ जिसने साक्षरता, स्वास्थ्य, स्वच्छता और आर्थिक सुधार पर जोर दिया। इस प्रकार यह स्थापित होता है कि प्राचीन काल से ही एक मजबूत शिक्षा नीति की सख्त आवश्यकता थी। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के पारित होने के विभिन्न सकारात्मक सामाजिक और आर्थिक निहितार्थ थे।

सबसे पहले इसके परिणामस्वरूप 2009 से नामांकन संख्या में 96 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिसमें 2009 और 2013 के बीच 56 प्रतिशत नए छात्र बनाए गए। इसका कारण यह है कि भारत में एक मिलियन से अधिक सरकारी स्कूल (लगभग 1.4 मिलियन) हैं। 98 प्रतिशत बसावटों की एक किलोमीटर के भीतर स्थित प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 1 से 6) तक पहुंच है और 92 प्रतिशत की माध्यमिक शिक्षा (कक्षा VI-VIII) तक पहुंच है। स्कूलों से निकटता के अलावा अन्य कारण भी हैं जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों में नामांकन में वृद्धि की है। इसका एक कारण यह है कि शिक्षा मुफ्त है और खर्च राज्य द्वारा वहन किया जाता है। माता–पिता को अपने बच्चे की शिक्षा पर खर्च नहीं करना पड़ता है, इसके अलावा राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली बुनियादी सुविधाएं निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि के माता–पिता को अपने बच्चों के बेहतर भविष्य की उम्मीद के साथ इन स्कूलों में दाखिला लेने के लिए आकर्षित करती हैं। अधिनियम में ऐसे प्रावधान भी हैं जहां राज्य को वर्दी, पाठ्यपुस्तक और लेखन सामग्री जैसी अन्य सुविधाएं प्रदान करनी होती हैं। इसने अतीत में छात्रों को स्कूलों में जाने के लिए प्रोत्साहित किया है और माता–पिता को अपने बच्चों को काम पर लगाने और बाल श्रम का सहारा लेने के बजाय उन्हें स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित किया है।

शिक्षा नीति सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के लिए आरक्षण प्रदान करके विभिन्न समुदायों के बीच की खाई को कम करने पर भी ध्यान देती है। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले में यह कहा गया था कि दिल्ली के सभी स्कूलों (18 अन्य राज्यों में भी चालू) में 25 प्रतिशत आरक्षण होगा। यह प्रावधान वंचित समूहों और समाज के कमजोर वर्गों पर लागू था। इस कदम का उद्देश्य गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थानों को छोड़कर सभी स्कूलों में "प्राथमिक शिक्षा में सामाजिक समावेशन" की शुरुआत करना था। प्राथमिक शिक्षा में आरक्षण एक सकारात्मक कदम के रूप में रहा है, क्योंकि भारत में समाज के कुछ वर्गों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार का इतिहास रहा है, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी आर्थिक और सामाजिक असमानता हुई है।

प्रारंभिक बचपन को गर्भधारण की अवधि से आठ वर्ष की आयु के रूप में परिभाषित किया गया है। यह जीवन के सबसे महत्वपूर्ण हिस्सों में से एक है क्योंकि यह बच्चे के विकास को गंभीर रूप से परिभाषित करता है, बच्चे को संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक कौशल के विकास में मदद करता है। इन वर्षों में विकास की गति अत्यंत तीव्र होती है। भले ही, प्रारंभिक बचपन की देखभाल को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा परिभाषित या प्रदान नहीं किया गया है, फिर भी इसमें मुफ्त प्री–स्कूलिंग और शिक्षा की आवश्यकता प्रदान करने का सार है और राज्य सरकारों से ऐसा करने का आग्रह करता है।

महिला और बाल विकास मंत्रालय ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय जैसे कई अन्य मंत्रालयों के साथ प्रारंभिक बचपन की शिक्षा की प्रगति और विकास के लिए कदम उठाए हैं। एकीकृत बाल विकास योजना के तहत की गई पहलों में से एक ने "आंगनवाड़ी" प्रणाली के रूप में सकारात्मक परिणाम दिखाया है। भले ही अधिनियम इसे निर्धारित नहीं करता है, यह स्पष्ट रूप से इसे भारी महत्व और महत्व देता है। आंगनवाड़ी प्रणाली, जिसे आंगन आश्रय के रूप में भी जाना जाता है, सरकार द्वारा प्रायोजित बाल देखभाल विकास कार्यक्रम था जो 0–6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए बनाया गया था। योजना का उद्देश्य उचित विकास (मनोवैज्ञानिक और शारीरिक) के लिए आधार तैयार करना था। बच्चे की मृत्यु दर और कुपोषण की घटनाओं को कम करने और पूर्व–विद्यालय शिक्षा प्रदान करने के लिए।

इस प्री–स्कूलिंग शिक्षा कार्यक्रम में दाखिला लेने वाले छात्रों की संख्या वास्तव में 2001–02 में 16.7 मिलियन से बढ़कर 2012–13 में 35.3 मिलियन हो गई थी। वास्तव में आंगनवाड़ियों के आंकड़े भी लिंग अंतर को कम करने और बालिकाओं के उच्च नामांकन को दर्शाते हैं। २००५–०६ से २०१२–१३ की अवधि के दौरान, आंगनबाड़ियों में प्री–स्कूल शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों में ५.३ मिलियन की वृद्धि हुई, जबकि प्री–स्कूल शिक्षा प्राप्त करने वाले लड़कों में ५.५ मिलियन की वृद्धि हुई। वर्ष 2012–13 के दौरान स्कूल पूर्व शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों की कुल संख्या में लड़कियों की संख्या 49 प्रतिशत (17.3 मिलियन) थी। 2005–06 से 2012–13 की अवधि के दौरान पूर्व–विद्यालय शिक्षा प्राप्त करने वाले लड़कों की संख्या में 44 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि पूर्व–विद्यालय शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों की संख्या में 44.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

टिप्पणी

सरकारी स्कूलों में नामांकित सभी छात्रों को पोषण मूल्य भोजन प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा मध्याह्न भोजन योजना शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि नामांकित छात्र स्कूल के दौरान अपने भोजन में बुनियादी मात्रा में पोषण प्राप्त करने में सक्षम हों ताकि वे खुद को बनाए रख सकें और एक स्वस्थ जीवन शैली का नेतृत्व कर सकें जो उन्हें भविष्य के विकास के लिए एक स्वस्थ विकास पैटर्न प्रदान कर सके। इस योजना में प्रत्येक बच्चे को न्यूनतम 300 कैलोरी ऊर्जा और 8–10 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन (न्यूनतम 200 दिनों के लिए) के साथ पका हुआ भोजन प्राप्त करना शामिल था। शिक्षा का अधिकार अधिनियम भी अपने दायरे में सभी स्कूलों को एक रसोई घर के लिए अनिवार्य करता है। अधिनियम यह भी सुनिश्चित करता है कि मध्याह्न भोजन का लाभ उठाने वाले किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसके अलावा, सरकार ने खाद्य सुरक्षा और भोजन के परीक्षण को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए हैं। भोजन की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया गया है। राज्य ने आगे रसोई, बर्तन और खाद्य भंडारण की सफाई के कुछ बुनियादी न्यूनतम मानक जारी किए। 2015–16 के दौरान मध्याह्न भोजन योजना के तहत कुल 13.16 करोड़ बच्चों के नामांकन में से 10.03 करोड़ बच्चों ने 11.50 लाख स्कूलों में औसत आधार पर मध्याह्न भोजन का लाभ उठाया। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि राज्य ने यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी कैसे ली है कि शिक्षा के प्रावधानों के माध्यम से आवश्यक परिणाम प्राप्त करने के लिए इसके निवासियों को न केवल शिक्षा बल्कि अन्य इनपुट प्राप्त होते हैं। संविधान के 86 में संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा 21(।) जोड़ा गया जो यह प्रावधान करता है कि राज्य विधि बनाकर 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य करने के लिए अपबंद करेगा। इस अधिकार को व्यावहारिक रूप देने के लिए संसद में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 पारित किया। जो 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ । इस अधिनियम में 7 अध्याय तथा 38 खण्ड हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत 6–14 वर्ष के लगभग 22 करोड़ बच्चों में से 92 लाख (4.6%) बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते हैं, जिनकी शिक्षा के लिए 1.71 लाख करोड़ रुपये की 5 वर्षों में आवश्यकता होगी। जिसमें से 25 हज़ार करोड़ रुपये वित्त आयोग राज्यों को देगा।

गोपाल कृष्ण गोखले ने 18 मार्च, 1910 में ही भारत में "मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा" के प्रावधान के लिए ब्रिटिश विधान परिषद् के समक्ष प्रस्ताव रखा था, जो निहित स्वार्थों के विरोध के चलते अंततः ख़ारिज हो गया। मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का आश्वासन राज्य के नीति–निदेशक अनुच्छेद 45, के सिद्धांतों के तहत फिर से दिया गया था। इसके अलावा, शिक्षा प्रदान करने के साथ 46 लेख भी संबंधित जातियों को अनुसूची करने के लिए, जनजातियों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों को अनुसूची करने के लिए निर्धारित किए। तथ्य यह है कि शिक्षा का अधिकार लेख 3 में किया गया है साथ ही संविधान के भाग IV के तहत यह संविधान के निर्माताओं द्वारा माना गया है। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम के प्रावधानों पर नजर रखने के लिए बाल अधिकारों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीपीसीआर) को एजेंसी के रूप में नामित किया गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि RTE अधिनियम सफलतापूर्वक ईमानदारी से लागू किया जाता है, एनसीपीसीआर

ने संस्थानों, सरकारी विभागों, नागरिक समाज और अन्य हितधारकों के बीच एक आम सहमति बनाने के लिए पहल की है। उसने शिक्षा के अधिकार के समुचित कार्यान्वयन के लिए योजना पर ध्यान केंद्रित करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित की है जिसमें विभिन्न सरकारी विभागों के अधिकारी, शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ काम करने वाले और अनुभवी व्यक्ति शामिल हैं।

इस समिति ने, जिसकी अब तक चार बैठकें आयोजित की जा चुकी हैं, बेहतर निगरानी को सुनिश्चित करने की योजना बनाई है। इसमें शिक्षा का अधिकार पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करने के लिए एनसीपीसीआर के भीतर एक अलग विभाग स्थापित करना भी शामिल है। यह संभाग दो आयुक्तों द्वारा समन्वित किया जाएगा और सभी गतिविधियों में स्वतन्त्र कर्मचारियों द्वारा सहायता प्रदान की जाएगी। यह संभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एमएचआरडी) के साथ संपर्क बनाएगा जो इसे सहायता प्रदान करेगा। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के साथ बातचीत के तौर तरीकों को स्थापित करना भी आवश्यक होगा ताकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम को लागू करने तथा निगरानी को सुनिश्चित करने के लिए वे मिलकर काम कर सकें। सुझाई गयी एक तीसरी रणनीति थी राज्य के प्रतिनिधियों की नियुक्ति जो विभिन्न राज्यों में एनसीपीसीआर के "आंखों और कान" के रूप में कार्य करेंगे। ये प्रतिनिधि नागरिक समाज के सदस्य होंगे जिन्हें शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव होगा और जो संबंधित राज्यों में अधिनियम के क्रियान्वयन की स्थिति के बारे में एनसीपीसीआर को जानकारी प्रदान करेंगे। वे अपने राज्यों से प्राप्त शिकायतों की जांच करने (फ़ॉलोअप) में भी मदद करेंगे। अधिक से अधिक समन्वय और तालमेल के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम से प्रभावित होने वाले अन्य मंत्रालयों जैसे सामाजिक न्याय और अधिकारिता, श्रम मंत्रालय, आदिवासी मामलों के मंत्रालय तथा पंचायती राज मंत्रालय के अधिकारियों के साथ बैठकें की गईं। उदाहरण के लिए, RTE अधिनियम का बाल श्रम अधिनियम पर विशेष प्रभाव पड़ता है और श्रम मंत्रालय को निभाने के लिए एक भूमिका है। इसी प्रकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा चलाए जा रहे स्कूल भी RTE के दायरे में आएंगे। इस प्रकार, RTE से बच्चों के लाभान्वित होने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि एनसीपीसीआर और इन मंत्रालयों के बीच आसान समन्वय और संचार हो।

शिक्षा के अधिकार की बेहतर निगरानी के लिए बेहतर सम्बन्ध बनाने के लिए एनसीपीसीआर ने अन्य राष्ट्रीय आयोगों जैसे महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग के प्रतिनिधियों के साथ मुलाकात की है। उदाहरण के लिए, यह सुनिश्चित करने के लिए कि अभावग्रस्त समुदायों के लड़के या लड़कियां शिक्षा के अधिकार से वंचित न रह जाएं, आयोग एक साथ कैसे काम कर सकते हैं। यह भी सुझाव दिया गया था कि एनसीपीसीआर द्वारा आयोजित सार्वजनिक सुनवाई में संबंधित आयोग से एक प्रतिनिधि भी जूरी में शामिल किया जा सकता है ताकि प्रभाव को और मजबूत किया जा सके।

अधिनियम के प्रावधानों और निगरानी के लिए देश के विभिन्न भागों से शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिए नागरिक समाज के प्रतिनिधियों के साथ परामर्श किया गया। इस बैठक में 20 राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस तरह के नागरिक समाज के साथ राज्य के प्रतिनिधियों की नियुक्ति के संदर्भ में नियम बनाने के लिए नागरिक

टिप्पणी

समाज के साथ एनसीपीसीआर द्वारा आयोजित यह बैठक इस प्रकार की श्रृंखला में पहली थी।

हालांकि, अधिनियम के बेहतर कार्यान्वयन और निगरानी के लिए, देश में अधिक से अधिक जागरूकता है ताकि इसके प्रावधान समझे जाएं और सभी संस्थाओं द्वारा शामिल किए जाएं। ऐसा करने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर एक प्रचार अभियान शुरू करना होगा, जिसमें अधिनियम का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद, संभवतः मानव संसाधन विकास मंत्रालय और अन्य एजेंसियों के साथ संयुक्त रूप से करना होगा। एनसीपीसीआर ने इस अभियान के लिए ज़रूरी सामग्री बनाकर, जिसमें अधिनियम का सरलीकृत संस्करण, पोस्टर, प्राइमर और मूलभूत प्रावधानों और अधिकारों के वर्णन पर्चे शामिल हैं, यह प्रक्रिया आरम्भ कर दी है। यह बच्चों के लिए विशेष सामग्री डिजाइन करेंगे ताकि वे भी इस अधिनियम को समझ सकें।

3.4.4 शिक्षा के अधिकार की संवैधानिक यात्रा : राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों के माध्यम से संविधान सभा में आरटीई (RTE) एक्ट 2009 पर वाद विवाद

भारत शिक्षा पर एक महत्वपूर्ण राशि खर्च करता है। वर्ष 2011–2012 के बीच सार्वजनिक व्यय 351145.78 करोड़ (जीडीपी का 4.18 प्रतिशत) था। शिक्षा नीतियों का उद्देश्य समाज के ज्यादातर वंचित वर्गों के बेहतर विकास का लक्ष्य है, लेकिन यह कुछ हद तक अपने परिणामों को प्राप्त करने में विफल रहा है। यह आंशिक रूप से अधिनियम में खामियों के कारण है, लेकिन अधिक महत्वपूर्ण रूप से कार्यान्वयन विफलताओं के कारण है।

शिक्षा की असमानता की समस्या चार अलग–अलग चरणों में होती है। शैक्षिक अवसरों में असमानता (IEO), शैक्षिक प्राप्तियों में असमानता (IEA), व्यावसायिक प्राप्तियों में असमानता (IOA), शिक्षा के प्रतिफल में असमानता (IRE)। पहले दो कारण कारक हैं और बाद वाले परिणामी असमानताएं हैं। जबकि भारत की शिक्षा नीति ने निश्चित रूप से शैक्षिक अवसरों में असमानताओं को कम करने पर ध्यान केंद्रित किया है। यह अन्य तीन को कम करने में विफल रही है।

भारत में शिक्षा के साथ मुख्य समस्या प्रदान किए गए मानक के साथ है। अध्यापन के तरीकों में अक्सर बिना सोचे समझे रटने की शिक्षा का प्रभुत्व होता है, जिसमें आमतौर पर बिना समझ के दोहराव शामिल है। अमर्त्य सेन के अनुसार, देश की शिक्षा व्यवस्था में मूल समस्या यह है कि उच्च शिक्षा को महत्व दिया जाता है और प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा "असहनीय रूप से बड़ी" रही है। यह एक उचित आधार विकसित करने में सक्षम नहीं होने का एकमात्र कारण रहा है जो छात्रों को उच्च शिक्षा के मानकों का सामना करने में मदद करेगा। इस प्रकार यह अपेक्षित परिणाम नहीं दे रहा है। इसके अलावा, जिन छात्रों को पर्याप्त शिक्षा नहीं मिली वे असफल रहे, वे पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। वास्तव में सरकारी स्कूलों में स्कूल छोड़ने की दर (2012–2013) में 50.4 प्रतिशत और (2013–2014) में 47.4 प्रतिशत थी।

हालांकि, इस अधिनियम में शिक्षा के सार्वभौमिक प्रतिधारण की परिकल्पना की गई है। उच्च ड्रॉप आउट दर ने कई बार शिक्षा नीति की प्रभावशीलता पर सवाल

उठाया है। विभिन्न सामाजिक कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप ड्रॉप आउट हुआ। आठवीं कक्षा पूरी करने के बाद महिलाओं के स्कूल छोड़ने के कई मामले सामने आए हैं। यह ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में देखा जाता है जहां सामाजिक मानदंड ऐसे हैं जो लड़कियों को शादी करने के लिए शिक्षा छोड़ने के लिए मजबूर करते हैं। इसके अलावा, बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने के बाद गरीब पृष्ठभूमि के माता–पिता को लगता है कि छात्रों को आगे की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है और उन्हें बाल श्रम में डाल दिया जाता है। यह देखा गया है कि पिता के शैक्षिक स्तर का बच्चे की शिक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, और यह प्रभाव पिछड़ी और गैर–पिछड़ी जातियों दोनों में लगभग समान है।"

इसके अलावा आरक्षित श्रेणियों से आने वाले छात्रों के लिए ड्रॉपआउट दर सामान्य श्रेणियों की तुलना में अधिक है। यह शिक्षा प्राप्त करने के दौरान विभिन्न समुदायों के बीच असमानता को दर्शाता है। इस असमानता के कारण, विभिन्न समुदाय स्वयं को विकसित करने में असफल हो जाते हैं। एससी, एसटी और ओबीसी के बीच ड्रॉपआउट दर अधिक होने का कारण यह है कि उनमें से अधिकांश निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं।

शिक्षा नीति में एक और समस्या शैक्षिक उपलब्धियों में असमानता है, जो शिक्षकों की कमी या स्कूल में "अच्छे शिक्षकों" की कमी के कारण है। सरकारी स्कूल के शिक्षकों को अच्छी तरह से भुगतान किया जाता है, जिससे लागत में कटौती हुई है जिससे शिक्षकों की भर्ती में कमी आई है। इसके परिणामस्वरूप तदर्थ शिक्षकों को रोजगार मिला जो अच्छी तरह से योग्य नहीं थे और अप्रशिक्षित थे। यह शिक्षा के स्तर को कम करता है और बदले में इन छात्रों के रोजगार प्राप्त करने के अवसरों को सीमित करता है। एक सरकारी स्कूल से शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति एक निजी स्कूल की तुलना में नुकसान में होगा और इस प्रकार व्यावसायिक प्राप्ति में असमानता का सामना करेगा।

इसके अलावा, सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों से आने वाले छात्रों के लिए सभी निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण नीति ने नीति निर्माताओं और निजी स्कूल मालिकों के कड़े विरोध के साथ एक बहस पैदा कर दी है। इस कदम का असर विनाशकारी बताया जा रहा है क्योंकि इससे स्कूलों पर आर्थिक तंगी पैदा होगी या अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने वाले माता–पिता पर वित्तीय बोझ पैदा होगा। स्कूल अपनी लागत वसूल करने के लिए या तो फीस बढ़ाएंगे या पाठ्यक्रम या शिक्षकों की गुणवत्ता में कटौती करेंगे। इस प्रकार यह शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करेगा।

मध्याह्न भोजन योजना के क्रियान्वयन में भी कुछ खामियां नजर आई हैं। मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत 2013 से अगस्त, 2016 तक कुल 306 शिकायतें प्राप्त हुई हैं, जिसमें गड़बड़ी, खराब गुणवत्ता, अनियमितताएं हैं। यह देखा गया कि सरकार की बहुत सारी परतें इस योजना में शामिल थीं, जिसके परिणामस्वरूप खराब जानकारी, समन्वय था और निगरानी। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न खतरे पैदा हुए, जिनमें ऐसी स्थितियां भी शामिल हैं जहां पर परोसा गया कच्चा भोजन मौत का कारण बना। इससे मध्याह्न भोजन योजना पर अविश्वास पैदा हो गया। यह योजना उन कारणों में से एक थी जिसने छात्रों को स्कूल आने के लिए प्रोत्साहित किया। योजना की चूक और

कुप्रबंधन ने इस पर से भरोसा हटा दिया। मध्याह्न भोजन योजना के लिए धन के वित्तीय कुप्रबंधन के मामले भी सामने आए हैं। इस वजह से कई स्कूल मध्याह्न भोजन योजना का लाभ नहीं उठा पा रहे थे। इसके अलावा, स्कूलों द्वारा मध्याह्न भोजन में पर्याप्त मात्रा और पोषण प्रदान नहीं करने की भी शिकायतें मिली हैं। इस प्रकार की दुर्घटनाएं उन छात्रों में कुपोषण की समस्या पैदा कर सकती हैं जो मध्याह्न भोजन पर निर्भर हैं, जिसका अंतिम परिणाम शैक्षिक प्राप्ति और अवसरों की असमानता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम में सबसे बड़ी खामियों में से एक छात्रों की एक कक्षा से दूसरी कक्षा में स्वतः पदोन्नति है। परीक्षा का कोई औपचारिक रूप नहीं है जिसे अगली कक्षा तक पहुंचने के लिए पास करना अनिवार्य है। यह सीखने के परिणामों के पूरे विचार को विकृत करता है। भले ही प्रत्येक पाठ्यक्रम के लिए कुछ निर्धारित सीखने के परिणाम होंगे लेकिन सीखने के परिणामों का विश्लेषण करने के लिए कोई आकलन नहीं होगा। द्रेज़ और सेन ने अपनी पुस्तक में कहा है कि "यदि बच्चों का एक बड़ा हिस्सा किसी विशेष स्कूल में वर्षों तक वस्तुतः कुछ भी नहीं सीखता है, तो यह जानना महत्वपूर्ण है, इससे पहले कि उन्हें बोर्ड परीक्षा में भेजा जाए।" यह भी बड़ी संख्या में ड्रॉप आउट का एक कारण है क्योंकि छात्र आकलन का सामना करने में असमर्थ होते हैं और असफल हो जाते हैं। अधिनियम के कार्यान्वयन के दौरान एक और मुद्दा यह है कि स्कूल आमतौर पर छात्र–शिक्षक अनुपात का पालन नहीं करते हैं। निर्धारित छात्र–शिक्षक अनुपात 30:1 है। हालांकि, सरकारी स्कूलों में आमतौर पर उच्च छात्र–शिक्षक अनुपात 60:1 तक होता है। यह शिक्षा की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है और परिणामों को प्रभावित करता है।

इससे यह पता चलता है कि कैसे निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम को जमीनी स्तर पर लागू किया जाता है। यह बताता है कि हरियाणा के सरकारी स्कूलों ने भारत की शिक्षा नीति, उसके उद्देश्यों और परिणामों को कैसे परिभाषित किया है। भारत के इस हिस्से में सरकारी स्कूल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (राज्य अधिनियम) देश के केंद्रीय अधिनियम हरियाणा नियमों द्वारा शासित हैं। यह समान नियमों और विनियमों का पालन करता है और मध्याह्न भोजन और प्रारंभिक बचपन की देखभाल जैसी योजनाओं को महत्व देता है।

यद्यपि इस नीति के प्राप्तकर्ताओं को मूल अधिकार प्रदान किए जा रहे हैं और यह बुनियादी न्यूनतम स्वतंत्रता के रॉल्स मानदंड को पूरा करता है, भारत की शिक्षा नीति को अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है। समस्या न केवल नीतियों के कार्यान्वयन में है, बल्कि प्राप्तकर्ताओं के साथ भी है। भारत की शिक्षा नीति में किसी तरह इसके प्राप्तकर्ताओं का अभाव है। प्राप्तकर्ताओं को उनके "शिक्षा के अधिकार" के बारे में शिक्षित करने की सख्त आवश्यकता है। भारत की शिक्षा नीति में किसी चीज की कमी नहीं है। यह उन सभी उद्देश्यों को पूरा करता है जिन्हें कोई भी शिक्षा नीति हासिल करना चाहती है और वैश्विक मानकों से मेल खाती है। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम या शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई), 4 अगस्त, 2009 को अधिनियमित भारत की संसद का एक अधिनियम है, जो 6 साल से कम उम्र के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के महत्व के तौर–तरीकों का वर्णन करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत भारत में 1 अप्रैल, 2010

टिप्पणी

को अधिनियम लागू होने पर भारत शिक्षा को हर बच्चे का मौलिक अधिकार बनाने वाले 135 देशों में से एक बन गया।

यह अधिनियम 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाता है और प्राथमिक विद्यालयों में न्यूनतम मानदंड निर्दिष्ट करता है। इसके लिए सभी निजी स्कूलों को बच्चों के लिए 25% सीटें आरक्षित करने की आवश्यकता है (सार्वजनिक–निजी भागीदारी योजना के हिस्से के रूप में राज्य द्वारा प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए)। आर्थिक स्थिति या जाति आधारित आरक्षण के आधार पर बच्चों को निजी स्कूलों में प्रवेश दिया जाता है। यह सभी गैर–मान्यता प्राप्त स्कूलों को प्रतिबंधित करता है, और प्रवेश के लिए बच्चे या माता–पिता के बिना किसी दान या कैपिटेशन शुल्क और साक्षात्कार के प्रावधान नहीं करता है। अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी भी बच्चे को रोका नहीं जाएगा, निष्कासित नहीं किया जाएगा या बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता नहीं होगी। स्कूल छोड़ने वालों को समान उम्र के छात्रों के बराबर लाने के लिए विशेष प्रशिक्षण का भी प्रावधान है।

आरटीई अधिनियम शिक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करेगा और इसे प्रदान करने के लिए सुविधाएं स्थापित करेगा। भारत के लिए विश्व बैंक के शिक्षा विशेषज्ञ सैम कार्लसन ने कहा हैः "आरटीई अधिनियम दुनिया का पहला कानून है जो सरकार पर नामांकन, उपस्थिति और पूर्णता सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी डालता है। यह माता–पिता की जिम्मेदारी है कि वे बच्चों को भेजें। 18 वर्ष की आयु तक विकलांग व्यक्तियों के शिक्षा का अधिकार एक अलग कानून – विकलांग व्यक्ति अधिनियम के तहत निर्धारित किया गया है। अधिनियम में स्कूल के बुनियादी ढांचे, शिक्षक–छात्र अनुपात और संकाय में सुधार के संबंध में कई अन्य प्रावधान किए गए हैं।

भारतीय संविधान में शिक्षा एक समवर्ती मुद्दा है और केंद्र और राज्य दोनों इस मुद्दे पर कानून बना सकते हैं। अधिनियम इसके कार्यान्वयन के लिए केंद्र, राज्य और स्थानीय निकायों के लिए विशिष्ट जिम्मेदारियां निर्धारित करता है। राज्य इस बात पर जोर देते रहे हैं कि सार्वभौमिक शिक्षा के लिए आवश्यक सभी स्कूलों में उचित मानक की शिक्षा देने के लिए उनके पास वित्तीय क्षमता की कमी है। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि केंद्र सरकार (जो अधिकांश राजस्व एकत्र करती है) को राज्यों को सब्सिडी देने की आवश्यकता होगी। धन की आवश्यकता और वित्त पोषण का अध्ययन करने के लिए गठित एक समिति ने शुरू में अनुमान लगाया था कि अधिनियम को लागू करने के लिए पांच वर्षों में INR 1710 बिलियन या 1.71 ट्रिलियन (US$38.2 बिलियन) की आवश्यकता थी, और अप्रैल 2010 में केंद्र सरकार ने इसे लागू करने के लिए धन साझा करने पर सहमति व्यक्त की।

2011 में एक महत्वपूर्ण विकास दसवीं कक्षा (16 वर्ष की आयु) तक और पूर्वस्कूली आयु सीमा में शिक्षा के अधिकार का विस्तार करने के लिए सैद्धांतिक रूप से लिया गया निर्णय रहा है। सीएबीई समिति इन परिवर्तनों को करने के निहितार्थों को देखने की प्रक्रिया में है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अधिनियम की एक वर्ष की वर्षगांठ पर अधिनियम के कार्यान्वयन की स्थिति पर एक रिपोर्ट जारी की गई थी। रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि छह से 14 आयु वर्ग के 8.1 मिलियन बच्चे स्कूल से बाहर रहते हैं और देश भर में 5,08000 शिक्षकों की कमी है। देश में अग्रणी शिक्षा नेटवर्क का प्रतिनिधित्व करने वाले आरटीई फोरम की एक छाया रिपोर्ट, हालांकि, निष्कर्षों को चुनौती देते हुए बताती है कि कई प्रमुख कानूनी प्रतिबद्धताएं समय से पीछे हो रही हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी पूर्वोत्तर में अधिनियम को लागू करने की मांग में हस्तक्षेप किया है। इसने सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में शिक्षकों के बीच वेतन समानता सुनिश्चित करने के लिए कानूनी आधार भी प्रदान किया है।

राज्य में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन के प्रभावी कार्यान्वयन और निरंतर निगरानी के लिए यह बताया गया है कि आरटीई अधिनियम नया नहीं है। अधिनियम में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का विरोध किया गया क्योंकि अधिकांश आबादी निरक्षर थी। भारत के संविधान में अनुच्छेद 45 को एक अधिनियम के रूप में स्थापित किया गया था। राज्य इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर, सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।

चूंकि वह समय सीमा कई दशक पहले पारित होने वाली थी, उस समय के शिक्षा मंत्री एम.सी. छागला ने यादगार रूप से कहा– "हमारे संविधान के पिताओं का इरादा यह नहीं था कि हम सिर्फ हॉवेल स्थापित करें, छात्रों को वहां रखें, अप्रशिक्षित शिक्षक दें, उन्हें बुराई दें। पाठ्यपुस्तकें, खेल का मैदान नहीं, और कहें, हमने अनुच्छेद 45 का अनुपालन किया है और प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा है ... उनका मतलब था कि हमारे बच्चों को वास्तविक शिक्षा 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच दी जानी चाहिए" – (एम.सी. छागला, 1964)।

1990 के दशक में, विश्व बैंक ने ग्रामीण समुदायों की आसान पहुंच के भीतर स्कूलों को स्थापित करने के लिए कई उपायों को वित्त पोषित किया। इस प्रयास को 1990 के दशक में सर्व शिक्षा अभियान मॉडल में समेकित किया गया था। आरटीई इस प्रक्रिया को और आगे ले जाता है और स्कूलों में बच्चों के नामांकन को राज्य का विशेषाधिकार बना देता है।

शिक्षा एक शक्तिशाली उपकरण है जिसके द्वारा आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर पड़े वयस्क और बच्चे खुद को गरीबी से बाहर निकाल सकते हैं और नागरिकों के रूप में पूरी तरह से भाग ले सकते हैं।

3.4.5 आरटीई (RTE) ACT 2009 : मुख्य विशेषताएं

शिक्षा के अधिकार अधिनियम की एक लम्बी कहानी है। प्रारंभ में भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में यह घोषणा की गई थी कि–

राज्य संविधान के प्रारंभ से 10 वर्ष की कालावधि के अंदर सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु समाप्ति तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रबंध करने का प्रयास करेगा और तभी से राज्यों ने 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की अनिवार्य एवं निःशुल्क

शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास शुरू किया। आगे चलकर 2002 में 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 21 क जोड़ा गया जो इस प्रकार है –

राज्य 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने की ऐसी रीति में, जो राज्य विधि द्वारा अवधारित करे उपबंध करेगा।

इसी 86वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के भाग 4 क में वर्णित मूल कर्तव्यों में एक नया मूल कर्तव्य 51 (ट) जोड़ा गया जो इस प्रकार है–

"माता पिता या संरक्षक 6 से 14 वर्ष तक की आयु वाले, अपने यथास्थिति बच्चा या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें।"

आगे चलकर 2009 में बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009) पास किया गया। इसे संक्षेप में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (Right to Education Act, RTE) कहते हैं। इस अधिनियम के अनुसार 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों को कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है। सरकार ने 1 अप्रैल, 2010 से इसे कानून के रूप में लागू भी कर दिया है। इसके मुख्य तत्व प्रस्तुत हैं–

(1) **संक्षिप्त नाम**– इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (Right to Education Act, 2009) है।

(2) **परिभाषाएं**– इस अधिनियम में प्रयुक्त विशेष शब्दों को परिभाषित किया गया है, जिनका स्पष्टीकरण आगे संदर्भवश कर दिया है।

(3) **निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का बच्चे का अधिकार**– 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को, प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी आसपास के विद्यालय में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(4) **प्रवेश न दिए गए बच्चों या जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की है, के लिए विशेष उपबंध**– यदि कोई बच्चा 6 वर्ष की आयु पर किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं ले पाता है तो वह बाद में अपनी उम्र के अनुरूप कक्षा में प्रवेश ले सकता है। यदि वह निर्धारित 14 वर्ष की आयु तक प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाता, तो उसके बाद भी पढ़ाई पूरी होने तक, उसे निःशुल्क शिक्षा दी जाती रहेगी।

(5) **अन्य विद्यालय में स्थानांतरण का अधिकार**– यदि किसी स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा पूरा करने का प्रावधान नहीं है अथवा किसी भी कारण से कोई छात्र एक स्कूल से दूसरे स्कूल जाना चाहता है तो उसे किसी दूसरे स्कूल में स्थानांतरण लेने का अधिकार होगा।

(6) **राज्य सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों का विद्यालय स्थापित करने का कर्तव्य**– इस अधिनियम के लागू होने के तीन सालों के भीतर राज्य सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों को पड़ोस का स्कूल स्थापित करना होगा, जिस क्षेत्र में ऐसा स्कूल नहीं है।

टिप्पणी

(7) **वित्तीय तथा अन्य उत्तरदायित्वों में हिस्सा बांटना**– केन्द्र सरकार इस अधिनियम को लागू करने में आने वाले खर्चों का पूर्वानुमान तैयार करेगी और राज्य सरकारों को आवश्यक तकनीकी सहायता और संसाधन उपलब्ध कराएगी।

(8) **राज्य सरकारों के कर्तव्य**– राज्य सरकारें 6 से 14 वर्ष के प्रत्येक बच्चे का प्रवेश और उपस्थिति सुनिश्चित करेगी। साथ ही यह सुनिश्चित करेगी कि कमजोर और वंचित वर्गों के बच्चों के साथ कोई भेदभाव नहीं हो। वे विद्यालय भवन, शिक्षक और शिक्षण सामग्री सहित आधारभूत संरचना की उपलब्धता सुनिश्चित करेगी और बच्चों को उम्दा किस्म की शिक्षा और शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराएगी।

(9) **स्थानीय प्राधिकारियों के कर्तव्य**– स्थानीय प्राधिकारी उपर्युक्त धारा 8 में वर्णित राज्य सरकार के समस्त कर्तव्यों के साथ–साथ अपने क्षेत्र के बच्चों का अभिलेख रखेंगे, विद्यालय के कामकाज की निगरानी सुनिश्चित करेंगे तथा शैक्षणिक कैलेण्डर तैयार करेंगे।

(10) **माता पिता और संरक्षक का कर्तव्य**– प्रत्येक अभिभावक का यह दायित्व होगा कि वह 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चों को विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती कराए।

(11) **राज्य सरकारों द्वारा विद्यालय पूर्व शिक्षा की व्यवस्था करना**– तीन वर्ष की आयु से ऊपर के बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा के लिए तैयार करने और जन्म से 6 वर्ष तक के बालकों के लिए आरंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के लिए राज्य सरकारें एवं स्थानीय प्राधिकारी जरूरी इंतजाम करेंगी।

(12) **निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए विद्यालय के दायित्व की सीमा**– सरकारी विद्यालय तो निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेंगे ही, निजी और विशेष श्रेणी वाले विद्यालयों को भी आर्थिक रूप से निर्बल समुदायों के बच्चों के लिए पहली कक्षा में 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने होंगे।

(13) **प्रवेश के लिए किसी प्रतिव्यक्ति फीस और अनुवीक्षण प्रक्रिया का न होना**– कोई भी विद्यालय न तो दान या चंदा लेगा और न ही अभिभावक या बच्चे के चयन के लिए कोई प्रणाली अपना सकेगा।

(14) **प्रवेश के लिए आयु का सबूत**– जन्म प्रमाण पत्र के अभाव में किसी भी बच्चे को प्रवेश देने से इनकार नहीं किया जा सकता।

(15) **प्रवेश से इनकार न करना**– स्कूल में प्रवेश तिथि के निकल जाने के बाद भी किसी भी बच्चा को प्रवेश देने से इनकार नहीं किया जायेगा।

(16) **रोकने और निष्कासन का प्रतिरोध**– किसी भी बच्चे को को किसी कक्षा में रोका नहीं जाएगा और न ही स्कूल से निष्कासित किया जायेगा।

(17) **बच्चे को शारीरिक दण्ड और मानसिक उत्पीड़न**– किसी भी बच्चे को शारीरिक या मानसिक यातना नहीं दी जाएगी।

(18) **मान्यता प्रमाण पत्र प्राप्त किए बिना किसी विद्यालय का स्थापित न किया जाना**– बिना मान्यता प्राप्त किए कोई भी स्कूल नहीं चलाया जायेगा

और उन्हीं स्कूलों को मान्यता दी जाएगी जो धारा 19 में वर्णित मानक पूरे करते हों।

(19) **विद्यालय के मान और मानक**– जो स्कूल अधिनियम लागू होने से पूर्व स्थापित हो चुके थे तथा निर्धारित मानक पूरे नहीं करते हैं, उन्हें अधिनियम लागू होने के तीन वर्ष के अंदर समस्त मानक पूरे करने होंगे।

(20) **अनुसूची का संशोधन करने की शक्ति**– केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा, किसी भाग या मानक को अनुसूची में परिवर्द्धन (Adding) या उसका लोप (Omitting) करके उसका संशोधन कर सकेगी।

(21) **विद्यालय प्रबंध समिति**– अनुदान न पाने वाले वाले निजी स्कूलों को छोड़कर सभी स्कूल एक स्कूल प्रबंधन समिति का गठन करेंगे जिसमें जन प्रतिनिधि, अभिभावक और शिक्षक शामिल होंगे। यह समिति कामकाज का मानीटर करने जैसे कार्य करेगी।

(22) **विद्यालय विकास योजना**– धारा 21 में वर्णित विद्यालय प्रबंध समिति स्कूल विकास की योजना बनाने और उसकी संस्तुति करने का कार्य करेगी।

(23) **शिक्षकों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं और सेवा के निबंधन और शर्तें**– शिक्षकों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता का निर्धारण केन्द्र सरकार करेगी।

(24) **शिक्षकों के कर्तव्य और शिकायतों को दूर करना**– शिक्षकों का कर्तव्य होगा कि वे नियमित समय से स्कूल में उपस्थित हों, पाठ्यक्रम पूरा करें। आवश्यकतानुसार अतिरिक्त शिक्षण करें तथा अभिभावक बैठकें आयोजित करें।

(25) **छात्र शिक्षक अनुपात**– इस अधिनियम के लागू होने के 6 महीने बाद राज्य सरकार और स्थानीय अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षक एवं छात्र अनुपात प्रधानाध्यापक को छोड़कर 1 : 40 से अधिक न हो।

(26) **शिक्षकों की रिक्तियों का भरा जाना**– राज्य सरकार और स्थानीय अधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि किसी स्कूल में शिक्षक के रिक्त पद कुल स्वीकृत पद संख्या के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

(27) **गैर शैक्षिक प्रयोजनों के लिए शिक्षकों को अभिनियोजित किए जाने पर रोक**– शिक्षकों से गैर शैक्षणिक कार्य (सिर्फ जनगणना, चुनाव और आपदा राहत को छोड़कर) नहीं कराए जाएंगे।

(28) **शिक्षक द्वारा प्राइवेट ट्यूशन पर रोक**– कोई शिक्षक/शिक्षिका प्राइवेट ट्यूशन या प्राइवेट शिक्षण क्रियाकलाप में स्वयं को नहीं लगायेगा/लगायेगी।

(29) **पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया**– सरकार द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा प्राधिकार (परिषद) संविधान में निहित मूल्यों के अनुरूप इसका निर्धारण करेगा और बच्चे के बहुमुखी विकास पर ध्यान देने के साथ–साथ उसे भय, कष्ट और चिंता से मुक्त कराने का भी काम करेगा। मूल्यांकन व्यापक और सतत् होगा।

टिप्पणी

(30) **परीक्षा और समापन प्रमाण पत्र**– किसी भी बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण होने से पहले बोर्ड की कोई भी परीक्षा नहीं देनी होगी। प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने वाले प्रत्येक बच्चे को प्रमाण पत्र दिया जाएगा।

(31) **बच्चों के शिक्षा के अधिकार को मानीटर करना**– बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम 2005 (Commission for Protection of Child Rights Act, 2005) के प्रावधानों के अन्तर्गत गठित राष्ट्रीय या राज्य बाल संरक्षण आयोग (Commission for Protection of Child Rights) इस अधिनियम के तहत प्रदत्त अधिकारों का परीक्षण और देखभाल की समीक्षा करेंगे।

(32) **शिकायतों को दूर करना**– उपयुक्त धारा में वर्णित बाल संरक्षण आयोग निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के बच्चे के अधिकार के संबंध में प्राप्त शिकायतों की जांच करेंगे।

(33) **राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का गठन**– प्रस्तावित राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का गठन केन्द्र सरकार करेगी। इसका काम अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी ढंग से लागू करने के बारे में केन्द्र सरकार को परामर्श देना होगा।

(34) **राज्य सलाहकार परिषद का गठन**– प्रस्तावित राज्य सलाहकार परिषद का गठन राज्य सरकारें करेंगी। इसका काम अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी ढंग से लागू करने के बारे में राज्य सरकार को परामर्श देना होगा।

(35) **निदेश जारी करने की शक्ति**– धारा 35 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार राज्य सरकार को, राज्य सरकार स्थानीय अधिकारियों को तथा स्थानीय अधिकारी स्कूल प्रबंधन समितियों को अधिनियम के कार्यान्वयन के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकेंगे और निदेश दे सकेंगे।

(36) **अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी**– शिक्षा का अधिकार, 2009 अधिनियम का पालन न करने पर धारा 13, 18 और 19 के अधीन दण्डनीय अपराधों के लिए कोई भी अभियोजन समुचित सरकार अथवा अधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना संस्थित नहीं किया जाएगा।

(37) **सद्भावपूर्वक की गई कार्यवाही के लिए संरक्षण**– इस अधिनियम अथवा इसके बावत बनाये गए नियमों और आदेशों के पालन में सरकार, आयोग, स्थानीय प्राधिकारी, स्कूल प्रबंधन समिति या अधिनियम से जुड़े किसी व्यक्ति द्वारा सच्चे विश्वास (Good Faith) के साथ किए गए कार्य पर कोई मुकदमा या वैधिक प्रक्रिया नहीं चलाई जा सकेगी।

(38) **राज्य सरकारों को नियम बनाने की शक्ति**– राज्य सरकारें अधिनियम के उपबंधों (Provisions) के कार्यान्वयन के लिए नियमन और अधिसूचना (Notification) बना सकेंगी।

3.4.6 शिक्षा का अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009–एक बहस

शिक्षा एक मौलिक मानव अधिकार है और अन्य सभी मानवाधिकारों के प्रयोग के लिए आवश्यक है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है और

महत्वपूर्ण विकास लाभ प्राप्त करता है। फिर भी लाखों बच्चे और वयस्क शिक्षा के अवसरों से वंचित हैं, कई गरीबी के परिणामस्वरूप। संयुक्त राष्ट्र और यूनेस्को के मानक उपकरण शिक्षा के अधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय कानूनी दायित्वों को निर्धारित करते हैं। ये उपकरण बिना किसी भेदभाव या बहिष्कार के, अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा तक पहुंच का आनंद लेने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार को बढ़ावा देते हैं और विकसित करते हैं। ये उपकरण उस महान महत्व के साक्षी हैं जो सदस्य राज्य और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय शिक्षा के अधिकार को साकार करने के लिए नियामक कार्रवाई से जोड़ते हैं। यह सरकारों के लिए है कि वे सभी अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने और अधिक प्रभावी ढंग से शिक्षा रणनीतियों को लागू करने और निगरानी करने के संबंध में कानूनी और राजनीतिक दोनों दायित्वों को पूरा करें। शिक्षा एक शक्तिशाली उपकरण है जिसके द्वारा आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर पड़े वयस्क और बच्चे खुद को गरीबी से बाहर निकाल सकते हैं और नागरिकों के रूप में पूरी तरह भाग ले सकते हैं। भारत दुनिया के 19% बच्चों का घर है। इसका मतलब यह है कि भारत में दुनिया की सबसे बड़ी संख्या में युवा हैं, जो काफी हद तक फायदेमंद है, खासकर चीन जैसे देशों की तुलना में, जहां उम्र बढ़ने की आबादी है। अच्छी खबर यह नहीं है कि भारत में भी दुनिया की एक तिहाई निरक्षर आबादी है। ऐसा नहीं है कि साक्षरता का स्तर नहीं बढ़ा है, बल्कि यह है कि वृद्धि की दर तेजी से धीमी हो रही है। उदाहरण के लिए, जबकि 1991 से 2001 तक कुल साक्षरता वृद्धि 12.6% थी, यह घटकर 9.21% हो गई है। इस चिंताजनक प्रवृत्ति का मुकाबला करने के लिए, भारत सरकार ने मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम का प्रस्ताव रखा, जिससे शिक्षा को 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया गया।

शिक्षा का अधिकार शिक्षा का सार्वभौमिक अधिकार है। यह एक मानव अधिकार के रूप में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा में मान्यता प्राप्त है जिसमें सभी के लिए मुफ्त, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अधिकार, सभी के लिए माध्यमिक शिक्षा को विकसित करने का दायित्व शामिल है, विशेष रूप से मुफ्त माध्यमिक के प्रगतिशील परिचय द्वारा शिक्षा, साथ ही उच्च शिक्षा के लिए समान पहुंच विकसित करने का दायित्व, आदर्श रूप से मुफ्त उच्च शिक्षा के प्रगतिशील परिचय द्वारा। शिक्षा के अधिकार में उन व्यक्तियों के लिए बुनियादी शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी भी शामिल है, जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं की है। शिक्षा के प्रावधानों तक इन पहुंच के अलावा, शिक्षा के अधिकार में शिक्षा प्रणाली के सभी स्तरों पर भेदभाव को दूर करने, न्यूनतम मानक निर्धारित करने और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने की बाध्यता शामिल है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009

बच्चों का मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ। यह भारत के लोगों के लिए एक ऐतिहासिक दिन था क्योंकि इस दिन से शिक्षा के अधिकार को जीवन के अधिकार के समान कानूनी दर्जा दिया जाएगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21। द्वारा प्रदान किया गया। 6–14 वर्ष के आयु वर्ग के प्रत्येक बच्चे को उसके पड़ोस के आस–पास की आयु के उपयुक्त कक्षा में 8 वर्ष की प्रारंभिक शिक्षा प्रदान की जाएगी।

संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 ने भारत के संविधान में छह से चौदह वर्ष के आयु वर्ग के सभी बच्चों को मौलिक अधिकार के रूप में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए अनुच्छेद 21–ए को इस तरह से शामिल किया जैसे कि राज्य कानून द्वारा, निर्धारित कर सकता है। बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009, जो अनुच्छेद 21–ए के तहत परिकल्पित परिणामी कानून का प्रतिनिधित्व करता है, का अर्थ है कि प्रत्येक बच्चे को एक औपचारिक स्कूल में संतोषजनक और समान गुणवत्ता की पूर्णकालिक प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार है। कुछ आवश्यक मानदंडों और मानकों को पूरा करता है।

अनुच्छेद 21–ए और आरटीई अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 को लागू हुए। आरटीई अधिनियम के शीर्षक में 'मुफ्त और अनिवार्य' शब्द शामिल हैं। 'निःशुल्क शिक्षा' का अर्थ है कि एक बच्चे के अलावा कोई भी बच्चा, जिसे उसके माता–पिता ने किसी ऐसे स्कूल में प्रवेश दिलाया है, जो उपयुक्त सरकार द्वारा समर्थित नहीं है, किसी भी प्रकार के शुल्क दिलाया या खर्च का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। 'अनिवार्य शिक्षा' 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों द्वारा प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने और प्रवेश, उपस्थिति और पूर्णता सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त सरकार और स्थानीय अधिकारियों पर एक दायित्व डालती है। इसके साथ, भारत एक अधिकार आधारित ढांचे की ओर बढ़ गया है, जो आरटीई अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, संविधान के अनुच्छेद 21 ए में निहित इस मौलिक बाल अधिकार को लागू करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों पर कानूनी दायित्व डालता है।

मानव अधिकार के रूप में शिक्षा की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता

बड़ी संख्या में मानवाधिकार समस्याएं हैं, जिन्हें तब तक हल नहीं किया जा सकता जब तक कि शिक्षा के अधिकार को अन्य मानवाधिकारों को अनलॉक करने की कुंजी के रूप में संबोधित नहीं किया जाता है। शिक्षा के अधिकार को 1948 में अपनाए गए संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (यूडीएचआर) में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है, जिसमें कहा गया है:

"सभी को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा मुफ्त होनी चाहिए, कम से कम प्रारंभिक और मौलिक चरणों में। प्रारंभिक शिक्षा आवश्यक होगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा आम तौर पर उपलब्ध कराई जाएगी और उच्च शिक्षा योग्यता के आधार पर सभी के लिए समान रूप से सुलभ होगी।" (अनुच्छेद 26) यूडीएचआर के अलावा, कई अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों में शिक्षा के अधिकार की पुष्टि, संरक्षण और प्रचार किया जाता है, जैसे कि निम्नलिखित:

- रोजगार और व्यवसाय के संबंध में भेदभाव से संबंधित सम्मेलन (1958) – अनुच्छेद 3
- शिक्षा में भेदभाव के खिलाफ सम्मेलन (1960)
- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय करार (1966) – अनुच्छेद 13
- महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन (सीईडीएडब्ल्यू) (1981) –अनुच्छेद 10

- बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (1989) – अनुच्छेद 28 और 29

इसलिए इन अंतरराष्ट्रीय संधियों द्वारा शिक्षा के अधिकार को लंबे समय से न केवल शैक्षिक प्रावधान तक पहुंच के रूप में मान्यता दी गई है, बल्कि शैक्षिक प्रणाली के सभी स्तरों पर भेदभाव को खत्म करने, न्यूनतम मानकों को निर्धारित करने और गुणवत्ता में सुधार करने के दायित्व को भी शामिल किया गया है। भारत में इन संधियों की प्रयोज्यता के संबंध में, यह उल्लेख करना उचित है कि भारत ICESCR, CERD कन्वेंशन, CEDAW कन्वेंशन और बाल अधिकारों पर कन्वेंशन का एक राज्य पक्ष है।

शिक्षा के अधिकार को बढ़ावा देने के लिए प्रयासरत दुनिया भर के प्रमुख संगठन हैं:

1. संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को)
2. संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ)
3. विश्व बैंक
4. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ)

भारत में शिक्षा का अधिकारः लागू इकाइयां और चुनौतियां

शिक्षा के मौलिक अधिकार का अधिनियमन, अभी भी संसदीय प्रक्रिया में है, लेकिन व्यापक रूप से जल्द ही वास्तविकता बनने की उम्मीद है, एक ऐसे देश के लिए महत्वाकांक्षी है जिसने दशकों तक सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा की बयानबाजी को लागू करने में नीतिगत विफलता देखी है।

शिक्षा न तो मुफ्त है और न ही अनिवार्य। राज्य के लिए एक विधायी अधिनियम के माध्यम से शिक्षा प्रावधान की गारंटी देना एक प्रमुख बदलाव है, प्रावधान के इतिहास को देखते हुए, जो अल्पसंख्यक शहरी अभिजात वर्ग के हितों को विशेषाधिकार देने वाले वंचित समूहों को लगातार विफल कर रहा है। लगभग 110 मिलियन बच्चे स्कूली शिक्षा प्रणाली से बाहर रहते हैं, और उनमें से लगभग 60% जो स्कूल में दाखिला लेते हैं, कक्षा 8 (वाधवा 2001) तक पढ़ाई छोड़ देते हैं। जैसा कि अध्ययनों ने समय के साथ लगातार दिखाया है, जो बहिष्कृत हैं वे व्यापक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताने–बाने के भीतर असमानताओं को दर्शाते हैं, विशेष रूप से जाति, वर्ग और लिंग के। समावेश की धुरी पर निम्नलिखित व्यावसायिक और सामाजिक वर्गीकरणों के आसपास की भविष्यवाणी की जाती है – उच्च जातियों के बच्चे या छोटे परिवारों से, या ऐसे घरों से जो आर्थिक रूप से बेहतर हैं या गैर–कृषि व्यवसायों पर निर्भर हैं, माता–पिता जो बेहतर शिक्षित हैं, या गांवों से हैं। जिनकी स्कूलों तक बेहतर पहुंच है (वैद्यनाथन और नायर 2001) – इस प्रकार सामाजिक स्थिति, आर्थिक अवसर और शिक्षा में राज्य द्वारा प्रदत्त संसाधनों को हासिल करने में स्थानीय सामुदायिक नेतृत्व द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति द्वारा निभाई गई भूमिकाओं को रेखांकित करते हैं। इन कुल्हाड़ियों के पार लिंग अंतर है, जो कमोबेश सामाजिक समूहों में सुसंगत है।

शिक्षा के क्षेत्र में सभी नीतिगत प्रयासों और अधिक व्यापक रूप से विकास में प्रवचन और परिचालन ढांचे के बीच की खाई को लंबे समय से सभी के लिए समान शैक्षिक अवसर हासिल करने में भारत के खराब प्रदर्शन के कारण के रूप में उद्धृत

टिप्पणी

किया गया है। समानता के लिए भारतीय संविधान में की गई कई प्रतिबद्धताओं के बावजूद, कुछ समूहों द्वारा सामना किए गए ऐतिहासिक नुकसान और सार्वभौमिक शिक्षा को संबोधित करते हुए, जमीन पर नीतियों ने आधुनिक भारतीय राष्ट्र–राज्य के जन्म के समय विकसित महत्वाकांक्षी दृष्टि को पूरा करने के लिए बहुत कम किया है। शिक्षा के अधिकार की गारंटी देने में बदलाव के साथ भी यह अंतर बने रहने के खतरे में दिखाई देता है।

भारतीय संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का अधिकार

भारतीय संविधान को सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध एक दस्तावेज के रूप में जाना जाता है। विशेषज्ञ की राय के अनुसार, अवसर की समानता के प्रावधान को वास्तविकता बनाने के लिए साक्षरता आधारशिला है। इसलिए भारतीय संविधान ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के सार के रूप में मान्यता दी है।

जिस न्यायिक निर्णय से शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार के रूप में निकला, वह उच्चतम न्यायालय द्वारा मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य में दिया गया निर्णय था। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने जस्टिस कुलदीप सिंह और आर.एम. सहाय ने कैपिटेशन ई चार्ज करने की प्रथा के संवैधानिक पर निर्णय लेते हुए कहा कि:

- शिक्षा का अधिकार सीधे जीवन के अधिकार से प्रवाहित होता है। जीवन के अधिकार और किसी व्यक्ति की गरिमा को तब तक सुनिश्चित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके साथ शिक्षा का अधिकार न हो।'
- इस फैसले की तर्कसंगतता की जांच जेपी उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में पांच न्यायाधीशों की पीठ ने की थी, जहां लागू करने की क्षमता और शिक्षा के अधिकार की सीमा को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया था:
- "शिक्षा के अधिकार का अर्थ यह भी है कि एक नागरिक को यह अधिकार है कि वह राज्य से अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमा के भीतर उसे शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने का आह्वान करे।"
- इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बंधुआ मुक्ति मोर्चा, आदि बनाम भारत संघ में भी दोहराया गया है, विशेष रूप से इस संबंध में दिए गए पहले के फैसले का उल्लेख निम्नानुसार है:

"महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक और उच्च शिक्षा बोर्ड बनाम के.एस. गांधी के अनुसार माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार माना गया। जेपी उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में, एक संविधान पीठ ने 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को मौलिक अधिकार माना था। इसलिए यह राज्य का दायित्व होगा कि वह संविधान के अनुच्छेद 39 (ई) और (एफ) के तहत प्रदान की गई सुविधाएं और अवसर प्रदान करे और गरीबी तथा अनियमितता के कारण उनके बचपन के शोषण को रोके।

शिक्षा के अधिकार का दावा करने के लिए स्थान

शिक्षा का 'अधिकार' यह स्वीकार करने के लिए एक ढांचा प्रदान करता है कि बुनियादी शिक्षा धार्मिक, जातीय या जाति संबद्धता या पहचान, लिंग या वर्ग, विकलांगता या क्षमता की परवाह किए बिना प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। हालांकि, पहुंच पर ध्यान,

जैसा कि पहले तर्क दिया गया था, एजेंडा को एक बहुत ही संकीर्ण रूप से तैयार नीति एजेंडा तक सीमित करता है जो नामांकन और सार्वभौमिकरण के लिए अंतरराष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अधिक चिंतित है, कुछ पारंपरिक संबंधों को ध्यान में रखते हुए, जिन्होंने बहिष्कार को आकार दिया है। राज्य के प्रशासकों, कुलीन ग्राम नेतृत्व, शिक्षकों और उनके समुदायों के भीतर गरीब, निम्न–जाति समूहों के बीच संबंधों को सार्थक तरीके से बदलने के लिए बहुत कम किया गया है (सुब्रह्मण्यम 2000)। वैकल्पिक स्थानों और प्रक्रियाओं के निर्माण के माध्यम से इन संबंधों को पुनर्व्यवस्थित करने के प्रयास के बिना, जो उनके बहिष्कार को रेखांकित करता है, उनके दृष्टिकोण को सुनने के लिए, प्रस्ताव पर शिक्षा के बारे में वे क्या महसूस करते हैं, और वे शिक्षा को अपनी आर्थिक और सामाजिक उत्तरजीविता रणनीतियों में कैसे फिट करते हैं, शिक्षा का अधिकार उन लोगों के लिए सीमित होगा जो वास्तव में इस पर भरोसा करेंगे। जबकि इनमें से कई रिक्त स्थान शिक्षा के संबंध में उभरने लगे हैं, इन विभिन्न अभिनेता समूहों के अधिक से अधिक समेकन की प्रक्रियाओं के माध्यम से आवश्यकता होती है जो बहिष्कृत समूहों को आवाज विकसित करने और व्यक्त करने में सक्षम बनाती हैं।

वर्तमान में, छात्र 'अधिकारों' के अपने संस्करण के लिए राज्य को जवाबदेह ठहराने के लिए कानूनी स्थान एक विकल्प प्रदान करते हैं। हालांकि, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, ये स्थान अपने आप में उत्तोलन प्रदान करने के लिए अपर्याप्त हैं, और आगे केवल उन लोगों के अधिकारों को पहचानते हैं जो पहले से ही 'शामिल' हैं। शिक्षा 'गारंटी' योजनाएं, जैसे कि मध्य प्रदेश में चल रही योजनाएं (और अब प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए नई 'छाता' नीति के तहत एक राष्ट्रीय प्रतिबद्धता, सर्व शिक्षा अभियान), गैर–सेवारत क्षेत्रों में 'गारंटी' स्कूल जो उनकी मांग करते हैं, लेकिन फिर से, स्कूलों के प्रकार, उनकी गुणवत्ता और सामग्री नागरिक कार्रवाई के दायरे से बाहर हैं और पूरी तरह से राज्य द्वारा नियंत्रित हैं। राज्य की ओर निर्देशित दाता वित्त पोषण के बढ़ते स्तर और क्षेत्र और उप–क्षेत्र दृष्टिकोण के तहत नीतिगत रिक्त स्थान को मजबूत करने के प्रयास के साथ, नागरिक समाज और अन्य संगठनों पर राज्य के अधिकार को और अधिक क्रिस्टलीकृत करने और पारदर्शिता को कम करने का जोखिम है। जबकि गैर–सरकारी संगठन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण नवप्रवर्तक रहे हैं, विशेष रूप से हाल के दिनों में, उनके कई 'मॉडल' सीधे राज्य के कार्यक्रमों में समाहित किए जा रहे हैं, बिना इस स्पष्ट विश्लेषण के कि ये मॉडल क्या पेश करते हैं और वे किस आधार पर स्थानीय शिक्षा रणनीतियों को विकसित करने में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। सामुदायिक स्वामित्व, यहां तक कि जहां 'सामुदायिक भागीदारी' का आह्वान किया जाता है, क्योंकि यह राज्य के कार्यक्रमों में तेजी से बढ़ रहा है, असमानता के मूलभूत आधारों को संबोधित करने के लिए अपर्याप्त प्रयास हैं जो सबसे वंचित समूहों को अपने विचार व्यक्त करने से रोकते हैं। ग्राम शिक्षा समितियां (वीईसी), शिक्षा में सामुदायिक भागीदारी के नए चेहरे के रूप में घोषित, अक्सर बच्चों की शिक्षा सामग्री पर माता–पिता के विचारों को जानने के बजाय बच्चों को गोल करने और उन्हें स्कूल भेजने के उद्देश्य से बनाई गई नागरिक आवाज के नौकरशाही रूप हैं।

टिप्पणी

आरटीई अधिनियम प्रदान करता है:

1. बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार, पड़ोस के स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा का खराब समापन।
2. यह स्पष्ट करता है कि 'अनिवार्य शिक्षा' का अर्थ है कि छह से चौदह आयु वर्ग के प्रत्येक बच्चे को मुफ्त प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने और अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति और प्रारंभिक शिक्षा को पूरा करने के लिए उपयुक्त सरकार का दायित्व।
3. 'निःशुल्क' का अर्थ है कि कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार के शुल्क या व्यय का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा जो उसे प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने और पूरा करने से रोक सकता है।
4. यह एक गैर–प्रवेशित बच्चे के लिए उपयुक्त आयु वर्ग में भर्ती होने का प्रावधान करता है।
5. यह मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने और केंद्र और राज्य सरकारों के बीच वित्तीय और अन्य जिम्मेदारियों को साझा करने में उपयुक्त सरकारों, स्थानीय प्राधिकरण और माता–पिता के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को निर्दिष्ट करता है।
6. यह अन्य बातों के साथ–साथ छात्र शिक्षक अनुपात (पीटीआर), भवनों और बुनियादी ढांचे, स्कूल के कार्य दिवसों, शिक्षक के काम के घंटों से संबंधित मानदंडों और मानकों को निर्धारित करता है।
7. यह सुनिश्चित करके शिक्षकों की तर्कसंगत तैनाती प्रदान करता है कि प्रत्येक स्कूल के लिए निर्दिष्ट छात्र शिक्षक अनुपात बनाए रखा जाता है, न कि केवल राज्य या जिले या ब्लॉक के औसत के रूप में। इस प्रकार यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षक पोस्टिंग में कोई शहरी–ग्रामीण असंतुलन नहीं है। यह दस साल की जनगणना, स्थानीय प्राधिकरण, राज्य विधानसभाओं और संसद के चुनाव और आपदा राहत के अलावा गैर–शैक्षिक कार्यों के लिए शिक्षकों की तैनाती पर रोक लगाने का भी प्रावधान करता है।
8. यह उचित रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों, अर्थात आवश्यक प्रवेश और शैक्षणिक योग्यता वाले शिक्षकों की नियुक्ति का प्रावधान करता है।
9. यह प्रतिबंधित करता है (ए) शारीरिक दंड और मानसिक उत्पीड़न; (बी) बच्चों के प्रवेश के लिए स्क्रीनिंग प्रक्रियाएं; (सी) कैपिटेशन शुल्क; (डी) शिक्षकों द्वारा निजी ट्यूशन और (ई) बिना मान्यता के स्कूल चलाना।
10. यह संविधान में निहित मूल्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम के विकास के लिए प्रदान करता है, और जो बच्चे के सर्वांगीण विकास, बच्चे के ज्ञान, क्षमता और प्रतिभा पर निर्माण और बच्चे को भय, आघात और चिंता से मुक्त करना सुनिश्चित करेगा, बच्चों के अनुकूल और बाल केंद्रित शिक्षा की प्रणाली के माध्यम से।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के प्रमुख प्रावधान

शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं–

- छह से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक नजदीकी स्कूल में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा।
- इस उद्देश्य के लिए, कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार के शुल्क या खर्च का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा जो उसे प्रारंभिक शिक्षा को आगे बढ़ाने और पूरा करने से रोक सकता है।
- जहां छह वर्ष से अधिक उम्र के बच्चे को किसी स्कूल में प्रवेश नहीं दिया गया है या प्रवेश दिया गया है, वह अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर सका है, तो उसे उसकी उम्र के अनुकूल कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा।
- इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए, उपयुक्त सरकार और स्थानीय प्राधिकरण इस अधिनियम के शुरू होने से तीन साल की अवधि के भीतर, दिए गए क्षेत्र के भीतर, एक स्कूल की स्थापना करेगा, यदि यह स्थापित नहीं है।
- इस अधिनियम के प्रावधानों को पूरा करने के लिए धन उपलब्ध कराने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों की समवर्ती जिम्मेदारी होगी।
- यह अधिनियम माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए प्रत्येक बच्चे की पहुंच में सुधार की दिशा में एक आवश्यक कदम है।
- इस अधिनियम में वंचित समूहों, जैसे बाल मजदूरों, प्रवासी बच्चों, विशेष जरूरतों वाले बच्चों, या सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लिंग या ऐसे किसी भी कारक के कारण वंचित समूहों के लिए विशिष्ट प्रावधान शामिल हैं।
- इस अधिनियम के लागू होने से, यह भी आशा की जाती है कि लघु से मध्यम अवधि की योजनाओं में स्कूल छोड़ने, स्कूल न जाने वाले बच्चों, शिक्षा की गुणवत्ता और प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता के मुद्दों को संबोधित किया जाएगा।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम का प्रवर्तन देश को सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों (एमडीजी) और सभी के लिए शिक्षा (ईएफए) के उद्देश्यों और मिशन को प्राप्त करने के करीब लाता है और इसलिए यह भारत सरकार द्वारा एक ऐतिहासिक कदम है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के लाभ

आरटीई संविधान के अनुच्छेद 45 के तहत राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों का हिस्सा रहा है, जो संविधान के अध्याय 4 का हिस्सा है। संविधान के अध्याय 4 के अधिकार प्रवर्तनीय नहीं हैं। भारत के इतिहास में पहली बार हमने इस अधिकार को संविधान के अध्याय 3 में अनुच्छेद 21 के रूप में रखकर लागू करने योग्य बनाया है। यह बच्चों को मौलिक अधिकार के रूप में लागू शिक्षा के अधिकार का अधिकार देता है।

टिप्पणी

शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 की आलोचना

इस अधिनियम की जल्दबाजी में मसौदा तैयार करने, शिक्षा में सक्रिय कई समूहों से परामर्श नहीं करने, शिक्षा की गुणवत्ता पर विचार नहीं करने, निजी और धार्मिक अल्पसंख्यक स्कूलों के अपने सिस्टम को संचालित करने के अधिकारों का उल्लंघन करने और छह साल से कम उम्र के बच्चों को बाहर करने के लिए आलोचना की गई है। कई विचारों को 2000 के दशक के सर्व शिक्षा अभियान की नीतियों को जारी रखने और 90 के दशक के विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम डीपीईपी के रूप में देखा जाता है, दोनों ने ग्रामीण क्षेत्रों में कई स्कूलों की स्थापना करते हुए, अप्रभावी और भ्रष्टाचार से ग्रस्त होने के लिए आलोचना की गई।

सरकारी स्कूल प्रणाली द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता अच्छी नहीं है। जबकि यह देश में प्रारंभिक शिक्षा का सबसे बड़ा प्रदाता बना हुआ है, सभी मान्यता प्राप्त स्कूलों का 80% हिस्सा है, यह शिक्षकों की कमी और बुनियादी ढांचे की कमी से ग्रस्त है। कई बस्तियों में स्कूलों की पूरी तरह कमी है। सरकारी स्कूलों में अनुपस्थिति और कुप्रबंधन और राजनीतिक सुविधा पर नियुक्तियों के आरोप भी लगातार लगते रहे हैं। सरकारी स्कूलों में मुफ्त लंच के आकर्षण के बावजूद कई अभिभावक अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजते हैं। कुछ राज्यों में निजी ग्रामीण स्कूलों में औसत स्कूली शिक्षकों का वेतन (लगभग 4,000 रुपये प्रति माह) सरकारी स्कूलों की तुलना में काफी कम है। नतीजतन, कम लागत वाले निजी स्कूलों के समर्थकों ने सरकारी स्कूलों को पैसे के लिए खराब मूल्य के रूप में आलोचना की।

निजी स्कूलों में जाने वाले बच्चों को सरकारी स्कूलों में जाने के लिए मजबूर होने वाले सबसे कमजोर वर्गों के खिलाफ भेदभाव करते हुए, लाभ में देखा जाता है। इसके अलावा, इस प्रणाली की ग्रामीण अभिजात वर्ग के लिए खानपान के रूप में आलोचना की गई है, जो उस देश में स्कूल की फीस वहन करने में सक्षम हैं जहां बड़ी संख्या में परिवार पूर्ण गरीबी में रहते हैं। इन मुद्दों को संबोधित नहीं करने के लिए भेदभावपूर्ण के रूप में अधिनियम की आलोचना की गई है। जाने–माने शिक्षाविद् अनिल सदगोपाल ने जल्दबाजी में तैयार किए गए अधिनियम के बारे में कहाः

- यह हमारे बच्चों के साथ धोखा है। यह न तो मुफ्त शिक्षा देता है और न ही अनिवार्य शिक्षा। वास्तव में, यह केवल वर्तमान बहुस्तरीय, निम्न गुणवत्ता वाली स्कूली शिक्षा प्रणाली को वैध बनाता है जहां भेदभाव जारी रहेगा।
- उद्यमी गुरचरण दास ने कहा कि 54% शहरी बच्चे निजी स्कूलों में जाते हैं, और यह दर 3% प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है। "गरीब बच्चे भी सरकारी स्कूलों को छोड़ रहे हैं। वे इसलिए जा रहे हैं क्योंकि शिक्षक नहीं आ रहे हैं।" हालांकि, अन्य शोधकर्ताओं ने यह कहकर तर्क का खंडन किया है कि निजी स्कूलों में गुणवत्ता के उच्च स्तर के प्रमाण अक्सर गायब हो जाते हैं जब अन्य कारकों (जैसे पारिवारिक आय और माता–पिता की साक्षरता) के लिए जिम्मेदार हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

5. भारतीय संसद द्वारा बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का विधेयक कब पारित हुआ था?

   (क) 2006 में (ख) 2007 में

   (ग) 2009 में (घ) 2011 में

6. शिक्षा की असमानता की समस्या के चरण होते हैं–

   (क) शैक्षिक अवसरों में असमानता (ख) व्यावसायिक प्राप्तियों में असमानता

   (ग) शिक्षा के प्रतिफल में असमानता (घ) उपर्युक्त सभी

3.5 बाल अधिकार : शिक्षा

शिक्षा एक ऐसा प्रसाधन है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था को श्रेष्ठ स्वरूप प्रदान किया जा सकता है और वहां रहने वाले लोगों के जीवन को सरल एवं सुविधाजनक बनाया जा सकता है। शिक्षा द्वारा ही समाज एक दूसरे व्यक्ति में राष्ट्रीय चेतना का भाव उत्पन्न करने में संभव हो पाता है। भेदभाव एवं उच्च नीच, जाति प्रथा जैसी अन्य सामाजिक कुरीतियों को शिक्षा द्वारा समाप्त किया जा सकता है व सामाजिक अवसरों की समानता की बात कही जा सकती है। विद्यार्थियों को मानवता का पाठ पढ़ा कर उच्च जीवन स्तर से जीने को तैयार किया जाता है। जिसमें उन्हें सामाजिक, न्यायिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं पारिवारिक ज्ञान दिया जाता है जिसके अंतर्गत अपने जीवन से जुड़े सभी पहलुओं को आसानी से समझ सकता है और उसका निवारण स्वविवेक से कर सकता है। शिक्षा और समाज का गणितीय संबंध है। शिक्षा द्वारा सामाजिक व्यवस्था को संतुलित रखा जा सकता है। कभी–कभी आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा प्रणाली में ऐसे बदलाव किए जाएं जो सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति कर सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने शिक्षा प्रसार की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। जातिगत भेदभाव समाप्त कर दिया है व किशोर बालक महिला वर्ग, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के कल्याण, वंचित वर्ग व उनकी शिक्षा के लिए कई प्रभावशाली कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं। राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोगों के कल्याण के लिए मूलतः बच्चों के कल्याण के लिए नाना प्रकार के प्रभावशाली कार्यक्रमों को प्रारंभ किया गया है ताकि उनके जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सके।

3.5.1 अंतर्राष्ट्रीय बाल अधिकार सम्मेलन–1989

1989 में कुछ अविश्वसनीय हुआ। एक बदलती विश्व व्यवस्था की पृष्ठभूमि में विश्व के नेता एक साथ आए और दुनिया के बच्चों के लिए एक ऐतिहासिक प्रतिबद्धता बनाई। उन्होंने एक अंतरराष्ट्रीय कानूनी ढांचे को अपनाकर हर बच्चे से अपने अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें पूरा करने का वादा किया – बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन। इस संधि में निहित एक गहरा विचार है कि बच्चे केवल ऐसी वस्तु नहीं हैं जो उनके माता–पिता से संबंधित हैं और जिनके लिए निर्णय किए जाते हैं, या प्रशिक्षण

टिप्पणी

में वयस्क हैं। बल्कि, वे इंसान हैं और अपने अधिकारों वाले व्यक्ति हैं। कन्वेंशन का कहना है कि बचपन वयस्कता से अलग है, और 18 तक रहता है; यह एक विशेष, संरक्षित समय है, जिसमें बच्चों को गरिमा के साथ बढ़ने, सीखने, खेलने, विकसित होने और फलने–फूलने की अनुमति दी जानी चाहिए। कन्वेंशन इतिहास में सबसे व्यापक रूप से अनुसमर्थित मानवाधिकार संधि बन गया और इसने बच्चों के जीवन को बदलने में मदद की है।

लीग ऑफ निशांत ने 1924 में एक बाल अधिकार घोषणा पत्र अपनाया और इस घोषणापत्र में पहली बार किसी अंतरराष्ट्रीय बाल अधिकार का वर्णन किया। इसने सेव द चिल्ड्रेन इंटरनेशनल यूनियन 1923 द्वारा जारी एक ऐसे घोषणा पत्र का समर्थन किया जिसमें परिणामस्वरूप कालांतर में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 20 अगस्त 1959 को एक बाल अधिकार घोषणा पत्र को अपनाया। इसके अनुसार क्योंकि बच्चे को मानव जाति के भविष्य के रूप में देखा जाता है इसीलिए इनकी देखभाल करते समय समाज वस्तुतः अपने भविष्य में निवेश कर रहा है।

कन्वेंशन इतिहास में सबसे व्यापक रूप से अनुसमर्थित मानवाधिकार संधि है। इसने सरकारों को कानूनों और नीतियों को बदलने और निवेश करने के लिए प्रेरित किया है ताकि अंततः अधिक बच्चों को स्वास्थ्य देखभाल और पोषण मिल सके जो उन्हें जीवित रहने और विकसित करने के लिए आवश्यक है, और बच्चों को हिंसा और शोषण से बचाने के लिए मजबूत सुरक्षा उपाय हैं। इसने अधिक बच्चों को अपनी आवाज सुनने और अपने समाज में भाग लेने में सक्षम बनाया है।

बच्चों की आवश्यकताएं : 1989 में विश्व नेताओं की आशा, दृष्टि और प्रतिबद्धता ने कन्वेंशन का नेतृत्व किया। यह आज की पीढ़ी पर निर्भर है कि वह सरकार, व्यवसाय और समुदायों के विश्व नेताओं से बाल अधिकारों के उल्लंघन को हमेशा के लिए समाप्त करने की मांग करे। उन्हें हर बच्चे को हर अधिकार सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए।

बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (आमतौर पर सीआरसी या यूएनसीआरसी के रूप में संक्षिप्त) एक अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधि है जो बच्चों के नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक अधिकारों को निर्धारित करती है। कन्वेंशन एक बच्चे को अठारह वर्ष से कम उम्र के किसी भी इंसान के रूप में परिभाषित करता है, जब तक कि राष्ट्रीय कानून के तहत वयस्कता की आयु पहले प्राप्त नहीं हो जाती। जिन राष्ट्रों ने इस सम्मेलन की पुष्टि की है या इसे स्वीकार किया है, वे अंतरराष्ट्रीय कानून से बंधे हैं। जब एक राज्य ने संधि पर हस्ताक्षर किए हैं लेकिन इसकी पुष्टि नहीं की है, तो यह अभी तक संधि के प्रावधानों से बाध्य नहीं है, लेकिन पहले से ही अपने उद्देश्य के विपरीत कार्य नहीं करने के लिए बाध्य है।

बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति, जिसमें 18 स्वतंत्र विशेषज्ञ शामिल हैं, उन राज्यों द्वारा कन्वेंशन के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए जिम्मेदार है जिन्होंने इसकी पुष्टि की है। उनकी सरकारों को अपने देश में कन्वेंशन के कार्यान्वयन और बाल अधिकारों की स्थिति की प्रगति के संबंध में उनकी प्रगति की जांच करने के लिए समय–समय पर बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति को रिपोर्ट करने और पेश होने

की आवश्यकता है। उनकी रिपोर्ट और समिति के लिखित विचार और चिंताएं समिति की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। इसके अलावा, व्यक्ति बाल अधिकारों पर समिति से अपील कर सकते हैं यदि उन्हें लगता है कि कन्वेंशन के अनुसार अधिकारों का उल्लंघन किया गया है। कन्वेंशन के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए तीसरी संभावना पूछताछ है कि बाल अधिकारों पर समिति अपनी पहल पर कर सकती है, यदि उनके पास विश्वसनीय जानकारी है जो उन्हें विश्वास दिलाती है कि एक सदस्य राज्य ने कन्वेंशन के अधिकारों का उल्लंघन किया है। हालांकि, राज्यों का हस्ताक्षर या अनुसमर्थन या परिग्रहण के समय जांच प्रक्रिया से बाहर निकल सकते है। वर्ष में एक बार, समिति संयुक्त राष्ट्र महासभा की तीसरी समिति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करती है, जो सीआरसी अध्यक्ष के एक बयान को भी सुनती है, और विधानसभा बाल अधिकारों पर एक संकल्प को अपनाती है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने कन्वेंशन को अपनाया और इसे 20 नवंबर, 1989 (बाल अधिकारों की घोषणा की 30वीं वर्षगांठ) पर हस्ताक्षर के लिए खोल दिया। यह 2 सितंबर, 1990 को लागू हुआ, इसके बाद आवश्यक संख्या में राष्ट्रों द्वारा इसकी पुष्टि की गई। 26 जून 2021 तक, 196 देश इसके पक्ष में हैं, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर संयुक्त राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य शामिल हैं।

25 मई, 2000 को दो वैकल्पिक प्रोटोकॉल अपनाए गए। पहला वैकल्पिक प्रोटोकॉल सैन्य संघर्षों में बच्चों की भागीदारी को प्रतिबंधित करता है, और दूसरा वैकल्पिक प्रोटोकॉल बच्चों, बाल वेश्यावृत्ति और बाल पोर्नोग्राफ़ी की बिक्री को प्रतिबंधित करता है। 170 से अधिक राज्यों ने दोनों प्रोटोकॉल की पुष्टि की है। शिकायतों के संचार से संबंधित एक तीसरा वैकल्पिक प्रोटोकॉल दिसंबर 2011 में अपनाया गया और 28 फरवरी, 2012 को हस्ताक्षर के लिए खोला गया। यह 14 अप्रैल, 2014 को लागू हुआ।

कन्वेंशन बाल–विशिष्ट आवश्यकताओं और अधिकारों से संबंधित है। यह आवश्यक है कि "राष्ट्र जो इस सम्मेलन की पुष्टि करते हैं वे अंतरराष्ट्रीय कानून द्वारा इसके लिए बाध्य हैं।" अनुसमर्थन करने वाले राज्यों को बच्चे के सर्वोत्तम हित में कार्य करना चाहिए।

कन्वेंशन को लागू करने वाले सभी न्यायालयों में बाल हिरासत और संरक्षकता कानूनों के अनुपालन की आवश्यकता होती है क्योंकि प्रत्येक बच्चे के पास अपने माता–पिता द्वारा एक परिवार या सांस्कृतिक समूह के भीतर जीवन का अधिकार, अपने स्वयं के नाम और पहचान सहित, और अपने माता–पिता द्वारा उठाए जाने के लिए बुनियादी अधिकार हैं। माता–पिता दोनों के साथ संबंध, भले ही वे अलग हो गए हों।

कन्वेंशन राज्यों को माता–पिता को अपनी माता–पिता की जिम्मेदारियों का पालन करने की अनुमति देने के लिए बाध्य करता है। कन्वेंशन यह भी स्वीकार करता है कि बच्चों को अपनी राय व्यक्त करने और उन विचारों को सुनने और उचित होने पर कार्रवाई करने, दुर्व्यवहार या शोषण से बचाने और उनकी गोपनीयता की रक्षा करने का अधिकार है। यह आवश्यक है कि उनका जीवन अत्यधिक हस्तक्षेप के अधीन न हो।

टिप्पणी

कन्वेंशन भी हस्ताक्षरकर्ता राज्यों को उनकी देखभाल से संबंधित किसी भी न्यायिक विवाद में एक बच्चे के लिए कानूनी प्रतिनिधित्व को अलग करने के लिए बाध्य करता है और पूछता है कि ऐसे मामलों में बच्चे के दृष्टिकोण को सुना जाए।

कन्वेंशन बच्चों के लिए मृत्युदंड पर रोक लगाता है। अपनी सामान्य टिप्पणी (2006) में समिति ने कहा कि "सभी राज्य दलों का दायित्व था कि वे सभी शारीरिक दंड और बच्चों की सजा के अन्य सभी क्रूर या अपमानजनक रूपों को प्रतिबंधित करने और समाप्त करने के लिए जल्दी से आगे बढ़ें।" कन्वेंशन के अनुच्छेद 19 में कहा गया है कि "राज्य दलों को, बच्चे को सभी प्रकार की शारीरिक या मानसिक हिंसा से बचाने के लिए सभी उचित विधायी, प्रशासनिक, सामाजिक और शैक्षिक उपाय करने चाहिए।" लेकिन यह शारीरिक दंड का कोई संदर्भ नहीं देता है। शारीरिक दंड पर प्रतिबंध को शामिल करने के लिए इस खंड की समिति की व्याख्या को ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और यूनाइटेड किंगडम सहित कन्वेंशन के कई राज्य दलों द्वारा खारिज कर दिया गया है।

भारत ने 11 दिसंबर, 1992 को यूएनसीआरसी की पुष्टि की, सभी अनुच्छेदों के लिए सैद्धांतिक रूप से सहमत हुए लेकिन बाल श्रम से संबंधित मुद्दों पर कुछ आरक्षणों के साथ। भारत में, एक कानून है कि 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम नहीं करना चाहिए, लेकिन बाल श्रम पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। आमतौर पर "खतरनाक" समझे जाने वाले उद्योगों को छोड़कर अधिकांश उद्योगों में इस प्रथा की अनुमति है, जिसके लिए न्यूनतम आयु लागू होती है। हालांकि अक्टूबर 2006 में एक कानून ने होटल, रेस्तरां और घरेलू नौकरों में बाल श्रम पर प्रतिबंध लगा दिया, फिर भी घर में किराए की मदद के रूप में बच्चों की अत्यधिक मांग बनी हुई है। देश में बाल मजदूरों की संख्या को लेकर अलग–अलग अनुमान हैं। सरकार के रूढ़िवादी अनुमान के अनुसार, 2011 में 14 साल से कम उम्र के 44 लाख बच्चे भारत में काम कर रहे थे, जबकि एनजीओ सेव द चिल्ड्रेन ने 2016 के एक बयान में बाल श्रम के खिलाफ अभियान के एक अध्ययन का हवाला दिया, जो अनुमान लगाता है कि भारत में बाल मजदूर 12.7 मिलियन हैं।

2016 में, बाल और किशोर श्रम (संशोधन) अधिनियम पेश किया गया था, जिसने 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के आर्थिक रोजगार और खतरनाक व्यवसायों में किशोरों (14–17 वर्ष की आयु) के रोजगार पर रोक लगा दी थी। 14 साल से कम उम्र के बच्चों में कुछ अपवाद मौजूद हैं– वे पारिवारिक उद्यम में सहायता कर सकते हैं और मनोरंजन उद्योग में भाग ले सकते हैं। यह उनकी स्कूली शिक्षा को नुकसान नहीं पहुंचाता है और शाम 7 बजे और सुबह 8 बजे के बीच काम नहीं करता है।

3.5.2 बाल अधिकारों पर संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान देश के नागरिकों के रूप में बच्चों को अधिकार प्रदान करता है, और उनकी विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए राज्य ने विशेष कानून भी बनाए हैं। 1950 में प्रख्यापित संविधान में मूल अधिकारों और राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों के रूप में बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन में शामिल अधिकांश अधिकार शामिल हैं। पिछले कुछ वर्षों में, कई व्यक्तियों और जनहित समूहों ने बाल अधिकारों सहित मौलिक अधिकारों की बहाली के लिए शीर्ष अदालत का दरवाजा खटखटाया है। राज्य के नीति

निदेशक सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को स्पष्ट करते हैं जिन्हें "देश के शासन में मौलिक कर्तव्य लागू करने के लिए राज्य का कर्तव्य कानून बनाने में" घोषित किया गया है (अनुच्छेद 37)। सरकार के पास बच्चों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए उचित विधायी और प्रशासनिक उपाय करने का लचीलापन है; कोई भी अदालत सरकार को उन्हें सुनिश्चित करने के लिए नहीं कह सकती, क्योंकि ये अनिवार्य रूप से निर्देश हैं। इन निर्देशों ने न्यायपालिका को बच्चों के अधिकारों को बढ़ावा देने वाले कुछ ऐतिहासिक निर्णय देने में सक्षम बनाया है, जिससे संवैधानिक संशोधन हुए हैं, जैसा कि संविधान के 86 वें संशोधन के मामले में है, जिसने शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बना दिया है।

संवैधानिक गारंटी जो विशेष रूप से बच्चों के लिए हैं, उनमें शामिल हैं:

1. 6–14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21 ए)
2. 14 वर्ष की आयु तक किसी भी खतरनाक रोजगार से सुरक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 24)
3. उनकी उम्र या ताकत के अनुपयुक्त व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए आर्थिक आवश्यकता से दुर्व्यवहार और मजबूर होने से बचाने का अधिकार (अनुच्छेद 39 (ई))
4. स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थितियों में विकसित होने के लिए समान अवसरों और सुविधाओं का अधिकार और शोषण के खिलाफ और नैतिक और भौतिक परित्याग के खिलाफ बचपन और युवाओं की गारंटीकृत सुरक्षा (अनुच्छेद 39 (एफ))
5. छह वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बच्चों को प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 45)

इसके अलावा, किसी भी अन्य वयस्क पुरुष या महिला की तरह बच्चों को भी भारत के समान नागरिक होने का अधिकार है:

- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14)
- भेदभाव के खिलाफ अधिकार (अनुच्छेद 15)
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार और कानून की उचित प्रक्रिया (अनुच्छेद 21)
- अवैध व्यापार और बंधुआ मजदूरी के लिए मजबूर होने से बचाने का अधिकार (अनुच्छेद 23)
- अल्पसंख्यकों को उनके हितों की रक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29)
- लोगों के कमजोर वर्गों को सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाने का अधिकार (अनुच्छेद 46)
- पोषण का अधिकार और जीवन स्तर और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार (अनुच्छेद 47)

टिप्पणी

सामाजिक न्याय के लिए प्रयास कर रहे दुनिया भर के लोगों ने अक्सर अपने प्रयासों को समाज में सबसे कमजोर बच्चों–बच्चों की ओर निर्देशित किया है। बच्चों की ओर से प्रिंसेस डायना के धर्मार्थ कार्यों से लेकर ग्रेस एबॉट जैसे कार्यकर्ताओं के प्रयासों और इतिहास की सबसे कम उम्र की नोबेल पुरस्कार विजेता–सुश्री मलाला यूसुफजई, इन प्रसिद्ध बच्चों के अधिकार कार्यकर्ताओं ने सबसे कम उम्र के नागरिकों के जीवन को बेहतर बनाने में मदद करने के लिए सराहनीय प्रयास किए हैं।

2014 नोबेल शांति पुरस्कार विजेता–सुश्री मलाला यूसुफजई और श्री कैलाश सत्यार्थी ने हम सभी को याद दिलाया है कि सभी बच्चों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाले अवसर प्रदान करने में आगे बढ़ते रहने की आवश्यकता है। अवसरों का अर्थ इतना सार्थक होना है कि वे सीखने और उन मानसिकता और कौशल को हासिल करने की अनुमति दें जो उन्हें स्वतंत्र होने, खुद को, अपने समुदायों और दुनिया को विकसित करने के लिए सशक्त बनाएं।

3.5.3 वंचित बच्चों का अधिकार– बालिकाएं और अलग–अलग विकलांग बच्चे

बालिकाओं का अधिकार

प्रारंभिक शिक्षा और महिलाएं प्रारंभिक शिक्षा क्षेत्र में भी लड़कियां लड़कों से आज भी पिछड़ी हुई हैं। संपूर्ण दृष्टि से अगर देखा जाए तो 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग की लड़कियां का सकल नामांकन सिर्फ 72.6% है। सफल नामांकन की दृष्टि से 22 लड़कियों ने तो कभी विद्यालय के दर्शन ही नहीं किए हैं वही 57.95 प्रतिशत लड़कियां बीच में ही विद्यालयों को छोड़कर चली जाती हैं। इस तरह से विद्यालय में ठहरने एवं कक्षा 8 तक अध्ययन करने वाली लड़कियों का प्रतिशत लगभग 15% है। उच्चतर शिक्षा क्षेत्र में तो लड़कियों की उपस्थिति बहुत ही कम होती जा रही है विशेषतया ग्रामीण परिवेश की लड़कियों की।

वर्तमान भारतीय समाज में लड़कियों की स्थिति एवं शिक्षा

वर्तमान भारतीय समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से महिलाओं की स्थिति इस तरह से है कि उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयों के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

1. महिलाओं का रूढ़िगत कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी होना एवं प्रमुख काम घरेलू काम होना
2. महिलाओं की प्रजनन एवं पालन पोषण की भूमिका
3. माता–पिता या अभिभावकों का लड़कियों को स्कूल भेजने के प्रति उपेक्षा भाव
4. लड़कियों को औपचारिक पढ़ाई के प्रति समुदाय एवं अभिभावकों का पूर्वाग्रह
5. घर के बाहर निकलने पर प्रतिबंध की मनोवृति
6. ग्रामीण क्षेत्र में छोटी उम्र में लड़कियों का विवाह कर देना
7. पितृसत्तात्मक समाज एवं परिवार व्यवस्था

8. शिक्षा क्षेत्र में भी लड़कियों की शिक्षा व्यवस्था पर अपेक्षाकृत उनके मां–बाप का कम ध्यान देना
9. अतिआवश्यक हो गया है कि महिलाओं को समान शिक्षा व्यवस्था दी जाए जिससे उनका विकास एवं समाज में नारी सशक्तिकरण के उदाहरण को पूर्ण किया जा सके।
10. इस दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर विचार हुआ कि किस प्रकार समानतावादी महिला शिक्षा के लिए अग्रिम प्रावधान किए गए हैं।
11. महिला साक्षरता हेतु विशेष प्रकोष्ठ गठित किए जाए एवं अलग से विशेष अभियान चलाया जाए। 6 से 14 वर्ष की सभी लड़कियों का विद्यालय में नामांकन किया जाए और उनका विद्यालयों में ठहराव सुनिश्चित किया जाए।

सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के अंतर्गत लड़कियों की शिक्षा को विशेष ध्यान दिए जाने वाले समूह में रखा गया है। इसके लिए निम्नलिखित युक्तियों को अपनाए जाने का प्रावधान भी सुनिश्चित किया गया है:

1. समुदाय के लोगों, अभिभावकों को उत्तेजित करना एवं गतिशील बनाना
2. समुदाय में लोगों द्वारा नामांकन एवं धाराओं का प्रबंधन
3. गणवेश छात्रवृत्ति, पाठ्य पुस्तक, पाठ्य सामग्री निशुल्क उपलब्ध कराना
4. महिला समूह का निर्माण एवं उनके द्वारा इस संबंध में सक्रिय प्रयास करना
5. महिला समाख्या जैसे कार्यक्रमों के अंतर्गत महिला शिक्षा को प्रमुखता देना
6. विद्यालयों के प्रबंधन में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाना
7. पाठ्यक्रम को महिलाओं की अभिवृद्धि एवं अभिरुचियों के अनुरूप बनाना
8. लड़कियों के लिए अलग विशेष पाठ्यक्रम का प्रावधान करना
9. स्थानीय संदर्भ अनुसार पाठ्यक्रम को ढालना।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत किए गए निम्नलिखित प्रयासों में सफलता मिली है अतः इस प्रकार के प्रयासों को अपनाए जाने का प्रावधान एवं सिफारिश की गई है:

- निमित्त नामांकन अभियान चलाना
- लड़कियों के लिए विशेष कैंपस एवं ब्रिज कोर्स का प्रावधान करना
- सहज शिक्षा केंद्र आंगन विद्यालय जैसी वैकल्पिक व्यवस्थाओं को लागू करना
- बालिका शिक्षण शिविर विशेषतः किशोरियों के लिए चलाया जाना
- मदरसों एवं मकतबों में औपचारिक विद्यालय सुविधाएं उपलब्ध कराना
- समुदाय के साथ गणित सहयोग से कार्य करना
- महिला समूह का आधिकारिक उपयोग करना

लड़कियों के नामांकन हेतु किए गए प्रावधानों के अलावा लड़कियों के विद्यालय में ठहराव की दृष्टि से भी युक्तियां अपनाई जानी आवश्यक हैं। इसके लिए निम्न रूप से प्रावधान किए गए हैं जो इस प्रकार हैं:

टिप्पणी

- नियमित उपस्थिति हेतु समुदाय एवं माता–पिता को प्रेरित करना एवं गतिशील बनाना
- विद्यालय पाठ्यक्रम एवं गतिविधियों को लड़कियों से जीवन संबंध कर रुचिकर में उपयोगी बनाना
- कैंपस एवं ब्रिज कोर्स का संचालन करना
- निमित्त थारो अभियान का संगठन एवं संचालन करना
- विद्यालय एवं माता–पिता को इस अभियान में सक्रिय करना एवं उन्हें उनके उत्तर दायित्व से रूबरू कराना
- अच्छी परिस्थिति के प्रोत्साहन की दृष्टि से अच्छी उपस्थिति वाली लड़कियों को हरा रंग आदि प्रदान कर विशेष स्थान प्रदान करना

निम्नलिखित प्रावधानों द्वारा लड़कियों की शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है:

- विशेष कक्षाएं लगानी आवश्यक हैं
- लड़कियों को सीखने के लिए अनुकूल कक्षा वातावरण का निर्माण करना
- निदानात्मक उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाए

लड़कियों के लिए विशेष पाठ्यक्रमों की व्यवस्था

व्यवसायिक तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रमों का और इनमें भी विशेषकर लड़कियों की अभिरुचियों से संबद्ध पाठ्यक्रम को प्राथमिकता देना आवश्यक है क्योंकि यह पाठ्यक्रम जीवन से जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक शिक्षा स्तर के लिए सुझाए गए निम्नलिखित नीतिगत कदमों का प्रावधान महिला शिक्षा क्षेत्र के लिए आवश्यक रूप से किया गया है। लड़कियों को शिक्षा से निम्नलिखित उपलब्धि की ओर अग्रसर किया जा सकता है:

1. शिक्षा महिला सशक्तिकरण का सदस्य माध्यम बनेगा
2. समाज में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण एवं उनके समाज में महत्वपूर्ण स्थान को प्रतिपादित करने वाली शिक्षा की व्यवस्था किया जाना होगा
3. महिला अध्ययन विभिन्न पाठ्यक्रमों का आवश्यक अंग बनाया जाना चाहिए
4. महिलाओं की व्यवसायिक तकनीकी शिक्षा तक पहुंच बढ़ेगी
5. महिलाओं में आत्म विश्वास, अपने प्रति दृष्टि का विकास करने वाली महिला शिक्षा व्यवस्था की जाए
6. महिलाओं की समालोचनात्मक सोच का विकास हो पाएगा
7. इस प्रकार के पाठ्यक्रम एवं क्रियाकलाप महिला शिक्षा का अभिन्न अंग होंगे
8. पारिवारिक निर्णय, सामाजिक, राजनीतिक आदि निर्णय में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी हेतु प्रावधान किया जाए
9. वर्तमान में लोकसभा में एवं राज्यसभा में महिला सांसदों की संख्या में वृद्धि हुई है

10. सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महिलाओं की समान सभा हो यह सुनिश्चित करना आवश्यक है
11. समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन हेतु सामुदायिक व सामूहिक क्रियाकलाप संगठित किए जाएं
12. महिलाओं को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाया जा सकेगा

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयास। प्रत्येक शिक्षण संस्था महिला विकास के कार्यक्रमों में शिक्षा का प्राथमिकता दें। सभी शिक्षकों को महिला सशक्तिकरण हेतु विशेष प्रशिक्षण दिया जाए। महिला समानता के लिए महिला शिक्षक अग्रणी भूमिका निभाए। विभिन्न संवादों विचार–विमर्श नुक्कड़ नाटक प्रदर्शन सामग्री का उपयोग महिलाओं के सामान्य जागृति स्वाभिमान पैदा करने के लिए किया जाए।

दिव्यांग/विकलांग बच्चे का अधिकार

हमारे देश में करीब 2.13 फीसदी आबादी विकलांगता से ग्रसित है। यह आबादी करीब–करीब सवा दो करोड़ है। विकलांगों की आबादी में पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है। 75 फीसदी विकलांग आबादी गांवों में रहती है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि देश में पांच प्रकार की निशक्तता या विकलांगता है। इसमें दृष्टि से संबंधित असमर्थता से पीड़ितों की संख्या सर्वाधिक यानी 48.5 फीसदी के आसपास है, जबकि पैरों से संबंधित विकलांगता 27.9, मानसिक विक्षिप्तता 10.3 फीसदी, बोलने से लाचार की 7.5, श्रवणबाधित 5.8 फीसदी है।

विकलांगों के पक्ष में सुप्रीम कोर्ट और देशभर की हाईकोर्ट ने कई अहम फैसले दिए हैं, जिससे उन्हें पर्याप्त अधिकार मिले। कोर्ट ने यह कानून बनाया है कि विकलांग बच्चों को 18 वर्ष की उम्र तक मुफ्त और आवश्यक रूप से शिक्षा दी जाए। अदालत के कारण ही यह संभव हो सका कि कई विकलांग भारतीय सिविल सेवा में अहम पदों पर पहुंच पाए। 2004 में सिविल सेवा परीक्षा पास करने वाले मनीराम शर्मा को छह साल की कानूनी लड़ाई के बाद पीएमओ ने मेरिट के आधार पर नियुक्ति दी, क्योंकि आईएएस में बधिरों के लिए स्थान नहीं था। संयुक्त राष्ट्र संघ ने विकलांग और निःशक्तजन की समस्याओं पर विशेष ध्यान देने के लिए 1982 से दस साल विकलांगों के लिए मनाए। इसके बाद भारत में 1995 में विकलांग व्यक्ति अधिनियम पारित हुआ। इसके तहत विकलांग और निःशक्तजनों के लिए समान अवसर, अधिकार, सुरक्षा तथा पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने में मदद मिली। इसी से निःशक्तजनों को कानूनी सुरक्षा मिल सकी। इसी कानून के कारण विकलांगों की शिक्षा, रोजगार, अवरोधमुक्त वातावरण, सामाजिक सुरक्षा जैसे उपाय किए गए।

इसी अधिनियम के अनुच्छेद 26 में विकलांग बच्चों को 18 वर्ष की उम्र तक अनिवार्य शिक्षा तथा मुफ्त शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

- दृष्टि से कमजोर व्यक्ति के लिए पाठक भत्ता, होस्टल भत्ता, यंत्र उपकरण आदि के लिए पूरी वित्तीय सहायता तथा छात्रवृति आदि की भी व्यवस्था है।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण और लाभकारी रोजगार आदि देने की भी व्यवस्था है। इसके लिए तीन प्रतिशत आरक्षण की भी व्यवस्था है ताकि इन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में नौकरी मिल सके।

टिप्पणी

विभिन्न मंत्रालयों व विभागों में विकलांग लोगों के लिए आरक्षण की स्थिति इस प्रकार है– समूह ए, बी, सी, डी के लिए सरकार ने क्रमशः 3.07, 4.41, 3.76 फीसदी तथा 3.18 फीसदी आरक्षण दिया है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में यह स्थिति ऐसी है– ए समूह–2.78 फीसदी, बी–8.54, सी– 5.04 और डी– 6.75 फीसदी है। वर्ष 2006 में सरकार ने विकलांगों के लिए राष्ट्रीय नीति निर्माण का कार्य भी किया तथा 2007 में संयुक्त राष्ट्र संघ के विकलांग के लिए अधिकार सभा के घोषणा पत्र पर भी भारत सरकार ने हस्ताक्षर किए। विकलांग अधिनियम में अंतरराष्ट्रीय नियमों के अनुरूप बदलाव किया जा रहा है। प्रस्तावित संशोधनों में ऑटिज़्म जैसी बीमारियों को इसमें लाया जाएगा।

विकलांगों के लिए कई योजनाएं और छूट के प्रावधान भी किए गए हैं।

1. इन लोगों के लिए सहायक उपकरण, छात्रवृत्ति, आर्थिक सहायता व अन्य कदम हैं।
2. इसके अलावा एडीआईपी योजना के तहत उपकरण खरीदने के लिए इन्हें सहायता जी जाती है।
3. स्वैच्छिक सेवा को प्रोत्साहित करने के लिए दीनदयाल विकलांग पुनर्वास योजना है।
4. विकलांगों के सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी दिया जाता है।
5. निजी क्षेत्रों में भी विकलांगों के लिए रोजगार योजनाएं हैं।
6. इन्हें नौकरी और ट्रेनिंग के लिए नियोक्ताओं को प्रोत्साहित किया जाता है।
7. इनके लिए यात्रा भत्ता तथा समान बीमा लाभ की भी व्यवस्थाएं हैं।

बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम–2009 एक अप्रैल 2010 से लागू हो गया है। इस अधिनियम में विकलांगता वाले बच्चों सहित सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था है। इन विकलांगताओं का विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों की रक्षा और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम–1995 में और स्वलीनता, मस्तिष्क पक्षाघात, मंदबुद्धि और बहु–विकलांगता वाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास अधिनियम–1999 में उल्लेख है।

ये विकलांगताएं हैं–

(1) अंधता

(2) कम दृष्टि

(3) उपचारित कुष्ठ रोग

(4) बहरापन

(5) लोकोमोटर विकलांगता

(6) मंदबुद्धि

(7) मानसिक रोग

(8) स्वलीनता

(9) मस्तिष्क पक्षाघात

आरटीई में इसके साथ–साथ बोलने में अक्षमता और सीखने में अक्षमता आदि की परेशानियों वाले 6 से 14 वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए भी पड़ोस के स्कूल में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा की व्यवस्था है। सरकार ने सर्वशिक्षा अभियान के मानदंडों को भी आरटीई, अधिनियम–2009 की व्यवस्थाओं के अनुरूप बना दिया है। सर्वशिक्षा अभियान यह सुनिश्चित करता है कि विशेष आवश्यकता वाले प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह किसी प्रकार की विकलांगता से प्रभावित हो, उद्देश्यपूर्ण और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाए। इसलिए इस अभियान के अंतर्गत किसी को भी शिक्षा देने से इंकार करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसका मतलब है कि विशेष आवश्यकताओं वाले किसी भी बच्चे को शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए और उसकी पढ़ाई ऐसे वातावरण में होनी चाहिए, जो उसकी सीख सकने की आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

सर्वशिक्षा अभियान में विशिष्ट प्रस्ताव आने पर विकलांग बच्चे के लिए हर साल तीन हजार रूपये देने की व्यवस्था है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए बनाई जाने वाली जिला योजना में तीन हजार रूपये में से एक हजार रूपये की राशि बच्चे को पढ़ाने के लिए बुलाये गए शिक्षक की सेवाओं के लिए रखी जाती है। समावेशी शिक्षा के लिए सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत जिन पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है, वे हैं– बच्चों की पहचान, शिक्षा संबंधी औपचारिक मूल्यांकन, आवश्यकता के अनुरूप उचित शिक्षा की व्यवस्था, व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित शिक्षा योजना तैयार करना, सहायक और अन्य उपकरणों की व्यवस्था, शिक्षक प्रशिक्षण, बाहरी शिक्षक की सहायता, वास्तु संबंधी अवरोधों को हटाना, अनुसंधान, निगरानी और मूल्यांकन तथा विशिष्ट आवश्यकताओं वाली लड़कियों पर विशेष ध्यान।

विकलांग बच्चों के लिए समन्वित शिक्षा की योजना के स्थान पर 2009–10 में माध्यमिक स्तर पर विकलांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा की योजना शुरू की गई थी। इस योजना में नवीं से बारहवीं कक्षा के विकलांग बच्चों को समावेशी शिक्षा के लिए सहायता दी जाती है। इस योजना का उद्देश्य विकलांगता वाले सभी छात्रों को प्राथमिक शिक्षा के पहले आठ वर्ष पूरे करने के बाद आगे के चार वर्षों की नवीं से बारहवीं तक की माध्यमिक स्तर की समावेशी शिक्षा अनुकूल वातावरण में प्रदान करना है। इस योजना में प्राथमिक विद्यालयों से पास होने वाले तथा सरकारी, नगरपालिका और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे ऐसे बच्चे शामिल हैं, जो उपरोक्त अधिनियमों के मानदंडों के अनुसार एक या अधिक विकलांगता से प्रभावित हैं।

माध्यमिक स्तर पर विकलांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा की योजना के विभिन्न पहलू हैं–

(1) चिकित्सा/शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं का आकलन

(2) छात्र की विशिष्ट आवश्यकता वाली सुविधा की व्यवस्था

(3) शिक्षा सामग्री का विकास

(4) सहायक सेवाएं जैसे विशेष शिक्षकों की व्यवस्था

(5) संसाधन कक्षों का निर्माण और उपकरण

टिप्पणी

(6) सामान्य विद्यालय शिक्षकों को प्रशिक्षण ताकि वे विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता प्राप्त कर सकें

(7) स्कूलों को अवरोधों से मुक्त रखना। प्रत्येक राज्य में मॉडल समावेशी स्कूलों की स्थापना का भी प्रावधान है

विकलांगता से ग्रस्त लड़कियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है और उनकी सहायता की जाती है ताकि वे माध्यमिक स्कूल में पहुंच सकें। योजना के अंतर्गत लड़कियों की क्षमता का विकास करने के लिए उन्हें आवश्यक जानकारी और मार्गदर्शन भी दिया जाता है। विकलांग लड़कियों के लिए दो सौ रूपये मासिक की छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था है।

योजना में शामिल सभी मदों के लिए शत–प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी जाती है। राज्य सरकारों/केन्द्र शासित प्रदेशों के शिक्षा विभाग इस योजना को लागू करते हैं। योजना को लागू करने में वे विकलांगों की शिक्षा के क्षेत्र में अनुभवी गैर–सरकारी संगठनों की सहायता भी ले सकते हैं। राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत विकलांगता वाले छात्रों को आर्थिक सहायता दी जाती हैं, ताकि वे मान्यता प्राप्त संस्थानों से पेशेवर या तकनीकी पाठ्यक्रमों में शिक्षा प्राप्त करके नौकरी हासिल कर सकें या अपना काम धंधा शुरू कर सकें। योजना के अंतर्गत हर साल देश भर में विकलांगता वाले छात्रों को एक हजार छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। इनमें से 30 प्रतिशत छात्रवृत्तियां लड़कियों के लिए आरक्षित हैं। ये छात्रवृत्तियां केवल भारतीय नागरिकों को ही मिल सकती हैं। वर्ष 2009 में सामाजिक अनुसंधान संस्थान – एसआरआई और भारतीय मार्केट रिसर्च ब्यूरो–आईएमआरबी द्वारा कराए गए एक राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण में अनुमान के अनुसार 81 लाख बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। यह संख्या 6 से 13 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों की कुल संख्या के 4.28 प्रतिशत के बराबर है। सर्वेक्षण में यह भी बताया गया है कि विकलांगता वाले कुल बच्चों की संख्या 28.97 लाख है जो बच्चों की कुल संख्या के 1.52 प्रतिशत के बराबर है। विकलांगता वाले बच्चों में से स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 34.12 प्रतिशत है।

3.5.4 वंचित बचपन और बाल श्रम और स्कूली शिक्षा : वैकल्पिक स्कूल– प्रकृति

वंचित का तात्पर्य है कि जब किसी बालक की समाज में रहते हुए उसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति ना हो सके और वह उन से वंचित रहे उसे वंचित बालक कहा जाता है। वंचित शब्द का प्रयोग अनेक संदर्भ में किया जाता है। सामान्यतः आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक और सुविधाओं की ओर वचन का प्रत्यय संकेत करता है फूल सा कुछ मनोवैज्ञानिक मंचन के लिए दरिद्रता की संस्कृति या सांस्कृतिक दृष्टि से वंचित प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। गार्डन के अनुसार वन्य जीवन की उद्दीपक दशाओं की न्यूनता है। वचन वास्तव में आवश्यक और अपेक्षित उद्‌भव उद्योगों का अभाव है। यह उद्दीपक बालक के सामाजिक आर्थिक व संस्कृति वातावरण से संबंधित होते हैं और इनके अभाव में बालक अपना वांछित विकास नहीं कर पाता है।

टिप्पणी

वंचित बालकों की शिक्षा

सामाजिक आर्थिक व शैक्षणिक रूप से वंचित बालक के लिए आवश्यक है अच्छी शिक्षा व्यवस्था की जाए इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाना आवश्यक है:

1. 6 से 14 वर्ष तक की आयु तक अनिवार्य शिक्षा।
2. सामाजिक रुप से वंचित बालक को ऐसे विद्यालय में प्रवेश दिया जाए जहां विभिन्न प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हो जो उनके शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त हो।
3. सृजनशीलता को प्रोत्साहित किया जाए।
4. शिक्षण संस्था का वातावरण प्रेरणादायक होना चाहिए।
5. घर के अश्लील वातावरण की क्षतिपूर्ति विद्यालय में स्वच्छता विविध प्रकार की आगामी क्रियाओं द्वारा की जाए।
6. ऐसे पठन सामग्री उपलब्ध कराई जाए जो एकता तथा समन्वय की भावना को बालकों के अंदर जागृत करें।
7. व्यवसायिक शिक्षा का आयोजन किया जाए।
8. कक्षा विशेष में शिक्षकों के ऊपर विशेष ध्यान दें और इस ओर से सावधान रहें उनके अनुभव को ध्यान में रखकर ही वह अपने विषय की व्याख्या कर रहे हैं।
9. हीनता की भावना रोकने के लिए जातिगत आरक्षण की वजह वर्ग सुविधाएं दें तथा बच्चों को स्वतंत्र राय लेने की प्रवृत्ति डालें।

इसके अतिरिक्त भी वंचित बालकों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक योजना चलाई जाने चाहिए उसमें गरीबी की रेखा से नीचे निवास करने वाले बालकों के लिए शिक्षा योजना तैयार की जाए जैसे:

- निशुल्क शिक्षा।
- आवासी विद्यालयों की व्यवस्था।
- छात्रवृत्ति व आर्थिक सहायता।
- दोपहर का भोजन।
- निशुल्क पाठ्यपुस्तक व अन्य सामग्री तथा ड्रेस भी दिया जाए।
- इसमें वंचित वर्ग में जाति व धर्म की वजह आर्थिक स्तर को प्रमुखता दिया जाए।
- पिछड़े आदिवासी व साधन भी क्षेत्रों में अलग से विद्यालयों की स्थापना किया जाए जिसमें वांछित बच्चों को प्रवेश मिल सके।
- वंचित बच्चों के शिक्षक को भावात्मक रूप से प्रशिक्षित करना ताकि वह बच्चे के साथ अपने को जोड़ सकें व उनको दयनीय न समझे।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं एक वंचित बालक की समुचित शिक्षा का भार समाज को वहन करना होगा। विद्यालयों की इस क्षेत्र में अहम भूमिका है। अध्यापकों एवं शिक्षा विभाग को चाहिए कि वंचित बालकों के वातावरण में सुधार लाकर उनका समुन्नत व्यक्तिगत विकास करें।

भारत में बाल श्रम की स्थिति

बाल श्रम से तात्पर्य बच्चों को किसी भी ऐसे कार्य में लगाना है जो उन्हें उनके बचपन से वंचित करता है। नियमित स्कूल जाने की उनकी क्षमता में हस्तक्षेप करता है, और यह मानसिक, शारीरिक, सामाजिक या नैतिक रूप से खतरनाक और हानिकारक है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार, 5–14 वर्ष के आयु वर्ग के 10.1 मिलियन बच्चें कार्यरत हैं, जिनमें से 8.1 मिलियन ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्य रूप से कृषक (23%) और खेतिहर मजदूरों (32.9%) के रूप में कार्यरत हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) द्वारा बाल श्रम को ऐसे कार्य के रूप में परिभाषित किया गया है जो बच्चों को उनके बचपन, उनकी क्षमता और गरिमा से वंचित करता है एवं जो उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास में बाधक है।

यूनिसेफ के अनुसार बाल मजदूरी को तीन भागों में बांटा गया है। शारीरिक रूप से, संवेगात्मक रूप से, समाजिक भावनात्मक व नैतिक रूप से। बाल मजदूरी के कारण समाज व देश के विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है तथा बालकों को भी समाज में पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पा रहा है जिससे और भी अन्य परेशानी उत्पन्न हो रही है जो इस प्रकार हैः

- देश के विकास में सहयोग नहीं
- देश के विकास से होने वाले लाभ का फायदा नहीं ले पाना
- तनाव की स्थिति बरकरार रहना
- वयस्क बेरोजगारी अपने अधिकारों से वंचित रहना
- आर्थिक तंगी या धन का आभाव
- कुपोषण या बीमारियों का फैलाव
- बच्चों का शोषण
- मानसिक विकृतियां
- बच्चों के गुणों का दमन
- नशे की तरफ झुकाव
- आत्महत्या व नकारात्मक सोच का बढ़ना
- राजनीतिक अस्थिरता

सरकार ने बाल मजदूरी रोकने के लिए कुछ नियम बनाए हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. 14 साल से कम उम्र वाले बच्चों को काम पर न रखना
2. हर घंटे के बाद 1 घंटे का विराम दिया जाए
3. सप्ताह में 1 दिन का अवकाश दिया जाए
4. शाम 7:00 बजे से 8:00 बजे तक काम करवाना मना
5. बालकों को भारी बोझ वाले कामों से दूर रखा जाए

टिप्पणी

6. बालकों को कारखानों में पाई गई भारी वाहन कारक मशीनों व रसायनों से दूर रखा जाए

बाल श्रम के कई दुष्प्रभाव हैं :

- रोग जैसे त्वचा रोग, फेफड़ों के रोग, कमजोर दृष्टि, टीबी आदि के अनुबंध के जोखिम।
- कार्यस्थल पर यौन शोषण की सुभेद्यता।
- शिक्षा से वंचित होना।
- वे विकास के अवसरों का लाभ उठाने में असमर्थ होते हैं और अपने शेष जीवन अकुशल श्रमिकों के रूप में निकालते हैं।

भारत में अन्य बाल श्रम कानून / कार्यक्रम

- **संविधान का अनुच्छेद 24:** 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को कारखाने या खान में काम करने के लिये नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य खतरनाक काम में नहीं लगाया जाएगा।
- **बाल श्रम पर राष्ट्रीय नीति (1987):** 1987 में बाल मजदूरी के लिये विशेष नीति बनाई गई, जिसमें जोखिम भरे व्यवसाय एवं प्रक्रियाओं में लिप्त बच्चों के पुर्नवास पर ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया।
- **किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2015:** इसमें आयु या व्यवसाय की सीमा के बिना देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों की श्रेणी में कामकाजी बच्चे शामिल हैं।
- **राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP) 2007:** इस योजना के तहत 9–14 वर्ष की आयु के बच्चों को काम करने से रोका जाता है और उन्हें एनसीएलपी विशेष प्रशिक्षण केंद्रों में दाखिला दिया जाता है, जहां उन्हें प्रारंभिक शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, मध्याह्न भोजन, वजीफा, स्वास्थ्य देखभाल आदि मुख्यधारा से पहले औपचारिक शिक्षा प्रणाली, प्रदान की जाती है।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 ने राज्य के लिये यह सुनिश्चित करना अनिवार्य कर दिया है कि 6 से 14 साल की उम्र के प्रत्येक बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो।
- खान अधिनियम, 1952 18 वर्ष से कम आयु के बालक से किसी खदान में मजदूरी कराने पर रोक लगाता है।

पेंसिल पोर्टल, 2017 नो चाइल्ड लेबर हेतु प्रभावी प्रवर्तन मंच :

- पेंसिल पोर्टल नो चाइल्ड लेबर के प्रभावी प्रवर्तन के लिये एक मंच है, जो बाल श्रम को खत्म करने के लिये केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया था। यह एक इलेक्ट्रॉनिक पोर्टल है जिसका उद्देश्य केंद्र, राज्य, ज़िला, सरकारें, सिविल सोसाइटी और आम जनता को बाल श्रम संबंधी समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने में शामिल करना है।

टिप्पणी

- यह बाल श्रम अधिनियम और राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP) योजना के प्रभावी कार्यान्वयन के लिये शुरू किया गया है।
- हाल ही में भारत ने बाल श्रम पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के दो समझौतों 138 (रोज़गार के लिये न्यूनतम आयु) और 182 (बाल श्रम के सबसे निकृष्टतम रूप) के तहत बाल श्रम को खत्म करने की पुष्टि की है।

वैकल्पिक विद्यालय

वैकल्पिक विद्यालय, वैकल्पिक शिक्षा अर्थात गैर पारंपरिक शिक्षा एक व्यापक शब्द है जो शिक्षा के पारंपरिक रूप के अतिरिक्त सभी शिक्षा के रूपों का उल्लेख करने के लिए प्रयोग किया जाता है। जिसमें ना केवल विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा सम्मिलित है बल्कि सामान्य जन हेतु उनकी आवश्यकता अनुसार शिक्षा भी सम्मिलित की जाती है। वैकल्पिक शिक्षा मूल रूप से पारंपरिक व अनिवार्य शिक्षा से भिन्न। ऐसे अध्यापक व विद्यार्थी जो परंपरागत शिक्षा के कुछ पहलुओं से असंतुष्ट हैं वैकल्पिक पाठशाला चार्टर्ड स्कूल स्वतंत्र पाठशाला घर प्रशिक्षण आदि पर जोर देते हैं। वैकल्पिक विद्यालय की स्थापना बच्चों की वह किशोरों की आवश्यकता व कठिनाइयों की थी अधिगम निर्योग्यता चिकित्सा संबंधी मनोवैज्ञानिक बिहारी को प्रगतिशील कौशल से संबंधित समस्याओं को ध्यान रखते हुए उनकी 70 के दशक में की गई थी। इसके लिए ऐसे पाठ्यक्रम पर ध्यान केंद्रित किया गया जिसमें बालक की विशेष आवश्यकता जैसे स्वयं यथार्थ वैयक्तिकता को बढ़ावा देना तथा सामाजिक कौशल को बढ़ावा देना आदि की पूर्ति हो सके। वैकल्पिक विद्यालय में संगठनात्मक व प्रशासनिक तौर पर ज्यादा लचीलापन पाया जाता है साथ ही इसमें शैक्षणिक कार्यक्रम की ज्यादा विविधता भी पाई जाती है। वैकल्पिक विद्यालय की संरचना व पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों को छात्र आवश्यकता के आधार पर बनाया जाता है। वैकल्पिक विद्यालय में वैकल्पिक शिक्षा ऐसे बच्चों को दी जाती है जो किसी कारणवश स्कूल छोड़ देते हैं। ऐसे बच्चों को उनकी आयु आवश्यकता अनुसार शिक्षा दी जाती है। विभिन्न प्रकार के वैकल्पिक विद्यालय निम्नलिखित हैं:

1. चार्टर स्कूल मैग्नेटिक स्कूल
2. विशेष आवश्यकता वाले स्कूल
3. स्वतंत्र निजी स्कूल
4. उपचारात्मक स्कूल
5. भावनात्मक विकास के बोर्डिंग स्कूल इत्यादि

चार्टर स्कूल मैग्नेटिक स्कूल :

चार्टर स्कूल वह स्कूल हैं जो कि स्वतंत्र हैं। वे शिक्षक माता–पिता या किसी संस्थान द्वारा किसी क्षेत्र में क्षेत्रीय समुदाय की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खोले जाते हैं। इन स्कूलों में खास केंद्र बिंदु तकनीकी कौशल्य संगीत होते हैं। इसके अलावा यह स्कूल ऐसे बच्चे जो घर में रहकर अध्ययन करना चाहते हैं के लिए भी दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। मैग्नेटिक स्कूलों को 60 से 70 के दशक में खास स्थान मिला।

इन विद्यालयों में विशेष कौशल को बढ़ावा देने हेतु खास व विशेष कार्यक्रम बनाए जाते हैं। स्कूल किसी खास क्षेत्र के उत्कृष्टता केंद्र कहे जाते हैं। इन दोनों ही प्रकार के स्कूलों में कक्षाएं कम होती हैं। वहां पाठ्य उत्तर गतिविधि को ज्यादा महत्व दिया जाता है।

विशेष आवश्यकता वाले स्कूल

विशेष आवश्यकता वाले विद्यालयों में ऐसे बालक व किशोर पढ़ते हैं जिनमें अधिगम निर्योग्यता व अधिगम से संबंधित समस्या पाई जाती है। साथ ही शारीरिक व व्यवहारिक अवरोध वाले बच्चे के लिए उनकी आवश्यकता के अनुसार कार्यक्रम बनाए जाते हैं, जिनमें व्यक्तिगत पाठ योजनाएं, विशेष परामर्श सहायक शिक्षा व चिकित्सा आदि प्रमुख हैं। इन सभी का उपयोग उन बच्चों की मेडिकल कंडीशन व अधिगम के कारण आई बाधा को दूर कर उन्हें सीखने हेतु प्रेरित करने के लिए किया जाता है।

स्वतंत्र निजी विद्यालय

स्वतंत्र निजी विद्यालय वे होते हैं जो किसी व्यक्ति द्वारा या किसी गैर सरकारी संगठन द्वारा नियंत्रित किये जाते हैं। ये विद्यालय सामान्य तौर पर अकादमी व खेल से संबंधित उपलब्धियों पर जोर देते हैं। विद्यार्थियों के खिलाड़ी होने की योग्यता उनके प्रवेश का आधार होता है। इसमें बच्चों की सृजनता को ज्यादा बढ़ावा देने की कोशिश की जाती है।

उपचारात्मक विद्यालय

उपचारात्मक विद्यालय पूरे सत्र या साल के लिए नहीं चलाए जाते बल्कि पूरी गर्मियां या मई के 6 से 8 हफ्ते इसके लिए जारी किए जाते हैं। बाहरी क्षेत्रों का चुनाव किया जाता है। ये विद्यालय उन बच्चों या किशोरों की सहायता करते हैं जो संवेगात्मक रूप से अस्वस्थ होते हैं। वे शैक्षिक दृष्टि से भी पिछड़े हुए हैं। समूह चिकित्सा द्वारा इन बच्चों में सकारात्मकता तथा जिम्मेदारी का भाव जगाने का प्रयास किया जाता है। व्यक्ति विशेष की आवश्यकता के अनुसार उनमें स्थिरता लाने का प्रयास किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर भावात्मक विकास के बोर्डिंग स्कूल में भेज दिया जाता है।

भावात्मक विकास हेतु बोर्डिंग स्कूल

भावात्मक विकास हेतु बोर्डिंग स्कूल ऐसे विद्यार्थियों के लिए सुनिश्चित किया जाता है जो भावात्मक, मनोवैज्ञानिक व व्यवहारिक रूप से कमजोर हैं। आत्मसम्मान का कम होना या अपने प्रति नकारात्मक विश्वास ही इस समस्या की जड़ है। इसे दूर करने के लिए विद्यार्थी की खास मदद की जाती है। व्यक्तिगत व समूह चिकित्सा के लिए परामर्श का उपयोग किया जाता है। व्यक्ति विशेष हेतु ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जिससे उसे सीखने में, निर्णय लेने में, कौशल के निर्माण में सहायता मिल सके व संवेगात्मक स्थिरता प्राप्त हो सके।

वैकल्पिक स्कूल के द्वारा विद्यार्थी में एक नया विश्वास जगाने का कार्य किया जाता है लेकिन इन सबके बावजूद परिवार की सकारात्मकता व विश्वास विद्यार्थी के लिए सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

7. अंतर्राष्ट्रीय बाल अधिकार सम्मेलन कब हुआ था?

   (क) 1985 में (ख) 1989 में

   (ग) 1990 में (घ) 1992 में

8. कन्वेंशन एक मानवाधिकार है यह–

   (क) बाल–विशिष्ट आवश्यकताओं और अधिकारों से संबंधित है।

   (ख) यह बच्चों के लिए मृत्युदंड पर रोक लगाता है।

   (ग) (क) और (ख) दोनों

   (घ) इनमें से कोई नहीं

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (घ)
4. (क)
5. (ग)
6. (घ)
7. (ख)
8. (ग)

3.7 सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सबसे महत्वपूर्ण कार्य था, भारत जैसे विशाल, बहुभाषायी, विभिन्न धर्मों वाले देश के लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण करना जिससे वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। कैबिनेट मिशन के प्रावधानों के अनुसार नवम्बर, 1946 को संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव किया गया। कुल 296 सदस्यों में से 211 कांग्रेस के और 73 मुस्लिम लीग के चुने गए शेष स्थान रिक्त रहे।

जिस समय संविधान सभा का गठन हुआ था इसे कैबिनेट मिशन की योजना के प्रावधानों के अनुसार गठित किया गया था। मुस्लिम लीग ने संविधान सभा में शामिल होने से इंकार कर दिया था। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को आयोजित की गई। इस पहली बैठक की अध्यक्षता श्री सच्चिदानन्द सिन्हा ने की थी। 11 दिसम्बर, 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित

टिप्पणी

किया गया। 13 दिसम्बर, 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने अत्यन्त महत्वपूर्ण 'उद्देश्य प्रस्ताव' प्रस्तुत किया।

भारतीय संविधान एक लिखित और निर्मित संविधान है। कोई भी संविधान चाहे वह लिखित हो या अलिखित राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है। संविधान एकाएक अस्तित्व में नहीं आता है, संविधान ऐतिहासिक विकास का परिणाम होता है। भारतीय संविधान पर भी ऐसे ऐतिहासिक प्रभाव साफ–साफ परिलक्षित होते हैं।

संविधान सभा का गठन कैबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत हुआ था। जुलाई 1946 में इसका निर्वाचन किया गया। इसके सदस्यों में से 208 सदस्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के और 73 मुस्लिम लीग के थे। संविधान सभा को नवंबर 1946 में देश के लिए संविधान निर्माण का दायित्व सौंपा गया। इस सभा में सिवाय महात्मा गांधी तथा मोहम्मद अली जिन्ना के देश के लगभग सभी शीर्षस्थ नेता सम्मिलित थे, जैसे– पं. जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल, मौलाना आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खां, पं. गोविंद बल्लभ पंत, डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य जे.वी. कृपलानी, के.टी. शाह, हृदय नाथ कुंजरू, सर एच.एस. गौड़, कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी, श्री कृष्ण सिंह, अलादी कृष्ण स्वामी अय्यर, डॉ. जयकर, ख्वाजा नजिमुद्दीन, लियाकत अली खां, सर जग्रूल्ला खां, सुहरावर्दी, सर फिरोज खातून तथा डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा आदि। परंतु इसी दौरान देश का विभाजन हो गया और संविधान सभा में सम्मिलित वे नेता जो मुस्लिम लीग के सदस्य थे, पाकिस्तान चले गए। संविधान सभा के शेष सदस्यों ने संविधान के निर्माण के कार्य को पूरा किया। 2 वर्ष 11 माह 18 दिन में अनवरत परिश्रम के पश्चात संविधान निर्माण का कार्य पूरा हुआ।

प्रत्येक संविधान के प्रारंभ में संविधान की प्रस्तावना होती है। प्रस्तावना में उन आधार तत्वों या उद्देश्यों का उल्लेख होता है जिससे संविधान अभिप्रेरित हुआ है तथा जिन पर शासन प्रणाली आधारित हो। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में न्याय, समानता, लोकतंत्र, गणतंत्र, व्यक्ति की गरिमा, एकता और अखण्डता आदि का उल्लेख संविधान की प्रस्तावना में किया गया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के आदर्श की प्राप्ति भी संविधान का उद्देश्य है। संविधान के प्रावधानों को संविधान की प्रस्तावना से प्रेरणा मिलती है। यद्यपि वैधानिक दृष्टि से प्रस्तावना को संविधान का अंग नहीं माना जाता है तथापि यही प्रस्तावना कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का मार्ग निर्देशन करती है कि 'हमें क्या करना चाहिए, हमारे उद्देश्य क्या होने चाहिए तथा हमारी दिशा क्या होनी चाहिए?'

देश के नव–निर्माण में तथा उसकी शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक संविधान के नियम–कानून की अति आवश्यकता होती है। इस संविधान का पालन करना देश के नागरिकों का परम कर्तव्य होता है। एक अच्छे नागरिक को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व देश के शासन तथा न्याय प्रणाली के हाथ में है। भारतीय संविधान के अनुसार भाग 3 में धारा 12 से लेकर 35 तक नागरिकों के मौलिक या मूल अधिकारों की व्यवस्था की गई थी। प्रारंभ में इन मौलिक अधिकारों की संख्या

टिप्पणी

7 थी परंतु 44वें संविधान संशोधन विधेयक (1979) के बाद इनकी संख्या 6 रह गई है। संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार की बजाय एक वैधानिक अधिकार मात्र बना दिया गया है। संविधान में 42वें संशोधन के द्वारा एक नई धारा 51(1) जोड़ी गई है। जिसके अंतर्गत नागरिकों के कुछ मौलिक कर्तव्यों को भी निर्धारित किया गया है। इन कर्तव्यों की संख्या दस है और ये भी मौलिक अधिकारों के समान ही महत्वपूर्ण हैं।

संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक नीति–निदेशक तत्वों का उल्लेख मिलता है। राज्य की नीति के निदेशक तत्व देश की विभिन्न सरकारों और सरकारी अभिकरणों के नाम जारी किये गये वे निर्देश हैं जो देश की शासन व्यवस्था के मूलतत्व हैं। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि नीति–निदेशक तत्व कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को दिये गये ऐसे निर्देश हैं जिनके अनुसार उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि इन सिद्धांतों का उचित रूप से पूरी तरह पालन होता रहे। ये सिद्धांत संविधान के उच्च आदर्शों की घोषणाएं हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों का उद्देश्य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है।'' प्रो. पायली के अनुसार, ''निदेशक तत्व भारतीय प्रशासकों के आचरण के सिद्धांत है।'' जी.एन. जोशी के शब्दों में, ''इन निदेशक तत्वों का विधानमण्डलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन तत्वों को लागू करते समय ध्यान रखना चाहिये। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं जिसका अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।''

स्वातंत्र्योत्तर भारत के संविधान में शिक्षा को नागरिकों के मूल अधिकार के रूप में शामिल किया गया है। साथ ही शिक्षा के महत्व को देखते हुए इसे समवर्ती सूची में भी सम्मिलित किया गया है। जिस कारण केंद्र और राज्य सरकारों दोनों को ही शिक्षा के विकास एवं उचित व्यवस्था करने हेतु संयुक्त उत्तरदायित्व सौंपा गया है। वर्तमान में केंद्र सरकार जहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण, संपूर्ण देश में शिक्षा का विकास, शोध संस्थानों, नवोदय एवं केंद्रीय विद्यालयों की व्यवस्था एवं राज्यों को शिक्षा की व्यवस्था के लिए आर्थिक सहायता देने का काम कर रही है वहीं राज्य सरकारें राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप स्थानीय क्षेत्रों में शिक्षा के प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं।

भारत की शिक्षा नीति, मुख्य रूप से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 ए के तहत शिक्षा का अधिकार (मौलिक अधिकार) का विश्लेषण करती है जिसमें शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 और इससे जुड़ी विभिन्न नीतियां शामिल हैं। इस अधिनियम को एक औपचारिक स्कूल में शिक्षा की संतोषजनक और समान गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए अपने सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य अधिकार के रूप में शिक्षा को अनिवार्य करने के लिए लागू किया गया था, जो कुछ आवश्यक मानदंडों और मानकों को पूरा करता है। एक देश के रूप में भारत ने विभिन्न सामाजिक–आर्थिक मुद्दों का सामना किया है। विकास और विकास में बाधा डालने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक निरक्षरता दर की उच्च मात्रा है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन के साथ, सरकार ने उन छात्रों के नामांकन को बढ़ाने के लिए एक पहल की जो पहले शिक्षा

प्राप्त करने में सक्षम नहीं थे। शिक्षा को एक अधिकार के रूप में प्रदान करने का उद्देश्य उन वंचित वर्गों और समुदायों के बीच की खाई को कम करना था, जिन्हें अनादि काल से शिक्षा सहित उनके मूल अधिकारों से वंचित रखा गया था। अन्य उद्देश्य प्रारंभिक बचपन की देखभाल प्रदान करना, शिक्षा की सार्वभौमिक अवधारणा की दिशा में प्रगति करना, युवा छात्रों के जीवन कौशल का विकास करना, लिंग अंतर को पाटना और बच्चों को उनके स्वस्थ और पर्याप्त विकास के लिए स्कूलों में पोषण मूल्यवान भोजन प्रदान करना था।

शिक्षा एक मौलिक मानव अधिकार है और अन्य सभी मानवाधिकारों के प्रयोग के लिए आवश्यक है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है और महत्वपूर्ण विकास लाभ प्राप्त करता है। फिर भी लाखों बच्चे और वयस्क शिक्षा के अवसरों से वंचित हैं, कई गरीबी के परिणामस्वरूप। संयुक्त राष्ट्र और यूनेस्को के मानक उपकरण शिक्षा के अधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय कानूनी दायित्वों को निर्धारित करते हैं। ये उपकरण बिना किसी भेदभाव या बहिष्कार के, अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा तक पहुंच का आनंद लेने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार को बढ़ावा देते हैं और विकसित करते हैं। ये उपकरण उस महान महत्व के साक्षी हैं जो सदस्य राज्य और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय शिक्षा के अधिकार को साकार करने के लिए नियामक कार्रवाई से जोड़ते हैं। यह सरकारों के लिए है कि वे सभी अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने और अधिक प्रभावी ढंग से शिक्षा रणनीतियों को लागू करने और निगरानी करने के संबंध में कानूनी और राजनीतिक दोनों दायित्वों को पूरा करें। शिक्षा एक शक्तिशाली उपकरण है जिसके द्वारा आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर पड़े वयस्क और बच्चे खुद को गरीबी से बाहर निकाल सकते हैं और नागरिकों के रूप में पूरी तरह भाग ले सकते हैं।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **पदार्पण** : आगमन।
- **गहन** : गहरा।
- **समक्ष** : सामने।
- **प्रभुसत्ता** : पूर्ण अधिकार।
- **संशोधन** : ठीक करना।
- **प्रावधान** : नियम या कानून।
- **अंगीकृत** : लिया गया।
- **प्रतिफल** : परिणाम।
- **वैधानिक** : विधान संबंधी।
- **अस्पृश्यता** : छुआछूत।

टिप्पणी

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान के निर्माण पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की विशेषताएं बताइए।
3. राज्य के नीति निदेशक तत्वों से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में बताइए।
4. शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।
5. भारतीय संविधान बाल अधिकार के रूप में बच्चों को कौन–कौन से अधिकार प्रदान करता है।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संविधान का अर्थ बताते हुए उसकी कार्यप्रणाली का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
2. संविधान की प्रस्तावना का स्वरूप और लक्षण बताइए।
3. संविधान द्वारा प्रदत्त 6 मौलिक अधिकारों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
4. नीति निदेशक सिद्धांतों और मूल अधिकारों में अंतर बताइए।
5. भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के अधिकार को विस्तार से प्रतिपादित कीजिए।

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Allen, L.A. 1995 Management and Organization, Mc Graw Hill, Auckland
- Anand, C.L. et.al. 1983 Teacher and Education in Emerging in Indian Society, NCERT, New Delhi.
- Coombs, Philip H. 1985 The World Crisis in Education, Oxford University Press New York.
- Govt. of India 1986 National Policy on Education, Min. of HRD, New Delhi.
- Govt. of India 1992 Programme of Action (NPE). Min of HRD.
- Koontz, Harold et al : 1981 Management, Mc Graw Hill, Auchland.
- Mohanty, J., 1986 School Education in Emerging Society, Sterling Publishers, New Delhi.
- Mukherjee, S.N. 1963 Secondary School Administration, Acharya Book Depot, Baroda.
- Mukherji, S.M., 1966 History of Education in India, Acharya Book Depot, Baroda.

इकाई 4 भारत में सार्वजनिक शिक्षा के लिए नीतिगत ढांचे : प्रतिस्पर्धी मांगें और नीतियां

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 भारत में शैक्षिक नीति की रूपरेखा : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक लेखा
- 4.2.1 शैक्षिक नीति के निर्धारक : शिक्षा का उद्देश्य
- 4.2.2 वैध ज्ञान
- 4.2.3 आकलन
- 4.2.4 शिक्षा का माध्यम
- 4.2.5 प्रवेश नीतियां और प्रशासनिक नीतियां
- 4.2.6 शिक्षा की औपनिवेशिक नीति तैयार करने का ब्रिटिश प्रयास : 1835, 1854 और 1882
- 4.2.7 अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत : उसकी आलोचना

4.3 स्वतंत्र भारत में शिक्षा नीति की रूपरेखा
- 4.3.1 स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों के दौरान शैक्षिक नीति में प्राथमिकताएं : सामाजिक और क्षेत्रीय
- 4.3.2 राष्ट्रीय विकास और आधुनिकीकरण : भारतीय शिक्षा आयोग 1964–66
- 4.3.3 शिक्षा की राष्ट्रीय नीति : 1968 और 1986

4.4 भारतीय शिक्षा : सरोकार और मुद्दे
- 4.4.1 स्कूली शिक्षा का लोकतंत्रीकरण
- 4.4.2 स्कूली शिक्षा का सार्वभौमीकरण : पहुंच, प्रतिधारणा और सफलता
- 4.4.3 शैक्षणिक अवसरों की समानता : स्कूली शिक्षा में बढ़ रही असमानता
- 4.4.4 स्कूली शिक्षा में समाजशास्त्रीय विश्लेषण और गुणवत्ता एवं समता

4.5 पाठ्यचर्या की रूपरेखा : स्कूली शिक्षा नीतियां
- 4.5.1 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा 1975 का विश्लेषण : शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य, शैक्षणिक नीतियां, पाठ्यक्रम संगठन, आकलन के तौर–तरीके और भाषा नीतियां
- 4.5.2 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 1988 का विश्लेषण
- 4.5.3 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 2000 का विश्लेषण
- 4.5.4 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 2005 का विश्लेषण

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

वैसे तो शिक्षा पर सबका समान अधिकार माना जाता है लेकिन हकीकत इसके विपरीत है। ऐसे में इस मुद्दे पर हर संभव प्रयास करने की जरूरत है जिससे हर जाति और वर्ग में शिक्षा का समान वितरण संभव हो सके। शिक्षा का व्यक्तिगत उद्देश्य भी हो सकता है यदि मानव व्यक्तिगत रूप से स्वयं में आत्मशांति के लक्ष्य को पूर्ण कर लेता है तो यह, शिक्षा का एक उचित पड़ाव होगा। वहीं शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य कहता

टिप्पणी

है कि समाज प्रत्येक मनुष्य का है। समाज में रहकर वह अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकता है एवं अच्छी तरह से अपने समाज को शिक्षित कर सकता है।

शिक्षा के आम उद्देश्यों में चरित्र निर्माण भी अहम भूमिका निभाता है। अच्छी शिक्षा ग्रहण कर हम एक अच्छे चरित्र का निर्माण कर सकते हैं, यदि मनुष्य का चरित्र अच्छा होगा तो स्वभाव भी अपने आप निर्मल हो जाता है, और यह मदद करता है उज्ज्वल भविष्य व अच्छा समाज बनाने में।

शिक्षा से कौशल और हुनर से सुख समृद्धि प्राप्त होती है। यदि सुखी जीवन व्यतीत करना है तो हमारे अंदर कौशल की आवश्यकता है, जिसे शिक्षा के बिना हासिल करना संभव नहीं है। आज कौशल प्राप्त करने के लिए अनेक साधन हैं किन्तु पहले यह वंशानुगत हुआ करता था। शिक्षा का वंशानुगत प्रसार ही आज जाति भेद, बड़ा–छोटा, ऊंच–नीच जैसी अनेक भिन्नता का निर्माण कर चुका है। ऐसे में शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए इसे और अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है। शिक्षा को जन–जन तक फैलाने के लिए तीव्र प्रयासों की आवश्यकता है। इक्कीसवीं सदी में भारत का हर नागरिक शिक्षित हो, इसके लिए सभी जरूरी कदम उठाने होंगे। सर्वशिक्षा अभियान को प्रभावी तरीके से लागू करने की आवश्यकता है। तभी हमारा देश पूर्ण रूप से सुशिक्षित राष्ट्र कहलाएगा।

प्रस्तुत इकाई में भारत में शैक्षिक नीति की रूपरेखा, स्वतंत्र भारत में शिक्षा नीति की रूपरेखा, भारतीय शिक्षा : सरोकार और मुद्दे तथा पाठ्यचर्या की रूपरेखा का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शैक्षिक नीति की रूपरेखा को भलीभांति समझ पाएंगे;
- शिक्षा के उद्देश्यों से परिचित हो पाएंगे;
- स्वतंत्र भारत की शिक्षा नीतियों के विषय में जान पाएंगे;
- पाठ्यचर्या की रूपरेखा से अवगत हो पाएंगे।

4.2 भारत में शैक्षिक नीति की रूपरेखा : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक लेखा

दुनिया के प्रगतिवादी विचारों ने बच्चों के अधिकारों के दृष्टिकोण से स्कूली शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के मुताबिक, शिक्षा के व्यापक लक्ष्य हैं जैसे– बच्चों के भीतर विचार और कर्म की स्वतंत्रता विकसित करना, दूसरों के कल्याण और उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना, और बच्चों को नई परिस्थितियों के प्रति लचीले और मौलिक ढंग से पेश आने में मदद करना। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे उनके भीतर लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की, और मौलिक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति तथा सौन्दर्यबोध की समझ विकसित हो और साथ

ही आर्थिक प्रक्रियाओं व सामाजिक बदलाव की ओर कार्य करने व उसमें योगदान देने की क्षमता भी विकसित हो सके।

वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य आदर्श और महान था। लेकिन समय के साथ–साथ शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता रहा। वैदिक काल में शिक्षा अध्यात्म, संगीत, वेद, उपनिषद, राजनीति, रणकौशल, आदि पर आधारित हुआ करती थी। मध्यकाल में शिक्षा का उद्देश्य धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए हो गया। वहीं आधुनिक काल में शिक्षा का उद्देश्य पुनः बालक के सर्वांगीण विकास पर आधारित हो गया। इस शिक्षा में बालक के मस्तिष्क के विकास पर ही नहीं बल्कि उसके शारीरिक विकास पर भी ध्यान दिया जाता है। आधुनिक पाठ्यक्रम में बालक की हर एक रुचि को ध्यान में रखा जाता है अथवा उसके सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया जाता है। जिसमें चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक और सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक सुख और कौशल की उन्नति, राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार शामिल है।

4.2.1 शैक्षिक नीति के निर्धारक : शिक्षा का उद्देश्य

सत्य, धर्म, शांति, प्रेम, अहिंसा, वैज्ञानिक दृष्टि, नागरिक मूल्य, जीवन कौशल तथा सेवा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्धारक तत्व के रूप में स्थापित हुए हैं।

शिक्षा मनुष्य के भीतर अच्छे विचारों का निर्माण करती है, मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। बेहतर समाज के निर्माण में सुशिक्षित नागरिक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इंसानों में सोचने की शक्ति होती है, इसलिए वो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है लेकिन अशिक्षित मनुष्य की सोच पशु के समान होती है। वो सही गलत का फैसला नहीं कर पाता। इसलिए शिक्षा मानव जीवन के लिए जरूरी है, जो उसे ज्ञानी बनाती है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में चार लक्ष्य माने गए हैं जिन्हें पुरुषार्थ की संज्ञा दी जाती है। धर्म, अर्थ, काम , मोक्ष, इन चारों में से मोक्ष सबसे अधिक पवित्र एवं महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः शिक्षा ही मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र साधन माना गया है। लेकिन शिक्षा का उद्देश्य मात्र शिक्षित होना नहीं होता, बल्कि शिक्षा के कई अन्य मकसद होते हैं, जिसे कई शिक्षा के विद्वानों ने अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया है।

विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में इस प्रकार से लिखा हैः

महात्मा गांधी – "शिक्षा से मेरा का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।"

स्वामी विवेकानंद – "मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है।"

राधा मुकुन्द मुखर्जी – "प्राचीन काल में शिक्षा मोक्ष के लिए आत्म ज्ञान का साधन थी, इस प्रकार शिक्षा जीवन के अंतिम उद्देश्य यानी मोक्ष प्राप्ति का साधन मानी जाती थी।"

जॉन डुई – "शिक्षा व्यक्ति के उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रख कर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकें।"

पेस्टालॉजी – "शिक्षा मानव की संपूर्ण शक्तियों का प्राकृतिक प्रगतिशील और सामंजस्यपूर्ण विकास है।"

टिप्पणी

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 – "शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। शिक्षा राष्ट्रीय संपन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है।"

अलग–अलग काल में व्यक्तियों ने अलग–अलग तरीके से जीवन में शिक्षा के उद्देश्य को समझाने का प्रयास किया है। शिक्षा के कई अन्य सार्थक उद्देश्य भी हो सकते हैं। शिक्षा भी मनुष्यों को दो अलग प्रजातियों में बांटती है, शिक्षित व अशिक्षित व्यक्ति में। मनुष्य का व्यक्तित्व बताता है कि वह किस तरह से शिक्षित हुआ है। शिक्षा लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक उत्तम साधन है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से शिक्षित होने की बात करें तो यह भी उसी दिशा में जाती है जैसा कि शिक्षाविदों ने बताया है। विज्ञान भी जीवन की उत्पत्ति एवं सुखद अंत या फिर जीवन एवं मृत्यु से जुड़े सबसे जटिल सवालों के जवाब खोजने में लगा है। आज शिक्षा का बाजारीकरण होने के कारण सभी वर्ग के बच्चों के लिए शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया है, आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के बच्चे करियर बनाने के लिए जिस क्षेत्र में जाना चाहते हैं वो वहां तक नहीं पहुंच पा रहे हैं।

विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

विश्वविद्यालय आयोग ने भारतीय शिक्षा के अग्रलिखित उद्देश्य निर्धारित किये हैं–

(1) विवेक का विस्तार करना।

(2) नये ज्ञान के लिए इच्छा जागृत करना।

(3) जीवन का अर्थ समझने के लिए प्रयत्न करना।

(4) व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना।

माध्यमिक आयोग के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने व्यक्ति तथा भारतीय समाज की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये हैं –

जनतांत्रिक नागरिकता का विकास – भारत एक धर्म निरपेक्ष गणराज्य है। इस देश के जनतंत्र को सफल बनाने के लिए प्रत्येक बालक को सच्चा, ईमानदार तथा कर्मठ नागरिक बनाना परम आवश्यक है। अतः शिक्षा का परम उद्देश्य बालक को जनतांत्रिक नागरिकता की शिक्षा देना है। इसके लिए बालकों को स्वतंत्र तथा स्पष्ट रूप से चिन्तन करने एवं निर्णय लेने को योग्यता का विकास परम आवश्यक है, जिससे वे नागरिक के रूप में देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार की समस्याओं पर स्वतंत्रतापूर्वक चिन्तन और मनन करके अपना निजी निर्माण लेते हुए स्पष्ट विचार व्यक्त कर सकें। इन सभी शक्तियों का विकास बौद्धिक विकास के द्वारा किया जा सकता है। बौद्धिक विकास हो जाने से व्यक्ति इस योग्य बन जाता है कि वह सत्य और असत्य तथा वास्तविकता और प्रचार में अन्तर समझते हुए अंधविश्वासों तथा निरर्थक परम्पराओं का उचित विश्लेषण करके अपने जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा अपना निजी निर्णय ले सके। चूंकि स्पष्ट चिन्तन का भाषण देने तथा लेखन की स्पष्टता में घनिष्ठ सम्बन्ध है इसलिए बालकों को शिक्षा के द्वारा इस योग्य बनाया जाये कि वे भाषणों तथा लेखों के द्वारा अपने विचारों से जनता को प्रभावित करके अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

कुशल जीवन–यापन कला की दीक्षा – शिक्षा का दूसरा उद्देश्य बालक को समाज में रहने अथवा जीवन–यापन की कला में दीक्षित करना है। एकांत में रहकर न तो व्यक्ति जीवन–यापन ही कर सकता है और न ही पूर्णतः विकसित हो सकता है। उसके स्वयं के विकास तथा समाज के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि वह सहअस्तित्व की आवश्यकता को समझते हुए व्यावहारिक अनुभवों द्वारा सहयोग के महत्व का मुल्यांकन करना सीखे। इस दृष्टि में चेतना तथा अनुशासन एवं देशभक्ति आदि अनेक सामाजिक गुणों का विकास किया जाना चाहिये जिससे प्रत्येक बालक इस विशाल देश के विभिन्न व्यक्तियों का आदर करते हुए एक–दुसरे के साथ घुलमिल कर रहना सीख जायें।

व्यावसायिक कुशलता की उन्नति – शिक्षा का तीसरा उद्देश्य बालकों में व्यावसायिक कुशलता की उन्नति करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है। अतः बालकों के मन में श्रम के प्रति आदर तथा रुचि उत्पन्न करना एवं हस्तकला के कार्य पर बल देना परम आवश्यक है। यही नहीं, पाठ्यक्रम में विभिन्न व्यवसायों को भी उचित स्थान मिलना चाहिये जिससे प्रत्येक बालक अपनी रुचि के अनुसार उस व्यवसायों को चुन सकें जिन्हें शिक्षा समाप्त करने के पश्चात अपनाना चाहता हो। इससे हमें जहां एक ओर विभिन्न व्यवसायों के लिए कुशल कारीगर प्राप्त हों सकेंगे वहां दूसरी ओर औद्योगिक प्रगति के कारण देश की आर्थिक दशा में भी निरन्तर सुधार होता रहेगा। इस दृष्टि से स्कूलों में व्यावसायिक क्षमता की उन्नति की ओर ध्यान देते हुए बालकों को इस बात का ज्ञान कराना परम आवश्यक है कि आत्म सन्तुष्टि तथा राष्ट्रीय समृद्धि कार्य–कुशलता द्वारा सम्भव है।

व्यक्तित्व का विकास – शिक्षा का चौथा उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करना है। व्यक्तित्व के विकास का तात्पर्य बालक के बौद्धिक विकास, शारीरिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक आदि सभी पक्षों एवं रचनात्मक शक्तियों के विकास से है। इस उद्देश्य के अनुसार बालकों को क्रियात्मक तथा रचनात्मक कार्यों को करने के लिए प्रेरित करना चाहिये जिससे उनमें साहित्यिक, कलात्मक एवं सांस्कृतिक आदि नाना प्रकार की रुचियों का निर्माण हो जाये। इन विभिन्न रुचियों के विकास से उनकी आत्माभिव्यक्ति, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सम्पत्ति की वृद्धि, अवकाश काल के सदुपयोग की योग्यता तथा चहुंमुखी विकास में सहायता मिलेगी। अतः बालकों के व्यक्तित्व के विकास हेतु उन्हें रचनात्मक कार्यों में भाग लेने के अवसर मिलने चाहिए।

नेतृत्व के लिए शिक्षा – भारत को अब ऐसे नेताओं की आवश्यकता है जो देश को आदर्श नेतृत्व प्रदान कर सके। अतः नेतृत्व की शिक्षा प्रदान करना शिक्षा का पांचवां मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य के अनुसार, हमें बालकों में अनुशासन, सहनशीलता, त्याग, सामाजिक भावनाओं की समझदारी तथा नागरिक एवं व्यावहारिक कुशलता आदि गुणों को विकसित करना चाहिये जिससे वे बड़े होकर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अपने–अपने उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभाते हुए सफल नेतृत्व कर सकें।

टिप्पणी

कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

कोठारी आयोग ने भारतीय शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये हैं –

(1) **उत्पादन में वृद्धि करना** – वर्तमान जनतंत्रीय भारत का प्रथम उद्देश्य है – उत्पादन में वृद्धि करना। भारत में जनसंख्या की वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। हम देखते हैं कि हमारे देश में खाद्य सामग्री, वस्त्र, दवाइयां तथा कल–पुर्जे आदि आवश्यक वस्तुओं की अब भी बहुत कमी है। इन सबके लिए हमें दूसरे देशों का मुंह देखना पड़ता है। हमें चाहिये कि हम अपने यहां विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन को गति प्रदान करें। इस महान उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें कृषि तथा तकनीकी शिक्षा पर बल देने के साथ–साथ माध्यमिक शिक्षा को भी अधिक व्यावसायिक रूप प्रदान करना होगा। इस सम्बन्ध में आयोग ने कुछ सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं जिनको कार्य रूप में परिणत करने से उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

(2) **सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास** – राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए राष्ट्रीय एकता परम आवश्यक है। इस एकता के न होने से सभी नागरिक राष्ट्र हित की परवाह न करते हुए केवल अपने–अपने निजी हितों को पूरा करने में ही व्यस्त हो जाते हैं। इससे राष्ट्र निर्बल तथा प्रभावहीन हो जाता है। परिणामस्वरूप उसे एक दिन रसातल में जाना ही पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्र के निर्माण हेतु सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता परम आवश्यक है। इस एकता की भावना का विकास केवल शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। अतः शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास होना चाहिये। आयोग ने एक शैक्षिक कार्यक्रम की रुपरेखा प्रस्तुत की है जिसके द्वारा इस उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

(3) **जनतंत्र को सुदृढ़ बनाना** – जनतंत्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा परम आवश्यक है। अतः जनतंत्र को सुदृढ़ बनाना शिक्षा का तीसरा उद्देश्य है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से करनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति जनतंत्र के आदर्शों और मूल्यों को प्राप्त कर सके। आयोग ने शिक्षा के द्वारा जनतंत्र सुदृढ़ बनाने तथा राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने के लिए कुछ ठोस सुझाव प्रस्तुत किये हैं जो उक्त दृष्टि से अत्यंत उपयोगी हैं।

(4) **देश का आधुनिकीकरण करना** – शिक्षा का चौथा उद्देश्य है – देश का आधुनिकीकरण करना। प्रगतिशील देशों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान में विकास होने के कारण दिन–प्रतिदिन नये–नये अनुसंधान हो रहे हैं। इन अनुसंधानों के परिणामस्वरूप प्राचीन परम्पराएं, मान्यताएं तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण नव–समाज का निर्माण हो रहा है। खेद का विषय है कि भारतीय समाज में अभी तक वही परम्पराएं, मान्यताएं तथा दृष्टिकोण प्रचलित हैं जिन्हें प्राचीन युग में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। भारत अब स्वतंत्र है। यदि भारत को अब उन्नतिशील राष्ट्रों के साथ–साथ चलना है तो हमें भी वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान का विकास करके औद्योगिक क्षेत्र में उन्नति करते हुए अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं, मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों में समयानुकूल परिवर्तन करके देश का आधुनिकीकरण करना

होगा। चूंकि ये सभी बातें शिक्षा के ही द्वारा सम्भव हैं, इसलिए हमें शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से करनी चाहिये कि यह उद्देश्य सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाये।

टिप्पणी

(5) **सामाजिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना** – शिक्षा का पांचवां उद्देश्य है – सामाजिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना। देश का आधुनिकीकरण करने के लिए कुशल व्यक्तियों का होना परम आवश्यक है। अतः हमको पाठ्यक्रम में विज्ञान तथा तकीनीकी विषयों को मुख्य स्थान देना होगा। इन विषयों से चारित्रिक विकास एवं मानवीय गुणों को क्षति पहुंचने की सम्भावना है। अतः आयोग ने सुझाव प्रस्तुत किया है कि पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों के साथ–साथ मानवीय विषयों को भी सम्मिलित किया जाये जिससे औद्योगिक उन्नति के साथ–साथ मानवीय मूल्य भी विकसित होते रहें और प्रत्येक नागरिक सामाजिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक मूल्यों को प्राप्त कर सकें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए भी आयोग ने अनेक सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

4.2.2 वैध ज्ञान

समय के साथ ज्ञान की धारणा में परिवर्तन आया है और यह परिवर्तन बताता है कि ज्ञान कैसे निर्मित किया जाता है तथा प्रयोग किया जाता है। इस बात की पुष्टि की जाती है कि ज्ञान और शक्ति के बीच बहुत ही गहरा संबंध है। वैधता प्रदान करने का कार्य तर्कसंगत है। यह वह प्रक्रिया है जिसके तहत एक अधिनियम एवं प्रक्रिया या विचारधारा को वैद्य बनाया जाता है। यह एक सामाजिक संरक्षण के मानदंडों से संबंधित है। यह दर्शकों के प्रति सभी तथ्यों को स्वीकार्य या प्रामाणिक बनाने की एक प्रक्रिया है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार पर

बच्चों का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है जिसमें ज्ञान अपना महत्त्व अर्जित करता है। सर्विस के साथ अंतः क्रिया करके ही बच्चा ज्ञान अर्जित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। क्योंकि हम सभी जानते हैं कि सार्थक होने के लिए ज्ञान का होना अति आवश्यक है। स्कूल एवं बच्चों के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा रेखा को कम करने के लिए जोर दे रहे हैं। यह केवल इसलिए नहीं कि परिवेश में बच्चों का अपना अनुभव ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है बल्कि इसलिए कि ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जोड़ना होता है। यह केवल साधन नहीं बल्कि साधन और साध्य दोनों हैं। शिक्षार्थी जब तक अपने व्यक्तित्व दृष्टिकोण को पाठ्यपुस्तक में निरूपित संदर्भो के संबंध में स्थित नहीं कर पाते और विज्ञान को समाज के अपने लोगों से नहीं जोड़ पाते तब तक ज्ञान मात्र सूचना के स्तर पर ही रहता है।

स्थानीय परिवेश केवल भौतिक प्राकृतिक नहीं होता बल्कि इसमें सामाजिक व सांस्कृतिक भी होता है। सभी बच्चों की घर में अपनी आवाज होती है। स्कूल के लिए आवश्यक है कि कक्षा में वह आवाज सुनी जाए। जिस प्रकार माता–पिता अपने बच्चों से भली–भांति जुड़े होते हैं ठीक उसी प्रकार स्कूलों में भी शिक्षकों का उनसे लगाव

टिप्पणी

आवश्यक है। समुदायों का सांस्कृतिक स्रोत प्रचार होता है, लोक कथाएं, लोक गीत, चुटकुले, शिल्प कला, क्रीड़ा जो स्कूल में भाषा और ज्ञान से समृद्ध बना सकते हैं। इससे मौखिक इतिहास भी समृद्ध होगा। यह जरूरी है कि सामाजिक व सांस्कृतिक संसार के अनुभवों को भी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए ताकि ज्ञान के सीजन में पुनः सृजन के लिए अनुभव के आधार पर भारतीय क्षमताओं एवं प्राकृतिक संसाधनों की दूसरे लोगों के साथ अंतः क्रिया की जरूरत होती है। स्कूल में पहली बार प्रवेश करते समय बच्चा संसार के ज्ञान का सृजन शुरू कर चुका होता है। हर चीज को बच्चे बाद में सीखते हैं। वह उस ज्ञान से संबंधित होता है जो वह स्कूल में लेकर आते हैं। स्कूल बच्चों को याद करा देता है। इसी ज्ञान को आधार मानकर सचेत रहकर और दुआओं के साथ आगे बढ़ा जाए। विषयों में विभाजन उतना महत्वपूर्ण नहीं है और सभी ज्ञान क्षेत्रों को समेकित किया जा सकता है और बच्चों के सामने प्रवेश के शैक्षिक अनुभवों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें प्राकृतिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश के साथ अंतःक्रिया, सामाजिक अंतः क्रियाओं की समझ, अपने हाथ से काम करना और अपने सौंदर्य बोध की क्षमताओं का विकास शामिल है।

राजनीतिक एवं आर्थिक आधार पर

आर्थिक विचार ज्ञान की व्यावहारिकता से संबंध रखते हैं। किसी विज्ञान संगठन तथा उसके चुनाव के लिए एवं उसके क्रियान्वयन के लिए भौतिक सुविधाएं शिक्षण सामग्री का विकास तथा शिक्षित अध्यापकों की भर्ती के प्रावधान सहित अनेक कार्रवाइयों की आवश्यकता होती है। इन सब प्रावधानों पर वह आवर्ती होता है। राजनीतिक संस्थाओं द्वारा शिक्षा के सभी स्तरों पर वित्तीय संसाधनों को जुटाने के बाद भी समुदाय को शिक्षा संबंधी वेज उठाने पड़ते हैं। समाज के लोग भी अपने बच्चों को स्कूल भेजेंगे यदि समाज की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है कि वह शिक्षा की लागत का वहन कर सके तो समाज अपने सदस्यों की सेवा करने की स्थिति में नहीं होगा। अतः शिक्षा के प्रसार हेतु आर्थिक वहन आवश्यक है।

सरकार शिक्षा संबंधी बहुत सारी नीतियां बनाती है। प्रत्येक सरकारी नियंत्रण संवैधानिक तथा संवैधानिक कानूनों पर आधारित है और हमारे देश में अनुच्छेद 45 के अंतर्गत राज्य के नीति निदेशक तत्व सरकार को सबके लिए प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था के निर्देश देते हैं। अतः सरकार को सबके लिए सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था करना है जिसमें भौतिक सुविधाएं तथा अध्यापकों के नियोजन के प्रावधान भी शामिल हैं। अतः आप कह सकते हैं कि वैदिक शिक्षा की शुरुआत बच्चों के स्कूली स्तर पर ही हो जाती है जहां उनके शिक्षक उन्हें विभिन्न तत्वों से रूबरू कराते हैं और वही तथ्य बच्चे अपना आधार मानकर आगे की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

4.2.3 आकलन

आकलन तीन प्रकार के होते हैंः पूर्वानुमान संबंधी, रचनात्मक और योगात्मक। हालांकि तीनों को आम तौर पर केवल आकलन के रूप में संदर्भित किया जाता है, तीनों के बीच अलग–अलग अंतर हैं।

पूर्वानुमान संबंधी आकलन

एक भविष्यसूचक आकलन एक और आयाम के साथ क्षमताओं और संभावनाओं के विश्लेषण के साथ आकलन के निष्कर्षों का विस्तार करता है। संबंधित व्यक्ति के भविष्य के विकास, साथ ही साथ आवश्यक शर्तें, समय सीमा और सीमाएं। एक कार्यकारी पद के लिए सही व्यक्ति को खोजने के लिए व्यक्तित्व की एक विश्वसनीय समझ के साथ–साथ व्यक्तिगत विकास से संबंधित संभावनाओं और सीमाओं की आवश्यकता होती है। मानव स्वभाव का एक अनुभवी और उत्सुक पर्यवेक्षक भी भ्रमित हो सकता है, यहां तक कि मान्यता प्राप्त और सिद्ध परीक्षण प्रक्रियाएं अधूरी हो सकती हैं या गलत परिणाम दे सकती हैं – और गलत निर्णय पर्याप्त और सारहीन तरीकों से महंगा हो सकता है। प्रागैतिहासिक व्यक्तित्व और क्षमताओं के आकलन के छह लक्ष्य मौजूदा क्षमताओं और रुचियों का विश्लेषण, जिसमें (अभी तक) ज्ञात नहीं हैं और अपेक्षित विकास शामिल हैं।

- यदि आवश्यक हो, तो नौकरी के विवरण और आवश्यकताओं के प्रोफाइल के साथ तुलना करें।
- विकास के लिए बुनियादी शर्तें और जरूरतें: इसे कैसे बढ़ाया और सुनिश्चित किया जा सकता है।
- अवधि: परिभाषित लक्ष्यों तक पहुंचने तक विकास में कितना समय लगेगा। विकासात्मक संभावनाओं की सीमाएं, या तो परिभाषित लक्ष्यों (चयन आकलन) की ओर इशारा करती हैं, या आम तौर पर, 3 से 5 वर्षों की वास्तविक समय सीमा के साथ।
- गुणवत्ता आश्वासन और स्थिरता: परिणामों की निगरानी और लंबी अवधि में कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है।

पूर्वानुमान संबंधी आकलन कार्यकारी बोर्ड और प्रशासनिक परिषद सहित सभी प्रबंधन स्तरों के लिए उपयुक्त है, लेकिन इसी तरह एक व्यापक संभावित विश्लेषण के उद्देश्य से युवा लोगों के लिए भी उपयुक्त है। आमतौर पर, भविष्यसूचक आकलन एक व्यक्तिगत एकदिवसीय–आकलन के रूप में पूरा किया जाता है। उद्देश्यों को व्यक्तिगत रूप से परिभाषित किया गया है।

रचनात्मक आकलन

रचनात्मक आकलन शिक्षण प्रक्रिया के दौरान और सीखने के दौरान प्रतिक्रिया और जानकारी प्रदान करता है। रचनात्मक आकलन छात्र की प्रगति को मापता है लेकिन यह एक प्रशिक्षक के रूप में आपकी खुद की प्रगति का आकलन भी कर सकता है। रचनात्मक आकलन का प्राथमिक फोकस उन क्षेत्रों की पहचान करना है जिनमें सुधार की आवश्यकता हो सकती है। ये आकलन आमतौर पर वर्गीकृत नहीं होते हैं और छात्रों की सीखने की प्रगति और शिक्षण प्रभावशीलता (उपयुक्त तरीकों और गतिविधियों को लागू करने) को निर्धारित करने के लिए एक गेज के रूप में कार्य करते हैं।

रचनात्मक आकलन के अंतर्गत निम्न कार्य किए जाते हैं–

- परीक्षा और कक्षा चर्चा के लिए समीक्षा के रूप में गृहकार्य अभ्यास।

टिप्पणी

- प्रतिबिंब पत्रिकाएं जिनकी सेमेस्टर के दौरान समय–समय पर समीक्षा की जाती है।
- सेमेस्टर में विभिन्न बिंदुओं पर प्रशिक्षक और छात्र के बीच सम्मेलन।
- कक्षा में गतिविधियां जहां छात्र अनौपचारिक रूप से अपने परिणाम प्रस्तुत करते हैं।
- छात्र प्रतिक्रिया समय–समय पर एकत्र की जाती है।

नैदानिक आकलन

नैदानिक आकलन आपको अपने छात्रों के किसी विषय के वर्तमान ज्ञान, उनके कौशल सेट और क्षमताओं की पहचान करने और शिक्षण होने से पहले गलत धारणाओं को स्पष्ट करने में मदद कर सकता है। छात्रों की ताकत और कमजोरियों को जानने से आपको बेहतर योजना बनाने में मदद मिल सकती है कि क्या पढ़ाया जाए और कैसे पढ़ाया जाए।

नैदानिक आकलन के अंतर्गत निम्न कार्य किए जाते हैं–

- पूर्व परीक्षण (सामग्री और क्षमताओं पर)।
- स्व–मूल्यांकन (कौशल और दक्षताओं की पहचान करना)।
- बोर्ड की प्रतिक्रियाएं (सामग्री–विशिष्ट संकेतों पर)।
- साक्षात्कार (संक्षिप्त, निजी, प्रत्येक छात्र का 10 मिनट का साक्षात्कार)।

योगात्मक आकलन

सीखने की प्रक्रिया पूरी होने के बाद योगात्मक आकलन होता है और सूचना और प्रतिक्रिया प्रदान करता है जो शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को सारांशित करता है। आमतौर पर, इस स्तर पर कोई और औपचारिक शिक्षा नहीं हो रही है, केवल आकस्मिक सीखने के अलावा जो परियोजनाओं और असाइनमेंट के पूरा होने के माध्यम से हो सकता है।

योगात्मक आकलन के अंतर्गत निम्न कार्य किए जाते हैं–

- परीक्षा (प्रमुख, उच्च–दांव परीक्षा)।
- अंतिम परीक्षा (वास्तव में एक योगात्मक आकलन)।
- टर्म पेपर (पूरे सेमेस्टर में जमा किए गए ड्राफ्ट एक प्रारंभिक आकलन होंगे)।
- परियोजनाएं (विभिन्न समापन बिंदुओं पर प्रस्तुत परियोजना चरण औपचारिक रूप से हो सकते हैं)।
- आकलन।
- पोर्टफोलियो (इसके विकास के दौरान भी आकलन किया जा सकता है)।
- सूचनात्मक आकलन।
- प्रदर्शन।
- पाठ्यक्रम का छात्र आकलन (शिक्षण प्रभावशीलता)।
- प्रशिक्षक स्व–मूल्यांकन।

4.2.4 शिक्षा का माध्यम

किसी शिक्षण संस्थान में जो भाषा शिक्षण के लिये प्रयोग की जाती है, उसे उस संस्थान की शिक्षा का माध्यम (medium of instruction) कहते हैं। अधिकांश विकसित देशों में मातृभाषा ही प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक का माध्यम है।

देशी–भाषाई या स्थानीय शिक्षा का विकास

- 19वीं शताब्दी तक देशी–भाषाई शिक्षा राज्यों का मामला था। यह मुख्यतः स्थानीय समृद्ध जमीदारों की दया पर निर्भर था।
- 1835, 1836, 1838: बंगाल एवं बिहार में देशी–भाषाई शिक्षा से संबंधित विलियम एडम्स की रिपोर्ट में इसकी अनेक खामियों पर प्रकाश डाला गया।
- 1843–53: उत्तर–पश्चिमी प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर जेम्स जोनाथन के अनुप्रयोग पर इस प्रांत की प्रत्येक तहसील में एक सरकारी विद्यालय को आदर्श विद्यालय (Model School) के रूप में विकसित किये जाने तथा देशी–भाषाई विद्यालयों के लिये शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से एक सामान्य विद्यालय खोलने की योजना बनायी गयी।
- 1853: लार्ड डलहौजी ने अपने प्रसिद्ध स्मरण–पत्र में, देशी–भाषाई शिक्षा की सशक्त वकालत की।

1854: चार्ल्स वुड के डिस्पैच में देशी–भाषाई शिक्षा के संबंध में निम्न प्रावधान किये गये–

1. स्तर में सुधार।
2. सरकारी संस्थाओं द्वारा निरीक्षण।
3. शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिये एक सामान्य स्कूल की स्थापना।
    - **1854–71:** सरकार ने माध्यमिक एवं देशी–भाषाई शिक्षा के लिये कुछ कदम उठाये। इस काल में देशी–भाषाई स्कूलों की संख्या में 5 गुना वृद्धि हुई।
    - **1882:** हंटर आयोग ने सुझाव दिया कि सरकार को देशी–भाषाई शिक्षा के उन्नयन एवं प्रसार के संबंध में विशेष कदम उठाने चाहिये। जनसाधारण की शिक्षा को स्थानीय शिक्षा के माध्यम से ही प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
    - **1904:** शिक्षा नीति ने स्थानीय शिक्षा के विकास एवं इसके लिये और अधिक धन दिये जाने की आवश्यकता पर बल दिया।
    - **1929:** हर्टोग समिति ने प्राथमिक शिक्षा की अंधकारमय तस्वीर प्रस्तुत की।
    - **1937:** कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने देशी–भाषाई विद्यालयों को प्रोत्साहन एवं समर्थन प्रदान किया

भारत में शिक्षा के माध्यम की भाषा के निर्धारण हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं।

टिप्पणी

प्रथम मार्ग

1. प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा को स्थानीय या मातृभाषा पर आधारित किया जाय। अन्य राज्यों या राष्ट्रों से आने वाले विद्यार्थियों हेतु पाठ्यक्रम का अंग्रेजी भाषा में व्याख्या द्वारा शिक्षण कार्य किया जाय।
2. अंतरराष्ट्रीय ज्ञान एवं विज्ञान का स्थानीय या मातृभाषा में अनुवाद करने हेतु एक विभाग की स्थापना की जाय, ताकि शिक्षा में अंतरराष्ट्रीय तत्व भी सम्मिलित रहें।
3. प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए अंग्रेजी एवं स्थानीय / मातृभाषा दोनों का प्रयोग किया जाय। इसके लिए आवेदन–पत्र द्वारा स्थानीय / मातृभाषा के उम्मीदवारों की संख्या ज्ञात करके, उसके अनुसार प्रश्न–पत्रों का निर्माण किया जाय।
4. संस्कृत, उर्दू एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय भाषाओं को वैकल्पिक रूप से पढ़ाया जाय, जिसके विद्यार्थियों को उचित सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान किया जाय।

प्रथम मार्ग के अनुपालन में कठिनाइयां

1. अंतरराष्ट्रीय ज्ञान एवं विज्ञान के विभिन्न स्थानीय / मातृभाषाओं में अनुवाद में ज़्यादा खर्च। वस्तुतः यह कोई व्यावहारिक समस्या नहीं है।
2. स्थानीय / मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने से अन्य क्षेत्रों से विद्यार्थियों के कट जाने का खतरा है। आदिवासी या पिछड़े समुदाय पर यह खतरा ज्यादा मंडराएगा।
3. अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त विकास ना होने से विदेशों में अध्ययन एवं रोजगार करना कठिन हो जाएगा।
4. भारतीय संविधान द्वारा सभी भारतीय नागरिकों को भारत के किसी भी क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त करने, व्यवसाय करने या निवास करने का अधिकार प्राप्त है, जो आवश्यक भी है। स्थानीय / मातृभाषाओं में शिक्षा प्रदान करने से इस सन्दर्भ में व्यावहारिक समस्यायें उत्पन्न होंगी।
5. वर्तमान सन्दर्भ में अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक कहा जा सकता है, अतः इसे मात्र एक विषय के रूप में पढ़ाकर कुशलता हासिल नहीं की जा सकती है।

द्वितीय मार्ग

1. प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा का मुख्य माध्यम अंग्रेजी भाषा को बनाया जाय। साथ ही स्थानीय / मातृभाषा में उसकी व्याख्या भी की जाय। इससे अंग्रेजी भाषा में विद्यार्थियों को कुशलता हासिल होगी और वे राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य से सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।
2. स्थानीय / मातृभाषा को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाय।
3. इसके अतिरिक्त प्रथम मार्ग के रूप में सुझाए गये सुझाव संख्या 2 से 4 को द्वितीय मार्ग में भी अपनाया जाना चाहिए।

द्वितीय मार्ग के अनुपालन में कठिनाइयां

1. भारत में अंग्रेजी में दक्ष शिक्षक–शिक्षिकाओं का अभाव है। ऐसे में अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से कठिनाई उत्पन्न होगी।

   इस समस्या की गहराई में जाए तो हम पाते हैं कि, वर्तमान में सिर्फ सरकारी विद्यालयों को छोड़ दें तो अधिकांश विद्यालय अंग्रेजी माध्यम से ही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। तथापि इस समस्या को दूर करने हेतु शिक्षक–शिक्षिकाओं को उचित प्रशिक्षण प्रदान करके यह समस्या दूर की जा सकती है।

2. आदिवासी बहुल क्षेत्रों में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना कठिन होगा, क्योंकि अन्य क्षेत्रों से आए शिक्षक–शिक्षिकाओं के लिए स्थानीय / मातृभाषा में विषय की व्याख्या कर पाना संभव प्रतीत नहीं होता।

वस्तुतः यह समस्या तब भी रहेगी जब शिक्षा का मुख्य माध्यम क्षेत्रीय या मातृभाषायें होंगी। ऐसे में स्थानीय नागरिकों की शिक्षक–शिक्षिकाओं के रूप में भर्ती के उपरांत भी यह समस्या पीढ़ी–दर–पीढ़ी बनी रहेगी। जबकि अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से यह समस्या कुछ पीढ़ियों के बाद खत्म हो जाएगी।

प्रस्तुत अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि अब तक गठित लगभग सभी आयोगों, समितियों और परिषदों ने त्रिभाषा–सूत्र का समर्थन किया है और क्षेत्रीय अथवा मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम घोषित किया है। साथ ही नीति–निर्माताओं के अंग्रेजी के संबंध में स्वयं के विचारों में ही विरोधाभास मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, सुझाव प्रस्तुत करते समय, वक्त की मांग को खारिज करके, नीति–निर्माताओं ने अंग्रेजी भाषा के प्रति अपने पूर्वाग्रहों को अपने सुझावों पर हावी होने दिया है।

वर्तमान में अंग्रेजी माध्यम में नामांकन दर की वृद्धि को देखकर यह पूर्णतया स्पष्ट है कि शिक्षा के माध्यम की प्रथम भाषा के रूप में अंग्रेजी को स्वीकार करने से ही वर्तमान समय की मांग को पूरा किया जा सकता है। सिर्फ यही एक भाषा है जिसके अध्ययन से वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ अध्ययन को सफल बनाया जा सकता है, भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना को अटूट मजबूती प्रदान करने के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय समुदाय से अपने संपर्क एवं ज्ञान का आदान–प्रदान सुचारू रूप से किया जा सकता है। जहां तक राजभाषा हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और सम्मान की बात है तो यह कार्य उन्हें अध्ययन के एक विषय के रूप में स्थापित करके भी सहजता से किया जा सकता है।

अब अच्छी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम वाले निजी स्कूलों में मिलती है, तो हर अभिभावक उन्हीं स्कूलों में, उसी भाषा में अपने बच्चों को शिक्षा दिलवाना चाहेंगे। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की पुस्तकें हिन्दी में नहीं हैं, पढ़ाने वाले भी नहीं हैं, जबकि अंग्रेजी में ये दोनों चीजें उपलब्ध हैं। एक तरफ अंग्रेजी से मजबूर आम आदमी है तो दूसरी तरफ कुछ आदर्शवादी लोग हैं जो जीवन मूल्यों की दुहाई देते हुए मातृभाषा को अपनाने की बात करते हैं। उनकी आलोचना यह कहकर की जाती है कि मतलब जीवन मूल्य सीखने से है, चाहे जिस किसी भाषा में सीख लें। साथ ही उन पर आरोप लगाया जाता है कि वो ये नहीं देखते या देखना चाहते कि पाश्चात्य सभ्यता आज विकास के चरम शिखर पर है, क्यों न हम उनकी भाषा से उनकी सफलता की कुंजी वाले जीवन–मूल्य ले लें?

टिप्पणी

लेकिन ऐसे लोग भूल जाते हैं कि अंग्रेजी माध्यम से हमें पाश्चात्य जीवन–मूल्य और सभ्यता ही मिलेगी। जो हमें तथाकथित सफलता तो देगी लेकिन सुख और शांति का हमारे जीवन से लोप हो जाएगा। पाश्चात्य सभ्यता भोगवादी सभ्यता है। भोगवादी सभ्यता में प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये सर्वाधिक भोग चाहता है, परिवार का प्रत्येक सदस्य भी। इस तरह का परिवार और समाज भौतिक उन्नति तो करता है किन्तु विखंडित हो जाता है।

अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा के अपने कुछ फायदे हैं और कुछ नुकसान। यही बात भारतीय भाषाओं पर भी लागू होती है। ऐसी स्थिति में हमें देखना चाहिए कि किसके नुकसान कम हैं और फायदे ज्यादा। साथ ही हमारी अपेक्षाओं की पूर्ति किस माध्यम से पूरी होंगी। शिक्षा का जो माध्यम हमारी सोच, हमारे समाज के आदर्श और हमारी जरूरतों के अनुरूप हो उसे ही अपनाना चाहिए।

इस आधार पर विदेशी भाषा के मुकाबले अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करना अधिक लाभदायक और उचित है। शिक्षा का एक अहम् उद्देश्य है मानव में नैतिक मूल्य का बीजारोपण करना। चूंकि नैतिक मूल्य संस्कृति से आते हैं, और संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाहक उस संस्कृति की भाषा है। इसलिए जिस संस्कृति को हम बच्चों के लिए उचित मानते हैं उस संस्कृति को सम्पूर्णता से व्यक्त करने वाली भाषा ही शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए। अंग्रेजी शिक्षा से पाश्चात्य संस्कृति बच्चों में पनपेगी और भारतीय भाषाओं में दी गई शिक्षा से भारतीय संस्कृति बच्चों पर अपना असर डालेगी।

पहले ही बताया जा चुका है कि पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय संस्कृति लाख गुना बेहतर है क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति सुख का भ्रम देती है और भारतीय संस्कृति सच्चा सुख देती है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि हम ऐसी श्रेष्ठ संस्कृति खो रहे हैं क्योंकि हम उस संस्कृति के वाहक अपनी मातृभाषाओं को छोड़ कर भोगवादी भाषा अंग्रेजी अपना रहे हैं।

एक बार गुजरात के तत्कालीन शिक्षामंत्री आनन्दी बेन ने कहा था, "अंग्रेजी का ज्ञान विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रथम आवश्यकता है। हमारे विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिये विदेश जाएं, यह आवश्यक है।" ऐसे विद्यार्थी दशमलव एक प्रतिशत भी नहीं होंगे जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जाते हों। फिर उन थोड़े से विद्यार्थियों के लिए 99 प्रतिशत विद्यार्थियों पर अंग्रेजी थोपना कहां तक उचित है। लेकिन अंग्रेजी के पक्ष में शिक्षा मंत्री के तर्क की तरह के अनेक अधपके तर्क दिये जाते हैं, और देश उन्हें स्वीकार भी कर रहा है।

अंग्रेजों के भारत में आने के समय तक भारत के आम नागरिक दैनिक कार्यों में स्थानीय भाषाओं का व्यवहार करते थे; उच्च शिक्षा, शास्त्रीय चर्चा जैसे कार्यों के लिए संस्कृत का व्यवहार करते थे। मुस्लिम सभ्यता के संपर्क के बाद किन्हीं–किन्हीं कार्यों के लिए फारसी का प्रयोग भी होने लगा था।

अंग्रेजों ने सत्ता हथियाने पर पहले तो हिन्दी–उर्दू मिश्रित भाषा में सरकारी कामकाज किया, पर बाद में अंग्रेजी को सरकारी कामकाज की भाषा बनाया, ताकि वह सारा काम उनकी देख–रेख में चले। इस काम के लिए उन्हें भारतीय भाषाओं को जानने वाले ऐसे भारतीय चाहिए थे, जो अंग्रेजी के भी जानकार हों। अतः उन्होंने

अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत की, जिसका माध्यम भी अंग्रेजी को ही बनाया। संस्कृत और फारसी से उन्हें कोई लेना–देना नहीं था। अंग्रेजी–काल में और उसके पश्चात समय–समय पर शिक्षा के माध्यम की भाषा की समस्या पर चिंतन–मनन किया गया और विभिन्न प्रकार के उपायों को अपनाया भी गया।

वर्तमान समय में अनिवार्य शिक्षा अधिनियम के अनुसार माध्यमिक स्तर तक मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया है, परंतु उच्च शिक्षा स्तर पर आज भी यह समस्या बनी है कि, क्या इस स्तर पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही हो। अनेक महाविद्यालयों में अधिकांश विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जा रही है। ऐसा हिन्दीभाषी क्षेत्रों में ही है। केंद्र शासित क्षेत्रों व केंद्रीय विश्व–विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही है। अनेक शिक्षा–संस्थाओं में हिन्दी या क्षेत्रीय भाषा तथा अंग्रेजी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान व प्राप्त की जाती है।

इस प्रकार अंग्रेजी और हिन्दी के मुद्दे पर फंसकर शिक्षा के माध्यम की भाषा एक बहुत बड़ी समस्या बन गयी है, और इस अनसुलझी समस्या ने शिक्षा के स्तर को एकदम निम्न स्थिति में पहुंचा दिया है।

4.2.5 प्रवेश नीतियां और प्रशासनिक नीतियां

किसी 'विद्यालय' में किसी कक्षा में प्रवेश चाहने वाला छात्र उस कक्षा में प्रवेश के लिए तभी पात्र होगा जब वहः

(i) इस बोर्ड या भारत में किसी अन्य मान्यता प्राप्त माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त या संबद्ध स्कूल में पढ़ रहा है;

(ii) अर्हक या समकक्ष अर्हक परीक्षा उत्तीर्ण की हो जिससे वह उस कक्षा में प्रवेश के लिए पात्र हो;

(iii) राज्य/संघ राज्य क्षेत्र द्वारा निर्धारित आयु सीमा (न्यूनतम और अधिकतम) की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

(iv) उत्पादन करता हैः

1. संस्थान के प्रमुख द्वारा हस्ताक्षरित स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र / स्थानांतरण प्रमाण पत्र, इन उपनियमों में, यदि आवश्यक हो, तो पिछली बार भाग लिया और प्रतिहस्ताक्षरित किया गया;
2. योग्यता या समकक्ष योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के समर्थन में दस्तावेज; तथा
3. जन्म और मृत्यु के रजिस्ट्रार द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र, जहां जन्म तिथि के प्रमाण के रूप में भी मौजूद हो।

स्पष्टीकरणः

1. एक व्यक्ति जो एक संस्थान में अध्ययन कर रहा है, जिसे इस बोर्ड या किसी अन्य मान्यता प्राप्त माध्यमिक शिक्षा बोर्ड या राज्य / केंद्र शासित प्रदेश द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं है। संबंधित स्थान की सरकार को ऐसे गैर–मान्यता प्राप्त संस्थान के प्रमाण पत्र के आधार पर "स्कूल" की किसी भी कक्षा में प्रवेश नहीं दिया जाएगा, जिसमें उसने पहले भाग लिया था।

टिप्पणी

2. इस उपनियमों के प्रयोजनों के लिए 'अर्हता परीक्षा' का अर्थ एक ऐसी परीक्षा है जिसके उत्तीर्ण होने से छात्र किसी विशेष कक्षा में प्रवेश के लिए पात्र हो जाता है; और 'समकक्ष परीक्षा' का अर्थ है किसी मान्यता प्राप्त बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा।

माध्यमिक शिक्षा / भारतीय विश्वविद्यालय या ऐसे बोर्ड / विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त या संबद्ध संस्थान और इस बोर्ड द्वारा आयोजित या इस बोर्ड से संबद्ध / मान्यता प्राप्त "स्कूल" द्वारा आयोजित संबंधित परीक्षा के समकक्ष मान्यता प्राप्त है।

इस बोर्ड से संबद्ध स्कूल के अलावा किसी अन्य स्कूल से पलायन करने वाला कोई भी छात्र प्रवेश के लिए पात्र नहीं होगा, जब तक कि ऐसे छात्र के संबंध में इस बोर्ड से पात्रता प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया गया हो। बोर्ड से पात्रता प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए, जिस स्कूल में प्रवेश लिया जा रहा है, उसके प्रधानाचार्य मामले का पूरा विवरण और संबंधित दस्तावेज अपनी टिप्पणियों/सिफारिशों के साथ बोर्ड को प्रस्तुत करेंगे। बोर्ड द्वारा पात्रता प्रमाण पत्र तभी जारी किया जाएगा जब बोर्ड इस बात से संतुष्ट हो जाए कि अध्ययन का पाठ्यक्रम और उत्तीर्ण परीक्षा इस बोर्ड की संबंधित कक्षा के बराबर है।

कोई भी व्यक्ति जो निष्कासन की सजा के अधीन है या किसी बोर्ड/विश्वविद्यालय/स्कूल से निष्कासित कर दिया गया है या किसी भी बोर्ड/विश्वविद्यालय द्वारा किसी भी कारण से परीक्षा में बैठने से वंचित किया गया है, उसे इस बोर्ड से संबद्ध स्कूल में किसी भी कक्षा में प्रवेश नहीं दिया जाएगा। किसी भी छात्र को किसी भी स्कूल में किसी भी बाद की उच्च कक्षा में प्रवेश या पदोन्नत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने उस कक्षा के अध्ययन के नियमित पाठ्यक्रम को पूरा नहीं कर लिया है जिसमें उसे शैक्षणिक सत्र की शुरुआत में भर्ती कराया गया था और परीक्षा के अंत में परीक्षा उत्तीर्ण की है। संबंधित शैक्षणिक सत्र, उसे अगली उच्च कक्षा में पदोन्नति के लिए अर्हता प्रदान करता है। वर्ष के 31 अगस्त के बाद बोर्ड से संबद्ध स्कूल में कक्षा IX और उससे ऊपर के किसी भी छात्र को अध्यक्ष, सीबीएसई/सक्षम प्राधिकारी की पूर्व अनुमति के बिना प्रवेश नहीं दिया जाएगा, जैसा कि राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में परिभाषित किया गया है। शिक्षा अधिनियम 31 अगस्त के बाद प्रवेश देने की अनुमति के लिए आवेदन स्कूल के प्रधानाचार्य के माध्यम से उन कारणों को निर्दिष्ट करते हुए भेजा जाएगा जो अपरिहार्य हैं। उम्मीदवार को परीक्षा के लिए पात्र बनाने के लिए बोर्ड के परीक्षा उपनियमों के अनुसार कक्षा IX, X, XI और XII के लिए उपस्थिति का आवश्यक प्रतिशत (75%) पूरा करना होगा। ऐसे मामलों में जहां बोर्ड द्वारा परिणाम की देर से घोषणा के कारण निर्धारित तिथि तक उम्मीदवार द्वारा उच्च कक्षा में प्रवेश नहीं लिया जा सकता है, ऐसी अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी, बशर्ते उम्मीदवार ने परिणाम की घोषणा के एक पखवाड़े के भीतर प्रवेश के लिए आवेदन किया हो।

प्रवेश प्रक्रिया

(i) संबंधित राज्य सरकार/केंद्रीय विद्यालय संगठन/नवोदय विद्यालय समिति द्वारा निर्धारित प्रपत्र में प्रवेश रजिस्टर, जैसा भी मामला हो, "स्कूल" द्वारा रखा जाएगा जहां "स्कूल" में शामिल होने वाले प्रत्येक छात्र का नाम दर्ज किया जाएगा।

(ii) छात्रों को उनके प्रवेश पर क्रमिक संख्या आवंटित की जानी चाहिए और प्रत्येक छात्र को स्कूल में अपने पूरे करियर में इस संख्या को बनाए रखना चाहिए। किसी भी अवधि की अनुपस्थिति के बाद स्कूल लौटने वाले छात्र को अपनी मूल प्रवेश संख्या फिर से शुरू करनी होगी।

(iii) यदि कोई छात्र किसी स्कूल में प्रवेश के लिए आवेदन कर रहा है, उसने किसी अन्य स्कूल में भाग लिया है, तो उसके अंतिम स्कूल से स्थानांतरण प्रमाण पत्र की एक प्रमाणित प्रति अनुलग्नक में दिए गए प्रारूप में उसके नाम को रजिस्टर करें एवं प्रवेश में दर्ज करने से पहले प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(iv) किसी भी मामले में किसी छात्र को उस कक्षा से अधिक में प्रवेश नहीं दिया जाएगा जिसके लिए वह स्थानांतरण प्रमाण पत्र के अनुसार हकदार है।

(v) किसी छात्र का नाम बोर्ड की परीक्षा के लिए भेजे जाने के बाद सत्र के दौरान एक "विद्यालय" से दूसरे में प्रवास करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। अध्यक्ष द्वारा विशेष परिस्थितियों में ही इस शर्त में छूट दी जा सकती है।

(vi) एक छात्र जो सत्र के अंत में अपना स्कूल छोड़ रहा है या जिसे सत्र के दौरान अपना स्कूल छोड़ने की अनुमति है, उसे सभी बकाया राशि का भुगतान करने पर स्थानांतरण प्रमाण पत्र की एक प्रमाणित प्रति प्राप्त होगी। यदि संस्था के प्रमुख इस बात से संतुष्ट हैं कि मूल प्रति खो गई है तो दूसरी प्रति जारी की जा सकती है, लेकिन इसे हमेशा इस तरह चिह्नित किया जाएगा।

(vii) यदि बोर्ड से संबद्ध किसी संस्थान से कोई छात्र बोर्ड से संबद्ध स्कूल में प्रवेश चाहता है, तो ऐसा छात्र एक प्राधिकारी द्वारा विधिवत प्रतिहस्ताक्षरित स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत करेगा जैसा कि अनुलग्नक– I में दिए गए प्रारूप में दर्शाया गया है।

(viii) यदि किसी छात्र के माता–पिता या अभिभावक द्वारा या स्वयं छात्र द्वारा दिए गए बयान, यदि वह स्कूल में प्रवेश के समय प्रमुख था, में तथ्यों की जानबूझकर गलत बयानी पाई जाती है। छात्र के करियर के संबंध में, संस्था के प्रमुख उसे राज्य / केंद्र शासित प्रदेश के शिक्षा अधिनियम या केंद्रीय विद्यालय संगठन / नवोदय विद्यालय समिति के नियमों के अनुसार क्रमशः दंडित कर सकते हैं और मामले की रिपोर्ट बोर्ड में कर सकते हैं।

4.2.6 शिक्षा की औपनिवेशिक नीति तैयार करने का ब्रिटिश प्रयास : 1835, 1854 और 1882

प्राच्यवादी दल में कई उच्च कोटि के व्यक्ति थे जिनमें कई कम्पनी के पुराने तथा अनुभवी कर्मचारी थे। इनमें वॉरेन हेस्टिंगस, जानेथन डंकन, लॉर्ड मिंटो तथा एच.एच. विल्सन प्रमुख थे। प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का विचार था कि भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति को बनाए रखने के लिए संस्कृत, अरबी व फारसी माध्यम में शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। उनके विचार में किसी भी देश के नागरिकों को अन्य देश की भाषा में शिक्षा लेने पर विवश नहीं करना चाहिए। ऐसा ना करने से सदियों से संचित भारतीय साहित्य नष्ट हो जाएगा। इसके विपरीत पाश्चात्यवादियों ने प्राच्यवादियों के

इस मत का पुरजोर विरोध किया। इस दल के समर्थक कम्पनी के नवयुवक अधिकारी तथा ईसाई मिशनरियां थीं। इनके अनुसार प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का पुनर्जीवन संभव नहीं था क्योंकि वह पुरातन तथा निरर्थक विचारों से भरी पड़ी थी। अतः उनके विचार में समय आ गया था कि भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान तथा विज्ञान से अवगत कराया जाए। ऐसा करने के लिए अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा देना ही उपयुक्त समझा गया।

मैकाले का विवरण पत्र, 1835

प्राच्यवादियों तथा पाश्चात्यवादियों के बीच निरंतर संघर्ष सन् 1834 तक चलता रहा। इस विवाद को विराम देने के लिए तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने टी. बी. मैकाले को भारत बुलाया तथा 1813 के चार्टर एक्ट की धारा 43 के विवादास्पद बिंदुओं पर कानूनी सलाह देने का निर्देश दिया। 10 जून, 1834 को लार्ड मैकाले ने गवर्नर जनरल की काउंसिल (Council) के कानून–सदस्य के रूप में भारत में पदार्पण किया। उन्होंने चार्टर एक्ट की विवादित धारा का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद अपनी सलाह को अपने ''विवरण पत्र'' में लेखबद्ध करके 2 फरवरी, सन् 1835 को बैंटिक के पास भेज दिया।

मैकाले के विवरण पत्र के सुझाव

मैकाले के विवरणपत्र के प्रमुख अंश इस प्रकार थे –

1. **धारा 43 की व्याख्या** : अपने विवरण पत्र में मैकाले ने सन् 1813 के चार्टर एक्ट की 43वीं धारा की व्याख्या निम्न ढंग से की है–
   (क) एक लाख रुपये की धनराशि व्यय करने के लिए सरकार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। वह इस धनराशि को अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार भी व्यय कर सकती है।
   (ख) साहित्य शब्द से तात्पर्य अरबी–फारसी तथा संस्कृत के साहित्य से ही नहीं है, अपितु अंग्रेजी साहित्य को भी इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए।
   (ग) भारतीय विद्वान से तात्पर्य मुस्लिम मौलवी तथा संस्कृत के पंडित के अलावा अंग्रेजी भाषा व साहित्य के विद्वान से भी है।
2. **अंग्रेजी के पक्ष में तर्क** : मैकाले ने अपने विवरण पत्र में भारतीय भाषाओं को पूर्णतया निरर्थक बताते हुए लिखा कि,

   ''भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान–कोष का अभाव है और वे इतनी अविकसित तथा गंवारू हैं कि जब तक उनको बाह्य भंडार से सम्पन्न नहीं किया जाएगा, तब तक उनसे किसी भी महत्वपूर्ण पुस्तक का सरलता से अनुवाद न हो सकेगा।''

   मैकाले ने अंग्रेजी भाषा को भारतीय भाषाओं की तुलना में अत्यधिक श्रेष्ठ बताते हुए लिखा कि,

   ''एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी का साहित्य भारत व अरब के संपूर्ण साहित्य के समान महत्व रखता है।''

अंग्रेजी की समृद्धता के पक्ष में उन्होंने निम्नलिखित तर्क दिए–

(क) अंग्रेजी शासकों की भाषा है एवं उच्च वर्ग के भारतीय इसे बोलते हैं।

(ख) भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी अधिक उपयोगी तथा समृद्ध है।

(ग) पूर्वी समुद्री देशों में अंग्रेजी व्यापार की भाषा बन सकती है।

(घ) भारतवासी अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक इच्छुक हैं न कि अरबी तथा संस्कृत के लिए।

(ङ) जिस प्रकार लेटिन व यूनानी भाषाओं का इंग्लैंड में और पश्चिमी यूरोप की भाषाओं का रूस में पुनरुत्थान हुआ उसी प्रकार अंग्रेजी से भारत में उत्थान होगा।

(च) अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जा सकता है जो रक्त और रंग में भले ही भारतीय हो, पर रुचियों, विचारों, मूल्यों तथा विद्वता में अंग्रेज होगा।

3. **पाश्चात्य साहित्य के पक्ष में तर्क** : साहित्य शब्द का अर्थ अंग्रेजी साहित्य बताया गया क्योंकि मैकाले के अनुसार अरबी, फारसी तथा संस्कृत का अपना कोई साहित्य ही नहीं है और यदि है तो वह निम्न कोटि का है। मैकाले के अनुसार अरबी तथा संस्कृत में लिखी कविताओं की अपेक्षा अंग्रेजी साहित्य की कविता कहीं अधिक समृद्ध तथा अतुलनीय है।

4. **उच्च वर्ग की शिक्षा के पक्ष में तर्क** : मैकाले के अनुसार भारत के उच्च वर्ग को शिक्षित किया जाना अधिक आवश्यक था। उसके अनुसार सरकार के पास धन की कमी होने के कारण वह समस्त जन–साधारण को शिक्षित करने में असमर्थ है। अतः सरकार को केवल उच्च वर्ग की शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए जो आगे चलकर शासक तथा शासितों के बीच के सेतू का काम करेगा। ऐसा माना गया कि निम्न वर्ग प्रायः उच्च वर्ग का अनुसरण करता है तथा इसी प्रकार उच्च वर्ग से शिक्षा छनकर निम्न वर्ग तक पहुंच जाएगी। इस व्यवस्था को निम्नवत छन्नीकरण सिद्धांत अथवा अधोगामी निस्पंदन सिद्धांत (Downward filtration theory) भी कहते हैं।

5. **अनुदान का उपयोग** : मैकाले के अनुसार सरकार को पाश्चात्य साहित्य तथा विज्ञान के प्रचार एवं प्रसार पर अधिक ध्यान देना चाहिए तथा अधिक से अधिक अनुदान इस कार्य पर खर्च करना चाहिए। मैकाले ने यह भी कहा कि प्राच्यवादी शिक्षण संस्थानों को बंद नहीं किया जाना चाहिए बल्कि चलने देना चाहिए परंतु उन पर खर्चा नहीं किया जाना चाहिए।

6. **धर्म के प्रति विचारधारा** : मैकाले के अनुसार ब्रिटिश सरकार को सभी भारतीय धर्मों के प्रति संवेदनशील तथा निष्पक्ष होना चाहिए। वह भारतीयों के धर्म परिवर्तन के भी विरुद्ध था।

"All government find appropriated for the purposes of edu would be best employed on English edu also" (Govt. ———— of 1835)

अर्थात् ''शिक्षा के लिए निर्धारित संपूर्ण धन का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग केवल अंग्रेजी की शिक्षा के लिए ही किया जा सकता है।"

टिप्पणी

मैकाले के विवरण पत्र के गुण

मैकाले विवरण पत्र में अनेक दोष होते हुए भी कुछ खूबियां थीं जो निम्नलिखित हैं–

1. 1813 के चार्टर एक्ट की अपेक्षा मैकाले ने शिक्षा की एक स्पष्ट नीति की बात की जिसमें सभी पहलुओं पर विस्तार से बात की गई।
2. मैकाले ने पाश्चात्य–प्राच्यवादी विवाद को समाप्त करने में सहायता की।
3. मैकाले के विवरण पत्र ने भारतीय शिक्षा नीति को एक दिशा प्रदान की।
4. इसके परिणामस्वरूप भारतीयों को पाश्चात्य साहित्य तथा विज्ञान की जानकारी प्राप्त हुई जिससे हमें अनेक लाभ भी हुए।

अतः हम कह सकते हैं कि भारत में ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का कर्ता–धर्ता मैकाले था। मैकाले के विवरण पत्र ने काफी लंबे समय तक भारतीय शिक्षा नीतियों को प्रभावित किया। उसके द्वारा दिए गए कुछ सुझाव लाभदायक हैं तो कुछ अवगुणों से परिपूर्ण थे।

मैकाले के विवरण पत्र की कमियां अथवा दोष

मैकाले के विवरण पत्र के दोषों को निम्नलिखित रूप से क्रमबद्ध किया जा सकता है–

1. मैकाले ने मुख्य रूप से पाश्चात्य साहित्य तथा विज्ञान का पक्षपाती समर्थन किया तथा भारतीय साहित्य को पूरी तरह नकारते हुए अर्थविहीन बताया।
2. मैकाले ने भारत में शिक्षा का माध्यम अंगेजी को बनाने का सुझाव दिया जो पूर्ण रूप से अनुचित था। किसी भी देश की मातृभाषाओं को समाप्त करके अंग्रेजी को माध्यम बनाने का सुझाव देकर अनेक लोगों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया।
3. मैकाले ने उच्च वर्ग की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जो कि अन्य वर्गों के अधिकारों का हनन है।
4. मैकाले ने भारतीय विद्यालयों जैसे संस्कृत पाठशाला तथा मदरसों को अनुदान न देने की बात करके उन्हें पूर्ण रूप से अनदेखा किया।
5. मैकाले विवरण पत्र द्वारा यह भी निर्देशित किया गया है कि भारतीयों पर ब्रिटिश संस्कृति को पूरी तरह थोप दिया जाए जिससे भारतीयों के मूल्य, चिंतन तथा विचार पाश्चात्य हो जाएं।

वुड का घोषणा पत्र 1854

जब सन् 1853 में ईस्ट इंडिया कंपनी के चार्टर एक्ट के नवीनीकरण का अवसर आया तब यह विचार किया गया कि भारतीय शिक्षा नीति में कुछ परिवर्तन किए जाएं। वैसे भी सन् 1853 तक शिक्षा से संबंधित अनेक समस्याओं का तत्काल निवारण आवश्यक हो गया था। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने एक संसदीय समिति की नियुक्ति की जिसका अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड को नियुक्त किया गया। चार्ल्स वुड ने भारतीय शिक्षा की तत्कालीन अवस्था का अध्ययन करते हुए एक घोषणा पत्र तैयार किया जिसे वुड का घोषणा पत्र कहा जाता है। उन्होंने 19 जुलाई 1854 को इस नीति की घोषणा की। ब्रिटिश काल में पहली बार इस घोषणा पत्र के द्वारा व्यापक स्तर पर शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया गया। इसीलिए इस घोषणा पत्र को भारत में अंग्रेजी

शिक्षा का महाधिकार पत्र (Magna Carta of Education) भी कहा जाता है। इस घोषणा पत्र का भारतीय शिक्षा के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रकाशित होने के पश्चात तत्कालीन भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन को एक नई दिशा मिल गई। यह घोषणा पत्र 100 अनुच्छेदों का एक लंबा अभिलेख है जिसमें शिक्षा नीति तथा कंपनी की भूमिका को स्पष्ट किया गया है।

वुड के घोषणा पत्र के सुझाव

वुड के घोषणा पत्र में दिए गए सुझावों को हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं :–

1. **शिक्षा नीति का संगठन** : घोषणा पत्र के अनुसार 'कोई भी अन्य महत्वपूर्ण विषय हमारा ध्यान इतना आकर्षित नहीं करता जितना कि शिक्षा।' वुड के अनुसार शिक्षा के उपयोगी ज्ञान के प्रसार का प्रोत्साहन इसलिए भी आवश्यक था कि इससे भारतीयों का न केवल बौद्धिक विकास होगा बल्कि चारित्रिक उन्नति भी होगी। घोषणा पत्र में यह भी कहा गया है कि पूर्व में पढ़ाया जाने वाला विज्ञान तथा दर्शनशास्त्र त्रुटियों से परिपूर्ण है तथा इसमें आधुनिक खोज तथा सुधारों को अधिक स्थान न देने के कारण यह उनसे वंचित है। इसलिए उन्होंने भारत में एक ऐसी शिक्षा के प्रसार की बात कही जिसका उद्देश्य यूरोप की कला, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्यिक ज्ञान का प्रसार करना हो।
2. **शिक्षा का माध्यम** : जहां तक शिक्षा के माध्यम का सवाल है, वुड ने घोषणा पत्र में कहा कि अंग्रेजी माध्यम में केवल उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जानी चाहिए जिन्होंने अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। इसके अतिरिक्त अधिकतर लोगों को उनकी देशी भाषा में ही पढ़ाया जाना चाहिए। ऐसा करते हुए घोषणा पत्र में यह आशा की गई है कि ''हम यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिए अंग्रेजी भाषा तथा भारत की देशी भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में साथ–साथ फलते–फूलते देखने की आशा करते हैं।'' जहां तक भाषा को पढ़ाए जाने की बात है, वुड ने कहा है कि अंग्रेजी भाषा वहीं पढ़ाई जानी चाहिए जहां इसकी मांग हो परंतु वहां भी इसे देशी भाषाओं के साथ–साथ ही पढ़ाया जाना चाहिए। जिले की देशी भाषाओं की ओर ध्यान देना आवश्यक माना गया है।
3. **सहायता अनुदान प्रणाली** : घोषणा पत्र में सरकारी शिक्षा संस्थाओं को स्थानीय संस्था प्रबंधन को सौंपने के बारे में कहा गया है कि – ''भारत में सहायता अनुदान प्रणाली को अत्यंत सफलता से लागू किया गया है तथा हमें विश्वास है कि इससे राज्य से प्राप्त योगदान के अतिरिक्त स्थानीय संसाधनों की सहायता मिलेगी जिससे सरकारी व्यय में बढ़ोतरी से शिक्षा की तीव्र प्रगति हो सकेगी। सहायता अनुदान प्रणाली के क्रमशः लागू होने के साथ केवल सरकार के द्वारा संचालित सामान्य शिक्षा प्रणाली समाप्त हो जाएगी तथा अधिकांश वर्तमान सरकारी संस्थाएं विशेषकर उच्च स्तर की या तो बंद कर दी जाएंगी अथवा राज्य के नियंत्रण व सहायता प्राप्त स्थानीय संस्थाओं के प्रबंध तंत्र को स्थानांतरित कर दी जाएंगी।''

4. **सरकारी संस्थाओं में स्वैच्छिक धार्मिक शिक्षा** : धार्मिक शिक्षा के विषय में भी घोषणा पत्र में उल्लेख है। इसके अनुसार सरकारी संस्थान भारत की संपूर्ण जनसमुदाय के हित के लिए है तथा इन शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा अपरिहार्य रूप से धर्म निरपेक्ष होनी चाहिए। कॉलेज तथा स्कूलों के पुस्तकालयों में बाइबिल रखी हुई है तथा छात्र जब चाहे इसे पढ़ सकते हैं। घोषणा पत्र में कहा गया है कि ''ईसाई धर्म के बारे में छात्रों द्वारा अपने अध्यापकों से पूछे गए प्रश्नों के बारे में दिये गए स्पष्टीकरण को हतोत्साहित करने की भी हमारी कोई इच्छा नहीं है। यदि यह सूचना विद्यालय अवधि के अतिरिक्त समय में दी जाती है परंतु इस प्रकार का अनुदेशन दोनों पक्षों की स्वेच्छा से दिया जा सकता है ताकि ब्रिटिश सरकार पर भारतीयों के धर्म परिवर्तन की शंका से बचा जा सके।

5. **अध्यापकों का प्रशिक्षण** : घोषणा पत्र में शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बल दिया गया। इसके लिए वुड ने इस क्षेत्र में ब्रिटेन में प्रचलित योजना को भारत में अपनाने का सुझाव दिया। इस सुझाव के तहत भारत में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान बिना किसी विलंब के खोले जाने को कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस योजना में छात्राध्यापकों का चयन करने तथा उन्हें प्रशिक्षण भत्ता देने की बात कही गई है। इसके साथ– साथ प्रशिक्षण की समाप्ति पर प्रमाणपत्र देने तथा बाद में उनके स्कूल अध्यापक के रूप में नियुक्त होने पर पर्याप्त वेतन मिलने का प्रावधान है। शिक्षण के व्यवसाय को भी उतना ही आकर्षक बनाने की कोशिश की जाएगी जितना अन्य व्यवसायों को जिससे भविष्य में शिक्षण के प्रति भी लोग आकर्षित हों।

6. **महिलाओं की शिक्षा** : वुड के घोषणा पत्र में यह स्वीकार किया गया है कि महिलाओं की शिक्षा देश के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। देश के अनेक नागरिकों द्वारा अपनी पुत्रियों को शिक्षा प्रदान करवाने की तीव्र इच्छा देखी गई थी। इस बदलते परिवेश को देखते हुए तथा देश का नैतिक तथा चारित्रिक विकास करने के लिए स्त्री की शिक्षा की आवश्यकता है। घोषणा पत्र में सरकार को स्त्री शिक्षा के लिए खुले दिल से विशेष अनुदान देने के लिए कहा गया है। इसके अतिरिक्त स्त्री शिक्षा हेतु सहयोग देने वाले व्यक्तियों को भी प्रोत्साहित किया जाएगा।

7. **विश्वविद्यालयों की स्थापना** : भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना के विषय में घोषणा पत्र में कहा गया है कि सरकारी छात्रवृत्तियों में स्थानीय अभ्यार्थियों की उच्च उपलब्धियों तथा बढ़ती यूरोपियन व एंग्लो इंडियन व्यक्तियों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। भारत में लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर कलकत्ता तथा बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित करने की बात की गई तथा इसके बाद मद्रास तथा अन्य स्थानों पर भी आवश्यकतानुसार विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। इसके अतिरिक्त घोषणा पत्र में यह भी कहा गया है कि हमें अपना ध्यान इस दिशा में केंद्रित करना चाहिए कि जनसाधारण को उपयोगी तथा व्यावहारिक ज्ञान किस प्रकार से प्रदान किया जा सकता है।

8. **जनशिक्षा का प्रसार** : इस घोषणा पत्र में जनशिक्षा के प्रचार तथा प्रसार पर भी बल देने की बात कही गई है। इसके लिए शिक्षा को हर साधारण व्यक्ति तक पहुंचाया जाए जिसके लिए स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाएगी। जनशिक्षा के प्रसार के लिए किए गए व्यक्तिगत प्रयासों को भी प्रोत्साहन दिया जाएगा।
9. **शिक्षा विभाग की स्थापना** : घोषणा पत्र में देश के पांच प्रांतों बंगाल, मद्रास, बंबई, पंजाब तथा पश्चिमी बंबई में लोक अनुदेशन विभाग (Department of Public Instruction) की स्थापना करने की बात थी। प्रत्येक विभाग में लोक अनुदेशन निदेशक की नियुक्ति (Director of Public Instruction) होनी चाहिए तथा उसका एक उपनिदेशक भी होना चाहिए। अपने क्षेत्र के स्कूलों की वार्षिक प्रगति रिपोर्ट सरकार को भेजने की जिम्मेदारी निदेशक की ही होगी।
10. **व्यावसायिक शिक्षा** : व्यावसायिक शिक्षा के विषय में बात करते हुए घोषणा पत्र में कहा गया है कि व्यावसायिक शिक्षा की विकास गति भारत में काफी धीमी है। अतः सरकार को इस पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। घोषणा पत्र में व्यापक स्तर पर तकनीकी तथा व्यावसायिक कॉलेज स्थापित करने का सुझाव दिया गया ताकि व्यवसाय केंद्रित शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सके। इन पाठ्यक्रमों को बढ़ावा देने से भारत में बेरोजगारी की समस्या समाप्त हो जाएगी तथा लोगों को उनकी रुचि तथा क्षमताओं के अनुसार काम मिलेगा।
11. **मुसलमानों की शिक्षा** : घोषणा पत्र में कहा गया है कि भारतीय मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में काफी पिछड़े हुए हैं। सरकार ने अब तक उनकी शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया। अतः सरकार को मुसलमानों की शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। इसके साथ ही उन्हें शिक्षा प्रदान करते समय यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस ना पहुंचे।

अतः हम कह सकते हैं कि वुड का घोषणा पत्र भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस घोषणा पत्र में शिक्षा के विषय में व्यापक स्तर पर सुझाव दिये गए। भारत की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इसमें शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के बारे में गहन अध्ययन करके अपने विचार व्यक्त किए गए हैं। इस घोषणा पत्र ने भारतीय शिक्षा नीति को एक नई दिशा प्रदान की।

वुड घोषणा पत्र के गुण

वुड के घोषणा पत्र के प्रमुख गुण इस प्रकार हैं–

1. वुड के घोषणा पत्र के कारण भारतीय शिक्षा की एक निश्चित योजना निर्धारित की गई। पूरे भारत में समान शिक्षा नीति का क्रियान्वयन किया गया। इससे पहले ब्रिटिश सरकार भारतीय शिक्षा को लेकर इतने सजग नहीं थी।
2. इस घोषणा पत्र के पश्चात भारत में अंग्रेजी के साथ–साथ भारतीय भाषाओं का भी विकास हुआ।
3. इस घोषणा पत्र को भारत में अध्यापक शिक्षा का आधार स्तंभ भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने पर बल दिया गया है।

4. घोषणा पत्र का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा विभाग की स्थापना का सुझाव था। इसके कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली सुचारु रूप से चलने लगी।
5. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी वुड के घोषणा पत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसमें विश्वविद्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया गया है। जिससे अधिक से अधिक लोग शिक्षा प्राप्त कर पाएंगे।
6. स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने का सुझाव भी घोषणा पत्र में दिया गया तथा इसके लिए आम जनता को भी सहयोग करने के लिए कहा गया।
7. देश में बेरोजगारी की समस्या का हल करने के लिए औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा की सिफारिश की गई।
8. घोषणा पत्र में निस्पंदन सिद्धांत (Downward filtration theory) को अस्वीकृत कर दिया गया तथा जन शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान करने का सुझाव दिया गया।
9. घोषणा पत्र में योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान करने की बात की गई ताकि वह बिना किसी रुकावट के उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके।
10. इसके अतिरिक्त घोषणा पत्र में मुसलमानों की शिक्षा पर भी जोर दिया गया है।

वुड घोषणा पत्र के दोष

घोषणा पत्र के दोष निम्न बिंदुओं द्वारा समझे जा सकते हैं –

1. घोषणा पत्र में भारतीय साहित्य के महत्व को तो स्वीकारा गया है परंतु भारतीय संस्कृति के विकास के महत्व को बिल्कुल कम कर दिया गया है।
2. भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की बात तो की गई है परंतु यह विश्वविद्यालय लंदन विश्वविद्यालय के आदर्श पर स्थापित करने को कहा गया है। इससे भारतीय शिक्षा को पूर्ण रूप से विदेशी स्वरूप देने की कोशिश की गई है।
3. घोषणा पत्र ने शिक्षा की परिधि में से धर्म को निकालकर उसे पूर्णतया लौकिक बना दिया जिससे भारतीय जीवन में आध्यात्मिकता का लोप हो गया।
4. घोषणा पत्र में पाश्चात्य सहित्य तथा ज्ञान–विज्ञान के प्रचार एवं प्रसार पर ही अधिक बल दिया गया।
5. घोषणा पत्र में भारतीय भाषाओं को भी माध्मय बनाने की बात स्वीकारी गई है परंतु प्राथमिकता फिर भी अंग्रेजी भाषा को ही दी गई है।
6. घोषणा पत्र में परीक्षाओं को सर्वोपरि स्थान दिया गया तथा शिक्षा का सारा ध यान इसी पर केंद्रित करने को कहा गया जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता।
7. इसके अतिरिक्त घोषणा पत्र ने अंग्रेजी की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सरकारी नौकरियां प्राप्त करना निर्धारित किया तथा शिक्षा के व्यापक उद्देश्य को नष्ट कर दिया।

हंटर कमीशन 1882 (भारतीय शिक्षा आयोग)

वुड के घोषणा पत्र के परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षा प्रणाली में अनेक परिवर्तन हुए। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति हुई तथा अनेक कॉलेजों की भी स्थापना हुई। परंतु इसके साथ–साथ कई सिफारिशों को पूरी तरह क्रियान्वित नहीं किया गया। वैसे भी देश के बदलते परिवेश को ध्यान में रखते हुए वुड का घोषणा पत्र कई मापदंडों पर खरा नहीं उतरता था। उच्च शिक्षा के अलावा सभी स्तरों पर देश की शिक्षा प्रणाली पिछड़ी हुई थी। प्राथमिक शिक्षा को तो पूरी तरह अनदेखा कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त घोषणा पत्र में अनुदान के विषय में दिये गए सुझावों को भी आंशिक रूप से ही लागू किया गया। इन सभी कारणों से ऐसा प्रतीत होने लगा था कि वुड के चार्टर एक्ट के सुझाव अब कार्यरूप में असफल हो रहे थे।

इन सबसे ईसाई मिशनरियां जो कि भारत में कई विद्यालय चला रही थीं, उनमें असंतोष फैल गया। उन्होंने वर्तमान शिक्षा प्रणाली का विरोध करना शुरू कर दिया। जब भारत में उनके विरोध का कोई परिणाम न निकला तो कुछ व्यक्तियों ने इंग्लैंड में 1878 में एक संस्था की स्थापना की जिसे 'भारत में शिक्षा की सामान्य समिति (General Council of Education in India) के नाम से जाना जाता है। इस समिति के माध्यम से ये ब्रिटिश सरकार पर भारत की शिक्षा नीति में परिर्वतन लाने के लिए दबाव डाल रहे थे। इसके परिणामस्वरूप तत्कालीन गर्वनर लॉर्ड रिपन ने 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया तथा सर विलियम हंटर को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसलिए इस कमीशन को हंटर कमीशन के नाम से जाना जाता है। अध्यक्ष के अतिरिक्त इस आयोग के 20 अन्य सदस्य थे।

आयोग का कार्यक्षेत्र

यह आयोग का कर्तव्य था कि वह यह जांच करे कि वुड के घोषणा पत्र में जो सुझाव दिये गए थे उन्हें किस तरह से क्रियान्वित किया गया है तथा उन क्षेत्रों की वर्तमान स्थिति क्या है। इसके अतिरिक्त जो सुझाव ठीक प्रकार से लागू नहीं किए गए उनके लिए उपयुक्त नीति का निर्धारण करना भी हंटर आयोग का कर्तव्य था। आयोग को प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र पर अधिक बल देने को कहा गया जिसकी चर्चा वुड के घोषणा पत्र में भी की गई थी। आयोग को प्राथमिक शिक्षा की तत्कालीन स्थिति तथा उसके प्रसार एवं सुधार के विषय में सुझाव देने को कहा गया। शिक्षा व्यवस्था में मिशनरियों की भूमिका पर भी नीति प्रस्तुत करने की बात की गई है। आयोग के समक्ष एक अन्य प्रश्न यह भी था कि क्या विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए या नहीं और यदि दी जानी चाहिए तो किस विषय, प्रारूप तथा अवस्था में इसे अनुमति देनी चाहिए। शिक्षा के प्रसार में व्यक्तिगत प्रयासों की भूमिका पर भी आयोग को विचार प्रस्तुत करने को कहा गया।

भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशें

आयोग ने समस्त देश का सर्वेक्षण करके, विभिन्न शिक्षार्थियों से विचार–विमर्श करके, वुड के आदेश पत्र की समीक्षा तथा शिक्षा की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करने के बाद शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर अपने सुझाव प्रस्तुत किए। आयोग की मुख्य सिफारिशों का विवरण निम्न प्रकार से है –

1. **देशी शिक्षा को प्रोत्साहन** : प्राचीन भारतीय शिक्षा के संदर्भ में आयोग ने कहा है कि यद्यपि देशी शिक्षा संस्थान तुलनात्मक रूप से निकृष्ट हैं परंतु फिर भी उन्हें प्रोत्साहित करने के प्रयास करने चाहिए क्योंकि कठिन स्पर्धा के बावजूद वे आज तक विद्यमान हैं जिससे यह पता चलता है कि वह चर्चित तथा जीवंत हैं।

2. **प्राथमिक शिक्षा** :

   (क) प्राथमिक शिक्षा के विषय में आयोग ने कहा कि देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए प्राथमिक शिक्षा को जनसाधारण तक पहुंचाना अत्यंत आवश्यक है।

   (ख) इसके लिए प्राथमिक शिक्षा के सुधार को शिक्षा नीति का महत्वपूर्ण अंग बनाया जाए जिसके लिए राज्य के प्रयास और अधिक विस्तृत स्तर पर किये जाने चाहिए।

   (ग) इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा के लिए स्थानीय निकायों द्वारा पृथक् कोष का प्रावधान किया जाना चाहिए तथा प्रांतीय राजस्व के एक बड़े भाग पर भी प्राथमिक शिक्षा का अधिकार होना चाहिए।

   (घ) इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए प्रत्येक विद्यालय निरीक्षक के अधिकार क्षेत्र में कम से कम एक सामान्य स्कूल स्थापित किया जाना चाहिए।

   (ङ) प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन का कार्यभार सरकार को स्थानीय निकायों को हस्तांतरित कर देना चाहिए।

3. **माध्यमिक शिक्षा** : माध्यमिक शिक्षा के संबंध में आयोग ने सिफारिश की कि–

   (क) ऐसे जिले जहां के निवासी हाई स्कूल खोलने में आर्थिक रूप से असमर्थ हों तथा जिनमें हाई स्कूल खोलना अत्यंत आवश्यक हो, वहां कम से कम एक मॉडल हाई स्कूल स्थापित किया जाना चाहिए।

   (ख) हाई स्कूल की उच्च कक्षाओं का दो भागों में विभाजन होना चाहिए, एक विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा के लिए तथा दूसरा ऐसी व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने का जिससे युवा वर्ग अपनी जीविका का उपार्जन कर सके।

   (ग) आयोग ने सरकार को प्रत्येक जिले में हाई स्कूल की स्थापना करने के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा के प्रसार को व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ने की बात भी कही।

4. **उच्च शिक्षा** : उच्च शिक्षा के विषय में हंटर आयोग ने कहा कि प्रत्येक कॉलेज को दिये जाने वाले अनुदान का निर्धारण उस कॉलेज में उपस्थित शिक्षकों की संख्या, रख–रखाव पर होने वाले व्यय, संस्था की कार्यकुशलता तथा स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

5. **सहायता अनुदान प्रणाली** : सहायता अनुदान प्रणाली के विषय में हंटर आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं–

   (क) व्यक्तिगत प्रबंधन वाली संस्थाएं तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक उन्हें शिक्षा की सामान्य प्रणाली का आवश्यक अंग ना बनाया जाए।

(ख) सभी विभागीय परीक्षाओं के संचालन में गैर–सरकारी विद्यालयों के प्रबंधकों अथवा अध्यापकों का तथा विभाग के अधिकारियों में परस्पर सामंजस्य स्थापित होना चाहिए।

(ग) सरकार द्वारा दिए जाने वाले पुरस्कार तथा छात्रवृत्तियां सभी विद्यालयों के विद्यार्थियों को दी जानी चाहिए।

(घ) सरकारी विद्यालय के समीप होना किसी गैर–सरकारी विद्यालयों को अनुदान से मना करने का पर्याप्त कारण नहीं होना चाहिए।

(ङ) सहायता अनुदान के नियमों को विभिन्न प्रांतों की परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित किया जाना चाहिए।

(च) सहायता अनुमान के लिए प्राप्त प्रत्येक प्रार्थना–पत्र का जवाब कार्यालय को देना चाहिए तथा अस्वीकार करने की स्थिति में उसका कारण भी देना चाहिए।

(छ) पिछड़े जिले, कन्या विद्यालयों तथा पिछड़ी तथा निम्न जातियों के स्कूलों को अधिक अनुपात में अनुदान दिया जाना चाहिए।

(ज) अनुदान नियत समय पर बिना किसी विलंब के दिया जाना चाहिए।

(झ) यदि अनुदान के नियमों में संशोधन किया गया है तो उसका प्रकाशन अधिकारिक गजट में होना चाहिए। इसके साथ–साथ नियमों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए।

(ञ) आवश्यक योग्यताओं से युक्त भारतीयों को विद्यालय निरीक्षक बनाया जाना चाहिए।

(ट) जनपरीक्षाओं को सभी स्कूलों में समान पाठ्यपुस्तकों तथा पाठ्यक्रम लागू करने का व्यावहारिक साधन बनाना चाहिए।

6. **नारी शिक्षा** : आयोग ने कहा कि ऐसा देखा गया है कि नारी शिक्षा अब भी बहुत पिछड़ी हुई थी। आयोग ने सुझाव दिया कि सभी प्रकार के स्थानीय तथा प्रांतीय अनुदान को बालकों तथा बालिकाओं के विद्यालयों पर समान रूप से खर्च किया जाना चाहिए।

7. **सरकार तथा मिशनरियों की भूमिका** : शैक्षिक प्रयासों में सरकार तथा मिशनरियों की भूमिका के संदर्भ में सुझाव देते हुए कहा कि मिशनरी संस्थाओं को राज्य के सामान्य निरीक्षण के अंतर्गत अपने स्वतंत्र पाठ्यक्रम चलाने की अनुमति होनी चाहिए। इन संस्थाओं को व्यक्तिगत प्रयासों के लिए आवश्यक सभी प्रकार का प्रोत्साहन तथा सहायता दी जानी चाहिए।

8. **धार्मिक शिक्षा** : धार्मिक शिक्षा के विषय में आयोग ने कहा कि धर्म निरपेक्ष राज्य की शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का दिया जाना संभव नहीं है। राज्य विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा का समावेश नहीं हो सकता परंतु व्यक्तिगत विद्यालयों में प्रबंधकों की इच्छा से धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।

टिप्पणी

भारतीय शिक्षा आयोग के गुण

भारतीय शिक्षा आयोग के गुण निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. भारतीय शिक्षा आयोग ने भारतीय शिक्षा के विभिन्न स्तरों का गहन अध्ययन करके अपने सुझाव लेखबद्ध किये थे।
2. इस आयोग की जांच के फलस्वरूप भारत में महान शैक्षिक जागृति हुई और उसके मुख्य निर्णयों का भारतीय शिक्षा नीति पर काफी समय तक प्रभुत्व रहा।
3. आयोग द्वारा सहायता अनुदान की शर्तें सरल बनाने की सिफारिश की गई जिससे शिक्षा का प्रसार अविराम गति से होने लगा।
4. आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित करने की बात कही।
5. आयोग ने प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाओं को बनाया जिससे जन शिक्षा का मार्ग आसान हो गया।
6. आयोग ने स्त्री शिक्षा तथा पिछड़े वर्ग की शिक्षा के संबंध में भी अनेक सुझाव दिये।
7. शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए आयोग ने विद्यालय तथा महाविद्यालय स्थापित करने का सुझाव दिया।
8. माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या को दो वर्गों में विभाजित करके आयोग ने शिक्षा को रोजगारपरक बनाया।
9. इस आयोग ने प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों पर छोड़ने की बात की।

भारतीय शिक्षा आयोग के दोष

भारतीय शिक्षा आयोग के दोष निम्न प्रकार से हैं–

1. कुछ शिक्षार्थियों के अनुसार हंटर आयोग ने लगभग उन्हीं सिद्धान्तों की पुनरावृति की जिन्हें वुड के आदेश पत्र में स्वीकार किया गया था।
2. आयोग ने अनिवार्य एवं निःशुल्क सामान्य शिक्षा के लिए कोई सुझाव नहीं दिया।
3. आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में बांटने की बात तो की थी परंतु व्यावसायिक शिक्षा के संबंध में कोई सुझाव नहीं दिया।
4. आयोग ने शिक्षा को स्थानीय निकायों को सौंपने की बात तो की परंतु उसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया पर कोई सुझाव नहीं दिया।
5. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आयोग ने उन अध्यापकों की नियुक्ति को वरीयता देने को कहा जिन्होंने यूरोपीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की हो।

4.2.7 अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत : उसकी आलोचना

अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत का अर्थ था– शिक्षा के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त वर्ग, जो समाज के उच्च वर्ग या कुलीन वर्ग तथा इस वर्ग से छन–छन कर शिक्षा जनसाधारण तक पहुंचे।

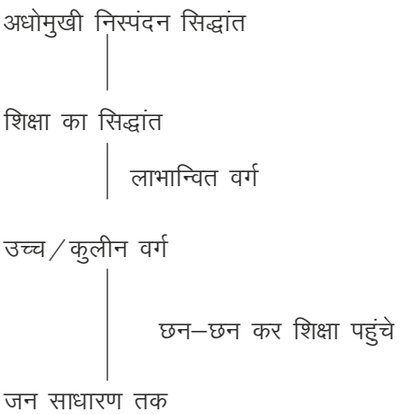

उच्च या कुलीन वर्ग शिक्षा के लिए चुना गया इसके पीछे जो मनसा थी वह निम्नवत थी–

1. यदि उच्च या कुलीन वर्ग शिक्षित (अंग्रेजी शिक्षा) होगा तो वह ब्रिटिश सरकार का वफादार होगा।
2. इसका एक परिणाम यह भी हो सकता था कि यदि उच्च या कुलीन वर्ग इसाई धर्म के प्रभाव में आ जाए तो जनसाधारण स्वतः ही इसाई धर्म से प्रभावित हो जाएगा। ऐसा इसाई धर्म प्रचारक समझते थे।
3. सीमित साधनों तथा आर्थिक विषमताओं के कारण भी एक वर्ग विशेष को चयनित करना उचित समझा गया।
4. 1870 तक इस नीति का अनुसरण किया गया।

हालांकि अधेमुखी निस्पंदन सिद्धांत की विचारधारा पहले से ही थी। मैकाले ने भी इस सिद्धांत पर कार्य किया था किंतु ऑकलैंड की घोषणा के बाद ही यह सिद्धांत सरकारी नीति के रूप में प्रभावशाली हुआ।

अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत तीन प्रमुख रूपों में विकसित हुआ, जिनको शिक्षा के लिए चुना गया वे वर्ग थे–

1. अभिजात वर्ग (जिसके अंतर्गत सरदार, नवाब तथा राजा शामिल थे)।
2. उच्च वर्ग (जिसके पास समय हो तथा राष्ट्र के प्रभावशाली व्यक्तित्व भी हो)।
3. एक निश्चित वर्ग (जिसके पास आम जनता को आधुनिक भाषाओं में शिक्षित करने की क्षमता हो)।

1. **अभिजात वर्ग**

   (क) इस योजना के तहत भारतीय अभिजात वर्ग को इंग्लैंड के अभिजात वर्ग की भांति बनाना प्रथम लक्ष्य था अतः इस वर्ग का दायरा–सरदार, नवाब तथा राजाओं तक ही सीमित था।

(ख) अतः इस वर्ग को संतुष्ट करना, उन्हें कंपनी की सेवाएं प्रदान करना एक मात्र उद्देश्य था।

(ग) यह नीति अंततः असफल साबित हुई।

(घ) क्योंकि शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक केवल वो लोग थे जो इस शिक्षा से होने वाले लाभों से अवगत थे।

(ङ) अतः अंग्रेजी सरकार को इस इच्छुक वर्ग को ही शिक्षित करना पड़ा।

(च) वारेन हेस्टिंग्स द्वारा कलकत्ता मदरसे की स्थापना की गई।

(छ) इस मदरसे का उद्देश्य केवल कलकत्ता (बंगाल) के मुस्लिम अभिजात वर्ग को शिक्षित करना था।

(ज) परंतु कलकत्ता के मदरसे का अधिक लाभ बंगाल के अन्य वर्गों द्वारा उठाया गया।

2. उच्च वर्ग

(क) इस नियम के अनुसार शिक्षा के लिए चयनित वर्ग उच्च एवं प्रभावशाली वर्ग था।

(ख) 29 सितंबर, 1830 को मद्रास सरकार द्वारा एक आदेशपत्र जारी किया गया।

(ग) इस आदेशपत्र के अनुसार शिक्षा की प्रगति तभी हो सकती है जब उच्च वर्ग को शिक्षा का केंद्र बनाया जाए।

(घ) किंतु वह उच्च वर्ग ऐसा होना चाहिए जिसके पास समय अथवा अवकाश भी हो तथा जिसका देशवासियों पर गहरा प्रभाव भी हो।

(ङ) भारतीय समाज अनेक वर्गों एवं जातियों में विभक्त था अतः यह नीति भारत में सफल नहीं हो सकती थी।

3. एक निश्चित वर्ग

(क) अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत की यह तीसरी प्रक्रिया अधिक महत्वपूर्ण थी।

(ख) इस प्रक्रिया के अनुसार कंपनी का उद्देश्य था सीमित व्यक्तियों को अच्छी शिक्षा प्रदान करना।

(ग) जब यह सीमित वर्ग शिक्षित हो जाए तो यह आधुनिक भाषाओं एवं स्वयं के माध्यम द्वारा आम जनता को शिक्षित करने का कार्य भार अपने हाथों में ले ले।

(घ) अतः 1854 तक कंपनी द्वारा जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व अपने हाथों में नहीं लिया।

(ङ) एक निश्चित वर्ग को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाए।

(च) अंततः अंग्रेजी माध्यम में शिक्षित यह निश्चित वर्ग भारतीय भाषाओं के द्वारा आगे भारतीय जनता को शिक्षित करे।

टिप्पणी

अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत की असफलता के कारण

इस सिद्धांत की असफलता के निम्नलिखित कारण थे–

1. अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सरकारी पद प्राप्त हो जाता था।
2. इस लाभ को अन्य आम व्यक्ति न प्राप्त कर पाए अतः शिक्षा को इन भारतीय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों द्वारा आम जनता तक नहीं पहुंचाया गया।
3. अंग्रेजी विद्यालयों ने शिक्षा प्राप्त करने के कारण भारतीयों की विचारधारा में परिवर्तन हो गया।
4. अतः अंग्रेजी शिक्षित भारतीय अन्य भारतीयों की सहानुभूति प्राप्त करने में असफल रहे।
5. यह निश्चित वर्ग स्वयं को अब श्रेष्ठ मानने लगा तथा स्वार्थी व घमंडी बन गया जिस कारण यह केवल अपने हितों का ध्यान रखता था।

अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत के लाभ

इस सिद्धांत के द्वारा निम्नलिखित लाभ हुए–

1. अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षित वर्ग में कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जिन्होंने सरकारी पदों या सेवाओं में रुचि नहीं ली।
2. सरकारी सेवाओं से न जुड़ने के कारण इस वर्ग द्वारा शिक्षा के प्रचार का कार्य किया गया।
3. इसी वर्ग के प्रयास द्वारा आम भारतीय जनता में माध्यमिक एवं महाविद्यालयी शिक्षा का प्रचार किया गया।
4. इसी शिक्षित वर्ग द्वारा शिक्षा के प्रचार के लिए अनेक क्रांतिकारी कदम उठाए गए, जैसे–
   (क) आधुनिक भारतीय प्रेस की स्थापना की गई।
   (ख) विभिन्न भारतीय भाषाओं में आधुनिक साहित्य की रचना की गई किंतु यह प्रयास एक लघु सीमा तक ही लागू हो पाया।
   (ग) 1844 में लॉर्ड हार्डिंग की घोषणा के अनुसार ऐसे भारतीय जो अंग्रेजी शिक्षा द्वारा शिक्षित थे उन्हें सरकारी नौकरियों में प्रमुखता दी जाने लगी।
   (घ) तथा इस सब कार्यों के परिणामस्वरूप भारतीय उच्च शिक्षा में भी प्रगति होने लगी।

अधोमुखी निस्पंदन सिद्धांत के परिणाम

इस सिद्धांत के निम्नलिखित परिणाम सामने आए–

1. देशी विद्यालयों की अवहेलना होने लगी तथा लोग अंग्रेजी विद्यालयों की तरफ आकृष्ट होने लगे।

2. इस प्रक्रिया से सार्वजनिक शिक्षा के कार्य को क्षति पहुंची।
3. इसी कारण अनेक सार्वजनिक शिक्षा संबंधी प्रस्थापनाएं असफल रहीं, जैसे–मद्रास में मनरो, बंबई में एलफिस्टन और बंगाल में ऐटम।
4. अब अंततः सरकार द्वारा अधोमुखी निस्पंदन नीति का त्याग करने की प्रक्रिया शुरू होगी।
5. निस्पंदन सिद्धांत त्यागने की प्रक्रिया के कारण ही थामसन की शिक्षा योजनाएं जो उत्तर–पश्चिम में चलाई जा रही थीं सफल होने लगीं।
6. डलहौजी द्वारा भी थामसन योजनाओं को प्रोत्साहन दिया गया।
7. थामसन जनसाधारण की शिक्षा हेतु देशी विद्यालयों के विकास का समर्थक था।

शिक्षा से संबंधित अनेक प्रयासों के चलते 1853 तक शिक्षा क्षेत्र के विषद सर्वेक्षण की आवश्यकता स्पष्ट हो गई। अतः 1853 में नया चार्टर एक्ट लागू करने के लिए जिस समिति का गठन किया गया उसी समिति के सुझावों के आधार पर कंपनी द्वारा नवीन शिक्षा नीति की घोषणा कर दी गई। अतः यह नई शिक्षा नीति बोर्ड ऑफ कंट्रोल के प्रमुख चार्ल्स वुड के नाम से प्रचलित हुई।

अपनी प्रगति जांचिए

1. "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।" यह कथन किसका है?
   (क) महात्मा गांधी (ख) स्वामी विवेकानंद
   (ग) राधा मुकुन्द मुखर्जी (घ) जॉन डुई
2. विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य हैं–
   (क) विवेक का विस्तार करना
   (ख) व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना
   (ग) (क) और (ख) दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं

4.3 स्वतंत्र भारत में शिक्षा नीति की रूपरेखा

15 अगस्त, 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा का विकास ब्रिटिशकालीन शिक्षा संबंधी प्रयत्नों के फलस्वरूप ही अग्रसर हुआ। अंग्रेजों ने अंग्रेजी भाषा को महत्व देते हुए पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा दिया। 1833 ई. के चार्टर द्वारा अंग्रजी को भारत की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया था। यद्यपि भारतीय शिक्षा के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वेदों, पुराणों, योगों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि प्राच्य विद्या ग्रंथों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही भक्ति व सूफी आंदोलनों और जैन व बौद्ध तथा हिन्दू धर्म ग्रंथों ने भी भारतीय शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

परंतु भारत में स्वतंत्रता से पूर्व स्थापित किए गए 19 विश्वविद्यालय ब्रिटिशों के 350 वर्षों के शासनकाल की ही देन हैं। ब्रिटिशों का मत था कि उनकी व्यापारिक एवं राजनैतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति अंग्रेजी भाषा के प्रसार से ही हो सकती है और भारतीयों का उपयोग इस अंतर्राष्ट्रीय भाषा के ज्ञान के द्वारा ही किया जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्र की प्रगति एवं जनमानस और समाज के ज्ञान संवर्धन हेतु शिक्षा के विकास को बहुत महत्व दिया गया। भारत में प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा को शामिल किया गया। शिक्षण को सभी भारतीयों को उपलब्ध कराने के प्रयास स्वरूप कई समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया। बहुत से कालेजों और संस्थानों की पूरे देश में स्थापना की गई। 6–14 वर्ष की आयु समूह के बच्चों के लिए सार्वभौमिक और अनिवार्य शिक्षा को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में एक नीति–निर्देश प्रावधान के रूप में शामिल किया गया।

भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) तथा कोठारी आयोग (1964–66) की स्थापना शिक्षा तथा शिक्षण के संबंध में अनुसंधानात्मक अध्ययन के द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु की गई। इन आयोगों में शामिल महान शिक्षाविदों ने अपनी भूमिका का संपूर्ण निर्वहन किया। शिक्षा एवं शिक्षण के लक्ष्यों की पूर्ति हेतु भारतीय सरकार को अपनी बृहद, गंभीर एवं संरचनात्मक अनुशंसाएं प्रस्तुत कीं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इनकी अनुशंसाओं के महत्व को स्वीकार भी किया गया। हालांकि शिक्षा विकास के क्षेत्र में भारतीय सरकार को समयानुसार कई परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ी और सुधार लागू करने पड़े हैं। फिर भी शिक्षा के महत्व को देखते हुए सतत प्रयासों द्वारा इसे लोकप्रिय एवं सर्वसुलभ बनाना आज भी आवश्यक है।

4.3.1 स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों के दौरान शैक्षिक नीति में प्राथमिकताएं : सामाजिक और क्षेत्रीय

यूरोपीय मिशनरियों ने पहले भारत में स्कूल शुरू किए और बाद में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की शुरुआत की। डेनिश मिशनरियों ने कलकत्ता के निकट सेरामपुर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए एक सामान्य स्कूल की स्थापना की। शुरुआत में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में शिक्षा के लिए कोई जिम्मेदारी महसूस नहीं की केवल कुछ अंग्रेजी बुद्धिजीवियों ने इसकी आवश्यकता महसूस की और अदालत से गुहार लगाई। निदेशक वारेन हेस्टिंग्स द्वारा एक शुरुआत की गई थी, जिन्होंने 1781 में कलकत्ता में एक मदरसा स्थापित किया था। अंग्रेजों ने उस समय भारत में अंग्रेजी शिक्षा शुरू करने के बारे में नहीं सोचा था। इसलिए कलकत्ता मदरसा ने फारसी और अरबी के अध्ययन की व्यवस्था की। 1792 में ब्रिटिश निवासी जोनाथन डंकन ने बनारस में एक संस्कृत कॉलेज शुरू किया। लॉर्ड वेलेस्ली ने किले की स्थापना की थी। कंपनी के सिविल सेवकों को भारत की भाषा और रीति–रिवाजों के प्रशिक्षण के लिए 1800 में विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। ये केवल व्यक्तियों की व्यक्तिगत पहल थी। कंपनी को उनमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारतीय शिक्षा का स्वरूप और उद्देश्य बदलने लगे। ब्रिटिश काल में शिक्षा आम जनता तक नहीं पहुंची थी। गांवों में और यहां तक कि महानगरों के अलावा अन्य शहरों में भी, स्कूल कम और बहुत दूर थे।

टिप्पणी

एक राष्ट्रीय शिक्षा जो युवाओं को उत्पादक कार्य करने के लिए तैयार करेगी और उन्हें देशभक्त नागरिक बनाएगी, वह राष्ट्रवादी आंदोलन का एक आदर्श उद्देश्य था। वैसे भी नेहरू सरकार ने शिक्षा पर कोई नीतिगत दस्तावेज नहीं अपनाया। एक राष्ट्रीय नीति शिक्षा अभी नेहरू युग में अपने विकास में थी। शैक्षिक 1948 और 1952 में नेहरू सरकार द्वारा नियुक्त आयोगों ने किसी भी तरह स्वतंत्रता के पहले दो दशकों में उस विकास के साथ–साथ शिक्षा के सामान्य विकास में योगदान दिया। स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विकास में पहला मील का पत्थर भारतीय संविधान का अधिनियमन था जिसने शिक्षा से संबंधित कई मामलों को परिभाषित किया। संविधान में, हिंदी को संघ की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया है। इसलिए संघ के आधिकारिक उद्देश्यों के लिए हिंदी भाषा के प्रगतिशील उपयोग और प्रत्येक राज्य में आंतरिक प्रशासन के लिए क्षेत्रीय भाषाओं की सिफारिश की गई है।

सार्जेंट आयोग के बाद, ब्रिटिश काल में कोई बड़ा आयोग या रिपोर्ट नहीं थी। यहां तक कि सार्जेंट आयोग की रिपोर्ट में भी दिन का उजाला नहीं हुआ। सत्ता के हस्तांतरण के बाद, केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सीएबीई) ने दो आयोगों का गठन करने का फैसला किया, एक विश्वविद्यालय शिक्षा से निपटने के लिए और दूसरा माध्यमिक शिक्षा से निपटने के लिए, इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि स्वतंत्र भारत की आवश्यकताएं अलग होंगी और इसलिए प्रणाली का पुनर्गठन आसन्न था। यह फैसला ऐसे समय में आया है, जब स्वतंत्रता संग्राम के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में लोगों से किए गए वादों को अमल में लाया जाना था। 14 साल की उम्र तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा पर संविधान सभा में बहस हो रही थी, जिसे अंततः राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों में अभिव्यक्ति मिली। ऐसा लगता है कि जिस योजना पर काम किया गया था, वह यह थी कि सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा 1960 तक प्राप्त की जाएगी, और माध्यमिक और उच्च शिक्षा में आवश्यक परिवर्तन एक स्वतंत्र भारत की जरूरतों के अनुसार किए जाने होंगे।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948: भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा पर रिपोर्ट करने के लिए और वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप वांछनीय सुधारों और विस्तार के लिए डॉ. एस राधाकृष्णन की अध्यक्षता में 1948 में नियुक्त किया जाने वाला पहला आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग था।

देश के आयोग, जिसने एक व्यापक और विशाल रिपोर्ट तैयार की, को "बड़ी समस्या, राष्ट्रीय और सामाजिक अधिग्रहण" का सामना करने के लिए शिक्षा प्रणाली को फिर से उन्मुख करने का कार्य मिला।

आर्थिक स्वतंत्रता, सामान्य समृद्धि, प्रभावी लोकतंत्र की प्राप्ति, जाति और पंथ के भेदों को खत्म करना, अमीर और गरीब संस्कृति के स्तर में वृद्धि होती है। इन उद्देश्यों की त्वरित और प्रभावी प्राप्ति के लिए, शिक्षा एक शक्तिशाली हथियार है यदि इसे कुशलतापूर्वक और जनहित में व्यवस्थित किया जाए। जैसा कि हम सभ्य लोग होने का दावा करते हैं, हमें उभरती पीढ़ियों की उच्च शिक्षा को अपनी प्रमुख चिंताओं में से एक के रूप में मानना चाहिए। इसमें निहित कार्य था, जिसे नेहरू ने भी बार–बार कहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता की उपलब्धि को स्थानांतरित किया जाना चाहिए। आर्थिक स्वतंत्रता में। इस आयोग के आवश्यक कार्य वर्ग की जरूरतों के अनुरूप थे, अर्थात्,

आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने और सुनिश्चित करने के लिए मूल्यों की प्राप्ति के लिए शैक्षिक प्रणाली को उन्मुख करना।

आयोग की रिपोर्ट ने हमारे संविधान के पांच बुनियादी सिद्धांतों – लोकतंत्र, के संबंध में उच्च शिक्षा के पुनः अभिविन्यास पर चर्चा की। न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व रिपोर्ट का विचार "संसदीय लोकतंत्र के लिए एक वैचारिक समर्थन के रूप में शिक्षा प्रणाली" को ढालना था। आर्थिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर, रिपोर्ट में कहा गया है कि, "इसकी तत्काल आवश्यकता है।" हमारा दृढ़ मत है कि प्रत्येक प्रांत में बड़ी संख्या में व्यावसायिक संस्थान होने चाहिए, अधिमानतः प्रत्येक जिले में एक, जितना संभव हो उतने व्यवसायों में प्रशिक्षण देना।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952):

डॉ. राधाकृष्णन की सिफारिशों को, सितंबर 1952 में स्थापित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने डॉ. एल.एस. मुदलियार की अध्यक्षता में एक रिपोर्ट 1953 में पहली बार संसद में प्रस्तुत की गई थी। इस प्रकार इस रिपोर्ट में लोगों के जीवन स्तर को सराहनीय रूप से ऊपर उठाने के लिए तकनीकी स्कूलों, पॉलिटेक्निकों की स्थापना, बहुउद्देश्यीय शिक्षा को मजबूत करने, केंद्रीय तकनीकी संस्थानों आदि की स्थापना की सिफारिश की गई थी। बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना इस आयोग का एक प्रमुख योगदान था।

किसी भी देश के आर्थिक विकास में शिक्षा एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है। स्वतंत्रता के शुरुआती दिनों से भारत ने हमेशा साक्षरता दर में सुधार लाने पर ध्यान केंद्रित किया है। आज भी सरकार भारत में प्राथमिक और उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई कार्यक्रम चलाती है।

भारत में ब्रिटिश काल के दौरान शिक्षा का विकास

शिक्षा स्वतंत्रता के सुनहरे दरवाजे को खोलने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है जो दुनिया को बदल सकता है। अंग्रेजों के आगमन के साथ, उनकी नीतियों और उपायों ने सीखने के पारंपरिक स्कूलों की विरासत को भंग कर दिया और इसके परिणामस्वरूप अधीनस्थों का एक वर्ग बनाने की आवश्यकता हुई। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, उन्होंने शिक्षा प्रणाली के माध्यम से अंग्रेजी रंग का एक भारतीय कैनवास बनाने के लिए कई कार्य किए।

प्रारंभ में, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी शिक्षा प्रणाली के विकास से चिंतित नहीं थी क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य व्यापार और लाभ–निर्माण था। भारत में शासन करने के लिए, उन्होंने "रक्त और रंग में भारतीय लेकिन स्वाद में अंग्रेजी" बनाने के लिए उच्च और मध्यम वर्गों के एक छोटे से वर्ग को शिक्षित करने की योजना बनाई, जो सरकार और जनता के बीच दुभाषियों के रूप में काम करेंगे। इसे "डाउनवर्ड निस्पंदन सिद्धांत" भी कहा जाता था। भारत में शिक्षा के विकास के लिए अंग्रेजों द्वारा निम्नलिखित उपाय किए गए थे। भारत में ब्रिटिश काल के दौरान शिक्षा के कालानुक्रमिक विकास की चर्चा नीचे दी गई है:

1813 अधिनियम और शिक्षा

1. चार्ल्स ग्रांट और विलियम विल्बरफोर्स, जो मिशनरी कार्यकर्ता थे, ने ईस्ट इंडिया कंपनी को अपनी गैर–आविष्कार नीति को छोड़ने के लिए मजबूर किया और

टिप्पणी

पश्चिमी साहित्य पढ़ाने और ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा का प्रसार करने का रास्ता बनाया। इसलिए, ब्रिटिश संसद ने 1813 के चार्टर में एक खंड जोड़ा कि गवर्नर–जनरल–इन–काउंसिल शिक्षा के लिए एक लाख से कम है और ईसाई मिशनरियों को भारत में अपने धार्मिक विचारों को फैलाने की अनुमति देता है।

2. अधिनियम का अपना महत्व था क्योंकि यह पहली बार था कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में शिक्षा के प्रचार के लिए स्वीकार किया था।
3. आर. आर. रॉय के प्रयासों से, पश्चिमी शिक्षा प्रदान करने के लिए कलकत्ता कॉलेज की स्थापना की गई। साथ ही कलकत्ता में तीन संस्कृत महाविद्यालय स्थापित किए गए।

सार्वजनिक निर्देश की सामान्य समिति

इस समिति का गठन भारत में शिक्षा के विकास को देखने के लिए किया गया था जिसमें ओरिएंटलिस्टों का वर्चस्व था जो अंग्रेजी के बजाय ओरिएंटल शिक्षा के महान समर्थक थे। इसलिए, उन्होंने पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए ब्रिटिश इंडिया कंपनी पर दबाव बनाया। परिणामस्वरूप, भारत में शिक्षा के प्रसार में ओरिएंटलिस्ट–एंग्लिसिस्ट और मैकाले के संकल्प के बीच ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली की स्पष्ट तस्वीर सामने आई।

लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति

1. यह नीति शिक्षा की उस प्रणाली को बनाने का एक प्रयास थी जो अंग्रेजी के माध्यम से समाज के केवल ऊपरी स्तर को शिक्षित करती है।
2. अंग्रेजी अदालत की भाषा बन गई और फारसी को अदालत की भाषा के रूप में समाप्त कर दिया गया।
3. अंग्रेजी पुस्तकों की छपाई मुफ्त और बहुत कम कीमत पर उपलब्ध कराई गई।
4. प्राच्य विद्या की तुलना में अंग्रेजी शिक्षा को अधिक निधि मिलती है।
5. 1849 में, जेईडी बेथ्यून ने बेथ्यून स्कूल की स्थापना की।
6. पूसा (बिहार) में कृषि संस्थान की स्थापना की गई।
7. इंजीनियरिंग संस्थान की स्थापना रुड़की में की गई थी।

वुड्स डिस्पैच, (Woods dispatch Education Policy 1854)

1. इसे "भारत में अंग्रेजी शिक्षा का मैग्ना कार्टा" माना जाता है और इसमें भारत में शिक्षा के प्रसार की व्यापक योजना है।
2. यह शिक्षा के प्रसार के लिए राज्य की जिम्मेदारी को जनता तक पहुंचाता है।
3. इसने पदानुक्रम की शिक्षा के स्तर की सिफारिश की– नीचे, वर्नाक्यूलर प्राइमरी स्कूल; जिले में, एंग्लो–वर्नाक्युलर हाई स्कूल और संबद्ध कॉलेज, और कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी के संबद्ध विश्वविद्यालय।
4. स्कूल स्तर पर उच्च अध्ययन और स्थानीय भाषा के लिए शिक्षा के माध्यम के रूप में अनुशंसित अंग्रेजी।

हंटर कमीशन (Hunter Commission 1882-83)

1. 1882 में W-W हंटर के तहत 1854 की वुड डिस्पैच की उपलब्धियों का आकलन करने के लिए इसका गठन किया गया था।
2. इसने प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा के विस्तार और सुधार में राज्य की भूमिका को रेखांकित किया।
3. इसने जिला और नगरपालिका बोर्डो को नियंत्रण हस्तांतरण को रेखांकित किया।
4. इसने माध्यमिक शिक्षा के दो विभाजन की सिफारिश की– साहित्य विश्वविद्यालय तक; व्यावसायिक कैरियर के लिए।

सैडलर कमीशन

1. यह कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याओं पर अध्ययन करने के लिए बनाया गया था और उनकी सिफारिशें अन्य विश्वविद्यालयों पर भी लागू थीं।
2. उनके अवलोकन इस प्रकार थेः
   - 12 साल का स्कूल कोर्स
   - इंटरमीडिएट चरण के बाद 3 साल की डिग्री
   - विश्वविद्यालयों का केन्द्रीयकृत कामकाज, एकात्मक आवासीय–शिक्षण स्वायत्त निकाय।
   - लागू वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण और महिला शिक्षा के लिए विस्तारित सुविधाओं की सिफारिश की।

इसलिए, हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ईसाई मिशनरियों की आकांक्षा से प्रभावित थी। प्रशासन में अधीनस्थ पदों की संख्या बढ़ाने के लिए शिक्षित भारतीयों की एक सस्ती आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए इसे इंजेक्ट किया गया था। इसीलिए, वे अंग्रेजी शिक्षा पर जोर देते हैं और साथ ही ब्रिटिश विजेता और उनके प्रशासन का भी महिमामंडन करते हैं।

आजादी के बाद भारत में शिक्षा का विकास

योजनाओं के कार्यान्वयन के बाद, शिक्षा के प्रसार के प्रयास किए गए।

सरकार ने 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का निर्णय लिया, लेकिन यह उद्देश्य अभी तक हासिल नहीं किया जा सका।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल योजना परिव्यय का 7.9% शिक्षा के लिए आवंटित किया गया था। द्वितीय और तृतीय योजना में, आवंटन कुल योजना परिव्यय का 5.8% और 6.9% था। नौवीं योजना में कुल परिव्यय का केवल 3.5% शिक्षा के लिए आवंटित किया गया था। शिक्षा को कारगर बनाने के लिए, 1968 में 'शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति' के तहत कोठारी आयोग की सिफारिशें लागू की गईं। मुख्य सिफारिशें सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा थीं। शिक्षा के नए पैटर्न का परिचय, तीन भाषा सूत्र, उच्च शिक्षा में क्षेत्रीय भाषा का परिचय, कृषि और औद्योगिक शिक्षा का विकास और वयस्क शिक्षा। देश की बदलती सामाजिक–आर्थिक जरूरतों का मुकाबला करने के लिए।

भारत सरकार ने 1986 में शिक्षा पर एक नई राष्ट्रीय नीति की घोषणा की। प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण, माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण और उच्च शिक्षा की विशेषज्ञता इस नीति की मुख्य विशेषताएं थीं। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) और राज्य स्तर पर शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की स्थापना शिक्षा के मानक को बनाए रखने के लिए की गई थी। उच्च शिक्षा के मानक को निर्धारित करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) की स्थापना की गई थी।

निम्नलिखित बिंदु स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा के विकास की व्याख्या करते हैं:

1. सामान्य शिक्षा का विस्तार (Extension of general education)

नियोजन की अवधि के दौरान सामान्य शिक्षा का विस्तार हुआ है। 1951 में साक्षरता का प्रतिशत 19.3 था। 2001 में साक्षरता प्रतिशत बढ़कर 65.4 हो गया। 6–11 आयु वर्ग के बच्चों का नामांकन अनुपात 1951 में 43% था और 2001 में यह 100% हो गया।

प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य कर दी गई है। ड्रॉप–आउट दर की जांच करने के लिए 1995 से स्कूलों में मध्याह्न भोजन शुरू किया गया है। प्राथमिक स्कूलों की संख्या 2.10 लाख (1950–51) से तीन गुना बढ़कर 6.40 लाख (2001–02) हो गई है। 1950–51 में केवल 27 विश्वविद्यालय थे जो 2000–1 में बढ़कर 254 हो गए।

2. तकनीकी शिक्षा का विकास (Development of Technology Education)

सामान्य शिक्षा के अलावा, तकनीकी शिक्षा मानव पूंजी निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकार ने कई औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, पॉलिटेक्निक, इंजीनियरिंग कॉलेजों और मेडिकल और डेंटल कॉलेजों, प्रबंधन संस्थानों आदि की स्थापना की है।

ये नीचे दिए गए हैं–

(क) **भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान** (Indian Institute of Technology):

अंतर्राष्ट्रीय मानक की इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में शिक्षा और अनुसंधान के लिए, मुंबई, दिल्ली, कानपुर, चेन्नई, खड़गपुर, रुड़की और गुवाहाटी में सात संस्थानों की स्थापना की गई है, यहां स्नातक और स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट स्तर दोनों के लिए तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाती है।

(ख) **राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान**

ये संस्थान इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में शिक्षा प्रदान करते हैं। इन्हें रीजनल कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग (आरईसी) कहा जाता था। ये पूरे देश में 17 की संख्या में हैं। इंजीनियरिंग और तकनीकी शिक्षा सिखाने के लिए देश में अन्य संस्थान हैं।

(ग) **भारतीय प्रबंधन संस्थान**

ये संस्थान व्यवसाय प्रबंधन और प्रशासन में शिक्षा प्रदान करते हैं। ये संस्थान अहमदाबाद, बैंगलोर, कोलकाता, लखनऊ, इंदौर और कोझिकोड में स्थित हैं।

(घ) **चिकित्सा शिक्षा**

1950–51 में देश में केवल 28 मेडिकल कॉलेज थे। 1998–99 में देश में 165 मेडिकल और 40 डेंटल कॉलेज थे।

(ङ) **कृषि शिक्षा**

कृषि उत्पादन और उत्पादकता में सुधार के लिए लगभग सभी राज्यों में कृषि विश्वविद्यालयों की शुरुआत की गई है। ये विश्वविद्यालय कृषि, बागवानी, पशुपालन और पशु चिकित्सा विज्ञान आदि में शिक्षा और अनुसंधान प्रदान करते हैं।

3. महिला शिक्षा (Women's Education)

भारत में, महिलाओं में साक्षरता काफी कम थी। 2001 की जनगणना के अनुसार यह 52% थी। जबकि पुरुषों में साक्षरता 75.8% थी। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति में महिला शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कई राज्य सरकारों ने विश्वविद्यालय स्तर तक लड़की के शिक्षण शुल्क में छूट दी है। महिलाओं के बीच साक्षरता का स्तर बढ़ाने के लिए अलग स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए हैं।

4. व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986, माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण का उद्देश्य है व्यावसायिक शिक्षा। केंद्रीय सरकार 1988 से कार्यक्रम को लागू करने के लिए राज्य सरकारों को अनुदान दे रही है। कृषि, मछलीपालन, डायरी, मुर्गी पालन, टाइपिंग, इलेक्ट्रॉनिक्स, मैकेनिकल और बढ़ईगीरी आदि को उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

5. उच्च शिक्षा का विकास (Development of Higher Education)

1951 में, 27 विश्वविद्यालय थे। 2001 में उनकी संख्या बढ़कर 254 हो गई। उड़ीसा राज्य में 1951 में केवल एक विश्वविद्यालय था। अब 9 विश्वविद्यालय हैं।

6. गैर–औपचारिक शिक्षा (Non-formal Education)

यह योजना छठी योजना से प्रयोगात्मक आधार पर और सातवीं योजना से नियमित आधार पर शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य 6–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करना था। यह योजना उन बच्चों के लिए थी जो गरीबी और अन्य कार्यों के साथ पूर्व व्यवसाय के कारण नियमित रूप से और पूरे समय तक स्कूलों में नहीं जा सकते।

केंद्रीय सरकार राज्य सरकार को सहायता प्रदान कर रही है और योजना को लागू करने के लिए स्वैच्छिक संगठन। दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों, पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों और मलिन बस्तियों में गैर–औपचारिक शिक्षा केंद्र स्थापित किए गए हैं। ये 6–14 आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं।

टिप्पणी

7. भारतीय भाषा और संस्कृति को प्रोत्साहन (Promotion of Indian Language and Culture)

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1968 को अपनाने के बाद, उच्च शिक्षा में क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम बन गई। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पाठ्यक्रम, शब्दकोशों, पुस्तकों और प्रश्न–पत्रों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया जाता है। भारतीय इतिहास और संस्कृति को स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

8. वयस्क शिक्षा (Continuing education)

सीधे शब्दों में वयस्क शिक्षा 15–35 वर्ष की आयु के निरक्षर लोगों के लिए शिक्षा को संदर्भित करती है। नेशनल बोर्ड ऑफ एडल्ट एजुकेशन की स्थापना प्रथम पंचवर्षीय योजना में की गई थी। ग्राम स्तर के श्रमिकों को वयस्क शिक्षा प्रदान करने का काम सौंपा गया था। प्रगति बहुत अच्छी नहीं रही।

राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा कार्यक्रम 1978 में शुरू किया गया था। कार्यक्रम को प्राथमिक शिक्षा का एक हिस्सा माना जाता है। राष्ट्रीय साहित्य मिशन भी 1988 में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में वयस्क निरक्षरता को मिटाने के लिए शुरू किया गया था। केंद्र इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए राज्यों, स्वयंसेवी संगठनों और कुछ चयनित विश्वविद्यालयों को सहायता देता है। 1990–91 में देश में 2.7 लाख वयस्क शिक्षा केंद्र कार्यरत थे। इस कार्यक्रम ने 2001 में साक्षरता दर को 65.38% तक बढ़ाने में मदद की।

9. विज्ञान शिक्षा में सुधार (Science education reform)

केंद्रीय सरकार 1988 में स्कूलों में विज्ञान शिक्षा के सुधार के लिए एक योजना शुरू की। विज्ञान किट, विज्ञान प्रयोगशालाओं के उन्नयन, शिक्षण सामग्री के विकास और विज्ञान और गणित शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। एनसीईआरटी में केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (CIET) की स्थापना राज्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थानों के लिए उपकरण खरीदने के लिए की गई थी।

10. सभी के लिए शिक्षा (Education for all)

93 वें संशोधन के अनुसार, सभी के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। प्रारंभिक शिक्षा 6–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों का एक मौलिक अधिकार है। यह भी मुफ्त है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) शुरू किया गया है।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा में बहुत विकास भारत में आजादी के बाद हुआ है। सामान्य शिक्षा और उच्च शिक्षा में व्यापक वृद्धि हुई है। शिक्षा को देश के सभी वर्गों और सभी क्षेत्रों में फैलाने का प्रयास किया गया है। अभी भी हमारी शिक्षा प्रणाली समस्याओं से ग्रस्त है।

मानव पूंजी (Human capital)

मानव पूंजी (ह्यूमन कैपिटल) और आर्थिक विकास (इकोनॉमिक ग्रोथ) देश के विकास पर नजर रखते हुए एक साथ रहते हैं। लंबे समय तक भारतीयों ने मानव पूंजी के महत्व को पहचाना। सातवीं पंचवर्षीय योजना तय करती है, "मानव संसाधन विकास को किसी

भी विकास रणनीति में महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी जानी चाहिए, विशेष रूप से एक बड़ी आबादी वाले देश में।"

नीचे दिए गए बिंदुओं को देखते हुए, कोई यह निश्चित रूप से कह सकता है कि मानव पूंजी और आर्थिक विकास दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं।

1. कुशल और विशिष्ट श्रमिक जटिल मशीनों या तकनीकों को संभाल सकते हैं, जिन्हें अकुशल श्रमिक नहीं कर सकते।
2. यह मानव पूंजी भौतिक पूंजी की उत्पादकता को बढ़ाती है। इससे उत्पादकता बढ़ती है और इसलिए उत्पादन में वृद्धि से आर्थिक विकास होता है।
3. नवीन मानव पूंजी द्वारा उत्पादन के नए तरीके पेश किए जा सकते हैं और ये सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के रूप में उत्पादन और आर्थिक वृद्धि को बढ़ाते हैं।
4. मानव पूंजी की भागीदारी की उच्च दर और उनके बीच समानता उच्च रोजगार दर की ओर ले जाती है। जैसे–जैसे रोजगार बढ़ेगा उत्पादन में वृद्धि होगी।
5. साथ ही, आय में वृद्धि और रोजगार के अवसरों में वृद्धि से जीवन स्तर में वृद्धि होती है, जिससे धन की असमानताओं को कम करने में मदद मिलती है।
6. रोजगार दर में वृद्धि और आय असमानताओं में कमी आर्थिक विकास के संकेतक हैं।
7. मानव पूंजी निर्माण की प्रक्रिया सही दिशा में जाने पर समाज की सकारात्मक तस्वीर को चित्रित किया जा सकता है।
8. विचारों के सभी पारंपरिक और रूढ़िवादी स्कूल समाप्त हो जाते हैं और इसलिए कार्यबल में भागीदारी की दर उत्पादन स्तर को बढ़ाती है।

भारत में शिक्षा (Education in India)

भारत में शिक्षा का अर्थ है स्कूलों और कॉलेजों में मानव पूंजी के शिक्षण, सीखने और प्रशिक्षण की प्रक्रिया। इससे ज्ञान में सुधार होता है और कौशल विकास होता है जिससे मानव पूंजी की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। हमारी सरकार ने भारत में शिक्षा के महत्व को हमेशा महत्व दिया है और यह हमारी आर्थिक नीतियों में परिलक्षित होता है।

शिक्षा पर सरकारी व्यय में वृद्धि

ऐसे दो क्षेत्र हैं जहां सरकार व्यय को व्यक्त करती है।

- कुल सरकारी खर्च के प्रतिशत के रूप में।
- सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के प्रतिशत के रूप में।

कुल सरकारी खर्च में से शिक्षा पर खर्च का प्रतिशत सरकार के समक्ष खर्च की योजना में शिक्षा के महत्व का सूचक है। हमारे देश में शिक्षा के विकास के प्रति प्रतिबद्धता का स्तर कुल जीडीपी से बाहर शिक्षा पर किए गए खर्च के प्रतिशत से दिखाया जा सकता है। 1952–2010 के दौरान, कुल सरकारी खर्च में से कुल शिक्षा व्यय का प्रतिशत 7.92% से बढ़कर 11.10% हो गया। इसी समय, देश की जीडीपी का प्रतिशत 0.64% से बढ़कर 3.25% हो गया। चूंकि उस समय शिक्षा पर व्यय निरंतर नहीं था, इसलिए उस युग में देश की वृद्धि अनियमित थी।

भारत में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय

प्रारंभिक शिक्षा और उच्च शिक्षा पर किए गए व्यय की तुलना में, प्राथमिक शिक्षा द्वारा प्रमुख हिस्सा हड़प लिया गया था। इसके विपरीत, उच्च शिक्षा पर प्रति छात्र खर्च प्रारंभिक शिक्षा की तुलना में अधिक था।

जैसे–जैसे स्कूल शिक्षा का विस्तार हो रहा है, हमें और अधिक प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता है, जिन्होंने शिक्षण संस्थानों में अध्ययन किया है। इसलिए, शिक्षा के सभी स्तरों पर व्यय में वृद्धि होनी चाहिए।

निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा

शिक्षा आयोग (1964–66) ने सिफारिश की कि शिक्षा में एक पहचान योग्य वृद्धि दर बनाने के लिए शिक्षा पर जीडीपी का कम से कम 6% खर्च किया जाना चाहिए। दिसंबर 2002 में, भारत सरकार ने, भारत के संविधान के 86 वें संशोधन के माध्यम से, 6–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया।

तापस मजूमदार समिति को भारत सरकार द्वारा वर्ष 1998 में नियुक्त किया गया था। समिति ने रुपये के खर्च का अनुमान लगाया था।

वर्तमान में, व्यय लगभग 4% है, जिसे आने वाले वर्षों में वांछित परिणामों तक पहुंचने के लिए 6% तक बढ़ाया जाना है। सरकार सभी करों पर 2% की दर से शिक्षा उपकर लगाती है। प्रारंभिक शिक्षा पर खर्च करने के लिए शिक्षा उपकर से मिलने वाला राजस्व निर्धारित किया जाएगा।

भविष्य की संभावनाएं

भारत सरकार शिक्षा को एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में मानती है जहां अत्यधिक विकास की आवश्यकता है। इसलिए भविष्य की विभिन्न संभावनाओं पर विचार किया गया है और नीतियों का मसौदा तैयार किया गया है। इसका कार्य यह सुनिश्चित करना है कि भारत में शिक्षा उच्चतम गुणवत्ता की है और बिना भेदभाव के पूरी आबादी के लिए उपलब्ध है। आइए कुछ परियोजनाओं को देखें जिन्हें सरकार सफलतापूर्वक लागू करना चाहती है।

1. सभी के लिए शिक्षा – एक सपना

हालांकि युवाओं के साथ–साथ वयस्कों के लिए भी शिक्षा का स्तर बढ़ा है, फिर भी निरक्षरों की संख्या उतनी ही है जितनी आजादी के समय थी। संविधान सभा ने वर्ष 1950 में भारत का संविधान पारित किया था। संविधान के प्रारंभ से 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान रखा गया। सभी के लिए शिक्षा के निम्नलिखित कारक हैं–

- लिंग पर पक्षपात (gender bias)
- कम ग्रामीण पहुंच (Less rural access)
- निरक्षरों की बढ़ती संख्या (Rising number of illiterate)

- निजीकरण (Privatization)
- सरकार द्वारा शिक्षा पर कम खर्च (Less spending on education by the government)

2. लिंग समानता में सुधार

पुरुष और महिला के बीच अंतर कम हो रहा है और इसे साक्षरता दर में देखा जा सकता है, जो लैंगिक समानता में विकास को प्रदर्शित करता है। फिर भी, महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कड़ी मेहनत बाकी है। इसके विभिन्न कारण हैं, जैसेः

- महिलाओं की सामाजिक स्थिति (Social Status of Women)
- महिलाओं और बच्चों का हेल्थकेयर (Healthcare for women and children)
- आर्थिक स्वतंत्रता में सुधार (Improving economic freedom)

इसलिए, हम साक्षरता दर से संतुष्ट नहीं हो सकते क्योंकि लैंगिक समानता के लिए लंबी दूरी तय करनी है। केरल, मिजोरम, गोवा और नई दिल्ली में उच्च साक्षरता दर है, जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश और राजस्थान शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्य हैं। सामाजिक और आर्थिक गरीबी शैक्षिक पिछड़ेपन के मुख्य कारण हैं।

3. उच्च शिक्षा

भारत में लोगों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उच्च स्तर तक पहुंचने के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के आंकड़ों के अनुसार, वित्त वर्ष 2007–08 में, माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा वाले युवाओं के लिए बेरोजगारी दर 18.10% थी। जबकि प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा वाले युवाओं की बेरोजगारी दर केवल 11.60% थी। सरकार को उच्च शिक्षा के आवंटन पर जोर देना चाहिए और छात्रों को सुधारना चाहिए।

4.3.2 राष्ट्रीय विकास और आधुनिकीकरण : भारतीय शिक्षा आयोग 1964–66

वस्तुतः शिक्षा नीति निर्धारण में शासकीय तन्त्र का दर्शन, राष्ट्रीय स्वरूप, आर्थिक व सामाजिक सहयोग, मानव संसाधन विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शुरू–शुरू में अर्थात सन् 1937 से सन् 1966 की अवधि में 4 शिक्षा समितियां तथा आयोग बने, उनमें से एक डॉ. डी.एस. कोठारी आयोग भी प्रमुख रहा है।

इन सभी आयोगों ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गहन चिंतन करके सरकार के सामने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए, जिससे सरकार इन पर विचार करके उन पर समयबद्ध नीति का निर्माण कर सके। नीति बना सके। यह भी सच है कि समय के बदलाव के साथ–साथ व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की सामाजिक आवश्यकताएं भी बदलती ही चली जाती हैं।

कोठारी आयोग 1964–66 की स्थापना

स्वतंत्रता से पहले राष्ट्रीय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य साक्षरता तथा जन–जागरण हुआ करता था। इसीलिए शिक्षा संबंधी योजनाओं में बुनियादी शिक्षा ही केन्द्र बिन्दु हुआ

करती थी। इन्हीं के चलते, स्कूली शिक्षा और विकास को दृष्टि में रखते हुए सन् 1964–66 की अवधि में भारतीय केंद्र सरकार द्वारा डॉ. कोठारी आयोग की स्थापना की गई। इसके अंतर्गत डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में इस आयोग ने एक विस्तृत शिक्षा प्रतिवेदन तैयार किया था। यह प्रतिवेदन भारत सरकार को, शिक्षा और राष्ट्रीय विकास–शिक्षा आयोग प्रतिवेदन 1964–66 के नाम से समर्पित किया गया था। भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 24 जुलाई, 1968 को घोषित की गई जो कोठारी आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित थी।

कोठारी आयोग के लक्ष्य

कोठारी आयोग के लक्ष्यों में सामाजिक दक्षता, समाजवादी समाज की स्थापना और राष्ट्रीय एकता को निर्धारित किया गया। हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में महत्व देते हुए तकनीकी शिक्षा पर बल तथा नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास पर भी जोर दिया गया। शिक्षा प्रणाली का रूपांतरण कर शिक्षा की 10+2+3 पद्धति तय की गई। शिक्षा के अवसरों में समानता की बात कही गई।

इस प्रतिवेदन में शिक्षा के सभी पहलुओं पर विस्तार रूप से विचार किए गए हैं, यथा–पूर्व प्राथमिक शिक्षा, विश्वविद्यालयी शिक्षा, शोध तथा शोध के बाद, व्यावसायिक अथवा सामान्य शिक्षा प्रबंध, शिक्षकों की सेवा शर्तें, प्रशिक्षण तथा उत्तरदेयता, पुस्तकों का निर्माण तथा उनका स्तर, मेधा की खोज, परीक्षाएं, खेलकूद तथा व्यायाम, दूरस्थ शिक्षा, सतत् शिक्षा एवं शिक्षा हेतु योजना और वित्तीय साधन आदि–आदि।

कोठारी आयोग का यह प्रतिवेदन आज शिक्षा तंत्र में मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रतिपादित करने का मुख्याधार है।

कोठारी आयोग की प्रमुख अनुशंसाएं

सन् 1964–66 में गठित शिक्षा आयोग ने इस बात को मान्यता दी कि सेवाकालीन शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रमों का उत्तरदायित्व राज्यों पर छोड़ देना चाहिए और अच्छा हो कि राज्यों के शिक्षा संस्थान इस कार्य को अपने हाथ में ले लें। आयोग का यह भी मानना था कि पहले के अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए अलग से शिक्षण कार्यक्रमों का प्रबंध किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 40 वर्ष से कम आयु के शिक्षकों, जिनका अनुभव 5 वर्ष अथवा उससे भी कम हो, उनको विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण सामग्री दी जानी चाहिए, विशेषरूपेण 40 वर्ष से अधिक आयु के शिक्षकों को, जिनका अनुभव 5 वर्ष या उससे अधिक हो। उनको कम अवधि का प्रशिक्षण/शिक्षण देकर शिक्षित समझा जाना चाहिए। 40 वर्ष से कम आयु के शिक्षकों के लिए अलग–अलग समय अवधि वाले शिक्षणों की व्यवस्था करनी चाहिए

शिक्षा आयोग ने विशेष बल देते हुए अनुशंसा की कि विश्वविद्यालयों, प्रशिक्षण संस्थाओं और शिक्षक संगठनों को आपसी ताल–मेल बनाकर बड़े स्तर पर, सभी शैक्षणिक स्तरों पर सेवावधि शिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन करने चाहिए, जिससे सभी शिक्षकों को प्रत्येक पांच वर्ष के सेवा काल में कम से कम दो–तीन माह का प्रशिक्षण दिया जा सके।

अध्यापक शिक्षा को और भी अधिक कारगर और सार्थक बनाने के ध्येय से कोठारी आयोग द्वारा कई कार्यक्रम एवं नियम आदि बनाए गए।

टिप्पणी

कोठारी आयोग के प्रतिवेदन का वह अंश, जिसका सरकारी गजट में अनुशंसा के रूप में संकल्प हुआ था, उसकी मुख्य विशेषताएं निम्नवत हैं–

1. अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा।
2. अध्यापकों का स्तर, वेतन और शिक्षा।
3. भाषाओं का विकास–
   (अ) प्रांतीय भाषाएं,
   (ब) त्रिभाषा सूत्र,
   (स) हिन्दी,
   (द) संस्कृत और
   (य) अंतर्राष्ट्रीय भाषाएं।
4. शिक्षा अवसरों की समानता–
   (अ) क्षेत्रीय असंतुलन दूर करना,
   (ब) कानन स्कूल प्रणाली,
   (स) बालिकाओं की शिक्षा,
   (द) पिछड़ी तथा जनजातियों की शिक्षा और
   (य) बाधितों तथा विकलांगों की शिक्षा।
5. मेधा की पहचान।
6. कार्य अनुभव तथा राष्ट्रीय सेवा।
7. विज्ञान–शिक्षा तथा शोध।
8. कृषि तथा उद्योगों के लिए शिक्षा।
9. कृषि ग्रन्थों का निर्माण।
10. परीक्षाएं।
11. सेकेन्ड्री शिक्षा।
12. विश्वविद्यालय शिक्षा–
   (अ) पूर्णकालिक छात्रों का प्रवेश,
   (ब) नये विश्वविद्यालय खोलना और
   (स) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम व शोध।
13. अंशकालिक तथा पत्राचार शिक्षा।
14. साक्षरता का प्रसार तथा प्रौढ़ शिक्षा–
   (अ) असाक्षरता का उन्मूलन,
   (ब) युवा कृषकों का प्रशिक्षण और
   (स) युवाओं को स्वरोजगार का प्रशिक्षण।

टिप्पणी

15. खेल–कूद।

16. अल्प संख्यकों की शिक्षा।

17. शिक्षा का ढांचा–

(अ) सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए शिक्षा की समान शिक्षा ढांचा (10+3+2) प्रणाली,

(ब) अतिरिक्त बजट,

(स) महत्वपूर्ण योजनाओं में केन्द्र तथा राज्यों की भागेदारी और

(द) प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात प्रगति की समीक्षा। साथ ही, भविष्य में शिक्षा के विकास के लिए नये प्रस्ताव।

कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कक्षा के कमरे में होता है। कक्षा के कमरों में प्रभावी शिक्षण–कार्य हो और प्रभावी शिक्षण कैसे संभव है? यह शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों पर ही निर्भर करता है। यदि शिक्षक को अपने विषय पर अधिकार है तो अपनी कक्षा के कक्ष में नई–नई तकनीक, विधियां, शिक्षक व्यूह रचना के साथ विषय–वस्तु को शिक्षार्थी के सम्मुख रुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है। बच्चे एकाग्र होकर सीखें, तभी तो प्रभावी शिक्षण होगा। यदि कक्षा के कमरे के बाहर बच्चे अपने सहपाठियों से यह कहते हुए मिलें कि आज जो पढ़ा/पढ़ाया उसमें बड़ा आनंद आया, मजा आया। तब यह समझ/मान लेना चाहिए कि शिक्षण कार्य प्रभावी ढंग से हुआ है। शिक्षक के कार्य के लिए शिक्षार्थी ही अच्छे निर्णायक सिद्ध हुए हैं।

जब बच्चा कक्षा में सीखने/पढ़ने में रुचि न रखता हो, तब शिक्षक नई–नई शिक्षण प्रणाली द्वारा उस बच्चे को कक्षा में शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित कर सकता है। शिक्षक से आशा की जाती है कि बालक के सर्वांगीण विकास में विद्यालयों में उपलब्ध साधनों का वह अधिक–से–अधिक उपयोग करें। शिक्षक विद्यालयों में समय–समय पर वाद–विवाद, लेखन, निबंध के कार्यक्रम, सृजनात्मकता के कार्यक्रमों का आयोजन करें। कमजोर तथा प्रतिभावान बालकों का चयन कर उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन प्रदान करें। बच्चों के हित को दृष्टि में रखते हुए शिक्षकगण समय–समय पर विद्यालय की योजना प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करें।

शिक्षक को अपने विषय की शिक्षण की पुस्तकों का अध्ययन करना भी नितांत आवश्यक है। प्रत्येक स्तर की शिक्षा, प्रत्येक स्तर के शिक्षणालय की स्थिति जब तक पूर्णरूपेण ठीक नहीं होती, तब तक देश की स्थिति ठीक नहीं हो सकती। देश का उचित ढंग से विकास नहीं हो सकता। शिक्षक द्वारा बालकों को नैतिक शिक्षा का कार्यक्रम अपरोक्ष रूप से देने की भी महति आवश्यकता है। बालकों को उनकी बुद्धि और रुचि के स्तर के अनुसार कहानियां और कथन के माध्यम द्वारा भी संस्कार देने की आवश्यकता होती है।

बालक तो विद्यालय में गीली मिट्टी के रूप में आता है। विद्यालय के वातावरण, संस्कार और शिक्षकों द्वारा शिक्षा दिए जाने के पश्चात वह अपनी पकी (सूखी) मिट्टी के ढले, सधे, और संस्कारवान रूप में विद्यालय से बाहर आता है। विद्यालयों और शिक्षकों तथा शिक्षण पद्धतियों से ऐसी ही आशा की जाती है। बालक के मनोविज्ञान

की देख–परख कर उसे शिक्षा दी जानी चाहिए, शिक्षा देने के तरीके शिक्षक को तलाशने चाहिए।

बालक के स्वास्थ्य को दृष्टि में रखकर भी विद्यालयों में स्वास्थ्य सेवाओं का प्रबंध हितकर होता है। शिक्षक–अभिभावक संघ की बैठकों में भी मेडिकल अधिकारी को बुलाने की आवश्यकता है। बालकों को स्वास्थ्य के प्रति भी जागरूक करने की महती आवश्यकता है। बालक को कठिनाइयों से सामना करने के लिए भी शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर तैयार करने की आवश्यकता है। बालकों को श्रम के प्रति भी जागरूक करने की आवश्यकता है।

प्रत्येक शिक्षक समाज के उपयोग के लिए भी है। समाज को नैतिक शिक्षा के महत्व को समझाने का दायित्व भी शिक्षक पर आता है, इसीलिए कहा भी गया है कि शिक्षक का व्यवसाय, समाज के अन्य व्यवसायों से कहीं बहुत अधिक जटिल है। वस्तुतः शिक्षण का व्यवसाय एक व्यवसाय न होकर राष्ट्र और समाज के हित में एक अत्यन्त ही कल्याणकारी कार्य है।

कोठारी आयोग भारत का प्रथम ऐसा शिक्षा आयोग था जिसने अपने प्रतिवेदन में सामाजिक बदलावों को ध्यान में रखते हुए कुछ ठोस सुझाव दिए थे।

4.3.3 शिक्षा की राष्ट्रीय नीति : 1968 और 1986

भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) की घोषणा, गठन एवं मूलभूत तत्वों के बारे में यहां पर विशेष रूप से वर्णन किया गया है जिसके बाद भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का मार्ग प्रशस्त हुआ। कोठारी आयोग की रिपोर्ट के लगभग दो वर्ष पश्चात भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा 1968 में की गई।

प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 के निर्धारण हेतु समिति का गठन

कोठारी आयोग (1964–66) ने अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को 29 जून, 1966 को प्रस्तुत की। इसके लगभग 9 माह बाद भारत सरकार ने 5 अप्रैल, 1967 को संसद सदस्यों की एक समिति का गठन किया और इस समिति को तीन कार्य सौंपे– पहला, कोठारी आयोग के सुझावों पर गंभीरता से विचार करना, दूसरा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति का ड्राफ्ट तैयार करना और तीसरा, प्राथमिकता के आधार पर उसका क्रियान्वयन की रूपरेखा तैयार करना। इस संसद समिति ने कोठारी आयोग के सुझावों का गंभीरता से अध्ययन किया और उसके बाद उसके सुझावों के बारे में अपना अभिमत सरकार को प्रस्तुत किया। समिति ने सर्वप्रथम शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने पर बल दिया। इसके बाद सामाजिक समानता की प्राप्ति के लिए आयोग द्वारा प्रस्तावित सामान्य विद्यालय (Common School) को पड़ोस विद्यालय (Neighbourhood School) के रूप में स्थापित किया। समिति ने भाषा नीति, कार्यानुभव, चरित्र निर्माण, विज्ञान शिक्षा एवं शोध और शैक्षिक अवसरों की समानता पर विस्तार से विचार प्रकट किये और शिक्षा के सभी स्तरों में गुणात्मक सुधार (Qualitative Improvement) पर बल दिया। उसने केंद्र और राज्य सरकारों के शैक्षिक उत्तरदायित्व निश्चित किये और अंत में प्राथमिकताओं के आधार पर भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। समिति की यह रिपोर्ट 1968 में संसद के शीतकालीन अधिवेशन में प्रस्तुत की गई। संसद में इस पर

टिप्पणी

लंबी चर्चा हुई और राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अंतिम रूप दिया गया। 1968 में सरकार ने प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति की विधिवत घोषणा की।

प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 के मूलभूत तत्व

कोठारी आयोग की रिपोर्ट पर आधारित यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 को पूर्ण आकार के रूप में केवल 9 पृष्ठों में प्रस्तुत की गई है। इसके मूलभूत तत्वों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है–

1. **शिक्षा राष्ट्रीय महत्व का विषय है**– इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय माना गया है और यह स्वीकार किया गया है कि शिक्षा द्वारा ही लोकतंत्र को सुदृढ़ किया जा सकता है। स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों का विकास किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ किया जा सकता है। उत्पादन में वृद्धि और राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है और राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में इसका आधुनिकीकरण किया जा सकता है।
2. **शिक्षा की व्यवस्था केंद्र एवं राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व है**– भारत एक स्वतंत्र राज्य है। इसमें कुछ विषय केवल केंद्र के अधीन हैं और कुछ विषय केवल राज्य सरकारों के अधीन हैं और कुछ विषय ऐसे हैं जो केंद्र एवं राज्य सरकारों दोनों के अधीन हैं। इस शिक्षा नीति में शिक्षा की व्यवस्था करना केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व घोषित किया गया है। केंद्र के शैक्षिक उत्तरदायित्व हैं– राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण करना, केंद्रीय महाविद्यालयों और राष्ट्रीय महत्व की शिक्षा संस्थाओं का प्रबंध करना, उच्च स्तर की विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा और अनुसंधान का स्तर मान निश्चित करना, विदेशों में शैक्षिक एवं सांस्कृतिक समझौते करना, राज्यों को शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करना और उनके शैक्षिक कार्यक्रमों के संपादन हेतु आर्थिक सहायता देना। और प्रांतीय सरकारों के शैक्षिक उत्तरदायित्व हैं– केंद्रीय शिक्षा नीति के अनुसार राज्य स्तर पर शिक्षा को नियोजित करना, उसके लिए वित्त व्यवस्था करना, शैक्षिक प्रशासनिक क्षेत्र पर नियंत्रण रखना और शिक्षा के विभिन्न स्तरों की गुणवत्ता बनाए रखना।
3. **शिक्षा पर केंद्रीय बजट का 6 प्रतिशत व्यय किया जाएगा**– इस शिक्षा नीति में शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय माना गया है इसलिए केंद्रीय बजट में 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने का प्रस्ताव रखा गया है। दृष्टव्य है कि इस समय शिक्षा पर केंद्रीय बजट का केवल 2.9 प्रतिशत ही व्यय किया जा रहा है।
4. **सम्पूर्ण देश के लिए 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना लागू की जाएगी**– पूरे देश में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना लागू की जाएगी। प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए एक आधारभूत पाठ्यचर्या (Core Curriculum) तैयार की जाएगी, +2 पर स्थान विशेष की आवश्यकतानुसार पाठ्यचर्या निश्चित की जाएगी ओर इस स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा की और मोड़ने का प्रयत्न किया जाएगा। प्रथम स्नातक पाठ्यक्रम 3 वर्ष का होगा। प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपने पाठ्यक्रम निश्चित करने की स्वतंत्रता होगी परंतु ये पाठ्यक्रम अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के आधार पर विकसित किये जाएंगे।

5. **अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी**– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के अनुसार 6 से 14 आयुवर्ग के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। यह प्रयत्न किया जाएगा कि प्रथम 5 वर्षों के अंदर 6 से 11 आयुवर्ग के बच्चों की निम्न प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क हो जाए और अगले पांच वर्षों 11 से 14 आयुवर्ग के बच्चों की उच्च प्राथमिक शिक्षा भी अनिवार्य एवं निःशुल्क हो जाए। इस प्रकार 10 वर्षों के अंदर अर्थात 1978 तक इस लक्ष्य की प्राप्ति की जाएगी।
6. **माध्यमिक शिक्षा का विस्तार एवं उन्नयन किया जाएगा**– जहां माध्यमिक शिक्षा की मांग है वहां यह उपलब्ध कराई जाएगी। निकट भविष्य में 10 वर्षीय शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क किया जाएगा। इस स्तर पर बच्चों को राष्ट्र का इतिहास और संविधान के मूल तत्वों का सामान्य ज्ञान कराया जाएगा और व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। इसमें गुणात्मक सुधार किया जाएगा।
7. **माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू किया जाएगा**– प्राथमिक स्तर पर केवल मातृभाषा का अध्ययन अनिवार्य होगा, उच्च प्राथमिक (निम्न माध्यमिक) स्तर पर मातृभाषा तथा अन्य किसी भारतीय भाषा अथवा अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य होगा और माध्यमिक स्तर पर इनके साथ किसी एक और राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा का अध्ययन करना होगा।
8. **भारतीय भाषाओं का विकास किया जाएगा**– राष्ट्रीय महत्व की सभी भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था की जाएगी और उनका विकास किया जाएगा। राष्ट्र भाषा हिंदी का प्रचार किया जाएगा और संस्कृत की शिक्षा के लिए उचित कदम उठाए जाएंगे।
9. **प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा में कार्यानुभव एवं राष्ट्रीय सेवा को अनिवार्य किया जाएगा**– शिक्षा का उत्पादन से संबंध स्थापित करने के लिए प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा में कार्यानुभव अनिवार्य किया जाएगा और स्वावलंबन पर बल दिया जाएगा। बच्चों में सामाजिकता की भावना विकसित करने और उनके उनका चरित्र निर्माण करने के लिए समाज सेवा कार्य भी अनिवार्य किया जाएगा।
10. **प्रतिभावान छात्रों की पहचान की जाएगी**– अल्पायु (प्राथमिक स्तर के बाद) में भी प्रतिभावान छात्रों की पहचान की जाएगी, उनको अपने विकास के उचित अवसर दिए जाएंगे, निर्धन को आर्थिक सहायता दी जाएगी।
11. **विश्वविद्यालयी शिक्षा का प्रसार एवं उन्नयन किया जाएगा**– उच्च स्तर पर छात्रों की बढ़ती हुई संख्या के आधार पर महाविद्यालयों में सायंकालीन कक्षाओं की व्यवस्था की जाएगी और विश्वविद्यालयों में अंशकालीन और पत्राचार पाठ्यक्रम चलाए जाएंगे। विश्वविद्यालयी शिक्षा के उन्नयन के लिए विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान की जाएगी, कुलपति पद पर प्रशासनिक अनुभव प्राप्त शिक्षाविदों को नियुक्त किया जाएगा, प्रथम स्नातक पाठ्यक्रमों में इंटर पास छात्रों को प्रवेश दिया जाएगा और स्नातकोत्तर स्तर पर केवल योग्य छात्रों को ही प्रवेश दिया जाएगा।

टिप्पणी

12. **कृषि, व्यावसायिक, तकनीकी एवं इंजीनियरिंग शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाएगी**– कृषि विज्ञान के सामान्य ज्ञान के लिए पॉलीटेक्निक विद्यालय खोले जाएंगे और उसके उचित ज्ञान के लिए कुछ विश्वविद्यालयों में कृषि संकायों की स्थापना की जाएगी और प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय स्थापित किया जाएगा जो कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी होगा। व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा के स्तर को ऊंचा किया जाएगा और उन्हें औद्योगिक संस्थानों की मांगों के अनुसार विकसित किया जाएगा।

13. **विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान पर विशेष ध्यान दिया जाएगा**– आर्थिक विकास की गति तीव्र करने और भारतीय समाज का आधुनिकीकरण करने के लिए प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा में विज्ञान और गणित की शिक्षा अनिवार्य की जाएगी और विश्वविद्यालयी शिक्षा में विज्ञान की उच्च शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य को प्राथमिकता दी जाएगी। साथ ही राष्ट्र के वैज्ञानिक शोध संस्थानों को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाएगी।

14. **उच्च स्तर की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किया जाएगा**– किसी भी स्तर पर शिक्षा के लिए उच्च स्तरीय पुस्तकों का निर्माण किया जाएगा। इसके लिए विद्वान लेखकों को प्रोत्साहित किया जाएगा, उन्हें आर्थिक सहायता दी जाएगी। साथ ही योग्य लेखकों को पारिश्रमिक देकर उनसे अच्छी पुस्तकें तैयार कराई जाएंगी।

15. **परीक्षा प्रणाली में सुधार किया जाएगा**– बाह्य परीक्षाओं के महत्व को कम किया जाएगा और आंतरिक एवं सतत् आकलन की योजना बनाई जाएगी। माध्यमिक स्तर पर कक्षा आठ के बाद पहली सार्वजनिक परीक्षा होगी। किसी भी स्तर की परीक्षा को विश्वसनीय एवं वैध माना जाएगा। परीक्षा परिणामों में बाह्य और आंतरिक आकलन के प्राप्तांक अलग–अलग दिखाए जाएंगे और श्रेणी के स्थान पर ग्रेड दिए जाएंगे।

16. **शिक्षकों के स्तर और शिक्षक में सुधार किया जाएगा**– शिक्षा व्यवसाय की ओर योग्य युवकों को आकर्षित करने के लिए शिक्षकों के वेतनमान बढ़ाए जाएंगे और उनकी सेवा शर्तों को आकर्षक बनाया जाएगा। प्रत्येक स्तर के सरकारी एवं गैरसरकारी शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय सम्मान निश्चित किये जाएंगे और समान सेवा शर्तें निश्चित की जाएंगी। सभी शिक्षकों के लिए सामूहिक लाभ योजना (जी.पी.एफ., बीमा और पेंशन) तुरंत लागू की जाएगी। शिक्षकों के संगठनों को मान्यता दी जाएगी, शिक्षकों को राजनीति में भाग लेने की स्वतंत्रता होगी, वे चुनाव लड़ सकेंगे। साथ ही शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु शिक्षण प्रशिक्षण में सुधार किया जाएगा, उसके स्तर को उठया जाएगा। इसके लिए विश्वविद्यालयों में 'शिक्षक शिक्षा विद्यालय' (School of Education) स्थापित किये जाएंगे और शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य को बढ़ावा दिया जाएगा। पूर्णकालीन शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में पूर्णकालीन शिक्षक प्रशिक्षण के साथ–साथ अंतर्सेवा प्रशिक्षण (Inservice Training) की व्यवस्था की जाएगी,

टिप्पणी

शिक्षकों को निरंतर अद्यतन रूप से परिचित कराया जाएगा और अद्यतन कौशलों में प्रशिक्षित किया जाएगा।

17. **छात्र कल्याण योजनाएं बनाई जाएंगी**– विद्यालयों में निःशुल्क मध्याह्न भोजन की व्यवस्था की जाएगी और महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सस्ते जलपान गृहों की व्यवस्था की जाएगी। छात्रों के लिए छात्रावास का निर्माण किया जाएगा और प्रत्येक स्तर पर छात्रवृत्ति की संख्या बढ़ाई जाएगी। छात्रों को छात्र संघ बनाने की स्वीकृति दी जाएगी।
18. **छात्रों के लिए खेल–कूद की उत्तम व्यवस्था की जाएगी**– शिक्षा के सभी स्तरों पर स्वास्थ्य लाभ हेतु खेल–कूदों की उत्तम व्यवस्था की जाएगी और खिलाड़ियों को प्रोत्साहन दिया जाएगा।
19. **प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को गति प्रदान की जाएगी**– शत–प्रतिशत साक्षरता की प्राप्ति और उत्पादन में वृद्धि हेतु प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को और अधिक गति दी जाएगी। व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों में कार्यरत व्यक्तियों की प्रौढ़ शिक्षा का उत्तरदायित्व इन संस्थाओं पर होगा। शिक्षक और छात्र राष्ट्रीय सेवा कार्य के अंतर्गत साक्षरता आंदोलन में भाग लेंगे। विश्वविद्यालयों में विस्तार सेवा केंद्रों की स्थापना की जाएगी और इनके द्वारा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को गति दी जाएगी। स्थान–स्थान पर सार्वजनिक पुस्तकालयों की व्यवस्था की जाएगी और आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा।
20. **संपूर्ण शिक्षा द्वारा भारतीय समाज का आधुनिकीकरण किया जाएगा**– प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के द्वारा भारतीय समाज का आधुनिकीकरण किया जाएगा अर्थात भारतीय जनता में अपनी संस्कृति की सुरक्षा के साथ–साथ वैज्ञानिक सोच उत्पन्न की जाएगी, उन्हें विज्ञान एवं तकनीकी के प्रयोग द्वारा उत्पादन में वृद्धि करने की ओर अग्रसर किया जाएगा और किसी भी विचार अथवा क्रिया के निरंतर आकलन की ओर प्रवृत्त किया जाएगा।
21. **शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति की जाएगी**– राष्ट्र के सभी बच्चों को जाति, लिंग, धर्म, स्थान आदि किसी भी आधार पर भेद–भाव किये बिना शिक्षा का समान अवसर प्रदान करना लोकतंत्र की मांग है। इसकी पूर्ति के लिए समस्त बालकों की पहुंच के अंदर की दूरी पर प्राथमिक स्कूल स्थापित किये जाएंगे। बालिकाओं और पिछड़े, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। पहाड़ी क्षेत्रों और कबीलों के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। शारीरिक दृष्टि से विकलांग एवं मानसिक दृष्टि से पिछड़े बच्चों के लिए अलग से विद्यालय स्थापित किये जाएंगे। प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क की जाएगी, माध्यमिक और उच्च शिक्षा स्तर पर निर्धन छात्रों को शुल्क मुक्ति दी जाएगी और छात्रवृत्तियां दी जाएंगी। पिछड़ी, अनुसूचित और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों को भी छात्रवृत्तियां दी जाएंगी।

भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) का आकलन

हमारा राष्ट्र एक लोकतंत्रीय राष्ट्र है, इसकी अपनी कुछ मूलभूत आवश्यकताएं हैं। साथ ही यह एक विकासशील राष्ट्र है। इसकी दृष्टि से इसके अपने कुछ लक्ष्य हैं। यदि हम इन सब आधारों पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 का आकलन करें तो उसमें निम्नलिखित गुण–दोष स्पष्ट होते हैं–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के गुण

1. शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय माना गया है और उस पर केंद्रीय बजट का 6 प्रतिशत व्यय करने का प्रस्ताव किया गया है। भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इसे स्वीकार किया गया है।
2. संपूर्ण देश में समान शिक्षा संरचना 10 + 2 + 3 लागू करना स्वीकार किया गया है और प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए आधारभूत पाठ्यचर्या बनाने की बात कही गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इसे स्वीकार किया गया है। यह संरचना शुरू हो गई है, इससे लाभ होने सुनिश्चित हैं।
3. अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस पर बल दिया गया है। इस लक्ष्य की ओर हम निरंतर अग्रसर भी रहे हैं।
4. माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के साथ–साथ उसके गुणात्मक सुधार पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस पर बल दिया गया है और इन दोनों ही दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।
5. भारतीय भाषाओं के विकास पर बल दिया गया है। विचार तो उत्तम है, यह बात दूसरी है कि इसके लिए प्रयत्न बहुत कम किया जा रहा है।
6. प्रतिभावान छात्रों की पहचान कर उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था करना केंद्रीय सरकार का उत्तरदायित्व माना गया है। इस दिशा में हमारे कदम उठ चुके हैं, परिणाम अच्छे हैं।
7. विश्वविद्यालयी शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ उसके गुणात्मक सुधार पर बल दिया गया है। यह बात दूसरी है कि इन दोनों ही क्षेत्रों में हमें कम सफलता मिली है।
8. कृषि, व्यावसायिक, तकनीकी एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस पर बल दिया गया है। इसी के द्वारा देश का आर्थिक विकास किया जा सकता है। इस बीच इसके लिए कुछ प्रयास किये गए हैं।
9. विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक शोधों पर विशेष ध्यान देने की बात कही गई है। इस युग में किसी भी विकासशील देश के लिए इसकी अत्यधिक आवश्यकता है, यह एक अनिवार्यता है।
10. किसी भी स्तर की परीक्षा प्रणाली में सुधार की बात कही गई है। सच बात यह है कि परीक्षा प्रणाली पर ही शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया केंद्रित होती है, यदि इसमें

सुधार कर दिया जाता है तो शेष ढांचे में अपने आप सुधार हो जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी आकलन में सुधार पर बल दिया गया है।

11. शिक्षकों के स्तर को उठाने–उनके वेतनमान बढ़ाने और सेवाशर्तों में सुधार करने पर बल दिया गया है। साथ ही शिक्षण प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस पर बल दिया गया है। शिक्षकों के वेतनमान बढ़े हैं, उनकी सेवाशर्तों में सुधार हुआ है और शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में सुधार की प्रक्रिया शुरू हो गई है।
12. छात्रों के कल्याण के लिए अनेक योजनाएं प्रस्तुत की गई हैं, उनके लिए खेल–कूद की उचित व्यवस्था करने पर बल दिया गया है और खिलाड़ियों को प्रोत्साहन देने की बात कही गई है। इस दिशा में कुछ कार्य भी किये गए हैं।
13. शत प्रतिशत साक्षरता की प्राप्ति और देश के आर्थिक विकास के लिए प्रौढ़ शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया है और इसकी व्यवस्था करने पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस कार्य पर बल दिया गया है पर इस दिशा में हमें सफलता बहुत कम मिली है।
14. संपूर्ण शिक्षा द्वारा भारतीय समाज के आधुनिकीकरण पर बल दिया गया है। छात्रों में वैज्ञानिक सोच उत्पन्न करने और नागरिकों के जीवन स्तर को उठाने के लिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विज्ञान एवं तकनीकी का प्रयोग पर बल दिया गया है। इसे स्वीकार करने से देश का आर्थिक विकास हुआ है।
15. और सबसे बड़ी और अंतिम विशेषता यह है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने की पूरी योजना तैयार की गई है, पिछड़े, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अल्पसंख्यकों की शिक्षा की व्यवस्था करने पर विशेष बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस पर बल दिया गया है। इस दिशा में कुछ प्रयास भी किये गए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के दोष

1. इस नीति में केंद्र और राज्य सरकारों के शैक्षिक उत्तरदायित्व तो निश्चित किये गए हैं पर ऐसे किसी अधिनियम की बात नहीं कही गई है जिससे उन्हें अपने उत्तरदायित्व निर्वाह के लिए बाध्य किया जा सके। परिणाम यह है कि अपनी–अपनी ढपली अपना–अपना राग चल रहा है।
2. प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए जिस आधारभूत पाठ्यचर्या के निर्माण की बात की गई है वह अति विस्तृत है और ऊपर से कार्यानुभव एवं राष्ट्र सेवा कार्यों की अनिवार्यता ने उसे बहुत बोझिल बना दिया है। जहां यह लागू कर दी गई है, छात्र इसके बोझ से दबे जा रहे हैं।
3. माध्यमिक स्तर पर जिस त्रिभाषा सूत्र को लागू करना निश्चित किया गया है वह भी दोषयुक्त है। आरंभ में त्रिभाषा सूत्र का निर्माण पूरे देश में राष्ट्र भाषा हिंदी की शिक्षा अनिवार्य करने के उद्देश्य से किया गया था। कोठारी आयोग द्वारा प्रस्तावित त्रिभाषा सूत्र में अहिंदी क्षेत्र के बच्चों को हिंदी अथवा अंग्रेजी में से एक भाषा लेने की छूट है। यह त्रिभाषा सूत्र की मूल भावना अर्थात मूल

टिप्पणी

उद्देश्य के प्रतिकूल है। क्या हम रूस, जापान और चीन की भांति अपनी राष्ट्रभाषा पर निर्भर नहीं कर सकते।

4. कार्यानुभवों के लिए जिन व्यवसायों की सूची तैयार की गई है, पहली बात तो यह है कि उसके लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता होगी जिसे सरकार बजट बढ़ाने के बाद भी नहीं जुटा सकती और दूसरी बात यह है कि उन्हें सरलता से सुलभ भी नहीं कराया जा सकता। इसे जहां शुरू भी किया गया है वहां कच्चे माल की बर्बादी के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगा है।
5. इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा के द्वार किसी भी इंटर पास छात्र के लिए खोल दिए गए। परिणाम यह हुआ कि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में छात्रों का प्रवेश दबाव बढ़ा, छात्र अनुशासनहीनता बढ़ी, छात्र आक्रोश बढ़ा, शिक्षित बेरोजगारी बढ़ी और कुल मिलाकर समय, शक्ति और धन का अपव्यय हुआ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में वायदे तो बहुत किये गए थे, परंतु उन वायदों को पूरा करने के लिए न तो पूरी योजना तैयार की गई थी और न ही उसके लिए पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की गई थी। संसाधनों के अभाव में इस नीति का ईमानदारी से पालन नहीं किया जा सका। एक–दूसरे पर दोषारोपण अधिक और उपलब्धियां अपेक्षाकृत बहुत कम हुईं। पर यह नीति थी देश के अनुकूल। यही कारण है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इसी नीति का समर्थन किया गया है, प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 और नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में थोड़ा–बहुत अंतर दिखाई देता है, वह केवल भाषाई अंतर है और डिग्री का अंतर है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि यहां अभी तक किसी भी क्षेत्र में आधारभूत नीतियों का निर्माण नहीं हो पाया है, परिणाम यह है कि सरकार बदलते ही नीतियां बदल जाती हैं, कार्यक्रम बदल जाते हैं। 1968 में केंद्र की कांग्रेस सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की थी, उसका अमल होना भी शुरू हो गया था। कई प्रांतों में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना लागू हो गई थी, कई प्रांतों ने अपने–अपने ढंग से त्रिभाषा सूत्र लागू कर दिया था, कई प्रांतों में कृषि, व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा, विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक शोधों के लिए विशेष प्रावधान किये जाने लगे थे, प्रायः सभी प्रांतों में परीक्षा प्रणाली में सुधार की प्रक्रिया शुरू हो गई थी, आधुनिकीकरण के नाम पर विज्ञान एवं गणित की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी और शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए कदम उठाए जाने लगे थे। परंतु 1977 में केंद्र में जनता दल सत्तारूढ़ हो गया और मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने। मोरारजी देसाई ने 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना के स्थान पर 8 + 4 + 3 शिक्षा संरचना का विचार प्रस्तुत किया। परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री प्रतापचंद्र चन्दर ने कुछ शिक्षाविदों और सांसदों के सहयोग से एक नई शिक्षा नीति तैयार की और 1979 में उसकी घोषणा कर डाली। इसे अभी लागू भी नहीं किया जा सका था कि 1981 में केंद्र में पुनः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के अनुपालन पर जोर दिया। इसी बीच इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गई, उनके स्थान पर राजीव गांधी को प्रधानमंत्री बनाया गया।

युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने हर क्षेत्र में आंदोलनकारी कदम उठाने शुरू किये, शिक्षा के क्षेत्र में भी। उन्होंने कहा कि वर्तमान शिक्षा राष्ट्र की मांगों को पूरा करने में असमर्थ है, इसका पुनर्नीरीक्षण होना चाहिए और पुनर्गठन होना चाहिए। पर इस बार न तो किसी आयोग का गठन किया गया और न ही किसी समिति का। सर्वप्रथम सरकार ने तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराया और उसे 'शिक्षा की चुनौती : नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य' (Challenge of Education : A Policy Perspective) नाम से अगस्त 1983 में प्रकाशित किया। इस दस्तावेज में भारतीय शिक्षा की 1951 से 1983 तक की प्रगति यात्रा का सांख्यिकीय विवरण, उसकी उपलब्धियों एवं असफलताओं का यथार्थ चित्रण और उसके गुण–दोषों का सम्यक विवेचन किया गया है। सरकार ने इस दस्तावेज को जनता के हाथों में पहुंचाया और इस पर देशव्यापी बहस शुरू की। सभी प्रांतों के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से सुझाव प्राप्त हुए। केंद्रीय सरकार ने इन सुझावों के आधार पर एक नई शिक्षा नीति तैयार की ओर उसे संसद के बजट अधिवेशन 1986 में प्रस्तुत किया। इसे संसद में पास कराने के बाद मई 1986 में प्रकाशित किया गया। इस शिक्षा नीति की घोषणा के कुछ माह बाद इसकी कार्ययोजना (Plan of Action) नामक दस्तावेज प्रकाशित किया गया। यह भारत की ऐसी पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है जिसमें नीति के साथ उसके क्रियान्वयन की पूरी योजना भी प्रस्तुत की गई है और साथ ही उसके लिए पर्याप्त संसाधन जुटाए गए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 बारह भागों में विभाजित है। इसके प्रथम भाग 'भूमिका' में यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 का व्यापक प्रभाव पड़ा है, सभी प्रांतों में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना स्वीकार कर ली गई है, प्राथमिक शिक्षा 90 प्रतिशत बच्चों को उपलब्ध है, माध्यमिक स्तर पर विज्ञान और गणित की शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है, उच्च शिक्षा के स्तर पर विज्ञान और गणित की शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है, उच्च शिक्षा के स्तर को उठाने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है और देश की आवश्यकतानुसार जन शक्ति की पूर्ति हो रही है, पर साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि इस नीति के अधिकांश सुझाव कार्य रूप में परिणत नहीं हो सके हैं। फिर इस बीच देश की परिस्थितियों में भारी परिवर्तन हुआ है। देश की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है, परंपरागत मूल्यों में ह्रास हुआ है और लोकतंत्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में अनेक अड़चनें आ रही हैं। इनके अतिरिक्त हमें भविष्य में अनेक समस्याओं का सामना करना होगा, अतः आवश्यक है कि वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार शिक्षा की नई नीति तैयार करे और उसे क्रियान्वित करे।

इस शिक्षा नीति के द्वितीय भाग 'शिक्षा का सार और उसकी भूमिका' (The Essence and Role of Education) में यह स्वीकार किया गया है कि सबके लिए शिक्षा हमारे भौतिक एवं अध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत बनाती है और संवेदनशील बनाती है जिससे राष्ट्रीय एकता विकसित होती है। यह मनुष्य में स्वतंत्र चिंतन एवं सोच–समझ की क्षमता उत्पन्न करती है जिससे हम लोकतंत्रीय लक्ष्य– समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता की प्राप्ति कर सकते हैं, आर्थिक विकास कर सकते हैं और अपने वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। शिक्षा वास्तव में एक उत्तम निवेश (Investment) है।

टिप्पणी

इसके तीसरे भाग 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली' (National System of Education) में यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में संविधान की मूल धारणा 'एक निश्चित स्तर तक बिना किसी भेदभाव के सभी को समान शिक्षा उपलब्ध हो' को सर्वप्रथम वरीयता दी जानी चाहिए। साथ ही पूरे देश में समान शिक्षा संरचना 10 + 2 + 3 लागू होनी चाहिए। इसमें प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा की ऐसी आधारभूत पाठ्यचर्या तैयार होनी चाहिए जिसके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो सके। साथ ही प्रत्येक स्तर की शिक्षा का न्यूनतम अधिगम मानक (Minimum Learning Standard) निश्चित होना चाहिए और उसमें गुणात्मक सुधार होना चाहिए।

चौथे भाग 'समानता के लिए शिक्षा' (Education for Equality) में इस बात पर बल दिया गया है कि शिक्षा क्षेत्र की विषमताओं को दूर किया जाना चाहिए और महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों, विकलांगों और प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने चाहिए।

पांचवें भाग 'विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन – शिशुओं की देख–भाल और शिक्षा' (Reorganization of Education at Different Stages - Early Childhood Care and Education) में पूर्व प्राथमिक स्तर पर शिशुओं के पोषण, प्राथमिक स्तर पर बच्चों की संपूर्ण क्रियाओं, माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालयों की स्थापना और उच्च स्तर पर खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना पर बल दिया गया है।

छठे भाग 'तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा' (Technical and Management Education) में तकनीकी और प्रबंध शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया गया है और इसकी समुचित व्यवस्था पर बल दिया गया है।

सातवें भाग 'शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाना' (Making the System Work) में शिक्षा के प्रशासनिक तंत्र को सक्रिय बनाने, शिक्षकों की जवाबदेही निश्चित करने ओर शिक्षार्थियों के कर्तव्य बोध कराने पर बल दिया गया है।

आठवें भाग 'शिक्षा की विषय वस्तु और प्रक्रिया को नया मोड़ देना' (Reorienting the content and Process of Education) में सांस्कृतिक मूल्यों और वैज्ञानिक सोच में समन्वय करने पर बल दिया गया है। मूल्यों की शिक्षा और भारतीय भाषाओं के विकास के साथ–साथ गणित और विज्ञान की शिक्षा पर बल दिया गया है और स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं– खेल–कूद आदि पर बल दिया गया है और अंत में परीक्षा प्रणाली एवं आकलन प्रक्रिया में सुधार के लिए सुझाव दिए हैं।

नवें भाग 'शिक्षक' (The Teacher) में शिक्षक के महत्व को स्वीकार किया गया है। उसके वेतनमान बढ़ाने और सेवाशर्तों को आकर्षक बनाने की बात कही गई और शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार के सुझाव दिए गए हैं।

दसवें भाग 'शिक्षा का प्रबंध' (The Management of Education) में प्रशासन के विकेंद्रीकरण पर बल दिया गया है, राष्ट्रीय स्तर पर 'भारतीय शिक्षा सेवा', राज्य स्तर पर 'प्रांतीय शिक्षा सेवा' और जिले स्तर पर 'जिला शिक्षा परिषद' के गठन की बात कही गई है। साथ ही शिक्षा प्रशासन को चुस्त करने की बात कही गई है।

ग्यारहवें भाग 'संसाधन तथा समीक्षा' (Resources and Review) में यह स्वीकार किया गया है कि इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को लागू करने के लिए एक बड़ी

धनराशि की आवश्यकता होगी। अतः प्रत्येक प्रस्तावित कार्य के लिए अनुमानित धनराशि आवंटित करने की व्यवस्था की जाएगी। इस भाग में इस बात पर भी बल दिया गया है कि प्रत्येक पांच वर्ष बाद नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन और उसके परिणामों की समीक्षा की जाए।

इसके बारहवें और अंतिम भाग 'भविष्य' (The Future) में यह विश्वास प्रकट किया गया है कि हम निकट भविष्य में शत–प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे और हमारे देश के उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति सर्वोत्तम स्तर के होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल लक्ष्य एवं समीक्षा समितियों का गठन

मई, 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दस्तावेज प्रकाशित किया गया और नवंबर में इसकी कार्य योजना प्रकाशित की गई। प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र में सुधार हेतु जो योजना तैयार की गई उसे 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' (Operation Black Board) की संज्ञा दी गई। यह प्राथमिक विद्यालयों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का संकेत है। यह प्राथमिक विद्यालयों में केवल ब्लैक बोर्ड उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है, यह उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने की योजना है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) का लक्ष्य

इस योजना का लक्ष्य स्थानीय निकाय एवं अन्य मान्यता प्राप्त संस्थाओं द्वारा संचालित सरकारी सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों की दशा सुधारना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की कार्य योजना में माध्यमिक शिक्षा में सुधार हेतु भी अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गए हैं जिनमें गतिनिर्धारक विद्यालयों (Pace Setting Schools), 'नवोदय विद्यालयों' की स्थापना प्रमुख हैं। इसमें इन नवोदय विद्यालयों के स्वरूप, उनकी स्थापना और उनके संचालन की पूरी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उच्च शिक्षा के अवसर सर्वसुलभ कराने के लिए खुले विश्वविद्यालयों (Open Universities) की स्थापना एवं कार्य पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार के लिए 'जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान' (DIE), 'शिक्षक शिक्षा कॉलेज' (CTE) और 'शिक्षा उच्च अध्ययन केंद्र' (CASE) के स्वरूप एवं कार्य पद्धति की पूरी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा, प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा और शैक्षिक अवसरों की समानता आदि के संबंध में भी पूरी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इन दोनों दस्तावेजों से शिक्षा नीति एवं रीति संबंधी जो लक्ष्य उजागर होते हैं उन्हें निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है–

1. **शिक्षा प्रशासन का विकेंद्रीकरण किया जाएगा**– इस शिक्षा नीति के दसवें भाग में शिक्षा शासन के विकेंद्रीकरण पर बल दिया गया है और राष्ट्रीय स्तर पर 'भारतीय शिक्षा सेवा', प्रांतीय स्तर पर 'प्रांतीय शिक्षा सेवा' और जिला स्तर पर 'जिला शिक्षा परिषद' के गठन की घोषणा की गई है।
2. **शिक्षा की व्यवस्था हेतु पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जाएगी**– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तृतीय भाग में यह स्वीकार किया गया है कि शिक्षा मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करती है और यह हमारे सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास, लोकतंत्रीय मूल्यों (स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय,

समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता) की प्राप्ति के लिए परम आवश्यक है। शिक्षा के अभाव में इन सबकी प्राप्ति नहीं की जा सकती। शिक्षा एक उत्तम निवेश है। इस शिक्षा नीति के ग्यारहवें भाग में इसे क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराना स्वीकार किया गया है और यह घोषणा की गई कि केंद्र अपने बजट में शिक्षा पर 6 प्रतिशत का प्रावधान करेगा। साथ ही प्रत्येक स्तर पर जन सहयोग को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया जाएगा।

3. **संपूर्ण देश में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना लागू होगी**– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तृतीय भाग में संपूर्ण देश के लिए 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना स्वीकार की गई है। प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा पूरे देश के लिए समान होगी, इसके लिए एक आधारभूत पाठ्यचर्या होगी। + 2 पर प्रतिभाशाली छात्र–छात्राओं को विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाएगा और सामान्य छात्र छात्राओं को क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं और छात्र–छात्राओं के रुचि एवं योग्यतानुसार व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी। + 3 पर छात्रों को उच्च ज्ञान प्रदान किया जाएगा जो देश की सांस्कृतिक सुरक्षा और उसके आधुनिकीकरण में सहायक होगा, साथ ही चिकित्सा, न्याय, कृषि, विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी जिसके द्वारा व्यापार की मांगों की पूर्ति होगी।

4. **विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन किया जाएगा**– इस शिक्षा नीति के पांचवें भाग में शिक्षा के सभी स्तरों का पुनर्गठन करने पर बल दिया गया है और पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या में सुधार करने और उनके स्तर को उठाने पर बल दिया गया है। शिक्षा के सभी स्तरों पर एक तरफ सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा और दूसरी तरफ गणित, विज्ञान एवं कम्प्यूटर प्रयोग आदि की शिक्षा पर बल दिया गया है; संस्कृति संरक्षण और आधुनिकीकरण में समन्वय पर बल दिया गया है।

5. **पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी**– इस स्तर पर शिशुओं के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर ध्यान दिया जाएगा, उनके भोजन, वस्त्र, सफाई और पर्यावरण पर ध्यान दिया जाएगा और उनके लिए खेल–कूद एवं व्यायाम की उचित व्यवस्था की जाएगी।

6. **अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त किया जाएगा**– प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाया जाएगा। अभी 90 प्रतिशत बच्चों को 1 किमी की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हैं, शेष 10 प्रतिशत को 1990 तक उपलब्ध करा दिए जाएंगे। 1995 तक 11 से 14 आयु वर्ग के शत प्रतिशत बच्चों को उच्च प्राथमिक शिक्षा भी सुलभ करा दी जाएगी। प्राथमिक विद्यालयों की दशा में सुधार किया जाएगा। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के अनुसार कम से कम दो कमरों, एक बरामदे और दो शौचालयों के पक्के भवन, दो शिक्षक (जिनमें यथा संभव एक महिला शिक्षक होगी), ब्लैक बोर्ड, चॉक, डस्टर, नक्शे, विज्ञान किट, टाट–पट्टी, खेल के मैदान और खेल सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी। ऐसे बच्चे जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा केंद्रों पर नहीं जा पाते हैं उनके लिए अनौपचारिक शिक्षा केंद्र खोले जाएंगे।

7. **माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन किया जाएगा**– इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पांचवें भाग में यह घोषणा की गई है कि माध्यमिक शिक्षा सभी इच्छुक लड़के–लड़कियों को सुलभ कराई जाएगी। इस स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू होगा और गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी, इतिहास, राष्ट्रीयता, संवैधानिक दायित्व, नागरिक अधिकार एवं कर्तव्य, सांस्कृतिक संस्कार और कार्यानुभव को अनिवार्य किया जाएगा। प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय स्थापित किया जाएगा जो अन्य विद्यालयों के लिए आदर्श विद्यालय होगा। + 2 पर सामान्य शिक्षा के साथ–साथ क्षेत्र विशेष की आवश्यकतानुसार व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी और यह प्रयत्न किया जाएगा कि 1995 तक इस व्यावसायिक वर्ग में 25 प्रतिशत छात्र शिक्षा ग्रहण करें।

8. **उच्च शिक्षा का प्रसार एवं उन्नयन किया जाएगा**– इस शिक्षा नीति के पांचवें भाग में यह स्पष्ट किया गया है कि उच्च शिक्षा द्वारा छात्रों में विशिष्ट ज्ञान एवं कुशलता का विकास किया जाएगा जिससे राष्ट्र का विकास होगा। इसके मौजूदा पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाएगा और शिक्षण को चिंतन परक बनाया जाएगा। साथ ही शिक्षकों के कार्यों का आकलन किया जाएगा और उनकी पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जाएगी। उच्च शिक्षा का स्तर मान बनाए रखने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) का होगा। उच्च शिक्षा को सर्वसुलभ करने के लिए खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाएगी।

9. **तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा में सुधार किया जाएगा**– इस शिक्षा नीति के छठे भाग में तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए उसकी उचित व्यवस्था करने पर बल दिया गया है। यह घोषणा की गई है कि तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा को भविष्य की आवश्यकतानुसार नियोजित किया जाएगा और महिलाओं और समाज के कमजोर वर्ग के बच्चों को तकनीकी शिक्षा की पूरी–पूरी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। इस शिक्षा के स्तर को उठाने के लिए इनके पाठ्यक्रमों को अद्यतन बनाया जाएगा और सैद्धांतिक ज्ञान की अपेक्षा प्रायोगिक दक्षता पर अधिक बल दिया जाएगा और साथ ही शोध कार्य पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। शिक्षा का स्तरमान निश्चित करने और इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं पर नियंत्रण करने के लिए 'अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद' (All India Council for Technical Education) को कानूनी अधिकार दिए गए जाएंगे। निम्न स्तर की तकनीकी संस्थाओं को बंद किया जाएगा और इस क्षेत्र में उच्च स्तरीय कार्य करने वालों को प्रोत्साहन दिया जाएगा।

10. **परीक्षा प्रणाली और आकलन प्रक्रिया में सुधार किया जाएगा**– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के आठवें भाग के अंत में तत्कालीन परीक्षा प्रणाली और आकलन प्रक्रिया में सुधार की चर्चा की गई है। यह घोषणा की गई है कि आकलन को एक सतत् प्रक्रिया बनाया जाएगा, बाह्य आकलन के स्थान पर आंतरिक आकलन को अधिक महत्व दिया जाएगा, परीक्षाओं को वैध और विश्वसनीय बनाया जाएगा, प्रश्नपत्रों की रचना और उत्तर पुस्तकों के आकलन को वस्तुनिष्ठ बनाया जाएगा और श्रेणी के स्थान पर ग्रेड सिस्टम लागू किया जाएगा।

टिप्पणी

11. **शिक्षकों के स्तर और शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार किया जाएगा**– शिक्षकों का चयन उनकी योग्यता के आधार पर किया जाएगा। उनके स्तर को उठाने के लिए उनके वेतनमान बढ़ाये जाएंगे और सेवाशर्तों को आकर्षक बनाया जाएगा। पूरे देश में समान कार्य के लिए समान वेतनमान के सिद्धांत को लागू किया जाएगा, साथ ही सेवापूर्व और सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार किया जाएगा। प्रत्येक जिले में 'जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान' की स्थापना की जाएगी जिनमें प्राथमिक शिक्षकों और अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी और साथ ही अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएंगे और इस क्षेत्र में शोध कार्य किये जाएंगे। घटिया किस्म के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों को बंद कर दिया जाएगा। कुछ चुने हुए उच्च स्तर के माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों का दर्जा बढ़ाया जाएगा, उन्हें 'शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय' में समोन्नत किया जाएगा जिससे माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण और इस क्षेत्र में शोध कार्य की व्यवस्था होगी। और कुछ और उत्तम श्रेणी के शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों को 'शिक्षा उच्च अध्ययन केंद्र' (Centre of Advance Studies in Education, CASE) में सम्मोन्नत किया जाएगा। इन सब शिक्षा संस्थाओं के मार्गदर्शन करने और उन पर नियंत्रण रखने के लिए 'राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद' (NCTE) को और अधिक अधिकार दिए जाएंगे।

12. **प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा**– प्रौढ़ शिक्षा को राष्ट्रीयता में जोड़ा जाएगा और 15–35 आयु वर्ग के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए सरकारी और गैरसरकारी संगठनों का उपयोग किया जाएगा। औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों को उनमें कार्यरत निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा जाएगा। प्रौढ़ शिक्षा के दूसरे पक्ष– अद्यतन जानकारी हेतु सतत् शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् शिक्षा केंद्र खोले जाएंगे और पुस्तकालयों और वाचनालयों की व्यवस्था की जाएगी। प्रौढ़ शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में जनसंचार के साधनों का प्रयोग किया जाएगा।

13. **सतत् शिक्षा की व्यस्था की जाएगी**– युवा वर्ग, गृहणियों, किसानों, व्यापारियों और विभिन्न उद्योगों में कार्यरत व्यक्तियों को उनके क्षेत्र की अद्यतन जानकारी देने हेतु सतत् शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी और इसके लिए खुली शिक्षा और दूर शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी और जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग किया जाएगा।

14. **शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जाएगा**– किसी भी स्तर की किसी भी प्रकार की शिक्षा के लिए शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जाएगा। जन संचार के माध्यमों से शिक्षा को सर्वसुलभ बनाया जाएगा।

15. **शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाया जाएगा**– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के सातवें भाग में शिक्षा को कारगर बनाने के लिए शिक्षकों की जवाबदेही निश्चित करने और छात्रों को कर्तव्य बोध कराने पर बल दिया गया है। इसके तीसरे भाग में शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए न्यूनतम अधिगम मानक निश्चित करने की बात कही गई है और उसमें गुणात्मक सुधार करने की बात कही गई है। इस दस्तावेज के दसवें भाग में प्रशासन तंत्र को चुस्त करने पर बल दिया गया है।

16. **शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए ठोस कदम उठाए जाएंगे**– इस शिक्षा नीति के चौथे भाग में स्पष्ट घोषणा की गई है कि शैक्षिक विषमताओं को दूर किया जाएगा और महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक और विकलांगों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाएगी और सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर सुलभ कराए जाएंगे।

17. **अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था क्रमशः की जाएगी**– एक निश्चित योजना के तहत सर्वप्रथम निम्न प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य, निःशुल्क और सर्वसुलभ कराई जाएगी, इसके बाद उच्च प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य, निःशुल्क और सर्वसुलभ कराई जाएगी और इसके बाद प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा अनिवार्य, निःशुल्क और सर्वसुलभ कराई जाएगी।

18. **महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा**– इस हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जाएंगे–

    (क) स्त्री–पुरुषों की शिक्षा में भेद नहीं किया जाएगा, लिंगमूलक अंतर को समाप्त किया जाएगा।

    (ख) महिलाओं की शिक्षा के विकास हेतु प्रारंभ से ही प्रयत्न किये जाएंगे।

    (ग) महिलाओं को विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

    (घ) महिलाओं को व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष सुविधाएं दी जाएंगी।

19. **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी**– इस क्षेत्र में निम्नलिखित कदम उठाए जाएंगे–

    (क) नगरों, गांवों और पहाड़ी तथा आदिवासी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए विद्यालयों की व्यवस्था की जाएगी।

    (ख) इन विद्यालयों में यथासंभव इन्हीं वर्गों और इन्हीं क्षेत्रों के शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी।

    (ग) दूर–दराज से आने वाले बच्चों के लिए छात्रावासों का निर्माण कराया जाएगा।

    (घ) इन वर्गों के बच्चों को आर्थिक सहायता की धनराशि बढ़ाई जाएगी।

    (ङ) आदिवासी क्षेत्रों में पहले उनकी अपनी भाषा सिखाई जाएगी और उसके बाद क्षेत्रीय भाषा सिखाई जाएगी।

20. **पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी**– इस हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जाएंगे–

    (क) पिछड़े वर्ग एवं पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

    (ख) देश के रेगिस्तानी, पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में और अधिक स्कूल खोले जाएंगे।

टिप्पणी

(ग) इन क्षेत्रों के स्कूलों में इन्हीं क्षेत्रों के शिक्षित युवकों को प्रशिक्षित कर शिक्षक नियुक्त करने का प्रयास किया जाएगा।

(घ) पिछड़े वर्ग के बच्चों को आर्थिक सहायता जारी रहेगी, साथ ही उन्हें छात्रवृत्तियां दी जाएंगी।

21. **अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा**– संविधान में अल्पसंख्यकों (मुसलमान एवं ईसाई आदि) को अपनी भाषा, संस्कृति एवं धर्म की रक्षा करने का अधिकार दिया गया है। अतः–

(क) इन्हें अपनी शिक्षा संस्थाएं चलाने का अधिकार होगा, परंतु इनका पाठ्यक्रम प्रांतीय सरकार द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम ही होगा।

(ख) इनके क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना की जाएगी।

22. **विकलांग और मंदबुद्धि बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी**– इनकी शिक्षा की व्यवस्था हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जाएंगे–

(क) विकलांग और मंदबुद्धि बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और इनकी शिक्षा व्यवस्था हेतु स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाएगा।

(ख) मामूली विकलांग बच्चे सामान्य बच्चों के साथ पढ़ेंगे। गूंगे, बहरे, अंधे और मंदबुद्धि बालकों के लिए अलग–अलग स्कूल खोले जाएंगे।

(ग) विकलांग बच्चों को कुटीर उद्योग–धंधों की शिक्षा दी जाएगी और उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाएगा।

(घ) विकलांग और मंदबुद्धि बालकों की शिक्षा हेतु विशेष प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के गुण एवं दोषों का आकलन

किसी भी वस्तु, विचार अथवा क्रिया आकलन किन्हीं आधारभूत मानदंडों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, अतः इससे संबंधित किसी भी विचार अथवा क्रिया का आकलन समाज विशेष के लिए इसकी उपयोगिता के आधार पर किया जाना चाहिए, उसकी तत्कालीन एवं भविष्य की मांगों की पूर्ति के आधार पर किया जाना चाहिए। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसके संशोधित रूप 1992 को लागू हुए अब एक लंबा समय हो गया है, यह बात दूसरी है कि भिन्न–भिन्न प्रांतों में इसे भिन्न–भिन्न सीमा में लागू किया गया है। अब उसके परिणाम भी हमारे सामने हैं। अतः हम इसका आकलन इन सभी आधारभूत मानदंडों पर करेंगे। इन मानदंडों पर कसने पर इस शिक्षा नीति में अग्रलिखित गुण–दोष उजागर होते हैं–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के गुण

यूं तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसके संशोधित रूप 1992 में जो कुछ प्रस्तावित है वह सब कुछ बहुत अच्छा है, परंतु इस नीति की कुछ बातें अन्य नीतियों से बहुत ऊपर हैं, उन्हें ही हम इसकी विशेषता या गुण मान सकते हैं–

1. इस शिक्षा नीति में शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित किया गया है। यूं तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में भी शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया था और उस पर केंद्रीय बजट में 6 प्रतिशत व्यय करने की बात कही गई थी, परंतु इस शिक्षा नीति में तो इसे उत्तम निवेश के रूप में स्वीकार किया गया है और उस पर बजट में 6 प्रतिशत का प्रावधान करना सुनिश्चित किया गया है।
2. यह भारत की ऐसी पहली शिक्षा नीति है जिसके क्रियान्वयन के लिए पूरी कार्य योजना विस्तृत रूप से प्रस्तुत की गई और उसके लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था भी की गई।
3. इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 द्वारा घोषित 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना को पूरे देश में अनिवार्य रूप से लागू करने पर बल दिया गया है और प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए आधारभूत पाठ्यचर्या और + 2 पर स्थान विशेष की आवश्यकतानुसार पाठ्यचर्या के निर्माण पर बल दिया गया है। उच्च स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्माण का अधिकार विश्वविद्यालयों को दिया गया है पर इस निर्देश के साथ कि ये पाठ्यक्रम अंतर्राष्ट्रीय स्तर के होने चाहिए। इस प्रकार इस नीति में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय हितों को बराबर का महत्व दिया गया है, यह भारतीय गणराज्य के अनुकूल है।
3. प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करने की बात तो प्रारंभ से ही कही जाती रही है, पर प्राथमिक विद्यालयों के सुधार की बात इस नीति में ही कही गई है और उसके लिए 'ब्लैकबोर्ड योजना' बनाई गई और उसका क्रियान्वयन भी किया जा रहा है। अब तक लगभग 50 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों की दशा में सुधार किया जा चुका है। संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के तहत लगभग 75 हजार उच्च प्राथमिक स्कूलों को शिक्षण अधिगम सामग्री के क्रय हेतु 40–40 हजार रुपये दिए गए हैं।
5. इस शिक्षा नीति में माध्यमिक स्तर पर गति निर्धारक विद्यालय खोलने की घोषणा की गई थी और उसके तहत अब तक लगभग सभी जिलों में नवोदय विद्यालय स्थापित किये जा चुके हैं।
6. इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में खुले विश्वविद्यालय स्थापित करने की घोषणा की गई थी, उसके तहत दिल्ली में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। यह विश्वविद्यालय उन युवकों को उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान कर रहा है जो अन्यत्र प्राप्त नहीं कर पा रहे।
7. इस शिक्षा नीति में किसी भी स्तर की तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाने पर बल दिया गया है और तकनीकी शिक्षा संस्थाओं की दशा सुधारने पर बल दिया गया है और सबसे बड़ी बात यह है कि इसके लिए वित्त व्यवस्था भी की गई है। 'राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षा परिषद' के निर्देशानुसार इस तकनीकी शिक्षा में काफी सुधार भी हुआ है।
8. इस शिक्षा नीति में शिक्षकों के स्तर और उनके प्रशिक्षण में सुधार पर बल दिया गया है। यूं तो इस पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में भी बहुत बल दिया गया था और तद्नुकूल शिक्षकों के वेतनमान बढ़ाए गए थे और उनकी सेवाशर्तों में सुधार किया गया था परंतु इस शिक्षा नीति में शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार हेतु

प्रत्येक जिले में 'जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान' स्थापित किये गए हैं, कुछ उच्च स्तर के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों को शिक्षक शिक्षा और शिक्षा उच्च अध्ययन केंद्र में सम्मुनत किया गया है। साथ ही 'राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद' को और अधिक अधिकार दिए गए हैं। अब देश की समस्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएं उसके नियंत्रण में हैं और उनमें उसके निर्देशानुसार सुधार हो रहा है।

9. इस शिक्षा नीति में परीक्षा को विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ बनाने और सतत् आकलन पर बल दिया गया है। इस बीच परीक्षा एवं आकलन प्रणाली में काफी सुधार हुआ है।
10. इससे पहले हमारे देश में जितनी भी शिक्षा नीतियां घोषित हुईं उनमें आदर्श की बातें तो बहुत की जाती रहीं परंतु उनके क्रियान्वयन के लिए न तो ठोस योजनाएं बनाई गईं और न ठोस उपाय सुझाए गए। यह पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है जिसमें योजना भी बनाई गई ओर उसके क्रियान्वयन के लिए ठोस सुझाव भी दिए गए। इसमें शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने हेतु किसी भी स्तर की शिक्षा के लिए 'न्यूनतम अधिगम मानक' (Minimum Learning Standard) बनाने, शिक्षकों एवं शिक्षा प्रशासकों की जवाबदेही निश्चित करने और छात्रों के उत्तरदायित्व निश्चित करने पर बल दिया गया है। जब तक छात्र, शिक्षक और शिक्षा प्रणाली से जुड़े सभी व्यक्ति अपने–अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते तब तक कोई भी शिक्षा योजना सफल नहीं हो सकती।
11. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसके संशोधित रूप 1992 में शैक्षिक अवसरों की समानता की प्राप्ति के लिए बहुत बल दिया गया है और इसके लिए ठोस कदम उठाने पर बल दिया गया है और इसकी प्राप्ति के लिए वित्त व्यवस्था भी की गई है। यह बात दूसरी है कि इस दिशा में अब तक जो भी कार्य किये गए हैं वे वोट की राजनीति पर अधिक आधारित हैं, लोकतंत्र की मांग पर कम।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के दोष

इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जो कुछ भी कहा गया है वह सब बड़ा लुभावना है। परंतु इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत जो कुछ किया गया है उसमें काफी दोष हैं, उन्हें नीतिगत दोष कहना तो उचित नहीं होगा, उन्हें क्रियान्वयन प्रक्रिया दोष कहना चाहिए और ये दोष हैं–

1. इस शिक्षा नीति में केंद्र एवं राज्य सरकारों के शैक्षिक अधिकार एवं उत्तरदायित्व निश्चित नहीं किये गए हैं। 1976 में संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची (Concurrent List) पर लाया गया, परंतु उसमें केंद्र एवं राज्य सरकारों के शैक्षिक अधिकार और कर्तव्यों को सुनिश्चित नहीं किया गया। यह कार्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्माताओं को करना चाहिए था, उन्होंने भी नहीं किया। परिणाम यह है कि प्रांतीय सरकारें केंद्र की उन शिक्षा योजनाओं को तो लागू कर देती हैं जिनके लिए केंद्र शत–प्रतिशत आर्थिक अनुदान देता है, परंतु प्रायः उन योजनाओं को लागू नहीं करतीं जिन पर आंशिक सहायता अनुदान मिलता है। परिणाम यह है कि पूरे देश में शिक्षा की व्यवस्था समान नहीं है।

2. वित्त के क्षेत्र में जन सहयोग के स्थान पर जन शोषण हो रहा है। इस शिक्षा नीति में शिक्षा की व्यवस्था हेतु जन सहयोग के प्रोत्साहन की बात कही गई है। इसे प्राप्त करने के लिए शिक्षा संस्थाओं में अभिभाव समिति बनाने और इस समिति के माध्यम से जन–सहयोग प्राप्त करने की कार्य योजना प्रस्तुत की गई। इसका अनुपालन प्रायः सभी शिक्षा संस्थाएं कर रही हैं।
3. प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत पाठ्यचर्या का अनुपालन आज तक नहीं किया जा सका है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 की घोषणा के बाद 1975 में 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) ने एक 10 वर्षीय आधारभूत पाठ्यचर्या तैयार की थी। उसके बाद उसने 1988 में उसका दूसरा प्रारूप प्रस्तुत किया और 2000 में तीसरा, पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में आधारभूत पाठ्यचर्या के अनुपालन पर बल दिये जाने के बावजूद सभी प्रांतों में अपनी–अपनी तरह की पाठ्यचर्या लागू है। केंद्र का दोषारोपण है कि प्रांतीय सरकारें मनमानी कर रही हैं और प्रांतीय सरकारों का दोषारोपण है कि केंद्र सरकार क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार पाठ्यचर्या निर्माण में बाधा डाल रही है।
4. ब्लैकबोर्ड योजना के अंतर्गत प्राथमिक स्कूलों के जो भवन बनाए गए हैं और उनके लिए जो फर्नीचर एवं सामग्री भेजी गई हैं वे बहुत घटिया किस्म के हैं। संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना 1992 के अनुसार अभी तक लगभग 75 हजार उच्च प्राथमिक स्कूलों को ही 40–40 हजार धनराशि दी गई है।
5. नवोदय विद्यालय केवल सफेद हाथी सिद्ध हुए हैं। नवोदय विद्यालय इस आशा से स्थापित किये गए थे कि इनमें पिछड़े क्षेत्रों, पिछड़े वर्गों और उपेक्षित जातियों के योग्य बच्चों को प्रवेश दिया जा सकेगा, उन्हें अपने विकास के अवसर दिए जा सकेंगे। पहली बात तो यह है कि ऐसे नियमों के होते हुए भी बड़ी हेराफेरी हो रही है, इनका लाभ वे नहीं उठा पा रहे जिनके लिए ये स्थापित किये गए थे। दूसरी बात यह है कि इनकी स्थापना एवं संचालन में जितना व्यय हो रहा है उसका 100वां भाग भी लाभ नहीं हो रहा है। इसी धन को यदि सामान्य माध्यमिक विद्यालयों की दशा सुधारने पर लगा दिया जाता तो अपेक्षाकृत बहुत अधिक लाभ होता।
6. इस बीच जिन प्रांतों में + 2 पर जो भी व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू किये गए वे असफल रहे हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि जिन विद्यालयों में ये पाठ्यक्रम शुरू किये गए उनमें संसाधनों और प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी थी। दूसरी बात यह भी है कि ये पाठ्यक्रम अपने में न पूर्ण थे और न उपयोगी।
7. उच्च शिक्षा के संबंध में दोहरी नीति अपनाई गई है। इस शिक्षा नीति में एक तरफ उच्च शिक्षा में प्रवेश पर नियंत्रण की बात कही गई है और दूसरी तरफ उच्च शिक्षा के अवसर सभी को सुलभ कराने की बात कही गई है और इस हेतु खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना और पत्राचार पाठ्यक्रम शुरू करने की बात कही गई है। हर क्षेत्र की भांति शिक्षा के क्षेत्र में भी दोहरी नीति। इससे उच्च शिक्षा की अधिकतर संस्थाओं में अयोग्य छात्रों का प्रवेश हो रहा है, अराजक तत्वों का प्रवेश हो रहा है और अधिकतर उच्च शिक्षा संस्थाएं डिग्रियां प्राप्त करने

टिप्पणी

के कारखाने बन गई हैं। यह समय, शक्ति और धन का अपव्यय नहीं तो और क्या है! संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के तहत उच्च शिक्षा को स्ववित्तपोषित बनाना सरकार का अपने उत्तरदायित्व से मुंह मोड़ना ही कहा जाएगा। उच्च शिक्षा के निजीकरण से तो शिक्षा के क्षेत्र में शोषण बढ़ रहा है। उच्च शिक्षा निर्धनों की पहुंच से दूर होती जा रही है।

8. इस शिक्षा नीति में कैपीटेशन फीस के लिए इस बंधन के साथ स्वीकृति दे दी गई कि ये संस्थाएं सरकार द्वारा चयनित छात्रों को एक निश्चित प्रतिशत मात्रा में बिना कैपीटेशन फीस के प्रवेश देंगी।
9. शैक्षिक अवसरों की समानता के नाम पर वोट की राजनीति की गई है। भारत में शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है कि देश के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराना, किसी भी आधार पर भेद–भाव किये बिना सभी को अपनी योग्यतानुसार माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा सुलभ कराना, विशिष्ट शिक्षा (लॉ, मेडिकल और टेक्निकल आदि) सुलभ कराना। पर हमारे देश में इसके ठीक विपरीत क्षेत्र, लिंग, जाति और धर्म के नाम शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने व उसके अनुकूल प्रयत्न भी किये जा रहे हैं।
10. इस शिक्षा नीति में बाह्य आकलन की अपेक्षा आंतरिक आकलन पर बल दिया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के दस्तावेज में शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव अधिक हैं परंतु घोषणाएं भी की गई हैं जो उपयोगी हैं, जैसे–

1. 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना लागू करना।
2. प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम होना।
3. + 3 की शिक्षा को राष्ट्र की मांग के अनुसार नियोजित करना।
4. तकनीकी शिक्षा की उत्तम व्यवस्था करना।

परंतु कुछ घोषणाएं मानने योग्य नहीं हैं, जैसे–

1. माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू करना।
2. कार्यानुभव पर आवश्यकता से अधिक बल देना।
3. उच्च शिक्षा को सुलभ कराना।
4. कैपीटेशन फीस से चलने वाले विद्यालयों के लिए स्वीकृति देना।
5. शैक्षिक अवसरों की समानता के नाम पर क्षेत्र, लिंग, जाति और धर्म के नाम पर विशेष सुविधाएं देना आदि।

इस शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में कुछ कमियां हैं–

1. ब्लैकबोर्ड योजना के अंतर्गत बनाये गए भवन निम्न स्तर के हैं।
2. नवोदय विद्यालयों में योजनानुसार कार्य भी संतोषजनक नहीं है
3. कैपीटेशन की फीस की स्वीकृति से तो शिक्षा एक व्यवसाय बन गई है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. डॉ. एस. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में 1948 में नियुक्त किया जाने वाला पहला आयोग कौन–सा था?

   (क) प्राथमिक शिक्षा आयोग (ख) माध्यमिक शिक्षा आयोग

   (ग) विद्यालयी शिक्षा आयोग (घ) विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग

4. माध्यमिक शिक्षा आयोग की स्थापना कब हुई थी?

   (क) 1952 में (ख) 1954 में

   (ग) 1958 में (घ) 1960 में

4.4 भारतीय शिक्षा : सरोकार और मुद्दे

शिक्षा, राष्ट्रीय जीवन एवं संस्कृति से विकसित होती है और यह उनको समृद्ध एवं सुखद बनाते हैं। विद्वानों का मानना है कोई भी राष्ट्र तब तक सुखी और संपन्न नहीं है जब तक वहां शिक्षा का स्तर निम्न है। राष्ट्र के जीवन में प्रारंभिक शिक्षा प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है। इसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंच पाता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध प्रारंभिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक व उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान इसका है उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका संबंध किसी विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग से न हो कर देश की पूरी जनता से होता है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से संपर्क होता है और बालक ही बड़ा होकर व्यक्ति का रूप धारण करता है और उसके हाथों में देश की बागडोर दी जाती है। उन्हीं में से कोई देश का राष्ट्रपति बनता है तो कोई प्रधानमंत्री, कोई मुख्यमंत्री, कोई राज्यपाल, कोई आईएएस, आईपीएस एवं अन्य पदों पर विराजमान होते हैं। परिवार तथा समाज के लिए आगे चलकर यही व्यक्ति अपने दायित्व का निर्वहन करते हैं एवं जिम्मेदार कहलाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सभी बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा ही राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार है।

4.4.1 स्कूली शिक्षा का लोकतंत्रीकरण

प्रारंभिक शिक्षाविदों में से एक, पेस्टोलॉजी ने शिक्षा के उद्देश्य को निर्भरता से मुक्ति और आत्मनिर्भरता की उपलब्धि के रूप में माना। मनुष्य के जीवन में शिक्षा की भूमिका पर, पेस्टोलॉजी कहते हैं, "इस प्रकार केवल मनुष्य, जिसकी ईश्वर की व्यापक दुनिया में कोई मदद नहीं करता है, स्वयं की मदद करना सीखने में मदद कर सकता है।" इसलिए, स्वयं सहायता सर्वोत्तम है जो व्यक्ति को शिक्षा प्रदान कर सकती है। पेस्टोलॉजी ने यह भी देखा है कि मनुष्य को स्वतंत्र बनाया जाना चाहिए और उसकी आत्मनिर्भरता के विकास के लिए शिक्षा में उत्तेजना प्रदान की जानी चाहिए। उनका कहना है कि "लोकतंत्र में स्वतंत्रता के माध्यम से शिक्षा पर जोर दिया जाता है और बच्चे को स्वतंत्रता के माहौल में शिक्षित किया जाता है। स्वतंत्रता, समानता, जिम्मेदारी,

टिप्पणी

न्याय और सहयोग के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को शिक्षा को प्रभावी और सार्थक बनाने के लिए पूर्ण प्राप्ति मिलनी चाहिए।" शैक्षिक संस्थानों में, स्वतंत्रता को अनुशासन का विरोधी माना जाता है। इस प्रकार, अक्सर अनुशासन और व्यवस्था के बीच एक भ्रम होता है। स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने से स्पष्ट व्यवस्था आ सकती है, लेकिन यह जरूरी नहीं कि अच्छा अनुशासन हो। एक शिक्षण संस्थान में अनुशासन का शिक्षकों के व्यवहार से गहरा संबंध होता है। छात्रों में अनुशासित व्यवहार, व्यवस्था और अच्छे आचरण की नींव शिक्षा के माध्यम से रखी जानी चाहिए, ताकि वे भविष्य में खुद को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर सकें, और स्वतंत्रता के मूल्य के साथ–साथ आवश्यक सामाजिक नियंत्रणों को भी समझ सकें।

शिक्षा के माध्यम से छात्रों को एहसास होता है कि वे तभी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं जब वे अंतरात्मा की आज्ञा का पालन करें। स्वतंत्रता आत्म–अनुशासन का रूप लेती है जो लोकतांत्रिक जीवन के लिए आवश्यक है। छात्रों को पर्याप्त शैक्षणिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। उन्हें बाहरी प्रभाव से मुक्त किया जाना चाहिए जो उन्हें सच देखने और कहने से रोकता है। उन्हें शिक्षा की सहायता से सत्य की जांच करने के लिए साहस और क्षमता भी विकसित करनी चाहिए। शिक्षा को उन्हें अपनी स्वतंत्रता का उपयोग अपने कर्तव्यों का पालन करने और अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

अरस्तू के समय से लेकर आज तक साधारणतया शासन व्यवस्था के तीन रूप प्रचलित रहे हैं– राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और लोकतन्त्र। लम्बे समय तक लोकतन्त्र का तात्पर्य एक प्रकार से ही लिया जाता था। लोकतन्त्र शासन का वह रूप है जिसमें जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए शासन हो। बीसवीं सदी के लोकतन्त्र से तात्पर्य एक राजनीतिक जीवन के उस मार्ग की खोज है, जिसमें मनुष्यों की स्वतन्त्र और ऐच्छिक वृद्धि के आधार पर उनमें अनुरूपता और एकीकरण लाया जा सके।

लोकतंत्रीय शिक्षा का महत्व (Importance of democratic education): जनतन्त्र या लोकतंत्र की सफलता का मुख्य आधार शिक्षा है। यदि देश की अधिकांश जनता अशिक्षित या निरक्षर है, तो ऐसी दशा में जनतन्त्र की सफलता पर सन्देह किया जा सकता है। इस कारण ही संसार के प्रमुख जनतान्त्रिक देशों में सर्वसाधारण में शिक्षा–प्रसार की ओर ध्यान दिया जाता है। वास्तव में शिक्षित नागरिक ही शासन तथा राजनीति के उत्तरदायित्व को वहन कर सकता है। जनतन्त्रात्मक देशों में मतदान का अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इस अधिकार के द्वारा ही वह प्रत्यक्ष रूप से शासन में भाग लेता है। शिक्षित नागरिक ही मतदान का उपयोग ठीक ढंग से कर सकता है।

शिक्षा प्रत्येक नागरिक को इस योग्य बनाती है जिससे वह उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से शासन में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भाग ले सकें। वह नागरिकों के चरित्र का उत्थान करती है और उनमें प्रेम और उत्साह की भावना का संचार करती है। शिक्षा राजनीतिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करती है। जनतन्त्र की शिक्षा के अभाव में असफल होने की पूर्ण सम्भावना रहती है। शिक्षा प्रत्येक नागरिक को इस योग्य बनाती है जिससे वह उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से शासन में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भाग ले सकें। वह नागरिकों के चरित्र का उत्थान करती है और उनमें प्रेम और उत्साह की भावना का संचार करती है। राजनीतिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करती

टिप्पणी

है। जनतन्त्र की शिक्षा के अभाव में असफल होने की पूर्ण सम्भावना रहती है तथा जनतन्त्र के दोष उभर कर सामने आ जाते हैं।

लोकतंत्रीय शिक्षा का स्वरूप (Form of democratic education): जनतन्त्र में शिक्षा के स्वरूप पर जॉन डीवी लिखते हैं कि "जनतन्त्र में इस प्रकार की शिक्षा होनी चाहिए, जिससे व्यक्तियों में सामाजिक सम्बन्ध और नियन्त्रण में व्यक्तिगत रुचि उत्पन्न हो जाये और उनमें ऐसी मानसिक आदतों का निर्माण हो जिनसे अव्यवस्था उत्पन्न हुए बिना सामाजिक परिवर्तन का होना सम्भव हो।" यथार्थ में जनतन्त्र शिक्षा का मुख्य कार्य जनतन्त्र की सुरक्षा करना, उसे बल प्रदान करना तथा जनतांत्रिक वातावरण उत्पन्न करना है। संक्षेप में, जनतन्त्रात्मक देश में शिक्षा का स्वरूप भी जनतन्त्रीय होना चाहिए।

लोकतंत्रीय शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Democratic Education): लोकतंत्रीय या जनतन्त्रीय शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं

(1) **सर्वसाधारण के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना** (Providing education to the general Public) – जनतन्त्रात्मक राज्य में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र की सर्वसाधारण जनता को साक्षर बनाने के लिए शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना है। जनतन्त्र जनता का शासन होता है। अतः यह आवश्यक है कि राज्य द्वारा सर्वसाधारण जनता की शिक्षा की पूर्ण तथा उचित व्यवस्था की जाय।

(2) **नेतृत्व का विकास** (Leadership development) – जनतन्त्र की सफलता बहुत कुछ कुशल तथा प्रतिभावान नेतृत्व के ऊपर निर्भर है। आज का छात्र कल देश के शासन की बागडोर हाथ में लेगा। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों को नेतृत्व का भी प्रशिक्षण दिया जाय।

(3) **जनतन्त्रात्मक नागरिकता की भावना का विकास** (Development of the spirit of democratic citizenship) – जनतन्त्रीय शिक्षा का अन्य योगदान इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना है, जो नागरिकों में जनतन्त्रीय नागरिकता की भावना का विकास कर सके। योग्य, सच्चे तथा ईमानदार एवं कार्यकुशल नागरिकों के ऊपर ही जनतन्त्र का भविष्य निर्भर है।

(4) **सामाजिकता की भावना का विकास** (developing a sense of sociability) – मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जनतन्त्रात्मक समाज पूर्णतया सहयोग तथा प्रेम पर आधारित रहता है। अतः यह आवश्यक है कि व्यक्ति के दृष्टिकोण को शिक्षा द्वारा यथासम्भव सामाजिक बनाया जाय ।

(5) **बहुमुखी विकास करना** (Developing multifaceted) – जनतांत्रिक शिक्षा का उद्देश्य बालक का एकांगी विकास न कर बहुमुखी विकास करना होना चाहिए। उसे केवल पुस्तकीय शिक्षा ही नहीं प्रदान करनी चाहिए। शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जाये जिससे बालक का शारीरिक, मानसिक कलात्मक और तकनीकी विकास हो सके।

(6) **व्यक्ति की रुचियों का विकास** (Development of interests) – जनतन्त्रात्मक शिक्षा का अन्य उद्देश्य व्यक्ति की विभिन्न रुचियों का उचित दिशा में विकास करना है। श्रेष्ठ रुचियां, व्यक्ति को श्रेष्ठ नागरिक बनाती हैं। अतः शिक्षा का आयोजन इस ढंग से किया जाय, जिससे बालकों की विभिन्न रुचियां ठीक प्रकार से उचित दिशा में विकसित हो सकें।

टिप्पणी

(7) **कुशलताओं का सृजन** (Creation of skills) – कुशल और योग्य नागरिक ही देश के आर्थिक विकास में अपना योग दे सकते हैं। ऐसी दशा में जनतन्त्रीय शिक्षा का उद्देश्य बालकों में कुशलताओं का निर्माण तथा विकास होना चाहिए।

(8) **व्यावसायिक कुशलता का विकास** (Development of professional skills) – आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर रहने वाला नागरिक मत का उचित प्रयोग बिना लोभ–लालच व भय के कर सकता है, अतः शिक्षा का संगठन इस प्रकार किया जाय जिससे वे शिक्षा समाप्ति के पश्चात् किसी व्यवसाय में लग सकें। पाठ्यक्रम में तकनीकी और व्यावसायिक विषयों को भी स्थान दिया जाय। व्यावसायिक कुशलता ही आर्थिक कुशलता की जनक होती है।

(9) **अच्छी आदतों का निर्माण** (Building good habits)– जनतन्त्रीय समाज के नागरिकों में उत्तम आदतों का निर्माण परम आवश्यक है। अच्छी आदतें ही नागरिकों को परिश्रमी, कार्यकुशल सच्चरित्र तथा अनुशासित बनाती हैं। अतः प्रारम्भ से ही बालकों को अच्छी आदतों का अभ्यस्त बनाया जाय।

अतः जनतन्त्र की सफलता के लिए विद्यालयों में पूर्ण रूप से जनतन्त्रीय वातावरण निर्मित किया जाना चाहिए। इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने के लिए प्रेम, सहयोग, सहानुभूति परोपकार आदि गुणों पर विशेष रूप से बल दिया जाय। दूसरे, विद्यालय के द्वार बिना भेदभाव के समस्त वर्गो के लिए खुले रहें। तीसरे, विद्यालय का सम्बन्ध समाज से होना चाहिए। पाठ्यक्रम का निर्माण इस ढंग से किया जाय, जिससे समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकें। चौथे, समाज को विद्यालय के निकट लाने के लिए विद्यालय का पुस्तकालय, वाचनालय तथा क्रीड़ा–स्थल आदि समाज के अन्य सदस्यों को उपयोग के लिए दिया जाय। पांचवें, विद्यालयों को समाज के नवनिर्माण में भी योग देना चाहिए। इसके लिए विद्यालयों को छात्र–छात्राओं के दृष्टिकोण को प्रगतिशील बनाने के साधन जुटाने चाहिए।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में शिक्षा का योगदान

लोकतान्त्रिक या जनतान्त्रिक व्यवस्था में शिक्षा निम्नानुसार महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करती है:

1. **व्यावहारिक आदर्शों का निर्धारण** (Setting Practical Ideals) – जनतान्त्रिक व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि समाज में ऐसे आदर्शों पर बल दिया जाय जो व्यावहारिक हों। उस समय सामाजिक व्यवस्था दुर्बल होने लगती है, जब आदर्शों का पालन नहीं किया जाता, केवल उनकी चर्चा होती है। इसीलिए सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने का एक उपाय है– व्यावहारिक आदर्शों का निर्धारण।
2. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास** (Development of scientific approach) – सामाजिक व्यवस्था का सुचारू रूप से संचालन भी एक उपाय है, जो लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करता है। जब समाज के सदस्य अन्ध–विश्वास से ग्रस्त हो जाते हैं, तो वे ऐसी बातों में विश्वास करने लगते हैं। जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, तब सामाजिक व्यवस्था बिगड़ने लगती है। इसलिए इस बात पर बल दिया गया है कि शिक्षा के द्वारा उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वांछनीय एवं समुचित विकास किया जाय।

3. **आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि** (Growth in Economic prosperity)– जब किसी समाज में आर्थिक सम्पन्नता का अभाव होता है और लोग गरीबी तथा बेकारी से पीड़ित होते हैं, तब सामाजिक अव्यवस्था होना स्वाभाविक है। गरीब और बेकार लोग किसी न किसी प्रकार जिन्दगी बिताने की कोशिश करते है, लेकिन उन्हें बहुत कम सफलता मिलती है। आजकल जो तरह–तरह के नारे सुनाई पड़ते हैं, उनके मूल में आर्थिक सम्पन्नता की कमी है। जनतन्त्र में समाजवाद का नारा इस बात पर बल देता है कि समाज के सभी वर्गों को प्रगति के समान अवसर प्राप्त हों। सभी लोगों को आवश्यकतानुसार भोजन, वस्त्र तथा रहने के लिए मकान मिल सकें। फलतः सामाजिक, व्यवस्था को बनाये रखने का तीसरा उपाय आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि करना है। दूसरे शब्दों में, सब लोगों के लिए काम और रोजगार की व्यवस्था करना समाज का दायित्व माना गया है। शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों में यह व्यावसायिक कुशलता उत्पन्न की जा सकती है, जो समाज की आर्थिक सम्पन्न में सहायक होती है

4. **सामाजिक नियन्त्रण की शिक्षा** (Social control education)– सामाजिक व्यवस्था के सन्तोषजनक संचालन के लिए सामाजिक नियन्त्रण की शिक्षा निरन्तर होनी चाहिए, हमें यह ज्ञात है कि सामाजिक आदर्शों तथा मूल्यों के प्रति वांछनीय भावनाएं होती हैं। इन वांछनीय भावनाओं को उत्पन्न करना शिक्षा का कार्य है। पाठ्यक्रम में इस बात की व्यवस्था होनी चाहिए कि सामाजिक दृष्टि से वांछनीय नियमों के प्रति सभी लोगों के मन में अनुकूल भावनाएं हों।

5. **बेकारी समाप्त करना** (Eliminate unemployment): आजकल भारत में शिक्षित बेकारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। शिक्षित बेरोजगार युवक बेकारी से ऊबकर हिंसा का मार्ग अपना रहे हैं। वे ऐसे कार्य कर रहे हैं, जो समाज और राष्ट्र के लिए अपमानजनक एवं हानिकारक हैं। अतः यह आवश्यक है कि बेकारी समाप्त करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाये जायें।

6. **जन्म–दर पर रोक** (Ban on Birth rate): इन दिनों भारत में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। इसके लिए परिवार नियोजन का आन्दोलन चलाया जा रहा है। अच्छी सामाजिक व्यवस्था में सभी सदस्यों के लिए भोजन, वस्त्र और मकान की सन्तोषजनक व्यवस्था होती है लेकिन जब जन्म–दर में तीव्र गति से वृद्धि होती है, तब यह सम्भव नहीं होता। इसलिए जन्म–दर पर रोक लगाना अत्यन्त आवश्यक है।

7. **कर्म पर आधारित सामाजिक ढांचा** (Social structure based on Karma): जब व्यक्ति को जन्म, जाति अथवा आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर ऊंचा पद न देकर कर्म के आधार पर सामाजिक सम्मान प्रदान किया जाता है, तब सामाजिक व्यवस्था भली–भांति बनी रहती है। आधुनिक युग में उसी देश की सामाजिक व्यवस्था अच्छी मानी जाती है जिसमें कि सभी लोग अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार कार्य कर प्रतिष्ठा पाते हैं, इसलिए सामाजिक ढांचे को कर्म पर आधारित किया जाना चाहिए।

8. **अपराधियों को सुधारना** (Reforming criminals) – समाज में कुछ ही लोग ऐसे होते हैं, जो अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण समाज विरोधी कार्य करने लगते हैं। वैसे तो कानून बना हुआ है कि जो अपराध करे उसे दण्ड दिया जाय,

टिप्पणी

लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि अपराधियों की दशा को सुधारने के लिए सभी प्रकार के उपाय काम में लाने चाहिए।

9. **सामाजिक सुरक्षा के उपाय ढूंढना** (Social security measures) – सामाजिक सुरक्षा समाज में उस समय होती है जबकि सभी वर्गों के लोग अपनी इच्छा और विश्वास के अनुसार कार्य कर सकते हों। प्रत्येक प्रकार के वर्ग भेद को समाप्त किया जाय, जितने भी अनैतिक कार्य हैं उन्हें रोका जाय।
10. **भ्रष्टाचार को रोकना** (Stop Corruption) – भ्रष्टाचार रोकने का सबसे अच्छा उपाय, है कि लोग भली–भांति यह समझ लें कि गलत तरीके से काम करना अनैतिक और समाज की दृष्टि से निन्दनीय है और स्वयं के लिए घातक भी।
11. **शिक्षा पद्धति में आवश्यकतानुसार परिवर्तन** (Changes in education system as needed) – शिक्षा के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को सन्तुलित रखा जा सकता है, लेकिन कभी–कभी यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा प्रणाली में ऐसे परिवर्तन किये जायें, जो कि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अतः शिक्षा पद्धति में आवश्यकतानुसार परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था को चुस्त बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण उपाय है।
12. **सांस्कृतिक विलम्बना को दूर करना** (Removal of cultural delays) – समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सांस्कृतिक विलम्बना उस समय उपस्थित होती है, जब लोगों के कार्यों और विचारों में मेल नहीं होता। आज ऐसे साधन उपलब्ध हैं, जो गरीबी, बीमारी एवं बेकारी को मिटा सकें।

    अतः सामाजिक व्यवस्था को दुरुस्त बनाये रखने के लिए सांस्कृतिक विलम्बना को दूर रखा जाय और इसे उत्पन्न होने का अवसर नहीं दिया जाय।

4.4.2 स्कूली शिक्षा का सार्वभौमीकरण : पहुंच, प्रतिधारणा और सफलता

शिक्षा के सार्वभौमीकरण का शाब्दिक अर्थ है– सबके लिए शिक्षा। इस शिक्षा को पाने का हक सभी मानवों को है और इसके मार्ग में आने वाली परेशानियों को दूर करना लोककल्याणकारी राज्य का प्राथमिक दायित्व है। शिक्षा द्वारा देश के सामाजिक और आर्थिक उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा सकती है। बेहतर और सशक्त मानव शक्ति के निर्माण में शिक्षा ही महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा के माध्यम से गरीबी का स्थायी निदान संभव है और सभी का विकास भी इसी शिक्षा के माध्यम से हो सकता है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए आवश्यक है कि बालकों के घरों के समीप विद्यालयों को समुचित तौर पर उपलब्ध करवाया जाए और भारत में मौजूद भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं को इन विद्यालयों में उचित स्थान दिया जाए तथा इनको ध्यान में रखकर छात्रों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण की अवधारणा

भारत में प्रारंभिक काल से ही प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का विचार अपनाया गया था और इसकी प्राप्ति के लिए संविधान के लागू होने के समय ही भाग–चार में नीति–निदेशक तत्वों के अधीन अनुच्छेद–45 में चौदह वर्ष तक के सभी बालकों के लिए

दस वर्षों के अंदर निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) में भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण के महत्व को स्वीकार किया गया था और इसकी प्राप्ति के लिए अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया गया था। 1980 और 1990 के दशक में शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, बिहार शिक्षा परियोजना, शिक्षा कर्मी योजना, यू पी बुनियादी शिक्षा परियोजना, अध्यापक शिक्षा, महिला समाख्या, लोक जुम्बिश परियोजना, आदि अनेक परियोजनाओं का संचालन किया गया था।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में प्रथम सशक्त प्रयास 2002 में संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा किया गया था, जिसमें अनुच्छेद 21 ए में छह से चौदह वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान था। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में अनुच्छेद 21 ए के तहत कानूनी तौर पर लागू किया गया है। राइट टु एजूकेशन का अर्थ है कि ऐसे सभी बच्चों की शिक्षा का भार सरकार वहन करेगी जिनकी उम्र छह से चौदह वर्ष है और जिनके माता–पिता निजी विद्यालयों में शिक्षा प्रदान नहीं करवा पाते हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार समझी जा सकती हैं–

- सभी बालकों को पास के विद्यालय में निःशुल्क और प्रारंभिक शिक्षा का मूल अधिकार प्राप्त है।
- नामांकन से वंचित बालकों को आयु के अनुसार कक्षा में दाखिले का प्रावधान है।
- छः से चौदह वर्ष के सभी बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराना और उसकी पूर्ति करना सरकार की जिम्मेदारी है।
- बालकों को शारीरिक दण्ड देना, नामांकन की छंटाई की क्रियाविधियां, शिक्षकों द्वारा व्यक्तिगत ट्यूशन, मान्यता के बिना विद्यालय को चलाने, प्रति व्यक्ति शुल्क, पर रोक लगाई गई है।
- इस लक्ष्य को पाने के लिए केन्द्र सरकार, संबंधित राज्य सरकार, स्थानीय शासन और माता–पिता की संयुक्त जिम्मेदारी मानी गयी है।
- ऐसे पाठ्यक्रमों का विकास करना जो बालकों को भय, चिंता, आदि से मुक्त कर उनके समग्र ज्ञान, कौशल और क्षमता के विकास पर जोर देता है।
- छात्र–शिक्षक अनुपात से लेकर विद्यालय के कार्यदिवस, भवन सहित अन्य सुविधाओं के लिए मानक तैयार करना।
- इसमें समुचित तौर से प्रशिक्षित और योग्य शिक्षकों की नियुक्ति का प्रावधान है।
- गैर–शिक्षण कार्यों को हतोत्साहित करते हुए, इसमें ऐसी शिक्षण व्यवस्था को अपनाया गया है जिसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में अध्ययन संबंधी अंतरों को समाप्त किया जा सके।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में कार्य करते हुए 2010 में सर्व शिक्षा अभियान के तहत आठ प्रमुख कार्यक्रमों को शामिल किया गया है, जिसमें आंगनबाड़ी और आईसीडीएस भी शामिल है।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य (Aims of Universalization of Education)

शिक्षा पाना प्रत्येक प्राणी का अधिकार है और इसे पाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना सरकार का दायित्व है। बिना शिक्षा के मानव पशु के समान है जिसका ध्यान केवल क्षुधा की तृप्ति में रहता है। बिना ज्ञान के मानव और पशु में कोई अंतर नहीं किया जा सकता है, इसलिए शिक्षा को मोक्ष प्राप्ति का साधन भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार माना गया है। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्यों को निम्नलिखित प्रकार समझा जा सकता है–

(क) बच्चों को सशक्त बनाना ताकि वे समाज के लिए सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकें। बालकों को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर जीवन पथ पर तथा समाज में आगे ले जाना।

(ख) छह से चौदह वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का लक्ष्य वर्ष 2010 तक प्रभावी बनाना। देश के अंतिम बालक तक शिक्षा की रोशनी फैलाना।

(ग) विद्यालयों में बच्चों की पहुंच को सुविधापूर्ण बनाने के लिए मानचित्रण करना तथा छात्रों के घरों के समीप विद्यालयों का प्रबंध करना।

(घ) शिक्षा को परिणामोन्मुखी और जवाबदेही बनाने के लिए उपलब्धि और निष्पादन को शिक्षा के सभी स्तरों (प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर) पर लागू करना।

(च) प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चों के अधिगम और समझ को आसान करना।

(छ) देश के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और अन्य क्षेत्रों में विकास को सुनिश्चित करना।

(ज) भारत को सांस्कृतिक तौर पर एक सशक्त राष्ट्र के तौर पर विकसित करना और विश्व का एक विकसित देश बनाना।

(झ) शैक्षिक और आर्थिक तौर पर पिछड़े क्षेत्रों और वंचित वर्गों को समांज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करना।

(ट) राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीयता की भावना बालकों में भरने के लिए व्यावहारिक तौर पर पहल करना तथा छात्रों में भावनात्मक मूल्यों का विकास करना।

(ठ) भारत को विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में शामिल करने के लिए व्यावहारिक तौर पर पहल करना।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के प्रयास (Efforts for Universalization of Education)

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए वैसे तो संविधान के लागू होने के समय ही भाग–चार में नीति–निदेशक तत्वों के अधीन अनुच्छेद–45 में चौदह वर्ष तक के सभी बालकों के लिए दस वर्षों के अंदर निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया

गया था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन पी ई) में भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण के महत्व को स्वीकार किया गया था और इसकी प्राप्ति के लिए अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया गया था, परंतु इस दिशा में प्रथम सशक्त प्रयास 2002 में संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा किया गया था, जिसमें अनुच्छेद 21 ए में छह से चौदह वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान था। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में अनुच्छेद 21 ए के तहत कानूनी तौर पर लागू किया गया है। शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में हुए प्रयासों को इन बिंदुओं के अंतर्गत रखा जा सकता है–

(1) शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के प्रयासों के अंतर्गत यथासंभव छात्रों के घरों के समीप प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना का प्रावधान किया गया है और साथ ही यह भी व्यवस्था की गयी है कि इन विद्यालयों की गुणवत्ता और सुविधाएं उन्नत प्रकृति की हों। इसके लिए विद्यमान विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार के साथ ही नये विद्यालयों की स्थापना का प्रावधान है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वेबसाइट पर जारी आंकड़ों के अनुसार भारत में शिक्षा के उन्नयन के लिए संलग्न संस्थानों की संख्या निम्न प्रकार है–

2013–14 के आंकड़ों के अनुसार भारत में शिक्षा संस्थानों की संख्या

	विद्यालय के प्रकार		संख्या
विद्यालय शिक्षा	प्राथमिक विद्यालय		790640
	उच्च प्राथमिक विद्यालय		401079
	माध्यमिक विद्यालय		131287
	उच्च माध्यमिक विद्यालय		102558
	कुल		1425564
उच्च शिक्षा	विश्वविद्यालय	केन्द्रीय विश्वविद्यालय	42
		राज्य लोक विश्वविद्यालय	310
		डीम्ड विश्वविद्यालय	127
		राज्य निजी विश्वविद्यालय	143
		केन्द्रीय मुक्त विश्वविद्यालय	1
		राज्य मुक्त विश्वविद्यालय	13
		राष्ट्रीय महत्व के संस्थान	68
		राज्य विधायी अधिनियमों के तहत संस्थान	5
		अन्य	3
		कुल	712
	महाविद्यालय		36671
	स्वायत संस्थान	तकनीकी डिप्लोमा स्तर के	3541
		स्नात्कोत्तर डिप्लोमा स्तर के	392
		डिप्लोमा स्तर नर्सिंग के	2674
		डिप्लोमा स्तर शिक्षक प्रशिक्षण के	4706
		मंत्रालय के अधीन संस्थान	132
		कुल	11445

(2) विद्यालय नहीं जा सकने वाले अधिकांश बच्चे वंचित और गरीब वर्गों से आते हैं, उनकी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए विशेष प्रकार की शिक्षा द्वारा उनका समुचित विकास किया जा सकता है, इसके लिए प्रयास किया गया है।

(3) शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए विभिन्न निजी विद्यालयों, संगठनों और लोगों से सहयोग लिया जाना चाहिए और बालकों को विद्यालय तक पहुंचाने की व्यवस्था का प्रयास इस दिशा में किया गया है।

(4) विद्यालय नहीं जाने वाले बालक विभिन्न तरह की दुर्बलताओं के शिकार हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें वयस्कों का उचित संरक्षण नहीं मिलता है, वे मजदूरी और भीख मांगने जैसे कार्यों में लगे रहते हैं, इसलिए शिक्षा के माध्यम से इन बच्चों का विकास करने की योजना है। दोपहर भोजन योजना से ये बच्चे विद्यालय की ओर उन्मुख हुए हैं।

(5) पर्वतीय और दुर्गम क्षेत्रों में शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए विभिन्न तरह के प्रयास किये गये हैं, जैसे दोपहर भोजन योजना और अन्य आकर्षक योजनाएं, ताकि बालक विद्यालय तक पहुंच सकें।

(6) नियमित तौर विद्यालयों में छात्रों की उपस्थिति को बनाने के लिए अनेक तरह की योजनाएं चलायी गयी हैं और इससे छात्रों की उपस्थिति भी विद्यालयों में बढ़ी है, जैसे– बिहार में साईकिल योजना, वित्तीय सहयोग और अन्य तरह की प्रोत्साहन राशि के माध्यम से प्रयास किया गया है।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के संदर्भ में कई बातें शामिल हैं, जैसे शिक्षा के सार्वभौमीकरण का अर्थ शिक्षा का केवल समान अवसर ही नहीं देना है, अपितु ऐसी स्थितियों का निर्माण करना है, जिसमें समाज के सुविधावंचित वर्गों के बालक इन अवसरों का लाभ भी उठा सकें। शिक्षा का समान अवसर ही बालकों को प्रदान करना शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य नहीं है, अपितु शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना भी शिक्षा का लक्ष्य है, जिसमें पाठ्यचर्या से लेकर शिक्षा की भाषा तक शामिल है। समाज की अपवर्जित श्रेणियां जिसमें निःशक्त और बालिकाएं शामिल हैं, शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य है। शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के क्रम में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की बालिकाओं को विद्यालय में भेदभाव का सामना नहीं करना पड़े, इसकी व्यवस्था भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण में शामिल है। महिलाओं की स्थिति में सुधार लाकर शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया जा सकता है, केवल विद्यालय में बालकों के समान बालिकाओं के नामांकन कर देने से उनकी स्थिति में विशेष सुधार नहीं होगा और शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य भी पूरा नहीं हो सकता है।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के मार्ग में आने वाली समस्याएं (Problems towards Universalization of Education)

शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में आने वाली प्रमुख समस्याओं को अनेक प्रकार से समझा जा सकता है। सर्वप्रथम भारत की विशाल आबादी विभिन्न समाजों, संस्कृतियों, भौगोलिक और आर्थिक स्थितियों में रहती है और उसमें लैंगिक भेदभाव विकट स्थिति पैदा करता है। लड़के की अपेक्षा अभी भी लड़कियों को निम्न शिक्षा प्रदान की जाती

टिप्पणी

है और शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय में अंतर देखा जाता है। सरकारी स्तर पर शिक्षा के सार्वभौमीकरण पर किये जाने वाले व्यय और प्रतिबद्धता में कमी देखी जाती है, इस कारण शिक्षा अपने अपेक्षित परिणाम तक नहीं पहुंच पा रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले और शारीरिक रूप से निःशक्त बालक भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में एक प्रमुख समस्या है। अपेक्षित दूरी पर विद्यालयों का नहीं होना और विद्यालयों में समुचित सुविधाओं का अभाव भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में एक बड़ी समस्या है। इन विद्यालयों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा की लोगों के सामान्य जीवन और आजीविका में अधिक भूमिका नहीं होने से कई बार लोग शिक्षा की ओर कम मुखातिब होते हैं, ऐसे में शिक्षा के सार्वभौमीकरण में समस्या पैदा होती है।

जहां तक प्रचलित शिक्षा का सवाल है, इसे पूरी तरह से दोषरहित नहीं कहा जा सकता है, इसमें कई सारी कमियां दृष्टिगोचर होती हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. भारत में प्राथमिक शिक्षा व्ययसाध्य है।
2. इस शिक्षा पद्धति का संबंध भारत की सांस्कृतिक परंपराओं से नहीं है।
3. शिक्षा सहयोग की अपेक्षा प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करती है।
4. इस पूरी शिक्षा व्यवस्था में हस्तकार्य अथवा श्रम को उतना श्रेष्ठ नहीं माना जाता है जितना अन्य कार्यों को समझा जाता है।
5. पूरी शिक्षा व्यवस्था जरूरत से ज्यादा पुस्तकीय है, व्यावहारिक तौर पर ज्ञान प्रदान करना इस शिक्षा पद्धति की विशेषताओं में शामिल नहीं है, जो इसकी एक प्रमुख कमी मानी जा सकती है।
6. प्राथमिक स्तर पर प्राप्त शिक्षा का लोगों के व्यावहारिक जीवन से अधिक संबंध अथवा उपयोग नहीं होता है, जिस कारण बहुत जल्दी छात्र इस ज्ञान को विस्मृत कर देते हैं।
7. भारत में शिक्षा के क्षेत्र में दो वर्गों का उदय हो गया है, जिसमें एक वर्ग अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा–लिखा होता है तो दूसरा वर्ग स्थानीय भाषा में पढ़ा–लिखा और अंग्रेजी भाषा में पढ़ा–लिखा वर्ग स्थानीय भाषा में अध्ययन करने वाले छात्रों को निम्न दृष्टि से देखता है, जो कि अनुचित है।
8. इस शिक्षा पद्धति में प्राचीनकाल की गुरु–शिष्य परंपरा टूट गयी है और इन दोनों का रिश्ता अधिक व्यावसायिक अथवा औपचारिक हो गया है।
9. यह शिक्षा व्यवस्था छात्रों को निकम्मा बनाती है, क्योंकि इसको ग्रहण करने के पश्चात छात्रों को व्यावहारिक तौर पर कोई रोजगार मिलने की गारंटी नहीं होती है।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के एक कार्यक्रम के तौर पर प्रारंभ की गयी सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत वंचित वर्ग अथवा सुविधावंचित समूहों के बालकों को निम्न प्रकार से श्रेणीबद्ध किया गया है, यह सुविधावंचित वर्ग शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में एक प्रमुख समस्या बनकर उभरते हैं–

(1) सुविधावंचित शहरी बच्चे।

(2) बाल श्रमिक जिसमें बंधुआ बाल श्रमिक और घरेलू नौकर दोनों शामिल हैं।

टिप्पणी

(3) चरवाहे और यायावर समुदाय के बालक।

(4) भूमिहीन कृषि मजदूरों के बच्चे।

(5) सिविल संघर्ष से प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले बालक।

(6) मैला ढोने वाले और अन्य निम्न व्यवसायों में संलग्न परिवारों के बच्चे।

(7) वंचित क्षेत्रों में रहने वाले बच्चे जो ईंधन आदि ढोकर लाते हैं और घरेलू कार्य करते हैं।

(8) मलिन बस्तियों में रहने वाले निर्धन परिवारों के बच्चे।

(9) वनवासी, दुर्गम स्थानों, रेगिस्तानी पुरवों में रहने वाले परिवारों के बच्चे।

(10) भ्रमणशील या मौसमी मजदूर जो विभिन्न क्षेत्रों में घूमकर कार्य करते हैं, उनके बच्चे।

स्कूली शिक्षा में पहुंच

किसी भी शिक्षा प्रणाली की नींव शिक्षा में प्रवेश और नामांकन बिंदु होते हैं। शिक्षा की पहुंच मूल रूप से शिक्षा में सुविधाओं और अवसरों को दर्शाती है। पहुंच, शिक्षा में नामांकन के लिए एक पहली शर्त है। स्कूली शिक्षा के लिए पहुंच से अभिप्राय बच्चों के लिए स्कूल की अच्छी शिक्षा प्रणाली से है। इस प्रावधान को बच्चों के लिए आवश्यक विद्यालयों की संख्या, विद्यालयों में अवसंरचनात्मक सुविधाओं, बच्चों के घर से उचित दूरी पर विद्यालयों की उपस्थिति, विद्यालयों में पर्याप्त शिक्षण–अध्ययन सुविधाओं आदि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। स्कूलों में पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने के बाद अगला बिंदु यह देखना है कि स्कूलों में बच्चे पर्याप्त संख्या में हैं या नहीं।

भारतीय संविधान (2002) का 86वां संशोधन छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मौलिक अधिकार के रूप में शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) उल्लेख करता है कि छह से चौदह वर्ष की आयु समूह के सभी बच्चों को पड़ोस के स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए लिंग, जाति, वर्ग, रंग, संस्कृति, जन्म स्थान या निवास आदि में अंतर के अतिरिक्त सभी बच्चों के लिए शिक्षा में समान पहुंच का होना आवश्यक है।

समग्र शिक्षा (एक व्यापक कार्यक्रम जो तीन योजनाओं अर्थात सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान और शिक्षक शिक्षा को समाहित करता है) और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान जैसे सरकार के कई अन्य फ्लैगशिप कार्यक्रम सहित अन्य कई योजनाएं विभिन्न स्तरों पर जैसे बुनियादी शिक्षा से उच्च शिक्षा के स्तर तक शिक्षा में पहुंच, नामांकन संबंधी उपलब्धियों की वृद्धि के लिए देश में परिचालन में है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों में पहुंच को बढ़ाने की आवश्यकता है। विशेष निवास स्थान या क्षेत्र, लिंग, शारीरिक विकार, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि से आने वाले वंचित वर्गों के छात्रों के लिए उनकी शिक्षा में पहुंच और नामांकन के लिए उचित प्रावधान किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए शारीरिक रूप से विकलांग छात्र को एक बाधा मुक्त संस्थागत वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए जहां उसे/उसके

आवागमन तथा विभिन्न स्कूली सुविधाओं तक पहुंच में बहुत अधिक कठिनाई न हो। एक बालिका को अपने लिंग के कारण किसी शैक्षणिक संस्थान में असुरक्षा की भावना महसूस न हो तथा उसे किसी भी प्रकार का लाभ प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। कई बार हम देखते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों या भौगोलिक रूप से वंचित पिछड़े क्षेत्रों के छात्रों में शिक्षा की पहुंच बहुत कम है। उनका नामांकन भी कम है। इसलिए, सभी श्रेणियों के बच्चों के लिए शिक्षा में पहुंच और नामांकन की समता और समानता बनाए रखने की आवश्यकता है।

पहुंच में आने वाली बाधाएं

शिक्षा में बढ़ती हुई पहुंच के रास्ते में अनेक प्रकार की बाधाएं पाई जाती हैं। यहां हम पहुंच में आने वाली कुछ महत्वपूर्ण बाधाओं पर चर्चा करेंगे–

संस्थानों की अवस्थिति : शैक्षणिक संस्थानों के आसपास मलिन बस्तियां, शैक्षिक संस्थानों तक जाने के लिए खराब मार्ग, शैक्षणिक संस्थानों से छात्रों के निवास स्थान की बहुत अधिक दूरी आदि शिक्षण संस्थानों में छात्रों के नामांकन में कमी का कारण बनते हैं, जिससे शिक्षा की पहुंच में बाधा उत्पन्न होती है।

संस्थानों की संख्या में कमी : यदि शिक्षण संस्थानों की संख्या छात्रों की मांग के लिए आवश्यक संस्थानों की संख्या से कम है, तो यह छात्रों के समग्र नामांकन को प्रभावित करता है। यदि भौगोलिक रूप से वंचित और दूरदराज के क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना नहीं की जाती है, तो उन क्षेत्रों में शिक्षा की पहुंच में कमी आती है।

संस्थानों में खराब सुविधा : शिक्षक कक्षाओं, शिक्षण–अधिगम सामग्री, शिक्षण अधिगम प्रक्रियाएं, प्रयोगशालाएं, खेल के मैदान, स्वच्छता, पेयजल इत्यादि की खराब गुणवत्ता भी संस्थानों में प्रवेश लेने के लिए छात्रों को बड़ी संख्या में आकर्षित नहीं कर सकती।

परिवार की खराब स्थितिः एक गरीब परिवार में, बच्चे अपने परिवार को आर्थिक रूप से सहायता देने के लिए कम आयु में ही काम करना शुरू कर देते हैं और इसी वजह वे शायद ही कभी शिक्षण संस्थानों में जा पाते हैं।

महंगी शिक्षा : प्रारंभिक चरण को छोड़कर, अन्य सभी चरणों जैसे– माध्यमिक चरण, उच्च माध्यमिक चरण आदि में शिक्षा महंगी होती जाती है। यहां तक कि पब्लिक स्कूलों में भी प्रारंभिक शिक्षा महंगी होती है। जिसके कारण यह बहुत से छात्रों की पहुंच से बाहर हो जाती है।

घरेलू काम का दबाव : कुछ परिवारों जैसे– वृद्ध माता–पिता का परिवार, एकल परिवार, गरीब परिवार आदि के बच्चे घरेलू कामों में व्यस्त रहते हैं या बहुत सी परिस्थितियों में पैसा कमाने में व्यस्त रहते हैं। वे अपने परिवार के सदस्यों की मदद करने के लिए आय के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं और इसलिए वे शैक्षणिक संस्थानों की पहुंच से दूर होते हैं।

माता–पिता की अशिक्षा और जागरूकता की कमीः बहुत से माता–पिता अपनी अशिक्षा और शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी के कारण अपने बच्चों की शिक्षा को

टिप्पणी

महत्व नहीं देते हैं। ऐसे माता–पिता अपने बच्चों को शिक्षण संस्थानों में भेजने की बजाय घरेलू गतिविधियों, व्यवसाय आदि में संलग्न करते हैं।

सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंड : परिवार के सदस्यों के अंध–विश्वास, अविश्वास इत्यादि से संबंधित सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंड परिवार के बच्चों की शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए बहुत सी संस्कृतियों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक लड़की के स्थान पर एक लड़के को प्राथमिकता दी जाती है। इसके कारण भी शिक्षा की पहुंच में कमी आती है।

पहुंच की रणनीतियां

शिक्षा में पहुंच को बढ़ाने के लिए, कई रणनीतियों को अपनाया जा सकता है। इनमें से निम्न शिक्षण संस्थानों में पहुंच को बढ़ाने के लिए उपयोगी हैं–

1. आवश्यकतानुसार शिक्षण संस्थानों की संख्या स्थापित करना।
2. स्कूल से बाहर के बच्चों के लिए आयु–उपयुक्त प्रवेश सुविधा प्रदान करना।
3. ग्रामीण क्षेत्रों, मलिन बस्तियों, पर्वतीय क्षेत्रों, जंगलों आदि जैसे वंचित क्षेत्रों के बच्चों के लिए शिक्षा में विशेष प्रावधान करना।
4. शैक्षिक संस्थानों में पर्याप्त सुविधाएं बनाना जिनमें भौतिक आधारभूत संरचना (जैसे भवन, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, फर्नीचर आदि) शिक्षण–अधिगम सामग्री, शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया, छात्रों का आकलन इत्यादि।
5. औपचारिक शिक्षा के लिए अन्य वैकल्पिक तरीके आरंभ करना जैसे दूरस्थ शिक्षा, गैर–औपचारिक शिक्षा, खुली शिक्षा आदि ताकि उन छात्रों की शैक्षिक मांगों को पूरा किया जा सके जो औपचारिक शिक्षा में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।
6. छात्रों के लिए शिक्षा को किफायती बनाना तथा इसके अतिरिक्त शिक्षा के लिए पर्याप्त धन दिया जाना चाहिए।
7. माता–पिता को अपने बच्चों की शिक्षा के बारे में जागरूकता और परामर्श प्रदान करना।
8. मोबाइल शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना करना।

प्रतिधारणा की भूमिका

देश के हर कोने में विद्यार्थियों को विद्यालय में बनाए रखना सबका नामांकन करने का अगला कदम है। सब विद्यार्थियों को विद्यालय में बनाए रखने का तात्पर्य है कि बच्चे आवश्यक रूप से विद्यालय में दाखिला लेने के बाद अपनी शिक्षा ज़ारी रखें। अगर कोई बच्चा अपने पाठ्यक्रम को पूरा किए बिना प्राथमिक विद्यालय को छोड़ता है, तो देश के हर कोने तक प्राथमिक शिक्षा को पहुंचाने का विचार असफल हो जायेगा। अन्य शब्दों में, सब विद्यार्थियों को विद्यालय में बनाए रखने का तात्पर्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक बच्चा हर साल बिना गत्यावरोध के नियमित रूप से प्रगति करे। अपव्यय का तात्पर्य है पाठ्यक्रम की समाप्ति से पूर्व किसी चरण पर कक्षा या विद्यालय से विद्यार्थियों का पहले ही निकल जाना। अपव्यय एवं गत्यावरोध पर वर्ष 1929 में हर्टाग समिति के द्वारा पहली बार परिचर्चा की गई थी।

शिक्षा में विद्यार्थियों की विफलता के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों को विद्यालय में बनाए रखने पर विचार करना पड़ता है। इस गत्यावरोध से अंततया अपव्यय संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं अर्थात देश के लिए शिक्षित मानवशक्ति उत्पन्न करने के लिए निवेशित संसाधनों का व्यर्थ होना। अगर कोई बच्चा अपनी शिक्षा को पूर्ण किए बिना विद्यालय को छोड़ देता है, तो इसे शिक्षा दर्शन की शब्दावली में अपव्यय कहा जाता है। अन्य शब्दों में, अपव्यय का तात्पर्य है विद्यालय छोड़ने वालों की संख्या। अपव्यय के कारणों के विभिन्न प्रकार हैं जिनमें विद्यालय और घर के अनुचित माहौल शामिल हैं। इमारत, पुस्तकें एवं अन्य अध्ययन सामग्री जैसी सुविधाओं का अभाव, माता–पिता का अशिक्षित तथा अज्ञानी होना, शिक्षक की ओर से बरती गई ढीलाई या बेपरवाही, असंतुलित विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात, जनता की गरीबी, बच्चों के लिए कम समय और कम अध्ययन साधनों की उपलब्धता। सामाजिक रूप से बालिकाओं को विद्यालय नहीं भेजना, बाल विवाह, यह मानसिकता कि शिक्षा कुछ नहीं प्रदान करती है और साथ में बच्चों एवं घर या कहीं और काम करने के महत्व को नष्ट करती है आदि शिक्षा में विद्यार्थियों की उचित प्रगति को भी प्रभावित करते हैं।

दूसरी ओर, अगर कोई विद्यार्थी किसी कक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए आवश्यक समय से अधिक समय लेता है, तो इसे गत्यावरोध कहा जाता है। अन्य शब्दों में गत्यावरोध को किसी मानक की पूर्ति करने में असफल रहना भी कहा जा सकता है। गत्यावरोध छोटी कक्षाओं में अधिक है तथा वरिष्ठ कक्षाओं में कम होता जाता है। गत्यावरोध के अनेक प्रकार के कारण हो सकते हैं। उनमें से कुछ की सूची नीचे प्रस्तुत है–

- अस्वस्थ वातावरण अर्थात विद्यालय में बच्चों के साथ शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों के सौहार्दपूर्ण, उपयुक्त, रुचिपूर्ण, आकर्षक एवं न्यायोचित व्यवहार का अभाव।
- बड़ी एवं छोटी आयु के नए विद्यार्थी एक साथ बैठते हैं।
- विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थी एक साथ बैठते हैं।
- बच्चों के झूठ बोलने, धूम्रपान करने, चोरी करने की आदतें अन्य विद्यार्थियों को भी खराब करती हैं।
- अनुपयुक्त पाठ्यक्रम– पारंपरिक, थकाऊ (उबाऊ तथा नीरस), अवैज्ञानिक एवं अमनोवैज्ञानिक पाठ्यक्रम।
- व्यावहारिक कौशल की बजाय पुस्तक के पहलुओं पर अधिक ज़ोर देना।
- विद्यार्थियों को अक्सर शिक्षक के साथ स्वतंत्र रूप से एवं स्वस्थ संवाद करने का अवसर नहीं प्रदान किया जाता है।
- पढ़ाने की त्रुटिपूर्ण अवधि– शिक्षक अव्यवस्थित, कठोर, अप्रशिक्षित है, शिक्षित भारत या मानवता के लिए कोई सपना नहीं होना, पढ़ाने की पुरानी विधियों का अनुसरण करना जिससे विद्यार्थियों के द्वारा शिक्षा को ग्रहण करना संघर्षपूर्ण कार्य बन जाता है।
- अनियमित उपस्थिति– विद्यार्थी और उनके माता–पिता अध्ययन में रुचि नहीं लेते हैं इसलिए वे विद्यालय में उपस्थित रहने के प्रति गंभीर नहीं होते हैं।

टिप्पणी

- कभी–कभी बच्चे कार्य पर जाते हैं और इसे वरीयता प्रदान करते हैं तथा विद्यालय नहीं आते हैं।
- दोषयुक्त परीक्षा प्रणाली– त्रैमासिक और वार्षिक परीक्षाएं ही विफलता एवं सफलता के एकमात्र मापदण्ड हैं।
- अन्य कारण– बच्चों का बुरा स्वास्थ्य। कुछ विशिष्ट शिक्षकों की घृणा, सहपाठियों के द्वारा चिढ़ाना, कठोर शारीरिक दण्ड।

सफलता

शिक्षा के सार्वभौमीकरण की सफलता के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(अ) **विद्यालयी सुविधाओं को सर्वव्यापी बनाना**– सन् 1950 से सर्वव्यापीकरण के महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं। किंतु जनसंख्या के विस्फोट ने सभी कोशिशों एवं उपलब्धियों को अर्थहीन बना दिया है। सीमित साधन होने के कारण हम जनसंख्या वृद्धि की गति के साथ विद्यालयी सुविधाओं को प्रदान करने में असमर्थ रहे। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में बसे 5,57,117 पूर्ण रूप से बसे तथा 48,107 अर्द्ध ग्राम में बसे थे। इसमें से 3,18,611 ग्राम ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या 500 से कम है। अखिल भारतीय द्वितीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार 2,40,048 ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए अभी हमें देश के सुदूरतम भागों में प्राथमिक विद्यालयों (मिडिल या जूनियर हाईस्कूलों) की व्यवस्था करनी है। इसके साथ ही उन छात्रों के लिए भी विद्यालयी सुविधाओं की व्यवस्था करनी है जो विद्यालय बीच में ही छोड़ देते है। लड़कियों के लिए भी पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था करनी है, क्योंकि बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहां की सामाजिक परंपराएं उनको लड़कों के साथ अध्ययन करने की अनुमति नहीं देती हैं। फिर भी आज के समय में विद्यालयों तक पहुंच को काफी हद तक सार्वभौमीकरण कर लिया गया है। सर्वशिक्षा अभियान एवं आर.टी.ई.– 2009 के अंतर्गत विद्यालयीन सुविधाओं का सार्वभौमीकरण किया जा रहा है।

(ब) **नामांकन को सर्वव्यापी बनाना**– शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लिए सभी क्षेत्रों के बच्चों के लिए केवल विद्यालयी सुविधाएं प्रदान कर देना ही आवश्यक नहीं है बल्कि इसके साथ–साथ नामांकनों की संख्या बढ़ाने का प्रयास करना भी अत्यंत आवश्यक है। नामांकन का सर्वव्यापीकरण न होने का प्रमुख कारण बच्चों की आर्थिक स्थिति का खराब होना भी है। जो अपने माता–पिता की जीविकोपार्जन में सहायता करते हैं, वे विद्यालय जाने की बजाय अपने परिवार की आय की पूर्ति के लिए खेतों, दुकानों तथा कारखानों आदि में काम करते हैं। लड़कियां जीविकोपार्जन में प्रत्यक्ष रूप से सहायता न देकर घर के कार्यों तथा छोटे भाई–बहिनों की देखभाल करती हैं। ऐसे बच्चे विद्यालय जाने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि इनको परिवार की दृष्टि से किसी न किसी कार्य के लिए आवश्यक समझा जाता है। इसके साथ ही माता–पिता की उदासीनता तथा अप्रासंगिक

टिप्पणी

एवं नीरस विद्यालय पाठ्यक्रम और सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराएं नामांकन के सर्वव्यापीकरण के मार्ग में बहुत बड़ी बाधाएं हैं।

(स) **छात्रों को निर्धारित अवधि तक स्कूल में रखना (ठहराव)** – स्कूल में हर बच्चे का नामांकन करने के बाद यह ध्यान देना आवश्यक है कि वह वर्षभर नियमित रूप से विद्यालय में उपस्थित होकर प्रगति करता रहे अर्थात् उसके शिक्षा ग्रहण करने में अवरोध न आने पाये और वह विहित आयु तथा कक्षा तक अपना अध्ययन पूरा किये बिना स्कूल बीच में न छोड़े। सर्वव्यापीकरण की प्रक्रिया में अपव्यय एवं अवरोध महत्वपूर्ण हैं। आप यह जानकर आश्चर्यचकित हो जाएंगे कि कक्षा 1 में प्रवेश करने वाले 100 बच्चों में से कठिनाई से 40 बच्चे ही कक्षा 6 पास कर पाते थे और इनमें से 25 बच्चे कक्षा 8 पूरा कर पाते थे। इस प्रकार कक्षा 5 तक 60 प्रतिशत और कक्षा 8 तक 75 प्रतिशत अपव्यय हो जाता था। शिक्षा में अवरोध छात्रों तथा उनके अभिभावकों पर बड़ा ही दूषित प्रभाव डालता था। यह स्वयं में अपव्यय है क्योंकि इससे समय, शक्ति और संसाधन पर्याप्त मात्रा में नष्ट हो जाते हैं। वर्तमान में सर्वशिक्षा अभियान व आर. टी.ई. – 2009 के कारण अपव्यय एवं अवरोधन में कमी आई है। प्रारंभिक स्तर पर होने वाले अपव्यय एवं अवरोध के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों की आयु–रचना में विषमरूपता,
2. उपस्थिति में अनियमितता;
3. कुछ राज्यों में यह प्रक्रिया प्रचलित है कि नये दाखिले स्कूल सत्र के पहले महीने में न करके पूरे वर्ष करते रहना;
4. कक्षाओं में बहुत ज्यादा भीड़–भाड़;
5. पुस्तकीय शिक्षा का ज्ञान;
6. विद्यालय में तथा बच्चों के पास शैक्षिक उपकरणों का अभाव;
7. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम छात्रों के जीवन तथा उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं से पूर्ण रूप से संबंधित नहीं होता है;
8. विद्यालय का आनन्दरहित वातावरण। आर.टी.ई. – 2009 में कक्षा का वातावरण आनन्ददायी रखने का सतत् प्रयास किया जा रहा है।
9. खेल–कूद में पढ़ाने की तकनीकें अपनाने में अध्यापकों की असमर्थता, जो बच्चों को रोचकता के साथ–साथ विद्यालयी जीवन में अभ्यस्त होने में सहायता दे सकती है;
10. शिक्षक की उदासीनता, उसकी अपर्याप्त तैयारी तथा शिक्षण की अनुचित प्रविधियां;
11. परीक्षाओं की अनुचित प्रणाली, जिसे वर्तमान समय में सतत् एवं व्यापक आकलन के द्वारा दूर किया जा रहा है।

(द) **शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार**– विद्यालयों में नियमित उपस्थित छात्र अपनी–अपनी कक्षाओं के लिए निर्धारित दक्षताओं का न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त करें तथा उपलब्धि स्तर में गुणात्मक सुधार हों। अतः सभी स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार का प्रयास किया जाना चाहिए। एक ऐसी शिक्षा गुणवत्ता विकसित करनी होगी जो श्रम के महत्व को आत्मसात करने में सहायक सिद्ध

टिप्पणी

हो, जो संप्रेषण क्षमता में वृद्धि करती हो, जो सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की भावना में वृद्धि करने वाली हो, जो आर्थिक विकास में सहायक हो, जो विश्वबंधुत्व का भाव उत्पन्न करती हो, जो आत्मविश्वास व गौरव की अनुभूति कराती हो और जो विघटनकारी शक्तियों का सामना करने के लिए तैयार कराती हो।

4.4.3 शैक्षणिक अवसरों की समानता : स्कूली शिक्षा में बढ़ रही असमानता

शिक्षा व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास का दायित्व भी निभाती है। यदि हर जगह शिक्षा का रूप समान हो, सब जगह एक–सी शिक्षा हो तो सभी का विकास निश्चित है। शिक्षा हर किसी की मागदर्शक होती है। समाज में एक जैसी शिक्षा के अवसरों को उपलब्ध कराने के लिए जिस प्रक्रिया को व्यवहार में लाया जाता है उसे समानीकरण कहा जाता है। भारत के राज्यों में शिक्षा को लेकर ऐसी समानता नहीं दिखती पर प्रगति के उचित सोपानों और आपसी सौहार्द को बनाए रखने के लिए कुछ प्रयास करने होंगे। समाजशास्त्रियों ने कुछ नियमों, उपनियमों का उल्लेख कर इसको एक स्पष्ट प्रारूप में प्रस्तुत किया है। सरकार और समुदाय की साझेदारी से इस लक्ष्य को हासिल करना असंभव नहीं है।

शैक्षणिक अवसरों की समानता

प्रत्येक नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का प्रथम और अनिवार्य अधिकार है। इसका महत्व तब और भी बढ़ जाता है जब इससे समानीकरण का दायित्व भी आ जुड़ता है।

समानता

समानता का अस्तित्व तभी हो सकता है जब असमानता को दूर कर दिया गया हो। परंतु वास्तविकता में असमानता पूर्णतया दूर नहीं हुई है। ''समाज में अवांछनीय या अस्वीकार्य मानी जाने वाली असमानता को दूर करना है।'' अतः समानता के शुद्धतावादियों का उद्देश्य दार्शनिक अर्थ के अनुसार पूर्ण समानता स्थापित करना नहीं है, बल्कि सामाजिक स्रोतों का समान रूप से वितरण करना है।

वर्तमान शिक्षा को समतावाद के लक्ष्य को हासिल करने के लिए एक महत्वपूर्ण सामाजिक स्रोत एवं माध्यम के रूप में देखा जाता है। शिक्षा को विभिन्न स्तरों पर व्यक्ति के सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने के एक माध्यम के रूप में देखा जाता है। इसे वांछित जीवन–स्तर प्राप्त करने के लिए एक मूलभूत मानवीय आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया जाता है। सामान्य, व्यावसायिक, तकनीकी एवं पेशेवर शिक्षा हेतु समान अवसर प्रदान किए जाने पर अधिकतर नागरिकों का जीवन–स्तर भी समान हो जाता है। प्रायः शिक्षा को समकारिता स्थापित करने वाला माना जाता है।

शैक्षणिक अवसरों की समानता से यह तात्पर्य है कि व्यक्ति की शिक्षा तक समान रूप से पहुंच हो। शैक्षणिक अवसरों की समानता समतावाद की विचारधारा का एक लक्ष्य है। यद्यपि, भारत में ही नहीं शैक्षणिक अवसरों की असमानता संपूर्ण विश्व में विद्यमान है।

शिक्षा आयोग (1964–1966) ने इस प्रकार समीक्षा की है– शिक्षा का मुख्य सामाजिक उद्देश्य समान अवसर प्रदान करना, पिछड़े या दलित वर्गों को सक्षम बनाना तथा व्यक्तियों द्वारा शिक्षा का उपयोग एक माध्यम के रूप में करके उनकी परिस्थिति में सुधार लाने हेतु प्रयास करना है। प्रत्येक समाज जो सामाजिक न्याय का आदर करता है, सामान्य व्यक्ति के जीवन में बहुत–सा सुधार लाने के लिए उद्विग्न है और समस्त उपलब्ध प्रतिभा को विकसित करता है, उसका जन–समुदाय के सभी वर्गों के लिए अवसर की उन्नत समानता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

शैक्षणिक संस्थानों के भिन्न स्तर

गरीब परिवारों के बच्चे अवमानक संस्थानों से शिक्षा ग्रहण करते हैं, जहां शिक्षक, शिक्षा साधन व सामग्रियां उचित रूप से उपलब्ध नहीं होते हैं। सामान्यतया, शहरी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों का स्तर ग्रामीण विद्यालयों एवं महाविद्यालयों से बेहतर होता है। शैक्षणिक संस्थानों के स्तर में भिन्नता अन्ततः विद्यार्थियों के स्तर में असमानता का कारण बनती है।

भारतीय संदर्भ में सकारात्मक विचार

शैक्षणिक अवसरों की समानता को सुनिश्चित करने हेतु तुरंत प्रभाव से कुछ उपाय करने आवश्यक हैं। ये उपाय सुविधाहीन समूहों, विकलांग बच्चों और कन्याओं की आवश्यकताओं एवं स्तर पर आधारित हो सकते हैं।

1. **प्राथमिक शिक्षा**– प्राथमिक शिक्षा द्वारा सभी लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस स्तर पर पाठ्यक्रम संबंधी किसी प्रकार की भिन्नता नहीं होनी चाहिए। प्राथमिक स्तर पर शैक्षणिक अवसरों की समानता के लिए किसी प्रकार के भेदभाव के बिना सभी बच्चों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किए जाने की आवश्यकता है।
2. **माध्यमिक शिक्षा**– माध्यमिक स्तर पर लड़कों एवं लड़कियों में व्यक्तिगत भिन्नताएं अधिक प्रकट होती हैं। अतः विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, रुचि एवं क्षमताओं का ध्यान रखने के लिए विविध पाठ्यक्रम आरंभ किए जाने चाहिए।
3. **उच्च एवं वृत्तिक शिक्षा**– उच्च शिक्षा एवं वृत्तिक शिक्षा के स्तर पर व्यक्तिगत क्षमता या उत्कृष्टता और गुणवत्ता व मानकता को बनाए रखने पर जोर दिया जाना चाहिए।
4. **अनुपूरक शिक्षा**– सुविधाहीन बच्चे एक प्रेरणारहित परिवेश में रहते हैं। वे बिना पूर्व प्रयोजनीय शिक्षण के प्राथमिक विद्यालयों में जाते हैं। प्राथमिक शिक्षा को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के लिए अनुपूरक शिक्षा आवश्यक है।

सामान्य विद्यालय तंत्र

शैक्षणिक अवसर में समानता के लिए प्राथमिक व माध्यमिक दोनों स्तरों पर एक सामान्य विद्यालय तंत्र का परिग्रहण करने की आवश्यकता होती है। यह एक ऐसा तंत्र होगा–

1. जो कि समस्त बच्चों के लिए बिना किसी भेदभाव के खुला रहेगा।
2. जहां दाखिला प्रतिभा पर आधारित होगा।
3. जो कि पर्याप्त सुविधाएं व यथोचित उत्तम मानकों को बनाए रखेगा।

टिप्पणी

4. जहां कोई शिक्षा शुल्क प्रभारित नहीं किया जाएगा।

5. जो कि मध्यम व निचले वर्गों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को पूरा करेगा।

शिक्षा तंत्र का राष्ट्रीयकरण शैक्षणिक अवसरों में समानता लाने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम होगा। देश में शिक्षा को विस्तारित व नियंत्रित करने के लिए केवल एक ही संस्था होनी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में किसी निजी संस्था को कार्य करने की अनुमति नहीं प्रदान की जानी चाहिए। केवल एक राष्ट्रीय शिक्षा तंत्र में ही समान शैक्षणिक सुविधाएं प्रदान की जा सकती हैं।

निशुल्क शिक्षा एवं छात्रवृत्ति

6–14 वर्ष के आयु समूह को निशुल्क एवं सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना संवैधानिक दायित्व है। संपूर्ण शिक्षा शिक्षण शुल्क रहित होनी चाहिए। समानता को सुनिश्चित करने के लिए गरीब व प्रतिभावान विद्यार्थियों के लिए निशुल्क पाठ्य–पुस्तकें एवं लेखन सामग्री उपलब्ध करवायी जानी चाहिए। चुनाव की विधि में सुधार लाते हुए बड़ी संख्या में ऋण–छात्रवृत्तियां प्रदान की जानी चाहिए।

समान शैक्षिक अवसर

वास्तव में शिक्षा के समान अवसर सामाजिक तंत्र में विद्यमान समानता की धारणाओं के साथ संबंधित है। वह सामाजिक तंत्र जिसका मनोरथ सब की उन्नति के लिए समान अवसर प्रदान करना होता है उसे समान शैक्षणिक अवसरों के लिए प्रावधान भी करने होते हैं।

औपचारिक शिक्षा लगभग अपरिहार्य बन गई है, क्योंकि आर्थिक उत्पादन में भागीदार बनने के लिए व्यक्ति को विशिष्ट कौशल की आवश्यकता होती है जो कि परिवार या अन्य संस्था के द्वारा अर्जित नहीं किया जा सकता। प्रगतिशील औद्योगिक समुदायों में औपचारिक शिक्षा की अपरिहार्यता के कारण अपने सभी नागरिकों के लिए, शिक्षा एक अधिकार के रूप में राज्य द्वारा प्रदान की जाती है।

औपचारिक संस्थाएं– विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय इस उद्देश्य हेतु गठित किए गए हैं।

आज अधिकतर सामाजिक समूहों में शिक्षा के अधिकार की समानता को सुनिश्चित करने के लिए दायित्व संभालने हेतु कई विधान अस्तित्वमान हैं। वस्तुतः शैक्षणिक अवसरों की समानता के आदर्श को स्थापित करने के कार्य को सिद्ध करने के लिए सामाजिक रूप से वंचित लोगों को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने हेतु औद्योगिक समुदायों के कल्याण वर्गों द्वारा विशेष प्रयत्न किए जा रहे हैं। भारत राष्ट्र जैसे विकासशील देशों ने विद्यालय स्तर पर सर्वभौम निशुल्क शिक्षा प्रदान करने का दायित्व स्वीकार किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक, वैज्ञानिक और धर्म–निरपेक्ष शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष नीति बनाई गई है। आधुनिक शिक्षा को अपनाने के लिए अनुसूचित जाति व जनजाति जैसे पारंपरिक रूप से वंचित वर्गों को प्रोत्साहित करने के लिए भेदभाव से संरक्षण की नीति को अपनाया गया है। अधिकतर सामाजिक समूहों में एक कानूनी ढांचे के गठन के बावजूद शैक्षणिक अवसर की गुणवत्ता जैसे विचार को सुनिश्चित रूप से स्थापित करना, औद्योगिक स्तर पर विकसित सामाजिक समूहों में भी दुराग्रह बना हुआ है।

टिप्पणी

बोर्डन पारिवारिक एवं समकक्ष व्यक्तियों के समूह–समन्वय से लागत व पाठ्यक्रम चुनाव के लाभों को जोड़ते हैं। उनके कार्यों में शिक्षा अवसरों की असमानता की समस्या के व्यावहारिक समाधानों के लिए महत्वपूर्ण विवक्षाएं हैं।

बोर्डन विवेचना करते हैं कि सामाजिक स्तर के गौण प्रभावों को दूर करने के दो तरीके हैं। प्रथम तरीके में शिक्षा तंत्र शामिल है। अगर यह समस्त विद्यार्थियों हेतु एक ही अनिवार्य पाठ्यक्रम प्रदान करता है तो तंत्र में पाठ्यक्रम के चुनाव एवं ठहरने की अवधि के विकल्प का तत्व समाप्त हो जाएगा। विद्यार्थी अधिक समय तक अपने पाठ्यक्रमों से प्रभावित नहीं होगा। वे कहते हैं कि शिक्षा तंत्र में वे शिक्षण बिन्दु जहां एक विद्यार्थी वैकल्पिक पाठ्यक्रमों को छोड़ सकता है या उनके मध्य चुनाव कर सकता है; जितने अधिक होंगे उतनी ही अधिक संभावना होगी कि विद्यार्थी विद्यालय छोड़ देगा या निम्न स्तरीय पाठ्यक्रमों का चुनाव करेगा। सभी विकसित औद्योगिक समुदायों में विद्यालय छोड़ने की आयु में धीरे–धीरे हुई वृद्धि के कारण शैक्षणिक अवसर की असमानता में कमी आयी है किंतु वर्तमान चलन यह दर्शाता है कि यह कमी कहीं अधिक न्यून दर पर आगे बढ़ेगी। बोर्डन द्वारा शैक्षणिक अवसर की असमानता की समस्या का दूसरा समाधान सामाजिक स्तरण का उन्मूलन है। वे मानते हैं कि असमानता व शैक्षणिक अवसर में कमी लाने का सबसे प्रभावी तरीका आर्थिक समानता की दिशा है। इसके फलस्वरूप वे तर्क देते हैं कि अवसर की समानता की कुंजी विद्यालय के भीतर नहीं बल्कि बाहर मौजूद है। बोर्डन का यह निष्कर्ष है कि शैक्षणिक अवसर की असमानता को समाप्त करने के लिए या तो समाज से आवश्यक रूप से सामाजिक स्तरण का अन्त करना होगा या इसके विद्यालय तंत्र को पूर्णतया एक–समान बनाना होगा।

शिक्षा में अवसरों की समानता से संबंधित समस्याएं

शिक्षा समानता स्थापित करने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में सहायता प्रदान करती है किंतु खुद शिक्षा तंत्र अस्तित्वमान असमानताओं से युक्त है। शैक्षणिक अवसरों की असमानताएं निम्न कारणों से उभरती हैं–

- गरीबी इसका मुख्य कारण है क्योंकि गरीब शिक्षा के खर्चों को वहन नहीं कर सकता है।
- ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों को शहरी क्षेत्रों के श्रेष्ठ सुविधाओं से युक्त विद्यालयों में अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।
- वे स्थान जहां प्राथमिक, माध्यमिक या महाविद्यालय सदृश संस्थाएं उपस्थित नहीं हैं, वहां के बच्चों को उन बच्चों की अपेक्षा समान अवसर प्राप्त नहीं होते हैं जिनके आस–पास ये सब संस्थान हैं।
- परिवेश में भिन्नताओं से भी व्यापक असमानताएं उत्पन्न हो जाती हैं। एक ग्रामीण या निम्नवर्गीय परिवार के बच्चों को उन बच्चों के समान अवसर प्राप्त नहीं होते हैं जो कि शिक्षित माता–पिता सहित उच्च वर्ग के परिवार से होते हैं।
- भारत में बृहत् लिंग विषमता है। यहां लड़कियों की शिक्षा को उतना प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है जितना कि लड़कों की शिक्षा को दिया जाता है।

टिप्पणी

- अनुसूचित जाति एवं जनजाति सहित पिछड़े वर्गों और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों की शिक्षा अन्य समुदायों या वर्गों के समकक्ष नहीं है।

4.4.4 स्कूली शिक्षा में समाजशास्त्रीय विश्लेषण और गुणवत्ता एवं समता

शिक्षा समाज को अपने उद्देश्य पूर्ति में सहायता प्रदान करती है। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा का स्वरूप समाज की आवश्यकताओं के अनुसार निर्मित होता है एवं शिक्षा के अनुरूप समाज का स्वरूप निर्धारित होता है। समाज शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित करता है जिससे उसकी इच्छा के अनुसार समाज का निर्माण हो सके। अतः समाज ही शिक्षा को निर्धारित करने का आधार है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज एवं शिक्षा का घनिष्ठ संबंध है।

किसी भी समाज की शिक्षा का स्वरूप समाज की व्यवस्था के अनुरूप होता है। शिक्षा के इसी स्वरूप को शिक्षा का सामाजिक आधार कहा जाता है। अतः शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ यह है कि शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा आदर्शों को आधार बनाते हुए की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में शिक्षा के द्वारा बालकों में सामाजिक भावनाओं तथा सामाजिक गुणों को विकसित किया जाए जिससे वे अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का पालन–पोषण कर सकें एवं कुशल नागरिक के रूप में अपने भार को स्वयं वहन करते हुए समाज की प्रगति में अधिक से अधिक योगदान दे सकें। इस प्रकार शिक्षा का सामाजिक आधार इस बात पर जोर देता है कि शिक्षा के द्वारा बालकों को सुयोग्य, सचरित्र एवं कर्मठ नागरिक बनाया जाए जिससे समाज उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता रहे। शिक्षा का समाजशास्त्र एवं सामाजिक शिक्षाशास्त्र को समझने से पूर्व समाज, समुदाय, समाजशास्त्र तथा शिक्षा के प्रत्ययों को समझना आवश्यक है।

शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

समाज के शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाने से समाजशास्त्र की एक नई शाखा बीसवीं सदी में कुछ ही वर्षों में विकसित हो गई जिसे शैक्षिक समाजशास्त्र की संज्ञा दी गई। शैक्षिक समाजशास्त्र समाजशास्त्र का एक ऐसा अंग है जो शिक्षा तथा समाजशास्त्र का समन्वित रूप है। ध्यान देने की बात है कि शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्र के उद्देश्यों को शैक्षिक प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किया जाए। अतः यह विज्ञान समाज की संपूर्ण संस्थाओं जैसे परिवार, स्कूल, समुदाय, धर्म, राज्य, समाचार पत्र, रेडियो एवं टेलीविजन आदि का अध्ययन करके व्यक्ति को एक श्रेष्ठ एवं सामाजिक प्राणी बनाने के लिए शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों, शिक्षण–पद्धतियों तथा अन्य सभी अंगों को निर्धारित करता है। इस प्रकार शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक विकास और उसकी उन्नति के लिए उन सभी सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं सामाजिक अंतः प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिनको जाने बिना शिक्षा के स्वरूप तथा शिक्षा की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में शैक्षिक समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली प्रक्रियाओं, जनसमूहों, संस्थाओं तथा समितियों का अध्ययन करता है। चूंकि अब शिक्षा से संबंध रखने वाली शाखा व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए

उत्तरदायी होती है, इसलिए शैक्षिक समाजशास्त्र को समाज के सभी नियमों, आदर्शों, साधनों, समस्याओं तथा परिस्थितियों एवं उनके व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करके समाज की उन्नति हेतु शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण–पद्धति, स्कूल, शिक्षक, अनुशासन तथा पुस्तकों आदि का स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है।

अमेरिका के जार्ज पायन को शैक्षिक समाजशास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने 1928 में अपनी पुस्तक 'दी प्रिंसिपल्स ऑफ एजुकेशनल सोशियोलॉजी' के माध्यम से शिक्षा पर सामाजिक जीवन के और सामाजिक जीवन पर शिक्षा के प्रभाव को स्पष्ट किया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि व्यक्ति को पूर्णरूपेण विकसित करने के लिए उस पर पड़ने वाली सामाजिक शक्तियों के प्रभाव का अध्ययन करना परम आवश्यक है। पायन के बाद इस क्षेत्र में अमेरिका के डीवी, स्नेडन, पीटर्स, बोल्टन, कुक तथा टाब्बा, फ्रांस के दुर्खीम, जर्मनी के मैक्स वेबर और इंग्लैंड के ओटावे ने विशेष कार्य किया। जॉन डीवी ने अपनी पुस्तकों 'दी स्कूल एंड सोसाइटी' तथा 'डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन' नामक पुस्तकों में शैक्षिक समाजशास्त्र के महत्व को स्वीकार करते हुए शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना है तथा बताया है कि शिक्षा की प्रक्रिया व्यक्ति द्वारा जाति को सामाजिक चेतना में भाग लेने से ही विकसित होती है। जब तक सामाजिक चेतना का अध्ययन नहीं किया जाएगा, उस समय तक शिक्षा का पूर्ण विकास होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतः शिक्षा के नियोजन और विकास के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक चेतना का विकास किया जाए और इसी के आधार पर शिक्षा का स्वरूप तथा उसके विभिन्न अंगों को निर्धारित करना चाहिए। यही शैक्षिक समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। शैक्षिक समाजशास्त्र में व्यक्ति, समाज, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक समूहों और सामाजिक वर्गों आदि का अध्ययन किया जाता है और यह देखा जाता है कि इन सबका मनुष्य के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है और फिर इस आधार पर शिक्षा का स्वरूप निश्चित किया जाता है। इस प्रकार यह शैक्षिक समाजशास्त्र की ही देन है कि शिक्षा अब ऐसी सामाजिक तथा प्रगतिशील प्रक्रिया बन गई है जिसके द्वारा सामाजिक नियोजन, सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक नवनिर्माण किया जाता है।

भिन्न–भिन्न विद्वानों द्वारा दी गई शैक्षिक समाजशास्त्र की परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं–

पायन के अनुसार, "शैक्षिक समाजशास्त्र से हमारा अभिप्राय उस विज्ञान से है जो संस्थाओं, सामाजिक समूहों और सामाजिक प्रक्रियाओं अर्थात उन सामाजिक संबंधों का जिनमें अथवा जिनके द्वारा व्यक्ति अपने अनुभवों को प्राप्त और संगठित करता है, का वर्णन और व्याख्या करता है।"

एलविन गुड के अनुसार, "शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात का वैज्ञानिक अध्ययन है कि व्यक्ति सामाजिक समूहों में किस प्रकार से रहते हैं, इन समूहों में रहकर वे किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं और इन समूहों में कुशलतापूर्वक रहने के लिए उनको किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है।"

ब्राउन के शब्दों में, "शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के सिद्धांतों को शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया पर लागू करता है।"

टिप्पणी

ओटावे के अनुसार, "शैक्षिक समाजशास्त्र की संक्षिप्त परिभाषा इस रूप में की जा सकती है कि वह शिक्षा और समाज के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन है।"

कार्टर के अनुसार, "शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के उन तत्वों का अध्ययन करता है जिनका शैक्षिक प्रक्रिया में महत्व है और विशेष रूप से उनका अध्ययन करता है जो सीखने की महत्वपूर्ण योजना और सीखने की क्रिया के नियंत्रण की ओर संकेत करते हैं।"

शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्य

हेरिंगटन के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं–

1. शिक्षक के कार्य का तथा सामाजिक प्रगति के लिए स्कूल के कार्य का समाज के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करना।
2. स्कूल के ऊपर प्रभाव डालने वाले सामाजिक तत्वों का अध्ययन करना।
3. सामाजिक तत्वों का अध्ययन करते हुए उनके द्वारा व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करना।
4. सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को समझते हुए शिक्षा के पाठ्यक्रम का सामाजिक दृष्टि से निर्माण करना।
5. जनतांत्रिक विचारधाराओं का ज्ञान प्राप्त करना।
6. शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनुसंधान की विधियों का प्रयोग करना।

शैक्षिक समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र एवं विषय वस्तु

शैक्षिक समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र एवं विषय वस्तु समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करने तक सीमित है। इसमें व्यक्ति–व्यक्ति तथा व्यक्ति और समाज के बीच चलने वाली अंतःक्रिया और उसके व्यक्तित्व के विकास में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न सामाजिक समूहों– घर, समुदाय, राज्य और विद्यालय आदि और बच्चों की शिक्षा में उनकी भूमिका का अध्ययन शैक्षिक समाजशास्त्र का मुख्य विषय क्षेत्र है। इसके अंतर्गत सामाजिक वर्गों और सामाजिक संस्थाओं और उनके शिक्षा पर प्रभाव और उन पर शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन भी इसकी सीमा में आता है। हमारी आधुनिक सभ्यता की देन समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन आदि का शिक्षा के क्षेत्र में क्या प्रयोग किया जा सकता है, इसका अध्ययन भी शैक्षिक समाजशास्त्र में किया जाता है। शैक्षिक समाजशास्त्र में समाज की वर्तमान आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का भी अध्ययन किया जाता है और उन्हें पूरा करने के लिए शिक्षा की प्रक्रिया पर विचार किया जाता है और इस सबके लिए पाठ्यचर्या में परिवर्तन के सुझाव दिए जाते हैं।

हम जानते हैं कि समाज परिवर्तनशील है। शैक्षिक समाजशास्त्र इस परिवर्तनशीलता का अध्ययन भी करता है और यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार शिक्षा द्वारा समाज में परिवर्तन आते हैं और किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन शिक्षा में परिवर्तन लाते हैं। शैक्षिक समाजशास्त्र में शिक्षा के औपचारिक अभिकरण (विद्यालय) और अनौपचारिक अभिकरण (परिवार, समुदाय, धार्मिक संस्थाएं और राज्य आदि) के आपसी संबंधों का

विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाता है और इस बात पर विचार किया जाता है कि इनके आपसी संबंधों को कैसे सुधारा जाए कि ये एक–दूसरे का सहयोग कर बच्चे की शिक्षा में अपना योगदान दें। इस प्रकार शैक्षिक समाजशास्त्र समस्त सामाजिक संगठनों, संस्थाओं और वर्गों को शिक्षा की प्रक्रिया में प्रयोग करने की दिशा में एक विशेष कार्य करता है।

हमारे जैसे लोकतांत्रिक देश में शैक्षिक समाजशास्त्र लोकतंत्रीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा के प्रयोग पर विस्तृत रूप से विचार करता है। इसमें विद्यालय और समुदाय के आपसी संबंधों और विद्यालयों को सामुदायिक केंद्र बनाने की विधियों पर विचार किया जाता है और इनके अध्ययन से लोकतंत्रीय भावना के विकास की योजना तैयार की जाती है। शैक्षिक समाजशास्त्र में अध्यापक के महत्व और अध्यापन तथा विद्यार्थियों के आपसी संबंधों के बारे में भी विचार किया जाता है। यह सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक परिवर्तन, दोनों ही दशाओं का अध्ययन करता है और शिक्षा द्वारा इन दोनों प्रक्रियाओं को सुचारू एवं संतुलित रूप में चलाने की विधियों पर विचार करता है। इस प्रकार शैक्षिक समाजशास्त्र संस्कृति के संरक्षण और विकास के लिए उचित शैक्षिक कार्यक्रम बनाने में हमारी सहायता करता है। आज हम शैक्षिक समाजशास्त्र के अभाव में उचित शिक्षा का विधान नहीं कर सकते।

शैक्षिक समाजशास्त्र का महत्व

शैक्षिक समाजशास्त्र के महत्व को भिन्न पंक्तियों द्वारा समझा जा सकता है–

1. शैक्षिक समाजशास्त्र व्यक्ति को सामाजिक प्राणी के रूप में मानकर अग्रसर होता है। यह बात प्राचीन काल में नहीं थी। प्राचीन भारत में जातीय भेद–भाव अधिक था। उस समय प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार नहीं था कि वह समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सके। उदाहरण स्वरूप प्राचीन भारत में जातीय भेद–भाव के कारण वेदों के अध्ययन करने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। वैसे ही शस्त्र विद्या का अध्ययन केवल क्षत्रिय लोग ही कर सकते थे। वर्तमान समय में हमारे देश की स्थिति बहुत बदल गई है। शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रभाव से अब प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपनी रुचि तथा क्षमता के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर सके। जाति–पाति, रंग–रूप तथा लिंग आदि के भेद–भाव अब किसी व्यक्ति के मार्ग में बाधा नहीं बन सकते।
2. शैक्षिक समाजशास्त्र संस्कृति के संरक्षण तथा विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। इससे व्यक्ति ऐसी संस्कृति की स्थापना करने के योग्य बन जाता है जो आधुनिक युग में अंतर्राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करने में सहयोग प्रदान कर सके।
3. शैक्षिक समाजशास्त्र ऐसे नियमों को निर्धारित करता है जो कि नियम और विधान स्थित रहते हुए समाज की सहायता करते रहते हैं। पर ध्यान देने की बात है कि जिन परंपराओं को स्वीकार किया जाए उनमें समाज द्वारा कुछ सुधार अवश्य किया गया हो। इससे परंपरा अपनी सुधरी हुई स्थिति में आगे बढ़ सकेगी।

टिप्पणी

4. शैक्षिक समाजशास्त्र की सहायता से व्यक्ति इस प्रकार की सामाजिक संस्थाओं को निर्मित करता है जिनमें किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं होता। वह जिस व्यवसाय में लग जाता है, उसी के अनुकूल बन जाता है। इससे समाज विकसित होता रहता है।
5. शैक्षिक समाजशास्त्र व्यक्ति को इस योग्य बनाता है कि वह समाज में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। यह विज्ञान अपने प्रभाव को वर्ग पर इस प्रकार से डालता है कि उसका प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होने के पश्चात समाज से समायोजन करने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करता। वह ऐसे कार्य करने लगता है जिनसे समाज दिन–प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहता है।
6. शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को इस योग्य बनाने का प्रयास करता है कि वह एक सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। इससे जनसमूह सामान्य जीवन को समझ जाते हैं तथा वे जो कुछ करते हैं, वह समाज के लाभ को दृष्टि में रखते हुए किया जाता है।

संक्षेप में शैक्षिक समाजशास्त्र समूहों को समझने, उनके निर्माण को समझने तथा उनकी क्रिया के संबंध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र की सीमाएं

शिक्षा में सामाजिक पक्ष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पर शिक्षा की प्रगति के लिए केवल सामाजिक पक्ष पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। वास्तविकता यह है कि शिक्षा के सामाजिक पक्ष से भी अधिक महत्वपूर्ण उसका दार्शनिक पक्ष है। इसका कारण यह है कि समाजशास्त्र केवल संस्थाओं, सामाजिक समूहों तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का ही अध्ययन करता है। यह विज्ञान इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि समाज कैसा होना चाहिए? इसके क्या उद्देश्य हैं? जीवन के क्या आदर्श हैं? जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है? तथा शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए? इन सभी प्रश्नों का उत्तर दर्शन (फिलॉसफी) देता है, समाजशास्त्र (सोशियोलॉजी) नहीं। इसके लिए हमें दर्शन का सहारा लेना पड़ता है। शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए व्यक्ति तथा समाज की मनोवैज्ञानिक स्थिति का ज्ञान होना परम आवश्यक है। दूसरे शब्दों में जब तक व्यक्ति तथा समाज की मनोवैज्ञानिक स्थिति का ज्ञान नहीं होगा उस समय तक शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता। अतः विधियों को प्रभावशाली बनाने के लिए मनोविज्ञान की परम आवश्यकता है। इस प्रकार शैक्षिक समाजशास्त्र अत्यधिक उपयोगी होते हुए भी उसकी अपनी सीमाएं हैं, किसी भी समाज की शिक्षा का नियोजन करने में हम केवल शैक्षिक समाजशास्त्र पर निर्भर नहीं रह सकते।

• गुणवत्ता

शिक्षा की गुणवत्ता के लिए शिक्षकों की क्षमता निर्माण के साथ–साथ उचित वातावरण भी एक महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षकों की कमी, उनके विधिवत प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को अनदेखा कर शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करना संभव नहीं है। देश में प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता के संदर्भ में राज्यों

की वार्षिक रिपोर्ट पर गौर करना आवश्यक है, जिसके अनुसार देश की पांचवीं कक्षा के आधे से अधिक बच्चे दूसरी कक्षा की किताब ठीक से नहीं पढ़ सकते। प्राथमिक और उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के लिए श्रेष्ठ एवं पर्याप्त शिक्षक और गुणवत्तायुक्त पाठ्यक्रम होने चाहिए; लेकिन अब तक ऐसा नहीं हो पाया है। सरकारी स्कूलों में ढांचागत सुविधाओं की कमी और शिक्षकों की नाकामी के चलते स्थितियां ऐसी हैं कि कोई भी सक्षम अभिभावक अपने बच्चे को वहां पढ़ाना नहीं चाहता। शिक्षा में गुणवत्ता की कमी बच्चों के बौद्धिक विकास में एक बड़ी बाधा बन कर उभरी है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा क्या है?

शिक्षा में गुणवत्ता होनी चाहिए, यह बात बार–बार दोहराई जाती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को आसान शब्दों में समझने के लिये हम कह सकते हैं कि "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मतलब ऐसी शिक्षा है जो हर बच्चे के काम आये। इसके साथ ही हर बच्चे की क्षमताओं के संपूर्ण विकास में समान रूप से उपयोगी हो।" यानी ऐसी शिक्षा हर बच्चे की वैयक्तिक विभिन्नता का ध्यान रखने वाली होगी। हर बच्चे के सीखने का तरीका अलग–अलग होता है। ऐसे में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हर बच्चे के सीखने के तरीकों को अपने में समाहित करने वाली होगी ताकि क्लास में कोई भी बच्चा सीखने के पर्याप्त अवसर से वंचित न रह जाये। इसके साथ ही हर बच्चे को विभिन्न गतिविधियों, खेल और प्रोजेक्ट वर्क के माध्यम से सीखने का मौका देने वाली भी होगी।

ऐसी शिक्षा में चीजों को समझने (अर्थ निर्माण) के ऊपर विशेष फोकस होगा। बच्चों को चर्चाओं के माध्यम से अपनी बात कहने और ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी का मौका मिलेगा। इस नजरिये से संचालित होने वाली कक्षाओं में गतिविधियों और विषयवस्तु में एक विविधता होगी। शिक्षक के नजरिये में लचीलापन होगा। वे हर बच्चे को साथ–साथ सीखने के अतिरिक्त खुद के प्रयास से भी सीखने का पर्याप्त मौका देंगे ताकि बच्चों का आत्मविश्वास बढ़े।

सीखने का बेहतर माहौल

क्लासरूम में पढ़ाई का काम सुचारु ढंग से होने के लिए बच्चों की बैठक व्यवस्था और कमरे में साफ–सफाई का होना भी जरूरी है। गंदे और आपाधापी वाले माहौल में किसी बच्चे के लिए अपनी पढ़ाई के ऊपर ध्यान केंद्रित करना संभव नहीं रह जायेगा। ऐसे में जरूरी है कि क्लास में पढ़ने का काम सुचारू ढंग से होने के लिए बुनियादी माहौल उपलब्ध हो।

जीवन कौशलों का विकास करने वाली

ऐसी शिक्षा में बच्चों के सामने समस्या समाधान की दिशा में सोचने वाली परिस्थितियां रखी जाएंगी ताकि बच्चा ऐसे जीवन कौशलों का विकास कर सके जो आने वाले भविष्य में उसके काम आयेंगे। इसके लिए क्लास में एक ऐसा माहौल होना जरूरी है जहां बच्चे भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करें और जहां उनकी रचनात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए भी पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों। स्कूल में ऐसे माहौल के लिए समुदाय के साथ अच्छी सहभागिता की जरूरत होगी क्योंकि बगैर समुदाय के सहयोग के ऐसे सकारात्मक माहौल का निर्माण करना स्कूल के लिए संभव नहीं है। स्कूल भी समुदाय का एक हिस्सा है। समुदाय की तरफ से मिलने वाले सकारात्मक सहयोग से

टिप्पणी

ही स्कूल में जेंडर के आधार पर होने वाले भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है। स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों को भावनात्मक संबल दिया जा सकता है। उन्हें आगे की शिक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है। भारत में भी बालिका शिक्षा के ऊपर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में बच्चों को चुनाव का अवसर दिया जाता है। ऐसे माहौल में एक शिक्षक सुगमकर्ता के रूप में काम करता है। कक्षा के केंद्र में बच्चा होता है। बच्चे का सीखना सबसे ज्यादा मायने रखता है। ऐसे में एक बच्चे को पूरा सम्मान मिलता है कि वह आत्मविश्वास के साथ क्लास में अपनी बात बगैर किसी झिझक व संकोच के कहे। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को परिभाषित करते हुए यूनिसेफ ने इसमें बहुत सारे पहलुओं का समावेश किया है, जिनका समुच्चय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा कहलाता है। उदाहरण के तौर पर इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण, परिवार और समुदाय के साथ–साथ स्वच्छता वाले पहलू का भी समावेश किया गया है। इसके मुताबिक बाल–केंद्रित तरीके से होने वाला शिक्षण ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है जिसमें अध्यापक एक सुगमकर्ता की भूमिका में होगा। स्कूल आने वाला बच्चा स्वस्थ होगा। सुपोषित होगा। कक्षा में भागीदारी और सीखने के लिए उसकी पूरी तैयारी होगी। इसके साथ ही बच्चे का परिवार और समुदाय शिक्षा जारी रखने में उसका सहयोग करेंगे। यानी वे बच्चे को स्कूल से ड्रॉप आउट नहीं होने देंगे।

बुनियादी कौशलों का विकास

स्कूल का माहौल बच्चे के स्वास्थ्य के लिए अनुकूल और सुरक्षित होगा। वहां जेंडर के आधार पर किसी बच्चे के साथ कोई भेदभाव नहीं होगा। यानी लड़के–लड़की को समान नजरिये से देखा जायेगा। इसके साथ ही संसाधनों व जरूरी सुविधाओं की प्रचुरता को भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का एक पैमाना माना गया है। शैक्षिक पहलू को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का पर्याय न मानकर एक आयाम माना गया है, जिसमें पाठ्यचर्या के अनुसार बनी अच्छी पाठ्य सामग्री से भाषा और अंकगणित के बुनियादी कौशलों का विकास करने की बात कही गई है। इसके साथ–साथ जीवन कौशलों के विकास को भी विशेष महत्व दिया गया है। ताकि बच्चा अपने अधिगम का इस्तेमाल सामान्य जीवन में कर सके।

बेहतर प्रबंधन

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का एक अहम पहलू शिक्षक प्रशिक्षण भी है। इसकी मान्यता है कि स्कूलों में बाल केंद्रित शिक्षण के तौर–तरीकों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। स्कूल और कक्षाओं का बेहतर प्रबंधन होना चाहिए। बच्चों के अधिगम (सीखने) को प्रोत्साहित करने के लिए कौशल आधारित आकलन का इस्तेमाल किया जाय ताकि अन्य बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव को कम किया जा सके। कौशल आधारित आकलन का संदर्भ सतत एवम व्यापक आकलन से लिया जा सकता है। राजस्थान के सरकारी स्कूलों में पहली से पांचवी कक्षा तक सतत एवं व्यापक आकलन का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसका उद्देश्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराना ही है। ताकि एक बच्चे का बहुआयामी विकास सुनिश्चित हो सके। आखिर में कह सकते हैं कि शिक्षा की व्यवस्था जटिल है और इसके राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भ हैं।

गुणवत्ता में कमी के कारण

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसकी गुणवत्ता और उत्कृष्टता को बनाये रखा जाए। यदि भारत की बात की जाए तो यहां की शिक्षा को विकसित देश अपनी शिक्षा की तुलना में कम आंकते हैं। भारत की शिक्षा में गुणवत्ता और उत्कृष्टता में कमी के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

(1) **शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता में कमी**– शिक्षण संस्थानों के प्रबंधन से लेकर प्रशासन और निरीक्षण की उचित व्यवस्था नहीं होने के कारण शिक्षा संबंधी गुणवत्ता और उत्कृष्टता में कमी देखने को मिलती है। प्राथमिक स्तर पर विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभाग और केन्द्रीय संगठनों के निर्देशों के अधीन विद्यालय अपना उल्लू सीधा करते हैं तो उच्च शिक्षा के स्तर पर राज्य स्तरीय विश्वविद्यालय यूजीसी और राज्य की नीतियों के बीच के अपने को लाभान्वित करना चाहते हैं। शिक्षा संबंधी इस तरह के असमंजस से शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता में भी कमी देखी जाती है। किसी एक ही योजना को पूरा करने के लिए विद्यालय और विश्वविद्यालय को दो स्तरों से गुजरना पड़ता है और दो स्तरों पर निगरानी से भी शिक्षण संस्थान कुछ सकारात्मक कार्य नहीं कर पाते हैं। भारत में उच्च शिक्षा की बात की जाए तो गुणवत्ता की दृष्टि से विश्व के 200 श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में भारत का एक भी विश्वविद्यालय शामिल नहीं है।

(2) **शिक्षकों की गुणवत्ता में कमी**– शिक्षकों की नियुक्ति करने की प्रक्रिया को उदार बनाया दिया जाता है, उनकी नियुक्ति के मानदंडों में ढीलापन शिक्षा के स्तर को प्रभावित करता है। शिक्षण व्यवसाय में अधिकांश योग्य व्यक्ति आना नहीं चाहते हैं इस कारण भी योग्य शिक्षकों का अभाव होता है। विभिन्न राज्यों में शिक्षकों की नियुक्ति के मापदण्डों में अंतर भी देखने को मिल जाता है। पुनः योग्य शिक्षक भी एक बार शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश कर लेने के बाद शिक्षक अपनी नौकरी को सुरक्षित मानते हुए अपनी गुणवत्ता का विकास नहीं करते हैं, इससे शिक्षा का स्तर निम्न हो जाता है।

(3) **छात्रों के प्रवेश मानदण्डों में विविधता**– देश के विभिन्न शिक्षण संस्थानों में छात्रों को प्रवेश देते समय उनकी योग्यता से लेकर खर्च तक के मानकों में अंतर देखने को मिलता है, जिस कारण विभिन्न शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता में अंतर हो जाता है और विभिन्न शिक्षण संस्थानों से डिग्रियों को लेकर निकलने वाले छात्रों की योग्यता पर शक किया जाता है। इस प्रकार किसी एक छात्र पर ही नहीं अपितु सभी छात्रों की योग्यता पर अंगुली उठायी जाने लगती है। भारत में दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में जहां शत–प्रतिशत अथवा 95 प्रतिशत से अधिक अंक लाने पर ही नामांकन सुनिश्चित हो पाता है, इससे देश के शेष पिछड़े राज्यों के बच्चों को इस विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं मिल पाता है। प्रवेश देने की इस पूरी प्रक्रिया में ग्रामीण क्षेत्र के छात्र पिछड़ जाते हैं और शिक्षा में अंतर बना रह जाता है। इस प्रकार भारत में ही शिक्षा की गुणवत्ता में विभिन्न राज्यों और स्थानों के छात्रों के मध्य अंतर देखने को मिलता है। यह अंतर पूरी शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करता है।

(4) **दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली**– हमारी शिक्षा व्यवस्था में छात्रों के ज्ञान का आकलन उनकी पाठ्यपुस्तकों में निहित ज्ञान को ही माना जाता है, जहां उनके अनुभव अथवा खोजों और चिंतन के लिए स्थान नहीं होता है, ऐसे में रटंत शिक्षा ही छात्रों को मिलती है। परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों में छात्र के आंतरिक चिंतन अथवा उसकी सृजनशीलता के लिए स्थान नहीं देकर केवल विषय से संबंधित निष्पक्ष सवाल पूछे जाते हैं, ऐसे सवालों से छात्रों में रुचि जाग्रत नहीं होती और अंततः उनका शिक्षा से मन ऊबने लगता है, यह शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।

(5) **व्यावहारिक ज्ञान पर जोर नहीं**– हमारी शिक्षा व्यवस्था की गंभीर कमी यह है कि यहां की पाठ्यपुस्तकों में व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक जोर नहीं दिया जाता है। शिक्षक केवल किताबी ज्ञान देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। ऐसे किताबी ज्ञान को छात्र समग्र तौर पर समझ नहीं पाता है। विद्यालय स्तर से ही व्यावहारिक ज्ञान की इस कमी के कारण छात्र प्राप्त ज्ञान को अधिक दिनों तक याद भी नहीं रख पाता है, इन सबसे शिक्षा का स्तर निम्न होता जाता है। प्राथमिक स्तर से ही छात्रों को चीजों को दिखाकर पढ़ाने का प्रचलन भारत में नहीं है, इसका गलत प्रभाव छात्रों के अधिगम पर पड़ता है, उसे अध्ययन से उब होने लगती है और वह पाठ को अधिक समय तक याद भी नहीं रख पाता है।

(6) **शिक्षण संस्थानों में उचित उपकरणों और संसाधनों की कमी**– हमारे शिक्षण संसाधनों में धन की कमी और भ्रष्टाचार के कारण धन की बंदरबांट से संसाधनों की कमी देखी जा सकती है। विद्यालयी स्तर से लेकर विश्वविद्यालय के स्तर तक पुस्तकालयों में मानक पुस्तकों की कमी और प्रयोगशालाओं में उपकरणों की कमी देखी जा सकती है। कुछ प्रयोगशालाओं में उपकरणों के होने पर भी छात्रों को प्रयोग करने के लिए उपलब्ध नहीं करवाये जाते हैं, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले भारत के बहुत से विद्यालय ऐसे हैं, जिनका अभी तक कोई भवन ही नहीं है, ऐसे विद्यालयों में छात्रों के पुस्तकालय और अन्य उपकरणों की व्यवस्था की बात करना बेमानी लगती है, जब पढ़ने के लिए क्लासरूम ही नहीं है तो फिर अन्य सुविधाओं की केवल कल्पना की जा सकती है।

(7) **उद्देश्यहीनता**– वर्तमान शिक्षा प्रणाली उद्देश्यहीन प्रतीत होती है। यदि सामान्य शिक्षा की बात की जाए तो यह किताबी शिक्षा तक सीमित है और वास्तविक जीवन से इसका कोई संबंध नहीं होता है। सामान्य शिक्षा प्राप्त छात्र सैद्धांतिक मूल्यों के साथ कहीं रोजगार पाने की स्थिति में नहीं होता है तो व्यावसायिक शिक्षा में तकनीकी का प्रशिक्षण तो दे दिया जाता है, परंतु मूल्यों की शिक्षा नहीं दी जाती है, जिसका परिणाम होता है कि आर्थिक और व्यावसायिक दृष्टि से आगे चलकर छात्र सफल हो जाते हैं, परंतु वे एक बेहतर मानव नहीं बन पाते हैं। इस प्रकार शिक्षा सामान्य शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा दोनों उद्देश्यहीन से हो गये हैं।

(8) **छात्र–शिक्षक अनुपात का समुचित पालन नहीं**– शिक्षण संस्थानों में छात्र–शिक्षक संख्या का अनुपालन नहीं किया जाता है। आंकड़ों में भले ही

सरकार यह दिखला दे कि विद्यालयों में छात्र शिक्षकों का अनुपात संतुलित है, परंतु व्यवहार में शिक्षक कक्षाओं में उपस्थित ही नहीं रहते हैं और एक–एक कक्षा में 100 से 200 छात्रों को एक साथ पढ़ना पड़ता है, जिसका सीधा प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ता है। शिक्षक अपने छात्रों पर समुचित तौर पर ध्यान नहीं दे पाते हैं और छात्रों को बेहतर शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती है।

(9) **निर्देशन और परामर्श का अभाव**– छात्रों में शिक्षा संबंधी कौन–सी योग्यता है ? वे किस क्षेत्र में बेहतर कर सकते हैं ? कौन–सा शिक्षण संस्थान उनकी विशेष आवश्यकताओं और आर्थिक स्थिति के अनुकूल है ? विषय विशेष के अध्ययन के बाद रोजगार के अवसर क्या हैं? इन विषयों के संदर्भ में छात्रों को सही निर्देशन और मार्गदर्शन नहीं मिल पाता है, जिस कारण वे किसी भी विषय और शिक्षण संस्थान में प्रवेश तो ले लेते हैं, परंतु उसमें जाकर दबाव में आ जाते हैं और इसका अंतिम परिणाम होता है कि उनकी शिक्षा का स्तर निम्न रह जाता है और वे कुछ खास नहीं कर पाते हैं।

- **समता**

इक्विटी शब्द सामाजिक न्याय की अवधारणा से निकला है जिसका अर्थ है समता। यह एक धारणा है, जिसके अंतर्गत कुछ चीजें हैं जो लोगों में होने का प्रतिनिधित्व करती है। सभी को बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का हक मिलना चाहिए। ताकि सभी को समान पुरस्कार व कार्य भार प्राप्त हो सके। किसी को भी विभिन्नता के आधार पर कार्य भार नहीं प्रदान किया जाना चाहिए। इस नीति का प्रयोग निष्पक्षता और लक्ष्यों की दिशा में न्याय निर्देशित करने के लिए किया जाना चाहिए।

शिक्षा में समता और समानता

शिक्षा में समानता को समता से पृथक नहीं देखा जा सकता। अन्य शब्दों में– समानता के बिना समता सार्थक नहीं हो सकती। ये परस्पर अत्यधिक निकटता से सम्बद्ध हैं। समता के बिना समानता की चर्चा ही नहीं की जा सकती। इसीलिये इन दोनों शब्दों का उल्लेख साथ में किया जाना आवश्यक है। यहां यह ज़ोर देना है कि इन दो शब्दों का प्रयोग संवैधानिक ढांचे के अनुरूप करना होगा।

शिक्षा में समता व समानता का आशय

समता का आशय है कि विधि के समक्ष प्रत्येक नागरिक अन्य नागरिकों के समान है। इसी कारण समता का महत्व यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जन्मजात योग्यताएं व प्रतिभाएं विकसित करने का समान अवसर प्राप्त हो। किसी व्यक्ति को 'सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने' से न रोका जाए (यदि ऊपर चढ़ने की योग्यता उसमें न हो तो अलग बात है)। लोकतंत्र में व्यक्तियों/समूहों में किसी भी आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए, वहां के समस्त नागरिकों को परस्पर समान अधिकार हों। इसका तात्पर्य हुआ–

- राज्य को नस्ल, सम्प्रदाय, जाति, लिंग, जन्मस्थली इत्यादि के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं करना है।

टिप्पणी

- विधि के समक्ष प्रत्येक को अन्यों के समकक्ष समझा जाए।
- अस्पृश्यता को पूर्ण निमूर्लित किया जाए।
- मौलिक अधिकारों, निर्वाचन में उतरने इत्यादि के संदर्भ में सब समान हों।
- प्रत्येक सम्प्रदाय को अन्य प्रत्येक सम्प्रदाय के समतुल्य माना जाए।
- साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से प्रत्येक नागरिक अपने सम्प्रदाय का अनुकरण कर पाए।

अब भी जो पिछड़े हैं उन्हें अन्य के समतुल्य स्तर पर उठाया जाए ताकि विषमता की खाई को पाटा जा सके एवं अविकसितों को विकसितों के समकक्ष विकसित किया जा सके। इस प्रयोजन से किन्हें विशेष सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए– अनुसूचित जनजातियां, अनुसूचित जातियां, पिछड़े वर्ग एवं नारियां व बच्चे।

इस प्रकार अधिकारों व अवसरों के दृष्टिकोण से समस्त व्यक्तियों संग समान व्यवहार किये जाने को समता कहते हैं। इसका तात्पर्य यह भी है कि किसी भी व्यक्ति को उसके अधिकार से वंचित न रखा जाना समता है। समता के अधिकार की व्यवस्था हमारे भारतीय संविधान में की गयी है परंतु विशेष रियायतें (सुविधाएं) अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़ी जातियों व वर्गों सहित स्त्रियों व बच्चों के लिये प्रदान की गयी हैं।

समानता का तात्पर्य यह हुआ कि व्यक्ति पक्षपात व पूर्वाग्रहयुक्त व्यवहार से स्वाधीनता प्राप्त हो। समदर्शिता को समानता में लागू किया जाता है क्योंकि समानता के बिना समता सम्भव नहीं। समानता तो समता की अनुपूरक/सम्पूरक है। इसका आशय यह हुआ कि उन सबको समान अंश विधिवत् उपलब्ध कराया जाए जो किसी न किसी कारणवश वंचित रहे हैं अथवा ऐसी स्थिति में नहीं रहे हैं कि उन सुविधाओं से लाभान्वित हो पायें जिनसे उन्हें विकसित जनों के समकक्ष लाया जा सकता है।

शिक्षा एवं भारतीय संविधान में समता एवं समानता या निष्पक्षता

भारतीय संविधान में समता के अधिकार को 'मौलिक अधिकार' के रूप में चिह्नित किया गया है।

विधि के समक्ष समता– अनुच्छेद 14 के अंतर्गत विधि के समक्ष समता अथवा विधियों की समतापूर्ण सुरक्षा का आश्वासन सबको दिया गया है। इसमें घोषित किया गया है– "राज्य द्वारा विधि के समक्ष किसी व्यक्ति की समता अथवा विधियों की समान सुरक्षा को नकारा नहीं जाएगा।"

भेदभाव नहीं– अनुच्छेद 15 में किन्हीं आधारों पर भेदभाव निषिद्ध किया गया है। सम्प्रदाय, नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थली के आधार पर किसी नागरिक से भेदभाव किये जाने का निषेध है। इस अनुच्छेद में सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करने का समान अधिकार भी सौंपा गया है।

अवसरों की समता– अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक रोज़गार के प्रसंगों में अवसर की समता के प्रति आश्वस्त किया गया है। इसमें घोषित किया गया है– "किसी भी नागरिक के सम्प्रदाय, नस्ल, जाति, भाषा इत्यादि के आधार पर उसे राज द्वारा संचालित किसी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश से रोका नहीं जाएगा, न ही इन आधारों पर राज्य–निधियां प्राप्त करने से दूर रखा जाएगा।"

अनुच्छेद 15 व 29– अनुच्छेद 15 में कहा गया है– "न तो इस अनुच्छेद में, न ही अनुच्छेद 29 की धारा(2) में राज्य को इससे रोका गया है कि यह नागरिकों के सामाजिकता व शैक्षणिकतया पिछड़े वर्ग अथवा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों की प्रोन्नति के लिये विशेष प्रावधान करे।"

अनुच्छेद 15(3) को इस प्रकार पढ़ते हैं– "इस अनुच्छेद में ऐसा कुछ नहीं है कि जिसमें राज्य को नारियों व बच्चों के लिये विशेष प्रावधान लाने से रोका जाएगा।" यह प्रावधान बालिकाओं के लिये पृथक संस्थानों के लिये किया गया था।

अस्पृश्यता का त्याग– अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता को निर्मूलित कर दिया गया है व किसी रूप में इसे रखा जाना निषिद्ध है।

मुक्त संस्थान का अधिकार : अनुच्छेद 30 में सब वर्गों को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि ये अपनी स्वयं की इच्छा से संस्थान खोल सकते हैं। इस अनुच्छेद में कहा गया है–

- "सम्प्रदाय व भाषा चाहे जो भी हो समस्त अल्पसंख्यकों को यह अधिकार है कि ये अपनी स्वयं की रुचि अनुरूप शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित व संचालित कर सकेंगे।"
- "राज्यों द्वारा सहायतानुदान के संदर्भ में किसी शैक्षणिक संस्थान से भेदभाव इस आधार पर नहीं किया जाएगा कि वह अल्पसंख्यक के प्रबंधनाधीन है फिर चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा भाषा का क्यों न हो।"

दुर्बल तबकों के लिये विशेष सुविधाएं : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों एवं स्त्रियों के लिये विशेष सुविधाएं उपलब्ध करायी जाने की अनुशंसा की गयी है। आरक्षण की सुविधा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों को प्रदान की गयी है।

अनुच्छेद 46 में लिखा गया है : "राज्य द्वारा जनता के दुर्बल तबकों के शैक्षणिक व आर्थिक हितों की विशेष देखरेख को बढ़ावा दिया जाना होगा, विशेषतः अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के तथा इन्हें सामाजिक अन्याय से एवं उत्पीड़न के समस्त रूपों से बचाना होगा।"

विकलांग बच्चे जनता का दुर्बल तबका है। इस प्रकार इनकी शिक्षा व आर्थिक उन्नयन संविधान के अनुच्छेद 46 के अंतर्गत शासन का उत्तरदायित्व बन गया है।

इस रीति में शिक्षा में समता व समानता प्रदान करने की दिशा में कार्य किया गया है ताकि कोई व्यक्ति शिक्षा के अधिकार से वंचित न रह जाए। भारतीय संविधान के उपरोक्त विभिन्न प्रावधानों से सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान भारतीय सामाजिक ढांचे में किसी व्यक्ति के सम्प्रदाय, जाति, वर्ग, लिंग इत्यादि के आधार पर उससे भेदभाव नहीं किया गया है वरन् लोकतंत्र में ऐसा प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से समता स्थापित की जाए व प्रदर्शित किया जाता है कि व्यक्तिगत समता के लोकतांत्रिक सिद्धांत के लिये सम्भावित सम्मान अधिकतम किया जाए। संक्षिप्ततया ऐसा कहा जा सकता है कि वर्तमान भारतीय सामाजिक ढांचे में–

- विधि के समक्ष सब व्यक्ति समान हैं।
- सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, लिंग अथवा जन्मस्थली के आधार पर नागरिकों के मध्य भेदभाव नहीं किया जाएगा।
- सार्वजनिक रोज़गार के प्रसंग में अवसरों की समता है।
- सर्वसाधारण आचार–संहिता लागू करने का प्रयास करते हुए समता को स्थापित किया जा चुका है।
- अस्पृश्यता, इत्यादि निमूर्लित करते हुए समता की स्थापना की जा चुकी है।
- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों एवं स्त्रियों को विशेष सुविधाएं उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है।
- 6 से 14 वर्षायु के समस्त बच्चों के लिये निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान करते हुए इस आयु–समूह के बच्चों संग समतापूर्ण व्यवहार किया गया है।
- साम्प्रदायिक, राज्यकीय व सामाजिक समता उपलब्ध है।
- शिक्षा पाने के समान अवसर सभी व्यक्तियों को प्रदान किये गये हैं। शिक्षा के द्वार सबके लिये खुले हैं।

समता का संकीर्ण अर्थ

संकीर्ण अर्थ में समता या इक्विटी का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति की आय व पर्यावरण की गुणवत्ता का एक न्यूनतम स्तर प्रदान करना है। हर समुदाय की संसाधनों एवं अवसरों की पहुंच बराबर होनी चाहिए। व्यक्ति या लोगों के समूहों को सरकार के कार्यों का परिणाम के रूप में समुदाय के बाकी लोगों की तुलना में एक से अधिक पर्यावरण के बोझ को ले जाने के लिए कहा जाना चाहिए। इक्विटी के लिए किसी के लिए भी लाभ या हानि की समानता होनी चाहिए। ताकि सभी की गुणवत्ता व जीवन स्तर में बराबरी की जा सके।

इक्विटी की अवधारणा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी देखा गया है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में कहा गया है कि इक्विटी (जन्मजात) गौरव व मानव परिवार

के सभी सदस्यों के बराबर है। तथा दुनिया में अधिकारों की मान्यता स्वतंत्रता की नींव और शांति है।

एक अवधारणा के रुप में इक्विटी माानव के सतत् विकास की एक मौलिक धारणा है जो भविष्य, पीढ़ियों की क्षमता, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए समझौता किये बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करती है। सतत् विकास की ब्रटलैण्ड आयोग की परिभाषा Inter generational इक्विटी पर आधारित है। उनके अनुसार, ''गरीबी केवल अपने आपमें एक बुराई है, लेकिन सतत् विकास के लिए सभी की बुनियादी जरुरतों को पूरा करने और सभी को समान अवसर के लिए एक बेहतर जीवन के लिए उनकी आाकांक्षाओं को पूरा करने की आवश्यकता है। देशों के लिए आर्थिक विकास के युग की आवश्यकता है। देश में बहुत गरीबी है अत; उनके लिए विकास को बनाये रखने के लिए संसाधनों को बराबरी से बांटने की जरूरत है।"

इक्विटी का शाब्दिक अर्थ– अमेरिकन लाइब्रेरी के अनुसार इक्विटी फ्रांसिसी भाषा का शब्द है जिसका लैटिन भाषा से सीधा संबंध है, जिसका अर्थ है बस या बराबर। शिक्षा के क्षेत्र में यह शैक्षणिक परिणामों की इक्विटी में सुधार के लिए आता है।

इक्विटी में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि शैक्षणिक परिणामों में मतभेद, धन आय, बिजली या सम्पत्ति में मतभेद का परिणाम नहीं है।

इक्विटी की विशेषताएं

1. इक्विटी में शिक्षा के परिणामों के लिए सभी को समान सुविधाएं व समान अवसर प्रदान किये जाएं।
2. सभी के लिए शिक्षा के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाएं।
3. विभिन्न सामाजिक समूहों में छात्रों को समान परिणाम प्राप्त हो।
4. शिक्षा के क्षेत्र में अवसर की समानता प्रदान की जानी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. लोकतंत्रीय शिक्षा के उद्देश्य हैं–
   (क) सर्वसाधारण के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना।
   (ख) नेतृत्व का विकास।
   (ग) जनतन्त्रात्मक नागरिकता की भावना का विकास।
   (घ) उपर्युक्त सभी।
6. स्कूली शिक्षा की पहुंच में आने वाली बाधाएं हैं–
   (क) संस्थानों की अवस्थिति (ख) संस्थानों की संख्या में कमी
   (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

4.5 पाठ्यचर्या की रूपरेखा : स्कूली शिक्षा नीतियां

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा संबंधित सरोकारों को माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा शिक्षा आयोग द्वारा मुखरित किया गया है। गांधी जी ने कहा था कि "बच्चे को परिवर्तित होते समाज परिदृश्य का एक अंग बनाने के लिए उसके आसपास के वातावरण का एक साधन के रूप में उपयोग किया जाए जिससे प्रत्येक बच्चा अपनी योग्यता व संभावनाओं की तलाश कर सके और दूसरे के साथ विश्व के पुनर्निर्माण के लिए काम कर सकें। शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन की प्रारंभिक पंक्तियों में झांका गया था कि भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षा में हो रहा है। अर्थात शिक्षा ग्रहण करने के लिए जिस वातावरण की आवश्यकता होती है वह मुख्य रूप से कक्षा में उपलब्ध होती है। किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा अपने भावी नागरिकों को दी जाने वाली शिक्षा–दीक्षा तथा संस्कारों पर ही प्रमुख रूप से निर्भर करता है। जो राष्ट्र अपनी भावी पीढ़ी को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध कराता है उसे उच्च आदर्शों व संस्कारों से परिपूर्ण करता है एवं त्याग व जनहित के लिए तैयार रहना सिखाता है वही राष्ट्र प्रगति के उच्चतम शिखर पर आसीन होता है एवं वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठा अर्जित करने में सक्षम होता है। शिक्षा आयोग ने अपने तत्कालीन पाठ्यक्रम की कटु शब्दों में आलोचना भी करते हुए कहा था कि यह पाठ्यक्रम संकुचित, कृत्रिम, पुस्तकीय सिद्धांत तथा विषयों की भरमार से युक्त है तथा अश्वशक्ति पर ज्यादा बल देता है। आयोग ने स्कूल पाठ्यक्रम का प्रारूप भी तैयार किया था। शिक्षा के दोनों आयोगों ने बदले हुए सामाजिक राजनीतिक संदर्भ में राष्ट्रीय विकास पर विशेष बल देते हुए गांधीजी के शिक्षा दर्शन के मुख्य बिंदुओं को विस्तार दिया। शिक्षा आयोग की अनुशंसा पर भारत सरकार ने 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की। विद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम सुधार के लिए भारत सरकार ने शिक्षा मंत्रालय से सन 1973 में एक पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति का भी गठन किया गया, इस समिति का 1974 में विस्तार भी किया गया। इस समिति ने पाठ्यक्रम सुधार के लिए एक दिशा पत्र तैयार किया जिस पर दिल्ली में 1975 में आयोजित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सम्मेलन पर विचार किया गया। तत्पश्चात राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) ने 1975 में एक दस्तावेज प्रकाशित किया। इस दस्तावेज में पाठ्यक्रम को स्कूल के द्वारा छात्रों को प्रदान किए जाने वाले समस्त शैक्षणिक अनुभवों का सावधानीपूर्वक तैयार किया गया समुच्चय बताया तथा उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि पाठ्यक्रम को स्तर विशेष या कक्षा विशेष की शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों, विषयगत शिक्षण उद्देश्य, अध्ययन के कोर्स व समय आवंटन शिक्षण अधिनियम अनुभवों, शिक्षण सामग्री तथा अधिगम परिणामों के आकलन और छात्रों, अध्यापकों और अभिभावकों के पोषण से संबंधित खोज अनिवार्य बताया। वर्ष 1975 की बात की चर्चा यानी कि सिलेबस संबंधी कार्य को जारी रखते हुए परिषद ने कुछ अध्ययन किए। वह परामर्श भी दिए और अपनी गतिविधियों के एक भाग की रूपरेखा भी तैयार की। इस गतिविधि का उद्देश्य था पूरे देश में गुणवत्ता के स्तर पर स्कूली शिक्षा को तुल्य अर्थात लगभग समान बनाना तथा देश की विविधता पर समझौता न करते हुए शिक्षा को राष्ट्रीय एकता का माध्यम बनाना। वर्ष 1976 तक भारतीय संविधान के अंतर्गत राज्य सरकारों को स्कूली शिक्षा संबंधी सभी निर्णय लेने का अधिकार शामिल था। इसके अंतर्गत उनके अधिकार क्षेत्र में पाठ्यचर्चा भी आती थी।

केंद्र केवल नीतिगत मुद्दों पर राज्यों का मार्गदर्शन कर सकता था। इन परिस्थितियों में 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति और राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) द्वारा 1975 की पाठ्यचर्या रूपरेखा की रचना की गई। 1976 में संविधान ने संशोधन किया और शिक्षा के उत्तरदायित्व को समवर्ती सूची (कॉन्करेंट लिस्ट) में लाया गया और पहली बार वर्ष 1986 में शिक्षा पर पूरे देश की एक राष्ट्रीय नीति बनी। इस नीति को हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के नाम से भी जानते हैं। इस नीति में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करने व इस रूपरेखा की समय–समय पर समीक्षा करने का उत्तरदायित्व सौंपा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की अनुशंसा के अनुरूप राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण (एनसीईआरटी) द्वारा 1975 के बाद 1988, 2000 और 2005 में बदलते हुए विकासशील संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तुत की गई।

4.5.1 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा 1975 का विश्लेषण : शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य, शैक्षणिक नीतियां, पाठ्यक्रम संगठन, आकलन के तौर–तरीके और भाषा नीतियां

किसी भी देश का स्कूल–पाठ्यक्रम उसके संविधान की भांति उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है। बेसिक शिक्षा–प्रणाली के रूप में महात्मा गांधी ने भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप नई प्रणाली के विकास का एक विकल्प प्रस्तुत किया था। शिक्षा–आयोग (1964–66) की रिपोर्ट में बेसिक शिक्षा के श्रेष्ठतम तत्वों को सम्मिलित करते हुए शिक्षा को राष्ट्र के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से सम्बद्ध करने के लिए उसके आन्तरिक "परिवर्तन" पर बल दिया गया है। हमारे संविधान में स्थापित मूल्य बहुत्ववादी, खुले समाज और धर्म निरपेक्ष, जनतान्त्रिक तथा समाजवादी राज्य के विकास की ओर संकेत करते हैं। स्कूल–पाठ्यक्रम अपनी संरचना, विषय वस्तु, निहित विधि, अपनी सम्पूर्ण रूपरेखा में, इन उद्देश्यों और मूल्यों को परिलक्षित करने वाला होना चाहिए।

राष्ट्रीय विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन लाना सुगम नहीं है। देश के स्कूलों में बच्चों की बढ़ती संख्या के दबाव को देखते हुए अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराना उत्तरोत्तर कठिन होगा और यह कार्य हठवादिता और रूढ़िग्रस्तता के कारण और कठिन हो गया है। अतः यह कार्य अनिवार्य है कि शिक्षण और शिक्षा की नई विधियों को समझा जाए और यह भी समझ लिया जाए कि हमारे समाज में गैर–औपचारिक शिक्षा, ज्ञान का बहुत बढ़ा स्रोत है और इसका उपयोग होना ही चाहिए। यह जानना भी आवश्यक है कि विद्यालयों में पाठ्यक्रमों, शिक्षण और सीखने की विधियों और सामग्रियों, आकलन, समयसारिणी, प्रवेश–नीति और उसका पालन, विद्यालय–जगत और अलग–अलग विद्यालयों के प्रशासन, अध्यापकों की सेवाकालीन तैयारी करने और प्रशिक्षित करने, समुदाय के उपलब्ध स्रोतों का उपयोग तथा इसी प्रकार के अनेक क्षेत्रों में हमें बहुमुखी लचक रखनी होगी। अतः स्कूल में बहुस्तरीय प्रवेश, स्कूल में प्रश्नकालीन–शिक्षा, स्कूल के बाहर गैर–औपचारिक शिक्षा, तथा अनुभवों कर्मकार, शिल्पकार, कलाकार, लेखक द्वारा विद्यालय में शिक्षण आदि सभी बातों का प्रयोग करना होगा।

टिप्पणी

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

शैक्षिक योजनाकारों, प्रशासकों, निरीक्षकों और अध्यापकों के मार्ग–दर्शन के लिए स्तर और विषय के अनुसार सामान्य शिक्षा के विस्तृत उद्देश्यों को स्पष्ट किये जाने से उनका लाभ सीमित न होकर सभी क्षेत्रों तक समान होता है। एन.सी.एफ–1975 के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नवत हैं–

प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के इस स्तर पर मोटे तौर से पहली से पांचवीं कक्षा तक पढ़ने वाले 6 से 11+ की आयु के बच्चे होते हैं। बच्चे के जीवन में यह आयु बहुत महत्वपूर्ण है। इसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. बच्चे की प्रत्युन्नति, जिज्ञासा, सर्जन शक्ति और क्रियाशीलता आदि में लचकहीन और अनाकर्षक शिक्षण–विधि और परिवेश के कारण रुकावट नहीं आनी चाहिए।
2. पाठ्यक्रम में बच्चे की सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक परिपक्वता तथा समुदाय की सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
3. प्रत्येक बच्चे की सफलता की सीमाओं को यथार्थ दृष्टि से समझना और प्रत्येक स्कूल के लिए इस न्यूनतम सीमा का अतिक्रमण करके परिस्थितियों के अनुसार अधिक सफलता प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना।
4. बहुत से बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर ही अन्तिम भी होता है। अतः उन्हें ऐसी शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है, जो उन्हें अपने जीवन के लिए तथा स्वयं सीखने के लिए तैयार कर सके।

इस स्तर पर शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

प्रथम उदेश्य है– साक्षरता

बच्चे को प्रथम भाषा सिखाई जानी चाहिए। यह भाषा सामान्यतः मातृभाषा होनी चाहिए। प्रथम भाषा का स्तर इतना अवश्य होना चाहिए कि वह औरों से वार्तालाप करके या लिख कर अपनी बात भलीभांति कह सके।

दूसरा उद्देश्य है– अंक–ज्ञान

बच्चे को चार मूलभूत संख्यात्मक क्रियाओं (जोड़, घटा, गुणा, भाग) का ज्ञान हो जाना चाहिए। अपने सामुदायिक जीवन में व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में उनका उपयोग करना उसे आ जाना चाहिए।

तीसरा उद्देश्य है– तन्त्र–ज्ञान

बच्चे को विज्ञान समझने की विधि आ जानी चाहिए और उसका इतना ज्ञान होना चाहिए कि अपने जीवन और आसपास के वातावरण में विज्ञान और यन्त्र का महत्व समझ सके।

बच्चे में झण्डे और राष्ट्रीय प्रतीकों, देश की जनतान्त्रिक पद्धति और संस्थाओं का आदर करने की भावना उत्पन्न होनी चाहिये। बच्चे में हाथ से काम करने का, अच्छा

समझने का दृष्टिकोण भी उत्पन्न होना चाहिए। बच्चे में स्वच्छता और स्वस्थ जीवन जीने की आदत और अपने पास–पड़ोस की स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति समझ भी विकसित होनी चाहिए। बच्चे में अच्छे और सुन्दर के प्रति आकर्षण–भाव उत्पन्न होनी चाहिए। सार्वजनिक लक्ष्यों के लिए मिल कर काम करने में लाभ होता है– उसमें यह समझ भी उत्पन्न होनी चाहिए। भूमिका की चेतना के साथ–साथ बच्चे में पहल, नेतृत्व, दया, ईमानदारी जैसी वांछित चारित्रिक विशेषताओं का विकास भी होना चाहिए। बच्चे में सर्जनात्मक कार्यों के माध्यम से अभिव्यक्ति की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए और उसे स्वयं सीखने की आदत भी पड़नी चाहिए।

मध्यम स्तर पर शिक्षा का मूल उद्देश्य

छठी से आठवीं की कक्षा मिडिल स्तर होता है जिसमें आयु सामान्यतः 11+ से 14+ होती है। अतः इस अवस्था में इतिहास, भूगोल और अन्य विषयों के सही अध्ययन पर आधारित समझ का बच्चों में विकास होना चाहिए। उन्हें देश के संविधान और उसमें निहित मूल्यों का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें देश की जन–तान्त्रिक प्रक्रियाओं, ढांचों और संस्थाओं की अच्छी समझ होनी चाहिये। बच्चे में द्वितीय भाषा के सामान्य वाक्यों तथा गद्य और पद्य की सुगम रचनाओं को समझने की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए। विज्ञान के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान और जीव–विज्ञान भी सम्मिलित किए जाने चाहिए। साथ ही विज्ञान और जीवन का सार्थक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए परिवेश–शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और जनसंख्या–शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। इस आयु में कार्यानुभव के क्षेत्र में उत्पादन तथा सामुदायिक जीवन के साथ विज्ञान, गणित और तकनीकी को सुसम्बद्ध करने के लिए कृषि तथा तकनीकी की प्रक्रियाओं और साधनों के उपयोग पर बल दिया जाना चाहिए।

निम्न माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

निम्न माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर केवल दो कक्षाएं नवीं और दसवीं होती हैं। इसमें आयु–सीमा 14+ से 16+ होती है। ये दो कक्षाएं दस–वर्षीय सामान्य शिक्षा को पूर्ण करने वाली हैं। इसके पश्चात् विद्यार्थियों के समक्ष तीन सम्भव विकल्प होते हैं। विज्ञान और गणित के क्षेत्र में विद्याथीं में इतनी क्षमता उत्पन्न हो जानी चाहिए कि वह अपने ज्ञान का प्रयोग अपने वातावरण की समस्याओं के हल ढूंढ़ने में कर सके। उसे अपने आसपास कृषि और उद्योग में प्रयुक्त तकनीकी/विधियों का ज्ञान भी होना चाहिए। उसमें इतनी योग्यता भी आनी चाहिए कि परिवेश–संरक्षण, प्रदूषण को कम करने तथा समुदाय में उचित पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता की चेतना विकसित करने में वह अपना सार्थक योगदान कर सके। उसमें बच्चों के पालन–पोषण की सही आदतें और दृष्टिकोण के विकास एवं घर में सुधार करने में सहायता देने की योग्यता होनी चाहिए। बच्चे में इस आयु तक कार्य–क्षेत्र में प्रवेश करने योग्य आवश्यक ज्ञान और प्रवीणता का विकास हो जाना चाहिए। उसे एक या दो उपयोगी शिल्प सीख लेने चाहिए। किन्तु यह भी उतना ही आवश्यक है कि उसे कार्य क्षेत्र में प्रयुक्त सामग्रियों, यन्त्रों, तकनीकों और प्रक्रियाओं की आवश्यक जानकारी दे दी जाए ताकि वह जीवन में आत्मविश्वास के साथ प्रवेश कर सके। प्रथम भाषा का इतना ज्ञान होना चाहिए कि उसके साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नमूनों को वह समझ सके। तृतीय भाषा उस स्तर तक सिखाई जानी चाहिए कि विद्यार्थी सुगम पाठ को पढ़कर समझ सके और उसके अर्थ को व्यक्त कर सके।

टिप्पणी

इतिहास और भूगोल जैसे विषयों के अध्ययन के साथ–साथ विद्यार्थी में यह समझ भी विकसित होनी चाहिए कि वह अपने देश का ही नहीं बल्कि अन्य देशों–विशेषतः पड़ोसी देशों की सामाजिक और संस्कृतिक विशेषताओं को समझ सके। पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम गतिविधियों, शारीरिक शिक्षा, खेल–कूद आदि के माध्यम से उसमें दया, सहकारिता, समूह भावना, सहयोग, नेतृत्व, साहस, सत्य, ईमानदारी और उत्तरदायित्व, आदि वांछित सामाजिक गुण उत्पन्न होने चाहिए। इसमें राष्ट्रीय और नागरिक, सम्पत्ति के मूल्य को समझने और उसके संरक्षण की योग्यता उत्पन्न होनी चाहिए। जनतन्त्र, धर्म–निरपेक्षता और समाजवाद के सिद्धान्त उसके सामने स्पष्ट हो जाने चाहिए।

शैक्षणिक नीतियां

विद्यार्थी गतिविधियां और उनकी प्रायोजना शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण हैं। पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति उनकी स्पष्टतः समझने और प्रभावपूर्ण प्रयोग पर निर्भर करती है। विद्यार्थी की प्रकृति और पृष्ठभूमि तथा स्थानीय स्थितियों और उपलब्ध स्रोतों को देखते हुए शिक्षा के लिए ऐसी स्थितियां उत्पन्न करनी होंगी कि शिक्षण–उद्देश्यों को साकार किया जा सके। ये स्थितियां कक्षा के अन्दर और बाहर दोनों स्थानों पर उत्पन्न की जा सकती हैं। अध्यापक ऐसा मार्ग–दर्शक, सहायक और सबसे बढ़कर समझदार मित्र होता है जिसकी ओर बच्चे मार्ग न खोज पाने पर या किसी सूचना की आवश्यकता होने पर प्रसन्नता और विश्वासपूर्वक देखते हैं। अध्यापक की भूमिका आज्ञा देने वाले की अपेक्षा सलाहकार और प्रस्तोता की होनी चाहिए। अध्यापक को यह स्मरण रखना चाहिए कि बच्चा काम करके और स्वयं खोज करके बेहतर ढंग से सीखता है, न कि तथ्यात्मक ज्ञान प्रदर्शन को दब्बू बनकर सुनने से। केवल इसी खोज की ओर प्रवृत करने वाली क्रियात्मक और सर्जनात्मक प्रक्रिया से ही बच्चे में रुचि उत्पन्न होती है, उसे आनन्द मिलता है और उसका ध्यान तुरन्त आकर्षित होता है। ज्ञानार्जन–प्रक्रिया की कुछ मूलभूत शर्तें हैं, जिन्हें उचित दृष्टिकोण और विधि अपनाने के लिए अध्यापक को ध्यान में रखना होगा। स्थूल से सूक्ष्म की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, सम्पूर्ण से खण्डों की ओर, सुगम से कठिन की ओर आदि शिक्षण के कतिपय मूल तत्व इतने प्रसिद्ध हैं कि इन पर विशेष कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। किन्तु कुछ और बातों पर थोड़ा विचार होना चाहिए। परिवेश–अध्ययन के शिक्षण की संश्लिष्ट विधि सम्पूर्ण विषय की अपेक्षा अध्यायों और वस्तु वृत्तों पर आधारित होती है। इससे बच्चों को स्थितियों से सीखने का अवसर दिया जाता है। इस प्रकार के अनुभवों के आयोजन में अध्यापक को अधिक स्वतन्त्रता होती है। पाठ्यक्रम में ऐसी जानकारी, समझ, रुचियां, मूल्य और दृष्टिकोण होने चाहिए जिनका बच्चों में विकास करना है। मिट्टी की छोटी–छोटी वस्तुएं बनाने में बच्चों की सहायता करना, उन्हें स्कूल की वाटिका में ले जाना और उनसे फूलों के बारे में बातचीत करना, आस–पास के क्षेत्रों के भ्रमणों का आयोजन, कक्षा के अन्दर या कक्षा के बाहर उपलब्ध वस्तुओं की नाप जोख करना, भोजन, कपड़े और आवास के संदर्भ में विभिन्न ऋतुओं पर बातचीत करना, त्योहारों का आयोजन और बच्चों के सामने उन स्थितियों को रखना जिनसे वे नागरिक और सामाजिक जीवन के मुख्य तत्वों को समझ सकें इत्यादि गतिविधियों के कुछ उदाहरण हैं जिनके द्वारा बच्चों को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान दिया जा सकता है और उन्हें संबंधित कार्यों में प्रवीण बनाया जा सकता है।

टिप्पणी

पाठ्यक्रम संगठन

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–1975 के अनुसार कक्षावार पाठ्यक्रम का संगठन निम्नवत है–

कक्षा A एवं II

1. प्रथम भाषा
2. गणित
3. परिवेश अध्ययन (सामाजिक अध्ययन और सामान्य विज्ञान)
4. कार्यानुभव और कलाएं
5. स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

कक्षा III, IV एवं V

1. प्रथम भाषा
2. गणित
3. परिवेश अध्ययन I (सामाजिक अध्ययन)
4. परिवेश अध्ययन II (सामान्य विज्ञान)
5. कार्यानुभव और कलाएं
6. स्वास्थ्य शिक्षा और खेल .

कक्षा VI, VII, एवं VIII

1. प्रथम भाषा यथावत और द्वितीय भाषा का प्रारम्भ (हिन्दी अथवा अंग्रेजी)
2. गणित (बीजगणित और ज्यामिति सहित)
3. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र के तत्व)
4. विज्ञान (भौतिक विज्ञानों और जीव विज्ञानों के तत्व)
5. कलाएं
6. कार्यानुभव
7. शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेल ।

कक्षा IX एवं X

1. प्रथम और द्वितीय भाषाएं यथावत और तृतीय भाषा का प्रारम्भ (अंग्रेजी अथवा कोई भारतीय भाषा)
2. गणित (बीजगणित और ज्यामिति सहित)
3. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान)
4. विज्ञान (भौतिक विज्ञान और जीव विज्ञान)
5. कलाएं
6. कार्यानुभव
7. शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेल।

आकलन के तौर तरीके और भाषा नीतियां

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–1975 में मूल्यांकन या आकलन का प्रमुख लक्ष्य यह देखना था कि पाठ्यक्रमों के निर्धारित उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति हुई है। यह प्रक्रिया स्वभावतः शैक्षिक अनुभवों और शिक्षण की उन विधियों से सम्बद्ध है जो सीखने की प्रक्रिया में प्रयुक्त की गई हों। मूल्यांकन या आकलन को उपयोगी बनाने के लिए उसमें इन विशेषताओं का होना आवश्यक है:

1. मूल्यांकन लिखित, प्रायोगिक और मौखिक परीक्षाओं, निरीक्षण, स्तरीकरण इत्यादि विभिन्न साधनों और तरीकों से होना चाहिए ताकि विभिन्न उद्देश्यों और वस्तु सामग्री से संबद्ध संप्राप्ति का आकलन हो सके। आकलन थोड़े–थोड़े समय पर कई बार होना चाहिए।
2. उसे निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के विश्वसनीय और ठोस प्रमाण देने वाला होना चाहिए।
3. उसे क्रमशः कई एक उद्देश्यों की फिर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की अपनी सीमा में लेने वाला होना चाहिए।
4. मूल्यांकन शिक्षा–प्रक्रिया में ही सन्निहित होना चाहिए। प्रत्येक बच्चे के लिए लगातार प्रगति का लेखा रखने की प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए। इसका आधार निरीक्षण और मौखिक परिक्षाएं होनी चाहिए। आधार वर्ष के अन्त में ली जाने वाली मौखिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए सत्र में प्रगति के लेखे के आधार पर ही बच्चे को अगली कक्षा में चढ़ाना चाहिए।
5. प्रत्येक क्षेत्र में विद्यार्थियों की प्रगति का अविरल मूल्यांकन एक नियमित कार्य–पद्धति पर आधारित होना चाहिए। मिडिल व आगे के विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में प्रगति के आकलन के लिए लिखित परीक्षाएं भी होनी चाहिए।
6. प्रायोगिक परीक्षाएं भी प्रारम्भ करनी चाहिए।
7. निरीक्षण जांच–विधियां, मौखिक परीक्षाएं, विद्यार्थियों द्वारा वस्तुओं का आकलन भी इस परीक्षण के अतिरिक्त साधनों एवं विधियों के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो वार्षिक परीक्षा भी ली जा सकती है। किन्तु, वर्ष भर में किए गए अन्य आकलनों की तुलना में इस पर अधिक बल नहीं देना चाहिए।
8. प्रत्येक विषय/इकाई में स्कूल द्वारा किए गए संचयित आकलन का रिकार्ड बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक विद्यार्थी को दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के आकलन के लेखे में शैक्षिक और गैर–शैक्षिक क्षेत्र, दोनों होने चाहिए।
9. स्कूल छोड़ने के अन्तिम प्रमाणपत्र में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण नहीं लिखा होना चाहिए।
10. इस प्रमाणपत्र में प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा विद्यालय में प्राप्त सूचकांक–अक्षरों (ए, बी, सी, डी, ई) का ही उल्लेख होना चाहिए।
11. राज्य भर में स्कूल समुच्चयों की स्थापना की जा सकती है। किसी भी समुच्चय के स्कूल के अध्यापकों की एक समिति बनाई जा सकती है, जो अपने क्षेत्र के स्कूलों से समय–समय पर उत्तर पुस्तिकाएं और प्रश्न–पत्र मंगाकर पूर्वाग्रह दूर

टिप्पणी

करने हेतु कुछ को पुनः मूल्यांकित करे फिर सम्बद्ध अध्यापकों से उन पर खुला विचार–विमर्श किया जा सकता है।

12. प्रत्येक स्कूल को समय–समय पर समुदाय सभाओं का आयोजन करना चाहिए। यह केवल समुदाय को विद्यालय से संयुक्त करने के लिए ही नहीं होगा बल्कि यह बताने के लिए भी होगा कि आकलन किस प्रकार किया जाता है व विद्यार्थी की शिक्षा और विकास में प्रगति लाने और अध्यापकों द्वारा शिक्षण में सुधार लाने में किस प्रकार उसका उपयोग किया जाता है।

भाषा नीतियां

त्रि–भाषा फार्मूला राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार किया गया है। स्कूल में दस वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् बच्चे को प्रथम भाषा में प्रवीण, दूसरी भाषा समझने और उसमें स्वयं को अभिव्यक्त करने में समर्थ, तथा तृतीय भाषा के सामान्य छपे हुए रूप को समझने योग्य हो जाना चाहिए। प्रथम भाषा सामान्यतः मातृभाषा होनी चाहिए। जहां मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहां पर द्वितीय भाषा होनी चाहिए।

1. तृतीय भाषा सामान्यतः अंग्रेजी होनी चाहिए। किन्तु उसके स्थान पर कोई अन्य विदेशी भाषा भी हो सकती है।
2. संस्कृत या फारसी प्रथम या द्वितीय भाषा के अंग के रूप में अथवा अलग से चौथे विषय के रूप में सम्मिलित की जा सकती है।
3. प्राथमिक स्तर के अन्त तक विद्यार्थी को मातभाषा के मानक रूप के माध्यम से सामान्य रूप में अपेक्षित गठन और शब्दावली का प्रयोग करके मौखिक और लिखित रूप में आत्माभिव्यक्ति में समर्थ हो जाना चाहिए।
4. विद्यार्थी को शुद्ध उच्चारण, ध्वनि के उतार–चढ़ाव, मुद्रा, आवश्यक गति और अर्थ–ग्रहण के साथ बोल–बोल कर पढ़ना आना चाहिए। विद्यार्थी को अर्थ–ग्रहण करते हुए मौन–पठन का सही तरीका भी आना चाहिए। उसमें अपने स्तर के अनुरूप सरल वर्णनों को सुनकर अर्थ–ग्रहण की क्षमता भी होनी चाहिए।
5. मिडिल और माध्यमिक स्तरों पर गहनतर भाषा वैज्ञानिक और विचारणात्मक विषय–वस्तु के माध्यम से उपरोक्त सभी विशेषताओं में वृहत्तर प्रवीणता अपेक्षित है। भाषा पाठ्यक्रमों का निर्माण उचित दृष्टिकोणों और रुचियों, करूणा, ईमानदारी, सहनशीलता, सच्चाई जैसे मानव–मूल्यों, राष्ट्रीय चेतना, परख और खोज की प्रवृत्ति आदि के विकास को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए।
6. द्वितीय भाषा प्राथमिक स्तर अथवा मिडिल स्तर पर प्रारम्भ की जा सकती है। तृतीय भाषा छठी कक्षा से प्रारम्भ की जा सकती है। परन्तु तीनों भाषाएं दसवीं कक्षा के अन्त तक पढ़ाई जानी चाहिए।
7. भाषा–पुस्तकों की सामग्री का चयन वांछित दृष्टिकोणों और मूल्यों तथा सम्बद्ध लोगों के जीवन और संस्कृति की सामान्य पहचान का विकास कराने की दृष्टि से होना चाहिए।
8. भाषा–शिक्षण की मौखिक, श्रौतिक पद्धति का उपयोग किया जाना चाहिए। स्कूल स्तर पर किसी भाषा को विकल्प और अ–परीक्षणीय विषय का स्थान नहीं

टिप्पणी

दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत मिडिल और माध्यमिक स्तरों पर अतिरिक्त विषयों के रूप में अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

9. यह हमेशा याद रखना चाहिए कि विषयों का अध्ययन भाषा–अध्ययन में सहायक होता है। अतः भाषा–अध्ययन के भार को उचित सीमाओं में रखने, और भाषा–शिक्षण–सामग्री को सम्मिलित करने की संभावना भी बनी रहनी चाहिए।

4.5.2 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 1988 का विश्लेषण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1988 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा पर एक सामान्य कोर के पाठ्यक्रम के साथ–साथ अन्य लचीले घटकों पर आधारित एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्यक्रम योजना में शिक्षा के लिये बालकेन्द्रित दृष्टिकोण को अपनाने की परिकल्पना की गई। इस परिप्रेक्ष्य में सभी बच्चों के नामांकन को बढ़ावा देने तथा नामांकित किये गये सभी बच्चों को स्कूलों में रोककर रखने तथा शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार लाने के लिये प्रयास किये जाएंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्यक्रम की योजना के अनुसरण में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने 1988 में स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार की। आधुनिकीकरण और प्रासंगिकता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम में पाठ्यचर्या के बोझ को कम करने की जरूरत पर विशेष ध्यान दिया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के मार्गदर्शी सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने समूचे स्कूली पाठ्यक्रम को संशोधित करके कक्षा एक से बारह तक के लिये संशोधित पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित कीं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–1988 के आधार पर राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों ने भी पाठ्यक्रम में संशोधन करने तथा स्कूल शिक्षा प्रणाली में चरणबद्ध तरीके से नई पाठ्यपुस्तकें विकसित करने के लिये कदम उठाये हैं।

इस दस्तावेज में शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली की उस उभयनिष्ठ संरचना, राष्ट्रीय पाठ्यचर्यात्मक ढांचे से जोड़ने वाली संस्कृति विशिष्ट पाठ्यचर्या का विकास, सभी वर्गों के लोगों की तुलनीय गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच, अधिगम को आनन्ददायक बनाने तथा न्यूनतम अधिगम स्तरों की प्राप्ति पर बल देने की आवश्यकता का अनुभव किया गया तथा विषयवस्तु के पुनः अभिविन्यास के लिये राष्ट्रीय कोर पाठ्यक्रम तथा संशोधित अनुभव कार्यक्रम का सुझाव दिया गया।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 1988 में न्यूनतम अधिगम स्तर को ध्यान में रखते हुए विभिन्न विषयों का कक्षावार एवं विषयवार पाठ्यवस्तु विवरण निम्नवत दिया गया है।

(1) **पूर्व प्राथमिक शिक्षा (दो वर्ष)** : इस स्तर पर कोई औपचारिक विषयों का शिक्षण नहीं दिया गया है। इसके अंतर्गत बच्चों के लिए सामूहिक गतिविधियां, खेल, रोल–प्ले आदि कराने का सुझाव दिया गया है, जिसमें खेल आधारित तकनीक पर जोर दिया गया है।

(2) **प्रारंभिक शिक्षा (आठ वर्ष)**

प्राथमिक स्तर (पांच वर्ष)

(अ) एक भाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ब) गणित

(स) पर्यावरणीय अध्यान एक और दो

(द) कार्यानुभव समाजोपयोगी उत्पादक कार्य

(प) कला शिक्षा

(फ) स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा

उच्च प्राथमिक स्तर (तीन वर्ष)

(अ) तीन भाषाएं – प्रथम भाषा–मातृभाषा। क्षेत्रीय भाषा, द्वितीय भाषा–अंग्रेजी। तृतीय भाषा– हिन्दी या आधुनिक भारतीय भाषा

(ब) गणित

(स) विज्ञान

(द) सामाजिक विज्ञान

(प) कार्यानुभव/ समाजोपयोगी उत्पादक कार्य

(फ) कला शिक्षा

(भ) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

माध्यमिक स्तर (दो वर्ष)

(अ) तीन भाषाएं

(ब) गणित

(स) विज्ञान

(द) सामाजिक विज्ञान

(प) कार्यानुभव

(फ) कला शिक्षा

(भ) स्वस्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

भाषा नीतियां : बच्चों को सीखने में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। बच्चों के विषयवस्तु सम्प्रेषण में भाषा सहायक है। भाषा के माध्यम से ही बच्चों में अन्य विषयों की अच्छी समझ विकसित होती है। इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा में त्रि–भाषा सूत्र को क्रियान्वित किया गया है। त्रि–भाषा के अन्तर्गत प्रथम भाषा– मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा द्वितीय भाषा के अन्तर्गत हिन्दी या अग्रेजी को चिन्हित किया गया है। हिन्दी बोलने वाले राज्यों में द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं वाले राज्यों में द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी की अनुशंसा की गई है। तृतीय भाषा के अन्तर्गत हिन्दी न बोलने वाले राज्यों के लिये हिन्दी अथवा अंग्रेजी जहां द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन न हो। इसी तरह हिन्दी बोलने वाले राज्यों के लिये तृतीय भाषा अंग्रेजी अथवा आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ाई जा रही हो। प्राथमिक स्तर पर कोई एकभाषा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा। यदि प्राथमिक विद्यालयों में द्वितीय भाषा के लिये संसाधन उपलब्ध हो तो उपयुक्त कक्षाओं में इसका अध्यापन कार्य किया जा सकता है।

टिप्पणी

4.5.3 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 2000 का विश्लेषण

भारत एक राष्ट्र के रूप में अपने बच्चों और अशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए नवीन और प्रभावशाली तरीकों की खोज के प्रति निरंतर प्रयत्नशील है। बिना किसी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भेदभाव के, सभी समुदाय के सभी लोगों की शिक्षा के संदर्भ में किए गए प्रयासों की सफलता पर अब एक गंभीर बहस राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्जीवित की जा रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि "नवीन नीति के विभिन्न मानदंडों के क्रियान्वयन की हर पांच वर्ष में समीक्षा करना अनिवार्य है। क्रियान्वयन की प्रगति और उससे समय–समय पर उभरने वाली दृष्टियों को सुनिश्चित करने के लिए थोड़े–थोड़े अंतरालों पर आकलन करना आवश्यक होगा। "बारह वर्ष से भी अधिक समय पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्याः एक रूपरेखा, 1988 नामक दस्तावेज तैयार किया गया था। कार्य योजना 1992 में स्पष्ट उल्लेख है कि – "मुख्य सरोकारों से जुड़े कुछ मुद्दों, ज्ञान के उत्कर्ष और शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों पर बढ़ते हुए विशेष दृष्टि से इसका आधुनिकीकरण करने की जरूरत थी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) को सलाह दी जाएगी कि वह आठवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) के दस्तावेज में भी पाठ्यचर्या की समीक्षा और उसके उन्नयन के प्रति चिंता व्यक्त करे। इन दस्तावेजों से संदेश ग्रहण करने के अतिरिक्त परिषद् भी एक शीर्षस्थ शैक्षिक संस्था के रूप में गंभीरता से यह महसूस करती है कि पाठ्यचर्या–निर्माण केवल एक ही बार किया जाने वाला प्रयास नहीं है, बल्कि यह तो एक सतत प्रक्रिया है जिसे संपूर्ण सामाजिक, शिक्षाशास्त्रीय और सभी स्तरों पर होने वाले अन्य परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी होना होगा। पाठ्यचर्या राष्ट्रीय लक्ष्यों को शैक्षिक अनुभवों में रूपांतरित करने की एक विधि है। एन. सी.ई.आर.टी. (NCERT) ने राष्ट्रीय संकल्पों के अनुरूप नवीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करने का दायित्व लिया। सितंबर 1999 में परिषद् ने, अपने आंतरिक संकायों के सदस्यों का एक पाठ्यचर्या– समूह गठित करके यह कार्य शुरू किया। इस समूह ने परिषद् मुख्यालय के संकाय के प्रत्येक सदस्य और सभी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों से परामर्श करके और सिद्धांतों एवं शोध पर आधारित सामग्री का अध्ययन करके विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाः परिचर्चा दस्तावेज तैयार किया। जनवरी 2000 में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों, शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, शिक्षकों, विश्वविद्यालयी विभागों, शोध संस्थानों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, प्रशासकों का अवलोकन, उनकी टिप्पणियों और उनके सुझावों के लिए भेजा गया। इसके व्यापक स्तर पर वितरण के लिए पूरा दस्तावेज परिषद् की वेबसाइट पर भी पेश किया गया। इस पर पूरे देश में विस्तार और गहराई के साथ बहस और चर्चा कराई गई। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर तो अनेक संगोष्ठियां आयोजित की ही गईं, साथ ही कुछ संगोष्ठियां परिषद ने भी इसी उद्देश्य से करवाईं। अनेक संस्थानों, स्वैच्छिक संगठनों, शिक्षक–संगठनों, अभिभावक–शिक्षक संघों, विशेषज्ञ संस्थाओं और यहां तक कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं ने भी इस दस्तावेज़ पर संवाद किया और अपनी टिप्पणियां एवं सुझावों का गहराई से अध्ययन किया गया। उनका विश्लेषण किया गया और उसके पश्चात् इस रूपरेखा को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में उनका

यथोचित एवं यथास्थान उपयोग किया गया। इस प्रकार यह एक ऐसा समग्र दस्तावेज बना जिसमें पहली बार उच्चतर माध्यमिक स्तर को भी शामिल किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्याः एक रूपरेखा, 1988 में जिन मुख्य सरोकारों और चिंताओं को व्यक्त किया गया था, उन पर इस दस्तावेज में भी पुनः जोर दिया गया। भाषा शिक्षण और शिक्षा के माध्यम से जुड़े मुददे, सभी स्तरों के लिए कॉमन स्कूल संरचना की आवश्यकता, सामाजिक समरसता से जुड़े केंद्रीय मुददे, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता और इन सबकी शैक्षिक प्रक्रिया से संबद्धता या प्रासंगिकता ही वे मुददे हैं, जिन्हें इस दस्तावेज में भी विस्तारित किया गया है ताकि इन सरोकारों पर आवश्यक और उचित ध्यान दिया जा सके। सामान्य केंद्रिक तत्व, सतत और व्यापक आकलन, स्वतंत्रता और लचीलेपन के तत्व और व्यावसायिक शिक्षा आदि कुछ ऐसे सरोकार हैं जो पूर्व के दस्तावेजों में भी मौजूद थे। इस रूपरेखा में कुछ नए मुद्दों पर भी विशेष ध्यान देने का प्रयत्न किया गया है। जो न्यूनतम अधिगम स्तर, मूल्य शिक्षा, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग और व्यवस्था के प्रबंधन एवं उसकी जवाबदेही से जुड़े हुए हैं। प्रस्तुत दस्तावेज में आसपास तेजी से घटित होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में सुझाव और सिफारिशें दी गई हैं लेकिन उन्हें भी नीति की भावना के अनुरूप रखा गया है। पर्यावरण शिक्षा का प्राथमिक स्तर के प्रथम दो वर्षों की शिक्षा में भाषा, गणित एवं अन्य गतिविधियों के साथ समन्वय या समेकन प्राथमिक स्तर पर ही कला, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा और सामाजिक विज्ञान में विषयवस्तु आधारित समझ पैदा करने वाला समेकित उपागम, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समेकन, माध्यमिक स्तर पर गणित को जीवन के निकट लाना और वर्तमान विज्ञान–प्रयोगशालाओं में व्यावहारिक गणित के लिए स्थान नियत करना आदि कुछ नए तत्व हैं जो इस दस्तावेज के अंग हैं। इनके अतिरिक्त शिक्षकों में पूरा विश्वास जाहिर करते हुए उनके सबलीकरण और उनकी सहभागिता को योजना निर्माण, क्रियान्वयन, पाठ्यचर्या के आकलन और पाठ्य–सामग्री के निर्माण के संबंध में पहली बार महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसी प्रकार अभिभावकों और आम जनसमुदाय के प्रबोधन, सहभागिता और जवाबदेही के लिए भी सुझाव दिए गए हैं। भाषा कौशलों के मौखिक एवं श्रव्य आकलन की प्रणाली लागू करने, व्यक्तिगत और समूह में स्व–आकलन की प्रणाली अपनाने और ऐसे ही अन्य नवीन तत्वों का भी इस दस्तावेज में समावेश है।

भारत की समृद्ध बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत और विश्व सभ्यता के लिए भारतीय सभ्यता के योगदान के प्रति चेतना का भी दृढ़तापूर्वक उल्लेख किया गया है। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से युक्त गहरी राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की अनुभूति भी शिक्षार्थियों को कराई जानी आवश्यक है। इससे हमारे युवा छात्र–छात्राओं में अपने 'भारतीय' होने पर गर्व की भावना भी पुष्ट होगी और उसका औचित्य भी प्रकट होगा। इसी के साथ इस दस्तावेज में सभी संस्कृतियों को ग्रहण करने और अन्य सबके प्रति सहिष्णुता और सम्मान प्रकट करने के मूल्यों पर भी जोर दिया गया है। भूमंडलीकरण के जटिल और चुनौतीपूर्ण आगमन का मुकाबला करने के लिए आवश्यक तैयारी को भी इस दस्तावेज में यथोचित स्थान दिया गया है।

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims and Objectives of Education)

शिक्षा मनुष्य को अज्ञान तथा दुख के बंधनों से मुक्त करती है और उसे अहिंसक एवं शोषण–विहीन सामाजिक व्यवस्था की ओर ले जाती है। अतः विद्यालयी पाठ्यचर्या का

टिप्पणी

उद्देश्य है कि वे शिक्षार्थियों को ज्ञान अर्जित करने, समझ विकसित करने, कौशलों को विकसित करने, सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के योग्य बनाए। युवा वर्ग इस देश की अत्यंत मूल्यवान निधि हैं, इसलिए शिक्षा के माध्यम से क्षमताएं बढ़ाने के लिए उनका सबलीकरण आवश्यक है। इसलिए प्रतिमानों को बदलना आवश्यक है ताकि पाठ्यचर्या में प्रक्रिया और विषयवस्तु की अंतर्क्रिया को महत्व दिया जा सके। इसके अतिरिक्त छात्रों के अंतरस्थ मूल्यों और संवेगात्मक बुद्धि का विकास भी एक महत्वपूर्ण पहलू है।

इस विद्यालयी पाठ्यचर्या–2000 से छात्रों में निम्नांकित बिन्दुओं के विकास और उत्कर्ष में सहायता मिलनी चाहिएः

1. गणितीय योग्यताएं जो तार्किक बुद्धि का विकास करे और शिक्षार्थियों को गणितीय क्रियाओं को दैनिक जीवन में लागू करने में सहायता करे, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास जिसमें खोज या अनुसंधान–भावना, समस्या हल, प्रश्न करने का साहस और वस्तुनिष्ठता जैसे गुण विद्यमान हों जो भ्रम, अंधविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करने की दिशा में प्रवृत्त करे, इसके साथ ही साथ भारतीय परंपरा में रचे–बसे स्वदेशी ज्ञान को संपुष्ट करते हुए बनाए रखे।
2. भाषा की योग्यताएं, जैसे–सुनना, बोलना, पढ़ना, और सोचना तथा मौखिक और दृश्य संप्रेषण–कौशल जो सामाजिक जीवन और दिन–प्रतिदिन के क्रियाकलापों में प्रभावी भागीदारी के लिए आवश्यक है।
3. पर्यावरण के प्राकृतिक और सामाजिक दोनों पक्षों, उनकी अंतर्क्रियात्मक प्रक्रियाओं और उनसे संबद्ध समस्याओं की समझ विकसित करे और ऐसे तरीके और साधन बताए कि पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके।
4. देश के विभिन्न भागों के भूखंडों तथा वहां के जनजीवन की विविधता और भारत की सामाजिक संस्कृति के प्रति समझ पैदा करे।
5. देश के स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक पुनरुत्थान में सभी वर्गों और क्षेत्रों के स्वतंत्रता सेनानियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और ग्रामीण, आदिवासी और समाज के कमजोर तबकों के लोगों के बलिदान एवं योगदान के प्रति सराहना की भावना पैदा करे और उनके आदर्शों के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करें।
6. परिवर्तनमूलक प्रौद्योगिकी और देश की परंपरा और विरासत की निरंतरता के बीच संतुलित समन्वय की सही समझ उत्पन्न करे।
7. राष्ट्रीय प्रतीकों का ज्ञान और उनके प्रति सम्मान पैदा करे तथा राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता जैसे आदर्शों के प्रति आकांक्षा और संकल्प प्रकट करने के लिए प्रेरित करे।
8. वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से युक्त देशभक्ति और राष्ट्रीयता की गहन अनुभूति पैदा करे।
9. देश के संदर्भ में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और स्थानीयता के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के संबंध में उचित समझ विकसित करे।
10. व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक मूल्यों और सहवर्ती गुणों का विकास करे जो किसी व्यक्ति को मानवीय और सामाजिक रूप से प्रभावशाली बनाते हैं और जीवन को सार्थकता एवं दिशा देते हैं।

11. ऐसे गुणों और विशेषताओं का विकास करे जो स्व–शिक्षण, आत्म–निर्देशित शिक्षण और आजीवन शिक्षण के साथ समाज की रचना कर सके।
12. स्वस्थ यौन संबंधी मुद्दों के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित कर स्त्री–पुरुषों में एक दूसरे के बीच सम्मानपूर्ण संबंध विकसित करे।
13. ऐसी क्षमताओं का विकास करे जो न केवल सूचना–विश्लेषण करे बल्कि उन्हें ठीक से समझे, उन पर विचार करे, उन्हें आत्मसात करे और उनके प्रति अंतर्दृष्टि का विकास करे।
14. उत्पादकता–वृद्धि, कार्य–संतोष की भावना, अर्थ–उत्पादन प्रणाली के लिए आवश्यक कठोर परिश्रम की तत्परता, उद्यमशीलता और मानवीय श्रम के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों का विकास करे।
15. बड़े परिवारों और अति जनसंख्या के प्रति आलोचनात्मक विचार करे और जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की जरूरत को समझे।
16. भौतिक और मानसिक रूप से स्फूर्त और मजबूत बनाने के लिए आवश्यक ज्ञान, दृष्टिकोण और आदतों का विकास करे।

शैक्षणिक नीतियां

शैक्षणिक नीतियां पाठ्यचर्या में प्रभावी उपयोग और पाठ्यचर्यागत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए छात्रों की गतिविधियों का संयोजन उपयुक्त युक्तियों के द्वारा इस प्रकार किया जाए कि छात्रों को अधिगम क्रियाकलापों के लिए अधिक अवसर मिलें। शिक्षण युक्तियां कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे–अवलोकन, सामग्री और सूचनाओं का संकलन, प्रदर्शन और प्रयोग, प्रोजेक्ट कार्य, फील्डवर्क और संग्रहालयों, मेलों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा ऐतिहासिक महत्व के स्थानों की शैक्षिक यात्राएं। खेलकूद, सामुदायिक गायन में भागीदारी, भूमिका–अभिनय, नाटक, परिचर्चा, वाद–विवाद, समस्या समाधान, खोजपूर्ण शिक्षण, सृजनात्मक लेखन और पूरक वाचन भी संपूर्ण शैक्षिक युक्तियों के महत्वपूर्ण अंग होंगे।

किसी विशेष नीति का उपयोग करते समय अनेक तत्वों पर विचार करना होगा, जैसे–छात्रों की क्षमताएं, संसाधनों की उपलब्धता, आरंभिक व्यवहार, विद्यालयी पर्यावरण, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, विषयवस्तु की प्रकृति और स्वयं शिक्षकों द्वारा की जाने वाली तैयारी एवं उनका विषयों पर अधिकार। शिक्षण को सार्थक और ठोस बनाने के लिए प्राकृतिक और मानवीय दोनों ही प्रकार के निकटस्थ पर्यावरण का उपयोग होना चाहिए। प्रभावशाली शिक्षण तभी होता है जब शिक्षक छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करें और यह कार्य सुनने की प्रक्रिया से छात्रों को ऊपर ले जाकर चिंतन, तर्क और स्वयं करके सीखने की प्रक्रिया में शामिल करके संपन्न करना होगा। स्वाध्याय कौशल के विकास के लिए पुस्तकालय के प्रयोग को प्रोत्साहित करना होगा। अध्ययन–अध्यापन की युक्ति में नियमित रूप से प्रतिपुष्टि प्राप्त करना एक अंतर्निहित घटक है। नियमित प्रतिपुष्टि के लिए सतत और व्यापक आकलन की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपचारात्मक शिक्षण के लिए होना चाहिए। अध्ययन–अध्यापन की युक्ति में नियमित रूप से प्रतिपुष्टि प्राप्त करना एक अंतर्निहित घटक है। नियमित प्रतिपुष्टि के लिए सतत् और व्यापक आकलन की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग उपचारात्मक शिक्षण के लिए होना चाहिए।

टिप्पणी

मंद, औसत और तीव्र गति से सीखने वाले भिन्न–भिन्न छात्रों के लिए भिन्न–भिन्न शिक्षण नीतियां जरूरी हैं। निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण का उपयोग मंदगति के छात्रों के लिए आवश्यक है। ज्ञान–संवर्धन की सामग्री और लक्ष्य निर्देशित अध्ययन–अध्यापन की युक्तियां तीव्र गति से सीखने वाले छात्रों की मदद करेंगी। सहशैक्षिक क्षेत्रों के शिक्षण को उचित महत्व देना चाहिए। अनेक विद्यालयी गतिविधियां समुचित योजना एवं सुनियोजित लक्ष्यों के साथ आयोजित की जा सकती हैं, जैसे–प्रातःकालीन सभा, सांस्कृतिक और मनोरंजक क्रियाकलाप, विद्यालय की सजावट एवं सौंदर्यीकरण, समुदायिक जीवन के क्रियाकलाप, राष्ट्रीय महत्व के दिवसों को मनाना, विशेष दिवस और सप्ताह तथा सृजनात्मक कार्यक्रम ।

बच्चों के बौद्धिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक विकास के लिए मातृभाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है। मातृभाषा केवल इसलिए मातृभाषा नहीं है कि वह माता की भाषा है बल्कि इसलिए कि वह मां की ही तरह है। अतः मातृभाषा बच्चों के पोषण एवं मानसिक और संवेगात्मक निर्माण के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्रीय तत्व है। उनकी समझ, उनके अवबोध, उनकी प्रतिक्रियाएं, सृजनात्मक अभिव्यक्तियां, चिंतन और विश्लेषण सभी कुछ अधिकतम मातृभाषा के माध्यम से ही तो विकसित होते हैं। इसलिए विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करना एक स्वाभाविक और आदर्श स्थिति होगी।

जिन छात्रों की मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा या राज्य की भाषा है, वहां वहीं की भाषा विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों या कम–से–कम प्राथमिक स्तर के अंत तक शिक्षा का माध्यम होगी। जहां छात्रों की मातृभाषा राज्य या क्षेत्र की भाषा से अलग है, वहां क्षेत्रीय भाषा को तीसरी कक्षा और उससे आगे के स्तर से माध्यम के रूप में अपनाया जा सकता है। प्रारंभिक वर्षों में छात्रों की मातृभाषा का उपयोग इस प्रकार हो कि छात्र बड़ी सरलता के साथ मानक मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) में संक्रमण या प्रवेश कर सकें और क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षण जल्दी–से–जल्दी शुरू हो सके।

पाठ्यक्रम संगठन

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2000 में कक्षा 1 तथा 2 में अग्रलिखित को शामिल किया गया है–

(अ) एक भाषा–मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

(ब) गणित

(स) पर्यावरणीय अध्ययन

(द) कार्य शिक्षा (कार्य अनुभव) कला तथा स्वास्थ्य क्रियाकलाप

कक्षा 3 से 5 तक

(अ) एक भाषा–मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

(ब) अंग्रेजी

(स) गणित

(द) पर्यावरणीय अध्ययन

(य) कार्य शिक्षा (कार्य अनुभव) कला व स्वास्थ्य क्रियाकलाप

कक्षा 6 से 8 तक

(अ) तीन भाषाएं

(ब) गणित

(स) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

(द) सामाजिक विज्ञान

(य) कार्य शिक्षा (कार्य अनुभव), कला शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा

आकलन के तौर–तरीके (Assessment Modalities): सफलतापूर्वक सीखने के लिए बिना उच्चस्तरीय आकलन के अध्यापन संभव नहीं है। इसलिए अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया में आकलन का अंतर्निहित होना आवश्यक है। यह जितना ही अधिक होगा, उतने ही बेहतर सीखने के परिणाम मिलेंगे। इसलिए आकलन प्रणाली की रचना ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षक जो पढ़ाते हैं और छात्र जो सीखते हैं, उसे प्रभावित करने का यह शक्तिशाली माध्यम बने। लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि आकलन मानवीय हो और वह शिक्षार्थी को एक जिम्मेदार और उत्पादक नागरिक की तरह विकसित होने के काबिल बनाए। केवल इतना ही नहीं, आकलन को लगातार पाठ्यवस्तु की प्रभावशीलता, कक्षाई प्रक्रियाओं और प्रत्येक शिक्षार्थी के विकास के बारे में प्रतिपुष्टि (फीडबैक) देनी होगी जो आकलन प्रक्रिया की उपयुक्तता के अतिरिक्त होगी। इसलिए यह इस हद तक लचीली हो कि उसका प्रयोग किया जा सके और उसका शिक्षार्थी–समूहों की विशिष्ट स्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन किया जा सके। आकलन विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने के उददेश्य से संज्ञानात्मक और सह–संज्ञानात्मक दोनों ही क्षेत्रों में छात्रों के सीखने की गति और उपलब्धियों के बारे साक्ष्यों का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या करने की एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है। इस प्रकार आकलन में सूचनाओं का संग्रह, विश्लेषण एवं निर्णय लेना निहित है।

संज्ञानात्मक और सह–संज्ञानात्मक दोनों ही क्षमताओं के विकास के लिए विद्यालयों में आकलन का लाभदायक तरीकों से प्रयोग होना चाहिए। इसके लिए आकलन के विकासात्मक और समग्र दोनों रूपों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

जहां शिक्षण के दौरान छात्रों के सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए विकासात्मक आकलन का प्रयोग किया जाता है वहीं विकासात्मक (फार्मेटिव) आकलन किया जाता है और शैक्षणिक सत्र के अंत में छात्र को अगली कक्षा में पहुंचाने के लिए समग्र आकलन का प्रयोग किया जाता है। विकासात्मक आकलन का मुख्य उद्देश्य शिक्षण–प्रक्रिया का मॉनिटरिंग करने के लिए होता है। जिससे यह निश्चित होता है कि योजनानुसार शिक्षण हो रहा है या नहीं। इससे विकासात्मक आकलन के परिणाम दोनों ही प्रकार के छात्रों (कुशाग्र और मंद) के लिए उपयोगी होते हैं। इनसे धीमी गति से सीखने वाले छात्रों के लिए उपचारात्मक उपाय लागू किए जा सकते हैं और कुशाग्र छात्रों का विशेष ज्ञान–संवर्धन किया जा सकता है। दूसरी ओर समग्र आकलन यह तय करता है कि योग्यता के आधार पर छात्रों का वर्गीकरण कर उन्हें किस जगह रखा जाए और उनकी भावी सफलता तथा अगली कक्षा में प्रोन्नति के बारे में पहले से ही अवगत करा देता है।

विकासात्मक और समग्र आकलन से संगृहीत साक्ष्यों का विश्लेषण और व्याख्या तीन प्रकार से की जा सकती है–पहला, छात्रों की प्रगति का स्वयं उनके ही संदर्भ में

टिप्पणी

आकलन (स्वयं संदर्भित), दूसरा, शिक्षक द्वारा निर्धारित कसौटियों के संदर्भ में आकलन (कसौटी संदर्भित) और तीसरा, साथी समूहों द्वारा की गई प्रगति के संदर्भ में आकलन (मानदंड संदर्भित)। आकलन द्वारा छात्रों के सर्वांगीण विकास को सुगम बनाया जाना है, इसलिए पहली कक्षा से बारहवीं कक्षा तक छात्रों के विकासात्मक और समग्र दोनों ही प्रकार के आकलनों के लिए विद्यालय आधारित छात्र आकलन प्रणाली वांछनीय है। इस दृष्टि से पूर्व–प्राथमिक स्तर पर आकलन पूर्ण रूप से विकासात्मक होना चाहिए और केवल दसवीं और बारहवीं कक्षा के अंत में बोर्डों द्वारा अंतिम परीक्षाएं ली जानी चाहिए जो यथासंभव शैक्षणिक विषयों से ही संबंधित हों। विद्यालय आधारित आकलन (जो कि सतत और व्यापक आकलन के रूप में होगा) के अंतर्गत शैक्षिक विषय–क्षेत्र तो रहेंगे ही, उनमें छात्रों के समग्र विकास के सह–शैक्षिक क्षेत्र भी शामिल होंगे। दसवीं, बारहवीं कक्षाओं में सह–शैक्षिक क्षेत्रों में छात्रों के कार्य का आकलन विद्यालयों द्वारा किया जाएगा और विद्यालय इस आकलन को बोर्ड को शैक्षिक विषयों की अंक सूची या ग्रेड–कार्ड में इसे सम्मिलित करने के लिए भेजेगे।

वर्तमान रूप में परीक्षाएं छात्रों की योग्यता का सही मापन नहीं करतीं, क्योंकि वे तो केवल वर्ष भर में छात्र जो पाठ्यवस्तु सीखने की कोशिश करते हैं, उसके एक अंश–भर का ही मापन करती हैं। परीक्षाएं बहुविध आकलन तकनीकों के प्रयोग के भी अवसर नहीं देती हैं, जैसे–मौखिक, तकनीक, अवलोकन, प्रोजेक्ट, असाइनमेंट या कार्य आवंटन आदि। परीक्षाओं में तो केवल लिखित जांच का ही उपयोग किया जा रहा है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली की दूसरी कमी यह है कि परिणाम अंकों में घोषित किए जाते हैं, जो परीक्षक की आत्मपरकता से लेकर 101 पाइंट के मापदंड की अंतर्निहित सीमा तक अनेक अपूर्णताओं से ग्रस्त रहती हैं जो न तो शून्य स्तर की कसौटी को संतुष्ट करते हैं और न ही 100 अंकों की पूर्णता को।

दसवीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षा का आतंक पूरे समाज पर इस तरह हावी रहता है कि यह स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक स्तर तक व्याप्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप छोटे बच्चों की तैयारी भी शुरू से बोर्ड की परीक्षा प्रणाली के अनुसार कराई जाती है और निदान तथा उपचार जैसे महत्वपूर्ण तत्व मुश्किल से ही इस परीक्षा प्रणाली का हिस्सा बन पाते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए देश के लिए यह उपयुक्त और सामयिक कदम होगा कि वह कार्य योजना, 1992 (पी.ओ.ए. 1992) में निहित इस अनुशंसा पर ध्यान दे–"बाह्य परीक्षाओं के प्रभाव को कम करना चाहिए" वर्तमान परीक्षा प्रणाली का एक दोष यह भी है कि इसमें प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतियोगिता के कारण समाज ने परीक्षा–परिणामों को अनावश्यक महत्व दे रखा है। इससे छात्रों के दिमाग में इस कदर मनोवैज्ञानिक डर और तनाव पैदा हो जाते हैं कि अनेक प्रकार की बुराइयां व्याप्त हो जाती हैं और असफल होने का भय इस सीमा तक चला जाता है कि कई बार छात्र आत्महत्या तक कर लेते हैं।

1. आकलन उन्हीं शिक्षकों की जिम्मेदारी होगी जो छात्रों को पढ़ाते हैं और जो उनमें आवश्यक स्वस्थ गुणों और मनोवृत्तियों के विकास के लिए भी उत्तरदायी होते हैं।
2. आकलन की प्रकृति मानवीय होगी। यह आकलन छात्रों को सामाजिक इकाई के रूप में विकसित होने में सहायक होगा और उन्हें अनावश्यक पीड़ा, चिंता परेशानी और अपमान से बचाएगा।

3. आकलन अपने उद्देश्य के प्रति हमेशा एक–समान और सुसंगत होगा और छात्रों की योग्यता का विश्वसनीय एवं वैध मापन उपलब्ध कराएगा।
4. मूल्यांकन प्रत्येक अधिगम–प्रयास के परिणाम को भी बिंबित करेगा और सभी छात्रों को अपनी व्यक्तिगत योग्यता प्रकट करने के समान अवसर देगा। इस प्रकार आकलन विविधतायुक्त और निर्बाध होगा और मापन की बहुविध तकनीकों का उपयोग करेगा।
5. आकलन अध्ययन–अध्यापन की प्रक्रिया में ही निहित होगा और शिक्षा की संपूर्ण अवधि तक जारी रहेगा।
6. आधुनिक प्रौद्योगिकी केवल आकलन प्रणाली के प्रबंधन में सुधार के लिए ही नहीं बल्कि कंप्यूटर नेटवर्क के माध्यम से छात्रों के परीक्षण में भी प्रयुक्त होगी।
7. आकलन छात्रों की पृष्ठभूमि और पूर्व–अनुभवों पर भी विचार करेगा।
8. विशिष्ट आवश्यकता वाले छात्रों के लिए वैकल्पिक आकलन प्रक्रिया अपनानी होगी और आकलन को मानवीय, छात्र–मित्रवत और लचीला बनाना होगा।
9. ग्रेडिंग या श्रेणीकरण की प्रक्रिया और उसे प्रस्तुत करने का तरीका आकलन को विश्वसनीय और आस्थापूर्ण बनाएगा।

4.5.4 स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा– 2005 का विश्लेषण

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 का निर्माण शैक्षिक व्यवस्था में सुधार हेतु किया गया। जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का निर्माण किया जा सके। भारत में इसके निर्माण की प्रक्रिया पहले से ही शुरू हो चुकी थी। सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने यह सुझाव भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 के निर्माण की प्रक्रिया पहले से चलती आ रही है। इसके निर्माण से पहले NCF 1975, NCF 1988, NCF 2000 का निर्माण भी किया गया था। परंतु बदलती सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसका पुनः निर्माण किया गया जिसे NCF–2005 के नाम से जाना जाता है।

इसके निर्माण की अवधारणा सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 द्वारा रखी गयी। इस नीति ने अपने सुझावों में इसके महत्व एवं आवश्यकताओं को दर्शाया और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या संरचना 2005 के उद्देश्य

NCF 2005 के उद्देश्यों का निर्धारण समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या संरचना 2005 National Curriculum Framework 2005 को देश की स्थिति के अनुरूप बनाए जाने एवं वर्तमान शिक्षा प्रणाली को देखते हुए इसके उद्देश्यों का निर्धारण इस प्रकार किया गया–

1. **राष्ट्रीय एकता** – NCF 2005 में राष्ट्रीय एकता, संप्रभुता, अखंडता को एक नया रूप प्रदान किया गया एवं राष्ट्र में व्याप्त भाषायी भिन्नता, धार्मिक भिन्नता जैसे मुख्य पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इसका निर्माण किया गया। जिससे देश के सभी स्तर के छात्रों का विकास किया जा सके।
2. **शिक्षण विधियां** – शिक्षण कार्य में उपयोग की जा रही शिक्षण विधियां वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार नहीं थीं। NCF 2005 की संरचना के अनुसार नयी

टिप्पणी

शिक्षण विधियां अपनाए जाने की जरूरत थी। जैसे– छोटे बालकों को खेल–खेल से शिक्षा प्रदान करने के लिए खेल विधि के प्रयोग पर बल देना।

3. **सामाजिक महत्व** – NCF 2005 का निर्माण सामाजिक महत्व को ध्यान में रखते हुए किया गया था। समाज की जरूरतों एवं आवश्यकताओं को देखते हुए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 का ढांचा तैयार किया गया।
4. **मानसिक और बौद्धिक विकास** – छात्रों का बौद्धिक विकास करना इसका प्रमुख उद्देश्य था। छात्रों को भविष्य में आने वाली समस्याओं हेतु तैयार करना और उनके मानसिक स्तर को इतना मजबूत बनाना कि वह हर परिस्थिति में सामान्य रहना सीख सके।
5. **शारीरिक विकास** – छात्रों के शारीरिक विकास हेतु इसकी शिक्षण विधियों में भी उपयुक्त परिवर्तन किए गए थे। सह पाठ्यक्रम गतिविधियों में खेल को प्रमुखता प्रदान की गई जिससे बालकों का शारीरिक विकास किया जा सके।
6. **शिक्षण उद्देश्य** – NCF 2005 की संरचना के अनुसार नवीन शिक्षण उद्देश्यों को शिक्षा में सम्मिलित किया गया। शिक्षण उद्देश्यों का चयन समाज की वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार किया जाना जरूरी था।
7. **रुचि की महत्ता** – छात्रों की रुचि के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना इसका प्रमुख उद्देश्य था। पाठ्यक्रम को छात्र केंद्रित बनाना और शिक्षा का क्रियान्वयन छात्रों की रुचि एवं उनके स्तर के अनुरूप करना ही इसका लक्ष्य एवं उद्देश्य था।
8. **सर्वांगीण विकास** – पाठ्यक्रम संरचना 2005 छात्रों के सर्वांगीण विकास (ज्ञानात्मक, बोधात्मक, क्रियात्मक) हेतु तैयार की गई थी। जिससे छात्रों का हर स्तर पर विकास हो सकें। शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देश्य के आधार पर इसको NCF 2005 के उद्देश्यों में सम्मिलित किया गया था।
9. **संस्कृति का विकास** – भारतीय संस्कृति का विकास करना और संस्कृति का प्रचार–प्रसार करना इसका उद्देश्य था। जिससे छात्रों के नैतिक–मूल्यों का विकास किया जा सके।
10. **नैतिक मूल्यों का विकास** – छात्रों में भारतीय सभ्यता एवं लोकतांत्रिक नैतिक मूल्यों का विकास करना जरूरी था। जिससे छात्र राष्ट्र की स्थिति से भली–भांति परिचित हो सकें।

NCF 2005 के सिद्धांत

NCF 2005 में 8 सिद्धान्तों को अपनाया गया था। जिसका अनुसरण करके राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 का निर्माण किया गया–

- **मानवता सिद्धान्त** – छात्रों में मानवीय गुणों के विकास हेतु एवं नागरिकों में सहयोग की भावना के विकास के लिए यह जरूरी था कि उनमें मानवता के गुणों का विकास किया जाए। इसलिए इसकी संरचना के निर्माण में इस सिद्धान्त का निर्वहन किया गया।
- **बहुसंस्कृति सिद्धान्त** – भारत देश में हर धर्म के लोग रहते हैं और सभी की अपनी एक संस्कृति है। विभिन्नता में एकता के स्वरूप को लेकर सभी धर्म के

लोग एक दूसरे की संस्कृति का सम्मान करते हैं। इसी संस्कृति के प्रचार–प्रसार हेतु भारतीय संस्कृति को इसमें सम्मिलित किया गया।

- **सामाजिक सिद्धान्त** – सामाजिक मूल्यों एवं सामाजिक आवश्यकताओं को देखते हुए यह जरूरी था कि NCF 2005 (National Curriculum Framework 2005) का निर्माण सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार किया जाए। जिससे शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।
- **एकता सिद्धान्त** – भारत देश की एकता, अखंडता एवं संप्रभुता को ध्यान में रखते हुए इसका निर्माण किया जाना तय था। धर्मनिरपेक्षता के पालन एवं मौलिक अधिकारों की समानता के दृष्टिकोण को देखते हुए यह आवश्यक था कि इसके निर्माण के समय एकता सिद्धान्त का पालन हो।
- **समायोजन सिद्धान्त** – छात्रों में समाज के साथ समायोजन (परिस्थिति के अनुसार व्यवहार में परिवर्तन) करने की कला के विकास के लिए जरूरी है कि शिक्षण के द्वारा उनमें समायोजन के कौशल का विकास किया जाए। इसके लिए NCF 2005 में इस सिद्धांत को सम्मिलित किया गया।
- **उपयोगिता सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 का निर्माण वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार किया गया। पाठ्यक्रम को छात्रों के वास्तविक जीवन से संबद्ध करके इसका निर्माण किया जाना उचित था। जिससे वह जीविकोपार्जन हेतु तैयार हो सके।
- **रुचि सिद्धान्त** – पाठ्यक्रम को छात्रों की रुचि के अनुसार तैयार करना (NCF) का प्रमुख कार्य था। पाठ्यक्रम को छात्र केंद्रित बनाना ही इसका लक्ष्य था।
- **नैतिकता सिद्धान्त** – छात्रों में नैतिक मूल्यों एवं नैतिक भावनाओं का विकास करना और छात्रों में राष्ट्र व समाज के नैतिक मूल्यों का विकास करना इसका प्रमुख कार्य था। इसलिये इस सिद्धान्त को अपनाया जाना अनिवार्य था।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 (NCF 2005) की आवश्यकता

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यक्रम के महत्व को स्वीकार करते हुए हम राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 National Curriculum Framework 2005 की आवश्यकताओं को निम्न आधार पर देख सकते हैं–

1. **नवीन पाठ्यक्रम** – इसके द्वारा शिक्षा जगत में नवीन विचारों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। आधुनिक युग के तकनीकी विकास को देखते हुए छात्रों को उसके लिए तैयार करने के लिए यह आवश्यक था कि नवीन विचारों का समावेश पाठ्यक्रम में किया जाए।
2. **भाषायी आधार** – भारतीय शिक्षा प्रणाली में भाषायी समस्या के समाधान हेतु भाषायी समस्याओं का निवारण करने के लिए।
3. **रुचि** – भावी पीढ़ी की बदलती रुचियों एवं शिक्षा को प्रभावशाली बनाने हेतु यह जरूरी था कि पाठ्यक्रम की नवीन संरचना तैयार की जाए। जिसमें छात्रों की रुचियों की तरफ विशेष ध्यान केंद्रित किया जाए।

टिप्पणी

4. **नैतिक एवं मानवीय मूल्य** – छात्रों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के विकास हेतु नवीन पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं को स्वीकार किया गया। जिसके माध्यम से उनके उत्तम व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सके।
5. **पाठ्यक्रम विकास** – पाठ्यक्रम के विकास हेतु एक नवीन पाठ्यक्रम की आवश्यकता को महसूस किया गया क्योंकि उस समय की पाठ्यक्रम नीति वर्तमान स्थिति के अनुरूप नहीं थी। पाठ्यक्रम को नवीन उद्देश्यों की प्राप्ति करने के अनुरूप बनाने के लिए यह आवश्यक था कि उसमें उचित परिवर्तन लाए जाएं। जो राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना 2005 द्वारा पूर्ण किया गया।
6. **शैक्षिक उद्देश्य** – शिक्षा के उद्देश्य सदैव परिवर्तनशील होते हैं। समाज की आवश्यकता में निरंतर बदलाव आता रहता है। जिस कारण शैक्षिक उद्देश्यों में भी बदलाव होता रहता है और इन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु नवीन पाठ्यक्रम की संरचना वर्तमान शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप बनाना अति आवश्यक था।

अपनी प्रगति जांचिए

7. शिक्षा आयोग की अनुशंसा पर भारत सरकार ने राष्ट्रीय नीति की घोषणा कब की थी?

   (क) 1968 में (ख) 1969 में

   (ग) 1971 में (घ) 1972 में

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति की योजना के अनुसार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा को कब तैयार किया गया?

   (क) 1980 में (ख) 1982 में

   (ग) 1985 में (घ) 1988 में

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (घ)
4. (क)
5. (घ)
6. (ग)
7. (क)
8. (घ)

4.7 सारांश

शिक्षा मनुष्य के भीतर अच्छे विचारों का निर्माण करती है, मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। बेहतर समाज के निर्माण में सुशिक्षित नागरिक की भूमिका महत्वपूर्ण

होती है। इंसानों में सोचने की शक्ति होती है, इसलिए वे सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हैं लेकिन अशिक्षित मनुष्य की सोच पशु के समान होती है। वह सही गलत का फैसला नहीं कर पाता। इसलिए शिक्षा मानव जीवन के लिए ज़रूरी है, जो उसे ज्ञानी बनाती है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में चार लक्ष्य माने गए हैं जिन्हें पुरुषार्थ की संज्ञा दी जाती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों में से मोक्ष सबसे अधिक पवित्र एवं महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः शिक्षा ही मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र साधन माना गया है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। इस देश के जनतंत्र को सफल बनाने के लिए प्रत्येक बालक को सच्चा, ईमानदार तथा कर्मठ नागरिक बनाना परम आवश्यक है। अतः शिक्षा का परम उद्देश्य बालक को जनतांत्रिक नागरिकता की शिक्षा देना है। इसके लिए बालकों को स्वतंत्र तथा स्पष्ट रूप से चिन्तन करने एवं निर्णय लेने को योग्यता का विकास परम आवश्यक है, जिससे वे नागरिक के रूप में देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार की समस्याओं पर स्वतंत्रतापूर्वक चिन्तन और मनन करके अपना निजी निर्णय लेते हुए स्पष्ट विचार व्यक्त कर सकें। इन सभी शक्तियों का विकास बौद्धिक विकास के द्वारा किया जा सकता है। बौद्धिक विकास के हो जाने से व्यक्ति इस योग्य बन जाता है कि वह सत्य और असत्य तथा वास्तविकता और प्रचार में अन्तर समझते हुए अंधविश्वासों तथा निरर्थक परम्पराओं का उचित विश्लेषण करके अपने जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा अपना निजी निर्णय ले सके। चूंकि स्पष्ट चिन्तन का भाषण देने तथा लेखन की स्पष्टता से घनिष्ठ सम्बन्ध है इसलिए बालकों को शिक्षा के द्वारा इस योग्य बनाया जाये कि वे भाषणों तथा लेखों के द्वारा अपने विचारों से जनता को प्रभावित करके अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

यूरोपीय मिशनरियों ने पहले भारत में स्कूल शुरू किए और बाद में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की शुरुआत की। डेनिश मिशनरियों ने कलकत्ता के निकट सेरामपुर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए एक सामान्य स्कूल की स्थापना की। शुरुआत में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में शिक्षा के लिए कोई जिम्मेदारी महसूस नहीं की केवल कुछ अंग्रेजी बुद्धिजीवियों ने इसकी आवश्यकता महसूस की और अदालत से गुहार लगाई। निदेशक वारेन हेस्टिंग्स द्वारा एक शुरुआत की गई थी, जिन्होंने 1781 में कलकत्ता में एक मदरसा स्थापित किया था। अंग्रेजों ने उस समय भारत में अंग्रेजी शिक्षा शुरू करने के बारे में नहीं सोचा था। इसलिए कलकत्ता मदरसा ने फारसी और अरबी के अध्ययन की व्यवस्था की। 1792 में ब्रिटिश निवासी जोनाथन डंकन ने बनारस में एक संस्कृत कॉलेज शुरू किया। लॉर्ड वेलेस्ली ने किले की स्थापना की थी। कंपनी के सिविल सेवकों को भारत की भाषा और रीति–रिवाजों के प्रशिक्षण के लिए 1800 में विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। ये केवल व्यक्तियों की व्यक्तिगत पहल थी। कंपनी को उनमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारतीय शिक्षा का स्वरूप और उद्देश्य बदलने लगे। ब्रिटिश काल में शिक्षा आम जनता तक नहीं पहुंची थी। गांवों में और यहां तक कि महानगरों के अलावा अन्य शहरों में भी, स्कूल कम और बहुत दूर थे। 1947 में सौ में से केवल 15 ही पढ़–लिख सकते थे।

शिक्षा स्वतंत्रता के सुनहरे दरवाजे को खोलने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है जो दुनिया को बदल सकता है। अंग्रेजों के आगमन के साथ, उनकी नीतियों और

टिप्पणी

उपायों ने सीखने के पारंपरिक स्कूलों की विरासत को भंग कर दिया और इसके परिणामस्वरूप अधीनस्थों की एक वर्ग बनाने की आवश्यकता हुई। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, उन्होंने शिक्षा प्रणाली के माध्यम से अंग्रेजी रंग का एक भारतीय कैनवास बनाने के लिए कई कार्य किए।

15 अगस्त, 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा का विकास ब्रिटिशकालीन शिक्षा संबंधी प्रयत्नों के फलस्वरूप ही अग्रसर हुआ। अंग्रेजों ने अंग्रेजी भाषा को महत्व देते हुए पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा दिया। 1833 ई. के चार्टर द्वारा अंग्रेजी को भारत की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया था। यद्यपि भारतीय शिक्षा के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वेदों, पुराणों, योगों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि प्राच्य विद्या ग्रंथों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही भक्ति व सूफी आंदोलनों और जैन व बौद्ध तथा हिन्दू धर्म ग्रंथों ने भी भारतीय शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परंतु भारत में स्वतंत्रता से पूर्व स्थापित किए गए 19 विश्वविद्यालय ब्रिटिशों के 350 वर्षों के शासनकाल की ही देन हैं। ब्रिटिशों का मत था कि उनकी व्यापारिक एवं राजनैतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति अंग्रेजी भाषा के प्रसार से ही हो सकती है और भारतीयों का उपयोग इस अंतर्राष्ट्रीय भाषा के ज्ञान के द्वारा ही किया जा सकता है।

स्वतंत्रता से पहले राष्ट्रीय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य साक्षरता तथा जन–जागरण हुआ करता था। इसीलिए शिक्षा संबंधी योजनाओं में बुनियादी शिक्षा ही केन्द्र बिन्दु हुआ करती थी। इन्हीं के चलते, स्कूली शिक्षा और विकास को दृष्टि में रखते हुए सन् 1964–66 की अवधि में भारतीय केंद्र सरकार द्वारा डॉ. कोठारी आयोग की स्थापना की गई। इसके अंतर्गत डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में इस आयोग ने एक विस्तृत शिक्षा प्रतिवेदन तैयार किया था। यह प्रतिवेदन भारत सरकार को, शिक्षा और राष्ट्रीय विकास–शिक्षा आयोग प्रतिवेदन 1964–66 के नाम से समर्पित किया गया था। भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 24 जुलाई, 1968 को घोषित की गई जो कोठारी आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित थी।

कोठारी आयोग के लक्ष्यों में सामाजिक दक्षता, समाजवादी समाज की स्थापना और राष्ट्रीय एकता को निर्धारित किया गया। हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में महत्व देते हुए तकनीकी शिक्षा पर बल तथा नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास पर भी जोर दिया गया। शिक्षा प्रणाली का रूपांतरण कर शिक्षा की 10+2+3 पद्धति तय की गई। शिक्षा के अवसरों में समानता की बात कही गई।

मई, 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दस्तावेज प्रकाशित किया गया और नवंबर में इसकी कार्य योजना प्रकाशित की गई। प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र में सुधार हेतु जो योजना तैयार की गई उसे 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' (Operation Black Board) की संज्ञा दी गई। यह प्राथमिक विद्यालयों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का संकेत है। यह प्राथमिक विद्यालयों में केवल ब्लैक बोर्ड उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है, यह उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने की योजना है।

शिक्षा, राष्ट्रीय जीवन एवं संस्कृति से विकसित होती है और यह उनको समृद्ध एवं सुखद बनाते हैं। विद्वानों का मानना है कोई भी राष्ट्र तब तक सुखी और संपन्न नहीं है जब तक वहां शिक्षा का स्तर निम्न है। राष्ट्र के जीवन में प्रारंभिक शिक्षा प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है । यह सफलतापूर्वक पार करके ही कोई

राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंच पाता है । राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध प्रारंभिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक व उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान इसका है उतना किसी दूसरे सामाजिक, राजनीतिज्ञ, शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका संबंध किसी विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग से न हो कर देश की पूरी जनता से होता है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से संपर्क होता है और बालक ही बड़ा होकर व्यक्ति का रूप धारण करता है और उसके हाथों में देश की बागडोर दी जाती है। उन्हीं में से कोई देश का राष्ट्रपति बनता है तो कोई प्रधानमंत्री, कोई मुख्यमंत्री, कोई राज्यपाल, कोई आईएएस, आईपीएस एवं अन्य पदों पर विराजमान होते हैं। परिवार तथा समाज के लिए आगे चलकर यही व्यक्ति अपने दायित्व का निर्वहन करते हैं एवं जिम्मेदार कहलाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सभी बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा ही राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1988 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा पर एक सामान्य कोर के पाठ्यक्रम के साथ साथ अन्य लचीले घटकों पर आधारित एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्यक्रम योजना में शिक्षा के लिये बालकेन्द्रित दृष्टिकोण को अपनाने की परिकल्पना की गई। इस परिप्रेक्ष्य में सभी बच्चों के नामांकन को बढ़ावा देने तथा नामांकित किये गये सभी बच्चों को स्कूलों में रोककर रखने तथा शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार लाने के लिये प्रयास किये जायेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्यक्रम की योजना के अनुसरण में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने 1988 में स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार की। आधुनिकीकरण और प्रासंगिकता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम में पाठ्यचर्या के बोझ को कम करने की जरूरत पर विशेष ध्यान दिया गया है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **मोक्ष** : मुक्ति।
- **प्रशस्त** : मार्ग बताना, पथ–प्रदर्शक।
- **सर्वोत्कृष्ट** : सबसे अच्छा।
- **रसातल** : पृथ्वी के अंदर समाना।
- **आश्वासन** : भरोसा।
- **विरोधाभास** : विचारों में भिन्नता होना।
- **आवंटन** : बांटना।
- **पारिश्रमिक** : मेहनताना, मजदूरी।
- **समता** : समानता।
- **स्रोत** : साधन।
- **परिप्रेक्ष्य** : संदर्भ।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. माध्यमिक आयोग के अनुसार शिक्षा के मुख्य उद्देश्य बताइए।
2. कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा के कौन–से प्रमुख उद्देश्य हैं? संक्षेप में बताइए।
3. भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशें बताइए।
4. भारत में ब्रिटिश काल के दौरान शिक्षा के विकास पर प्रकाश डालिए।
5. शैक्षिक समाजशास्त्र का महत्व बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के उद्देश्यों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
2. भारतीय शिक्षा आयोग के गुण और दोषों पर प्रकाश डालिए।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल लक्ष्य बताइए।
4. लोकतान्त्रिक व्यवस्था में शिक्षा के योगदान का विस्तार से विवेचन कीजिए।
5. पाठ्यचर्या की रूपेरखा का विस्तृत निरूपण कीजिए।
6. टिप्पणी लिखिए
   (क) हंटर कमीशन 1882
   (ख) 1813 अधिनियम और शिक्षा
   (ग) कोठारी आयोग (1964–66)

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Allen, L.A. 1995 Management and Organization, Mc Graw Hill, Auckland
- Anand, C.L. et.al. 1983 Teacher and Education in Emerging in Indian Society, NCERT, New Delhi.
- Coombs, Philip H. 1985 The World Crisis in Education, Oxford University Press New York.
- Govt. of India 1986 National Policy on Education, Min. of HRD, New Delhi.
- Govt. of India 1992 Programme of Action (NPE). Min of HRD.
- Koontz, Harold et al : 1981 Management, Mc Graw Hill, Auchland.
- Mohanty, J., 1986 School Education in Emerging Society, Sterling Publishers, New Delhi.
- Mukherjee, S.N. 1963 Secondary School Administration, Acharya Book Depot, Baroda.
- Mukherji, S.M., 1966 History of Education in India, Acharya Book Depot, Baroda.